प्रेमचंद

सम्पूर्ण संग्रह भाग - १

प्रेमचंद की कहानियां

सूची :-

इस संग्रह में निम्न कहानियां प्रस्तुत कि गयी हैं :-

1. आत्माराम
2. दुर्गा का मंदिर
3. बड़ें घर की बेटी
4. पंच- परमेश्वर
5. शंखनाद
6. नाग पूजा
7. विश्वास
8. नरक का मार्ग
9. स्त्री और पुरूष
10. उध्दार
11. निर्वासन
12. नैराश्य लीला
13. कौशल़
14. स्वर्ग की देवी
15. आधार
16. एक ऑंच की कसर
17. माता का ह्रदय
18. परीक्षा
19. तेंतर
20. नैराश्य
21. दण्ड
22. धिक्कार
23. लैला
24. नेउर
25. शूद्र
26. अमृत
27. अपनी करनी
28. गैरत की कटार
29. घमंड का पुतला
30. विजय
31. वफ़ा का ख़जर
32. मुबारक बीमारी
33. वासना की कड़ियॉ
34. पुत्र-प्रेम
35. इज्जत का खून
36. होली की छुट्टी
37. नादान दोस्त
38. प्रतिशोध
39. देवी
40. खुदी
41. बड़े बाबू

42. राष्ट्र का सेवक
43. आख़िरी तोहफ़ा
44. क़ातिल
45. वरदान
46. वैराग्य
47. नये पड़ोसियों से मेल-जोल
48. एकता का सम्बन्ध पुष्ट होता है
49. शिष्ट-जीवन के दृश्य
50. डिप्टी श्यामाचरण
51. निठुरता और प्रेम
52. सखियाँ
53. ईर्ष्या
54. सुशीला की मृत्यु
55. विरजन की विदा
56. कमलाचरण के मित्र
57. कायापलट
58. भ्रम
59. कर्तव्य और प्रेम का संघर्ष

आत्माराम

वेदों-ग्राम में महादेव सोनार एक सुविख्यात आदमी था। वह अपने सायबान में प्रात: से संध्या तक अँगीठी के सामने बैठा हुआ खटखट किया करता था। यह लगातार ध्वनि सुनने के लोग इतने अभ्यस्त हो गये थे कि जब किसी कारण से वह बंद हो जाती, तो जान पड़ता था, कोई चीज गायब हो गयी। वह नित्य-प्रति एक बार प्रात:काल अपने तोते का पिंजड़ा लिए कोई भजन गाता हुआ तालाब की ओर जाता था। उस धुँधले प्रकाश में उसका जर्जर शरीर, पोपला मुँह और झुकी हुई कमर देखकर किसी अपरिचित मनुष्य को उसके पिशाच होने का भ्रम हो सकता था। ज्यों ही लोगों के कानों में आवाज आती—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,' लोग समझ जाते कि भोर हो गयी।

महादेव का पारिवारिक जीवन सूखमय न था। उसके तीन पुत्र थे, तीन बहुएँ थीं, दर्जनों नाती-पाते थे, लेकिन उसके बोझ को हल्का करने-वाला कोई न था। लड़के कहते—'तब तक दादा जीते हैं, हम जीवन का आनंद भोग ले, फिर तो यह ढोल गले पड़ेगी ही।' बेचारे महादेव को कभी-कभी निराहार ही रहना पड़ता। भोजन के समय उसके घर में साम्यवाद का ऐसा गगनभेदी निर्घोष होता कि वह भूखा ही उठ आता, और नारियल का हुक्का पीता हुआ सो जाता। उनका व्यापसायिक जीवन और भी आशांतिकारक था। यद्यपि वह अपने काम में निपुण था, उसकी खटाई औरों से कहीं ज्यादा शुद्धिकारक और उसकी रासयनिक क्रियाएँ कहीं ज्यादा कष्टसाध्य थीं, तथापि उसे आये दिन शक्की और धैर्य-शून्य प्राणियों के अपशब्द सुनने पड़ते थे, पर महादेव अविचिलित गाम्भीर्य से सिर झुकाये सब कुछ सुना करता था। ज्यों ही यह कलह शांत होता, वह अपने तोते की ओर देखकर पुकार उठता—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्तदाता।' इस मंत्र को जपते ही उसके चित्त को पूर्ण शांति प्राप्त हो जाती थी।

२

एक दिन संयोगवश किसी लड़के ने पिंजड़े का द्वार खोल दिया। तोता उड़ गया। महादेव ने सिह उठाकर जो पिंजड़े की ओर देखा, तो उसका कलेजा सन्न-से हो गया। तोता कहाँ गया। उसने फिर पिंजड़े को देखा, तोता गायब था। महादेव घबड़ा कर उठा और इधर-उधर खपरैलों पर निगाह दौड़ाने लगा। उसे संसार में कोई वस्तु अगर प्यारी थी, तो वह यही तोता। लड़के-बालों, नाती-पोतों से उसका जी भर गया था। लड़को की चुलबुल से उसके काम में विघ्न पड़ता था। बेटों से उसे प्रेम न था; इसलिए नहीं कि वे निकम्मे थे; बल्कि इसलिए कि उनके कारण वह अपने आनंददायी कुल्हड़ों की नियमित संख्या से वंचित रह जाता था। पड़ोसियों से उसे चिढ़ थी, इसलिए कि वे अँगीठी से आग निकाल ले जाते थे। इन समस्त विघ्न-बाधाओं से उसके लिए कोई पनाह थी, तो यही तोता था। इससे उसे किसी प्रकार का कष्ट न होता था। वह अब उस अवस्था में था जब मनुष्य को शांति भोग के सिवा और कोई इच्छा नहीं रहती।

तोता एक खपरैल पर बैठा था। महादेव ने पिंजरा उतार लिया और उसे दिखाकर कहने लगा—'आ आ' सत्त गुरुदत्त शिवदाता।' लेकिन गाँव और घर के लड़के एकत्र हो कर चिल्लाने और तालियाँ बजाने लगे। ऊपर से कौओं ने काँव-काँव की रट लगायी? तोता उड़ा और गाँव से बाहर निकल कर एक पेड़ पर जा बैठा। महादेव खाली पिंजडा लिये उसके पीछे दौड़ा, सो दौड़ा। लोगो को उसकी द्रुतिगामिता पर अचम्भा हो रहा था। मोह की इससे सुन्दर, इससे सजीव, इससे भावमय कल्पना नहीं की जा सकती।

दोपहर हो गयी थी। किसान लोग खेतों से चले आ रहे थे। उन्हें विनोद का अच्छा अवसर मिला। महादेव को चिढ़ाने में सभी को मजा आता था। किसी ने कंकड़ फेंके, किसी ने तालियाँ बजायीं। तोता फिर उड़ा और वहाँ से दूर आम के बाग में एक पेड़ की फुनगी पर जा बैठा । महादेव फिर खाली पिंजड़ा लिये मेंढक की भाँति उचकता चला। बाग में पहुँचा तो पैर के तलुओं से आग निकल रही थी, सिर चक्कर खा रहा था। जब जरा सावधान हुआ, तो फिर पिंजड़ा उठा कर कहने लगे—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' तोता फुनगी से उतर कर नीचे की एक डाल पी आ बैठा, किन्तु महादेव की ओर सशंक नेत्रों से ताक रहा था। महादेव ने समझा, डर रहा है। वह पिंजड़े को छोड़ कर आप एक दूसरे पेड़ की आड़ में छिप गया। तोते ने चारों ओर गौर से देखा, निश्शंक हो गया, अतरा और आ कर पिंजड़े के ऊपर बैठ गया। महादेव का हृदय उछलने लगा। 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' का मंत्र जपता हुआ धीरे-धीरे तोते के समीप आया और लपका कि तोते को पकड़ लें, किन्तु तोता हाथ न आया, फिर पेड़ पर आ बैठा।

शाम तक यही हाल रहा। तोता कभी इस डाल पर जाता, कभी उस डाल पर। कभी पिंजड़े पर आ बैठता, कभी पिंजड़े के द्वार पर बैठे अपने दाना-पानी की प्यालियों को देखता, और फिर उड़ जाता। बुड्ढा अगर मूर्तिमान मोह था, तो तोता मूर्तिमयी माया। यहाँ तक कि शाम हो गयी। माया और मोह का यह संग्राम अंधकार में विलीन हो गया।

३

रात हो गयी ! चारों ओर निबिड़ अंधकार छा गया। तोता न जाने पत्तों में कहाँ छिपा बैठा था। महादेव जानता था कि रात को तोता कही उड़कर नहीं जा सकता, और न पिंजड़े ही में आ सकता हैं, फिर भी वह उस जगह से हिलने का नाम न लेता था। आज उसने दिन भर कुछ नहीं खाया। रात के भोजन का समय भी निकल गया, पानी की बूँद भी उसके कंठ में न गयी, लेकिन उसे न भूख थी, न प्यास ! तोते के बिना उसे अपना जीवन निस्सार, शुष्क और सूना जान पड़ता था। वह दिन-रात काम करता था; इसलिए कि यह उसकी अंत:प्रेरणा थी; जीवन के और काम इसलिए करता था कि आदत थी। इन कामों मे उसे अपनी सजीवता का लेश-मात्र भी ज्ञान न होता था। तोता ही वह वस्तु था, जो उसे चेतना की याद दिलाता था। उसका हाथ से जाना जीव का देह-त्याग करना था।

महादेव दिन-भर का भूख-प्यासा, थका-माँदा, रह-रह कर झपकियाँ ले लेता था; किन्तु एक क्षण में फिर चौंक कर आँखे खोल देता और उस विस्तृत अंधकार में उसकी आवाज सुनायी देती—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता।'

आधी रात गुजर गयी थी। सहसा वह कोई आहट पा कर चौका। देखा, एक दूसरे वृक्ष के नीचे एक धुँधला दीपक जल रहा है, और कई आदमी बैंठे हुए आपस में कुछ बातें कर रहे हैं। वे सब चिलम पी रहे थे। तमाखू की महक ने उसे अधीर कर दिया। उच्च स्वर से बोला—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' और उन आदमियों की ओर चिलम पीने चला गया; किन्तु जिस प्रकार बंदूक की आवाज सुनते ही हिरन भाग जाते हैं उसी प्रकार उसे आते देख सब-के-सब उठ कर भागे। कोई इधर गया, कोई उधर। महादेव चिल्लाने लगा—'ठहरो-ठहरो !' एकाएक उसे ध्यान आ गया, ये सब चोर हैं। वह जारे से चिल्ला उठा—'चोर-चोर, पकड़ो-पकड़ो !' चोरों ने पीछे फिर कर न देखा।

महादेव दीपक के पास गया, तो उसे एक मलसा रखा हुआ मिला जो मोर्चे से काला हो रहा था। महादेव का हृदय उछलने लगा। उसने कलसे मे हाथ डाला, तो मोहरें थीं। उसने एक मोहरे बाहर निकाली और दीपक के उजाले में देखा। हाँ मोहर थी। उसने तुरंत कलसा उठा लिया, और दीपक बुझा दिया और पेड़ के नीचे छिप कर बैठ रहा। साह से चोर बन गया।

उसे फिर शंका हुई, ऐसा न हो, चोर लौट आवें, और मुझे अकेला देख कर मोहरें छीन लें। उसने कुछ मोहर कमर में बाँधी, फिर एक सूखी लकड़ी से जमीन की की मिटटी हटा कर कई गड्ढे बनाये, उन्हें माहरों से भर कर मिटटी से ढँक दिया।

४

महादेव के अतर्नेत्रों के सामने अब एक दूसरा जगत् था, चिंताओं और कल्पना से परिपूर्ण। यद्यपि अभी कोष के हाथ से निकल जाने का भय था; पर अभिलाषाओं ने अपना काम शुरु कर दिया। एक पक्का मकान बन गया, सराफे की एक भारी दूकान खुल गयी, निज सम्बन्धियों से फिर नाता जुड़ गया, विलास की सामग्रियाँ एकत्रित हो गयीं। तब तीर्थ-यात्रा करने चले, और वहाँ से लौट कर बड़े समारोह से यज्ञ, ब्रह्मभोज हुआ। इसके पश्चात एक शिवालय और कुआँ बन गया, एक बाग भी लग गया और वह नित्यप्रति कथा-पुराण सुनने लगा। साधु-सन्तों का आदर-सत्कार होने लगा।

अकस्मात उसे ध्यान आया, कहीं चोर आ जायँ , तो मैं भागूँगा क्यों-कर? उसने परीक्षा करने के लिए कलसा उठाया। और दो सौ पग तक बेतहाशा भागा हुआ चला गया। जान पड़ता था, उसके पैरो में पर लग गये हैं। चिंता शांत हो गयी। इन्हीं कल्पनाओं में रात व्यतीत हो गयी। उषा का आगमन हुआ, हवा जागी, चिड़ियाँ गाने लगीं। सहसा महादेव के कानों में आवाज आयी—

'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,
राम के चरण में चित्त लगा।'

यह बोल सदैव महादेव की जिह्वा पर रहता था। दिन में सहस्रों ही बार ये शब्द उसके मुँह से निकलते थे, पर उनका धार्मिक भाव कभी भी उसके अन्त:कारण को स्पर्श न करता था। जैसे किसी बाजे से

राग निकलता हैं, उसी प्रकार उसके मुँह से यह बोल निकलता था। निरर्थक और प्रभाव-शून्य। तब उसका हृदय-रुपी वृक्ष पत्र-पल्लव विहीन था। यह निर्मल वायु उसे गुंजरित न कर सकती थी; पर अब उस वृक्ष में कोपलें और शाखाएँ निकल आयी थीं। इन वायु-प्रवाह से झूम उठा, गुंजित हो गया।

अरुणोदय का समय था। प्रकृति एक अनुरागमय प्रकाश में डूबी हुई थी। उसी समय तोता पैरों को जोड़े हुए ऊँची डाल से उतरा, जैसे आकाश से कोई तारा टूटे और आ कर पिंजड़े में बैठ गया। महादेव प्रफुल्लित हो कर दौड़ा और पिंजड़े को उठा कर बोला—आओ आत्माराम तुमने कष्ट तो बहुत दिया, पर मेरा जीवन भी सफल कर दिया। अब तुम्हें चाँदी के पिंजड़े में रखूंगा और सोने से मढ़ दूँगा।' उसके रोम-रोम के परमात्मा के गुणानुवाद की ध्वनि निकलने लगी। प्रभु तुम कितने दयावान् हो ! यह तुम्हारा असीम वात्सल्य है, नहीं तो मुझ पापी, पतित प्राणी कब इस कृपा के योग्य था ! इस पवित्र भावों से आत्मा विन्हल हो गयी ! वह अनुरक्त हो कर कह उठा—

'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,
राम के चरण में चित्त लागा।'

उसने एक हाथ में पिंजड़ा लटकाया, बगल में कलसा दबाया और घर चला।

५

महादेव घर पहुँचा, तो अभी कुछ अँधेरा था। रास्ते में एक कुत्ते के सिवा और किसी से भेंट न हुई, और कुत्ते को मोहरों से विशेष प्रेम नहीं होता। उसने कलसे को एक नाद में छिपा दिया, और कोयले से अच्छी तरह ढँक कर अपनी कोठरी में रख आया। जब दिन निकल आया तो वह सीधे पुराहित के घर पहुँचा। पुरोहित पूजा पर बैठे सोच रहे थे—कल ही मुकदमें की पेशी हैं और अभी तक हाथ में कौड़ी भी नहीं—यजमानो में कोई साँस भी लेता। इतने में महादेव ने पालागन की। पंड़ित जी ने मुँह फेर लिया। यह अमंगलमूर्ति कहाँ से आ पहुँची, मालमू नहीं, दाना भी मयस्सर होगा या नहीं। रुष्ट हो कर पूछा—क्या है जी, क्या कहते हो। जानते नहीं, हम इस समय पूजा पर रहते हैं।

महादेव ने कहा—महाराज, आज मेरे यहाँ सत्यनाराण की कथा है।

पुरोहित जी विस्मित हो गये। कानों पर विश्वास न हुआ। महादेव के घर कथा का होना उतनी ही असाधारण घटना थी, जितनी अपने घर से किसी भिखारी के लिए भीख निकालना। पूछा—आज क्या है?

महादेव बोला—कुछ नहीं, ऐसा इच्छा हुई कि आज भगवान की कथा सुन लूँ।

प्रभात ही से तैयारी होने लगी। वेदों के निकटवर्ती गाँवो में सूपारी फिरी। कथा के उपरांत भोज का भी नेवता था। जो सुनता आश्चर्य करता आज रेत में दूब कैसे जमी।

संध्या समय जब सब लोग जमा हो, और पंडित जी अपने सिंहासन पर विराजमान हुए, तो महादेव खड़ा होकर उच्च स्वर में बोला—भाइयों मेरी सारी उम्र छल-कपट में कट गयी। मैंने न जाने कितने आदमियों को दगा दी, कितने खरे को खोटा किया; पर अब भगवान ने मुझ पर दया की है, वह मेरे मुँह की कालिख को मिटाना चाहते हैं। मैं आप सब भाइयों से ललकार कर कहता हूँ कि जिसका मेरे जिम्मे जो कुछ निकलता हो, जिसकी जमा मैंने मार ली हो, जिसके चोखे माल का खोटा कर दिया हो, वह आकर अपनी एक-एक कौड़ी चुका ले, अगर कोई यहाँ न आ सका हो, तो आप लोग उससे जाकर कह दीजिए, कल से एक महीने तक, जब जी चाहे, आये और अपना हिसाब चुकता कर ले। गवाही-साखी का काम नहीं।

सब लोग सन्नाटे में आ गये। कोई मार्मिक भाव से सिर हिला कर बोला—हम कहते न थे। किसी ने अविश्वास से कहा—क्या खा कर भरेगा, हजारों को टोटल हो जायगा।

एक ठाकुर ने ठठोली की—और जो लोग सुरधाम चले गये।

महादेव ने उत्तर दिया—उसके घर वाले तो होंगे।

किन्तु इस समय लोगों को वसूली की इतनी इच्छा न थी, जितनी यह जानने की कि इसे इतना धन मिल कहाँ से गया। किसी को महादेव के पास आने का साहस न हुआ। देहात के आदमी थे, गड़े मुर्दे उखाड़ना क्या जानें। फिर प्राय: लोगों को याद भी न था कि उन्हें महादेव से क्या पाना हैं, और ऐसे पवित्र अवसर पर भूल-चूक हो जाने का भय उनका मुँह बन्द किये हुए था। सबसे बड़ी बात यह थी कि महादेव की साधुता ने उन्हीं वशीभूत कर लिया था।

अचानक पुरोहित जी बोले—तुम्हें याद हैं, मैंने एक कंठा बनाने के लिए सोना दिया था, तुमने कई माशे तौल में उड़ा दिये थे।

महादेव—हॉं, याद हैं, आपका कितना नुकसान हुआ होग।

पुरोहित—पचास रुपये से कम न होगा।

महादेव ने कमर से दो मोहरें निकालीं और पुरोहित जी के सामने रख दीं।

पुरोहितजी की लोलुपता पर टीकाएँ होने लगीं। यह बेईमानी हैं, बहुत हो, तो दो-चार रुपये का नुकसान हुआ होगा। बेचारे से पचास रुपये ऐंठ लिए। नारायण का भी डर नहीं। बनने को पंड़ित, पर नियत ऐसी खराब राम-राम !

लोगों को महादेव पर एक श्रद्धा-सी हो गई। एक घंटा बीत गया पर उन सहस्रों मनुष्यों में से एक भी खड़ा न हुआ। तब महादेव ने फिर कहॉं—मालूम होता है, आप लोग अपना-अपना हिसाब भूल गये हैं, इसलिए आज कथा होने दीजिए। मैं एक महीने तक आपकी राह देखूँगा। इसके पीछे तीर्थ यात्रा करने चला जाऊँगा। आप सब भाइयों से मेरी विनती है कि आप मेरा उद्धार करें।

एक महीने तक महादेव लेनदारों की राह देखता रहा। रात को चोंरो के भय से नींद न आती। अब वह कोई काम न करता। शराब का चसका भी छूटा। साधु-अभ्यागत जो द्वार पर आ जाते, उनका यथायोग्य सत्कार करता। दूर-दूर उसका सुयश फैल गया। यहॉं तक कि महीना पूरा हो गया और एक आदमी भी हिसाब लेने न आया। अब महादेव को ज्ञान हुआ कि संसार में कितना धर्म, कितना सद्व्यवहार हैं। अब उसे मालूम हुआ कि संसार बुरों के लिए बुरा हैं और अच्छे के लिए अच्छा।

६

इस घटना को हुए पचास वर्ष बीत चुके हैं। आप वेदों जाइये, तो दूर ही से एक सुनहला कलस दिखायी देता है। वह ठाकुरद्वारे का कलस है। उससे मिला हुआ एक पक्का तालाब हैं, जिसमें खूब कमल खिले रहते हैं। उसकी मछलियॉं कोई नहीं पकड़ता; तालाब के किनारे एक विशाल समाधि है। यही आत्माराम का स्मृति-चिन्ह है, उसके सम्बन्ध में विभिन्न किंवदंतियॉं प्रचलित है। कोई कहता हैं, वह रत्नजटित पिंजड़ा स्वर्ग को चला गया, कोई कहता, वह 'सत्त गुरुदत्त' कहता हुआ अंतर्ध्यान हो गया, पर यर्थाथ यह हैं कि उस पक्षी-रुपी चंद्र को किसी बिल्ली-रुपी राहु ने ग्रस लिया। लोग कहते हैं, आधी रात को अभी तक तालाब के किनारे आवाज आती है—

'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,
राम के चरण में चित्त लागा।'

महादेव के विषय में भी कितनी ही जन-श्रुतियॉं है। उनमें सबसे मान्य यह है कि आत्माराम के समाधिस्थ होने के बाद वह कई संन्यासियों के साथ हिमालय चला गया, और वहॉं से लौट कर न आया। उसका नाम आत्माराम प्रसिद्ध हो गया।

दुर्गा का मन्दिर

बाबू ब्रजनाथ कानून पढ़ने में मग्न थे, और उनके दोनों बच्चे लड़ाई करने में। श्यामा चिल्लाती, कि मुन्नू मेरी गुड़िया नहीं देता। मुन्नु रोता था कि श्यामा ने मेरी मिठाई खा ली।

ब्रजनाथ ने क्रुद्घ हो कर भामा से कहा—तुम इन दुष्टों को यहाँ से हटाती हो कि नहीं? नहीं तो मैं एक-एक की खबर लेता हूँ।

भामा चूल्हें में आग जला रही थी, बोली—अरे तो अब क्या संध्या को भी पढ़तेही रहोगे? जरा दम तो ले लो।

ब्रज०--उठा तो न जाएगा; बैठी-बैठी वहीं से कानून बघारोगी ! अभी एक-आध को पटक दूंगा, तो वहीं से गरजती हुई आओगी कि हाय-हाय ! बच्चे को मार डाला !

भामा—तो मैं कुछ बैठी या सोयी तो नहीं हूँ। जरा एक घड़ी तुम्हीं लड़को को बहलाओगे, तो क्या होगा ! कुछ मैंने ही तो उनकी नौकरी नहीं लिखायी!

ब्रजनाथ से कोई जवाब न देते बन पड़ा। क्रोध पानी के समान बहाव का मार्ग न पा कर और भी प्रबल हो जाता है। यद्यपि ब्रजनाथ नैतिक सिद्धांतों के ज्ञाता थे; पर उनके पालन में इस समय कुशल न दिखायी दी। मुद्दई और मुद्दालेह, दोनों को एक ही लाठी हॉका, और दोनों को रोते-चिल्लाते छोड़ कानून का ग्रंथ बगल में दबा कालेज-पार्क की राह ली।

२

सावन का महीना था। आज कई दिन के बाद बादल हटे थे। हरे-भरे वृक्ष सुनहरी चादर ओढ़े खड़े थे। मृदु समीर सावन का राग गाता था, और बगुले डालियों पर बैठे हिंडोले झूल रहे थे। ब्रजनाथ एक बेंच पर आ बैठे और किताब खोली। लेकिन इस ग्रंथ को अपेक्षा प्रकृति-ग्रंथ का अवलोकन अधिक चित्ताकर्षक था। कभी आसमान को पढ़ते थे, कभी पत्तियों को, कभी छविमयी हरियाली को और कभी सामने मैदान में खेलते हुए लड़कों को।

एकाएक उन्हें सामने घास पर कागज की एक पुड़िया दिखायी दी। माया ने जिज्ञासा की—आड़ में चलो, देखें इसमें क्या है।

बुद्धि ने कहा—तुमसे मतलब? पड़ी रहने दो।

लेकिन जिज्ञासा-रुपी माया की जीत हुई। ब्रजनाथ ने उठ कर पुड़िया उठा ली। कदाचित् किसी के पैसे पुड़िया में लिपटे गिर पड़े हैं। खोल कर देखा; सावरेन थे। गिना, पुरे आठ निकले। कुतूहल की सीमा न रही।

ब्रजनाथ की छाती धड़कने लगी। आठों सावरेन हाथ में लिये सोचने लगे, इन्हें क्या करुँ? अगर यहीं रख दूँ, तो न जाने किसकी नजर पड़े; न मालूम कौन उठा ले जाय ! नहीं यहाँ रखना उचित नहीं। चलूँ थाने में इत्तला कर दूँ और ये सावरेन थानेदार को सौंप दूँ। जिसके होंगे वह आप ले जायगा या अगर उसको न भी मिलें, तो मुझ पर कोई दोष न रहेगा, मैं तो अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाऊँगा।

माया ने परदे की आड़ से मंत्र मारना शुरु किया। वह थाने नहीं गये, सोचा—चलूं भामा से एक दिल्लगी करुँ। भोजन तैयार होगा। कल इतमीनान से थाने जाऊँगा।

भामा ने सावरेन देखे, तो हृदय मे एक गुदगुदी-सी हुई। पूछा किसकी है?

ब्रज०--मेरी।

भामा—चलो, कहीं हो न !

ब्रज०—पड़ी मिली है।

भामा—झूठ बात। ऐसे ही भाग्य के बली हो, तो सच बताओ कहाँ मिली? किसकी है?

ब्रज०—सच कहता हूँ, पड़ी मिली है।

भामा—मेरी कसम?

ब्रज०—तुम्हारी कसम।

भामा गिन्नयों को पति के हाथ से छीनने की चेष्टा करने लगी।

ब्रजनाथ के कहा—क्यों छीनती हो?

भामा—लाओ, मैं अपने पास रख लूँ।

ब्रज०—रहने दो, मैं इसकी इत्तला करने थाने जाता हूँ।

भामा का मुख मलिन हो गया। बोली—पड़े हुए धन की क्या इत्तला?

ब्रज०—हाँ, और क्या, इन आठ गिन्नियों के लिए ईमान बिगाड़ूँगा?

भामा—अच्छा तो सवेरे चले जाना। इस समय जाओगे, तो आने में देर होगी।

ब्रजनाथ ने भी सोचा, यही अच्छा। थानेवाले रात को तो कोई कारवाई करेंगे नहीं। जब अशर्फियों को पड़ा रहना है, तब जेसे थाना वैसे मेरा घर।

गिन्नियाँ संदूक में रख दीं। खा-पी कर लेटे, तो भामा ने हँस कर कहा—आया धन क्यों छोड़ते हो? लाओ, मैं अपने लिए एक गुलूबंद बनवा लूँ, बहुत दिनों से जी तरस रहा है।

माया ने इस समय हास्य का रुप धारण किया।

ब्रजनाथ ने तिरस्कार करके कहा—गुलूबंद की लालसा में गले में फाँसी लगाना चाहती हो क्या?

३

प्रात:काल ब्रजनाथ थाने के लिए तैयार हूए। कानून का एक लेक्चर छूट जायेगा, कोई हरज नहीं। वह इलाहाबाद के हाईकोर्ट में अनुवादक थे। नौकरी में उन्नति की आशा न देख कर साल भर से वकालत की तैयारी में मग्न थे; लेकिन अभी कपड़े पहन ही रहे थे कि उनके एक मित्र मुंशी गोरेवाला आ कर बैठ गये, ओर अपनी पारिवारिक दुश्चिंताओं की विस्मृति की रामकहानी सुना कर अत्यंत विनीत भाव से बोले—भाई साहब, इस समय मैं इन झंझटों मे ऐसा फँस गया हूँ कि बुद्धि कुछ काम नहीं करती। तुम बड़े आदमी हो। इस समय कुछ सहायता करो। ज्यादा नहीं तीस रुपये दे दो। किसी न किसी तरह काम चला लूँगा, आज तीस तारीख है। कल शाम को तुम्हें रुपये मिल जायँगे।

ब्रजनाथ बड़े आदमी तो न थे; किन्तु बड़प्पन की हवा बाँध रखी थी। यह मिथ्याभिमान उनके स्वभाव की एक दुर्बलता थी। केवल अपने वैभव का प्रभाव डालने के लिए ही वह बहुधा मित्रों की छोटी-मोटी आवश्यकताओं पर अपनी वास्तविक आवश्यकताओं को निछावर कर दिया करत थे, लेकिन भामा को इस विषय में उनसे सहानुभूति न थी, इसलिए जब ब्रजनाथ पर इस प्रकार का संकट आ पड़ता था, तब थोड़ी देर के लिए उनकी पारिवारिक शांति अवश्य नष्ट हो जाती थी। उनमें इनकार करने या टालने की हिम्मत न थी।

वह सकुचाते हुए भामा के पास गये और बोले—तुम्हारे पास तीस रुपये तो न होंगे? मुंशी गोरेलाल माँग रहे है।

भामा ने रुखाई से रहा—मेरे पास तो रुपये नहीं।

ब्रज०—होंगे तो जरुर, बहाना करती हो।

भामा—अच्छा, बहाना ही सही।

ब्रज०—तो मैं उनसे क्या कह दूँ!

भामा—कह दो घर में रुपये नहीं हैं, तुमसे न कहते बने, तो मैं पर्दे की आड़ से कह दूँ।

ब्रज०--कहने को तो मैं कह दूँ, लेकिन उन्हें विश्वास न आयेगा। समझेंगे, बहाना कर रहे हैं।

भामा--समझेंगे; तो समझा करें।

ब्रज०—मुझसे ऐसी बमुरौवती नहीं हो सकती। रात-दिन का साथ ठहरा, कैसे इनकार करुँ?

भामा—अच्छा, तो जो मन में आवे, सो करो। मैं एक बार कह चुकी, मेरे पास रुपये नहीं।

ब्रजनाथ मन में बहुत खिन्न हुए। उन्हें विश्वास था कि भामा के पास रुपये है; लेकिन केवल मुझे लज्जित करने के लिए इनकार कर रही है। दुराग्रह ने संकल्प को दृढ़ कर दिया। संदूक से दो गिन्नियाँ निकालीं और गोरेलाल को दे कर बोले—भाई, कल शाम को कचहरी से आते ही रुपये दे जाना। ये एक आदमी की अमानत हैं, मैं इसी समय देने जा रहा था --यदि कल रुपये न पहुँचे तो मुझे बहुत लज्जित होना पड़ेगा; कहीं मुँह दिखाने योग्य न रहूँगा।

गोरेलाल ने मन में कहा—अमानत स्त्री के सिवा और किसकी होगी, और गिन्नियाँ जेब मे रख कर घर की राह ली।

४

आज पहली तारीख की संध्या है। ब्रजनाथ दरवाजे पर बैठे गोरेलाल का इंतजार कर रहे है।

पाँच बज गये, गोरेलाल अभी तक नहीं आये। ब्रजनाथ की आँखे रास्ते की तरफ लगी हुई थीं। हाथ में एक पत्र था; लेकिन पढ़ने में जी नहीं लगता था। हर तीसरे मिनट रास्ते की ओर देखने लगते थे; लेकिन

सोचते थे—आज वेतन मिलने का दिन है। इसी कारण आने में देर हो रही है। आते ही होंगे। छः बजे, गोरे लाल का पता नहीं। कचहरी के कर्मचारी एक-एक करके चले आ रहे थे। ब्रजनाथ को कोई बार धोखा हुआ। वह आ रहे हैं। जरुर वही हैं। वैसी ही अचनक है। वैसे ही टोपी है। चाल भी वही है। हॉं, वही हैं। इसी तरफ आ रहे हैं। अपने हृदय से एक बोझा-सा उतरता मालूम हुआ; लेकिन निकट आने पर ज्ञात हुआ कि कोई और है। आशा की कल्पित मूर्ति दुराशा में बदल गयी।

ब्रजनाथ का चित्त खिन्न होने लगा। वह एक बार कुरसी से उठे। बरामदे की चौखट पर खडे हो, सड़क पर दोनों तरफ निगाह दौड़ायी। कहीं पता नहीं। दो-तीन बार दूर से आते हुए इक्कों को देख कर गोरेलाल का भ्रम हुआ। आकांक्षा की प्रबलता !

सात बजे; चिराग जल गये। सड़क पर अँधेरा छाने लगा। ब्रजनाथ सड़क पर उद्‌विग्न भाव से टहलने लगे। इरादा हुआ, गोरेलाल के घर चलूँ, उधर कदम बढाये; लेकिन हृदय कॉंप रहा था कि कहीं वह रास्ते में आते हुए न मिल जायँ, तो समझें कि थोड़े-से रुपयों के लिए इतने व्याकुल हो गये। थोड़ी ही दूर गये कि किसी को आते देखा। भ्रम हुआ, गोरेलाल है, मुड़े और सीधे बरामदे में आकर दम लिया, लेकिन फिर वही धोखा ! फिर वही भ्रांति ! तब सोचले लगे कि इतनी देर क्यों हो रही हैं? क्या अभी तक वह कचहरी से न आये होंगे ! ऐसा कदापि नहीं हो सकता। उनके दफ्तर-वाले मुद्‌दत हुई, निकल गये। बस दो बातें हो सकती हैं, या तो उन्होंने कल आने का निश्चय कर लिया, समझे होंगे, रात को कौन जाय, या जान-बूझ कर बैठे होंगे, देना न चाहते होंगे, उस समय उनको गरज थी, इस समय मुझे गरज है। मैं ही किसी को क्यों न भेज दूँ? लेकिन किसे भेजूँ? मुन्नू जा सकता है। सड़क ही पर मकान है। यह सोच कर कमरे में गये, लैप जलाया और पत्र लिखने बैठे, मगर ऑंखें द्‌वार ही की ओर लगी हुई थी। अकस्मात्‌ किसी के पैरों की आहट सुनाई दी। परन्तु पत्र को एक किताब के नीचे दबा लिया और बरामद में चले आये। देखा, पड़ोस का एक कुँजड़ा तार पढ़ाने आया है। उससे बोले—भाई, इस समय फुरसत नहीं हैं; थोड़ी देर में आना। उसने कहा--बाबू जी, घर भर के आदमी घबराये हैं, जरा एक निगाह देख लीजिए। निदान ब्रजनाथ ने झुँझला कर उसके हाथ से तार ले लिया, और सरसरी नजर से देख कर बोले—कलकत्ते से आया है। माल नहीं पहुँचा। कुँजड़े ने डरते-डरते कहा—बाबू जी, इतना और देख लीजिए किसने भेजा है। इस पर ब्रजनाथ ने तार फेंक दिया और बोले--मुझे इस वक्त फुरसत नहीं है।

आठ बज गये। ब्रजनाथ को निराशा होने लगी—मुन्नू इतनी रात बीते नहीं जा सकता। मन में निश्चय किया, आज ही जाना चाहिए, बला से बुरा मानेंगे। इसकी कहॉं तक चिंता करूँ स्पष्ट कह दूँगा मेरे रुपये दे दो। भलमानसी भलेमानसों से निभाई जा सकती है। ऐसे धूर्तो के साथ भलमनसी का व्यवहार करना मूर्खता हैं अचकन पहनी; घर में जाकर माया से कहा—जरा एक काम से बाहर जाता हूँ, किवाड़े बन्द कर लो।

चलने को तो चले; लेकिन पग-पग पर रुकते जाते थे। गोरेलाल का घर दूर से दिखाई दिया; लैंप जल रहा था। ठिठक गये और सोचने लगे चल कर क्या कहूँगा? कहीं उन्होंने जाते-जाते रपए निकाल कर दे दिये, और देर के लिए क्षमा मॉंगी तो मुझे बड़ी झेंप होगी। वह मुझे क्षुद्र, ओछा, धैर्यहीन समझेंगे। नहीं, रुपयों की आतचीत करूँ? कहूंगा—भाई घर में बड़ी देर से पेट दर्द कर रहा है। तुम्हारे पास पुराना तेज सिरका तो नहीं है मगर नहीं, यह बहाना कुछ भद्‌दा-सा प्रतीत होता है। साफ कलई खुल जायगी। ऊंह ! इस झंझट की जरुरत ही क्या है। वह मुझे देखकर आप ही समझ जायेंगे। इस विषय में बातचीत की कुछ नौबत ही न आवेगी। ब्रजनाथ इसी उधेड़बुन में आगे बढ़ते चले जाते थे जैसे नदी में लहरें चाहे किसी ओर चलें, धारा अपना मार्ग नहीं छोड़ती।

गोरेलाल का घर आ गया। द्‌वार बंद था। ब्रजनाथ को उन्हें पुकारने का साहस न हुआ, समझे खाना खा रहे होंगे। दरवाजे के सामने से निकले, और धीरे-धीरे टहलते हुए एक मील तक चले गए। नौ बजने की आवाज कान में आयी। गोरेलाल भोजन कर चुके होंगे, यह सोचकर लौट पड़े; लेकिन द्‌वार पर पहुंचे तो, अंधेरा था। वह आशा-रूपी दीपक बुझ गया था। एक मिनट तक दुविधा में खड़े रहे। क्या करूँ। अभी बहुत सबेरा है। इतनी जल्दी थोड़े ही सो गए होंगे? दबे पॉंव बरामदे पर चढ़े। द्‌वार पर कान लगा कर सुना, चारों ओर ताक रहे थे कि कहीं कोई देख न ले। कुछ बातचीत की भनक कान में पड़ी। ध्यान से सुना। स्त्री कह रही थी-रुपये तो सब उठ रए, ब्रजनाथ को कहॉं से दोगे? गोरेलाल ने उत्तर दिया-ऐसी कौन सी उतावली है,

फिर दे देंगे। और दरख्वास्त दे दी है, कल मंजूर हो ही जायगी। तीन महीने के बाद लौटेंगे तब देखा जायगा।

ब्रजनाथ को ऐसा जान पड़ा मानों मुँह पर किसी न तमाचा मार दिया।

क्रोध और नैराश्य से भरे हुए बरामदे में उतर आए। घर चले तो सीधे कदम न पड़ते थे, जैसे कोई दिन-भर का थका-मॉदा पथिक हो।

५

ब्रजनाथ रात-भर करवटें बदलते रहे। कभी गोरेलाल की धुर्तता पर क्रोध आता था, कभी अपनी सरलता पर; मालूम नहीं; किस गरीब के रुपये हैं। उस पर क्या बीती होगी ! लेकिन अब क्रोध या खेद रो क्या लाभ? सोचने लगे--रुपये कहॉ से आवेंगे? भाभा पहले ही इनकार कर चुकी है, वेतन में इतनी गुंजाइश नहीं। दस-पॉच रुपये की बात होती तो कतर ब्योंत करता। तो क्या करू? किसी से उधार लूँ। मगर मुझे कौन देगा। आज तक किसी से मॉगने का संयोग नहीं पड़ा, और अपना कोई ऐसा मित्र है भी नहीं। जो लोग हैं, मुझी को सताया करते हैं, मुझे क्या देंगे। हॉ, यदि कुछ दिन कानून छोड़कर अनुवाद करने में परिश्रम करूँ, तो रुपये मिल सकते हैं। कम-से-कम एक मास का कठिन परिश्रम है। सस्ते अनुवादकों के मारे दर भी तो गिर गयी है ! हा निर्दयी ! तूने बड़ी दगा की। न जाने किस जन्म का बैर चुकाया है। कहीं का न रखा !

दूसरे दिन ब्रजनाथ को रुपयों की धुन सवार हुई। सबेरे कानून के लेक्चर में सम्मिलित होते, संध्या को कचहरी से तजवीजों का पुलिंदा घर लाते और आधी रात बैठे अनुवाद किया करते। सिर उठाने की मुहलत न मिलती ! कभी एक-दो भी बज जाते। जब मस्तिष्क बिलकुल शिथिल हो जाता तब विवश होकर चारपाई पर पड़े रहते।

लेकिन इतने परिश्रम का अभ्यास न होने के कारण कभी-कभी सिर में दर्द होने लगता। कभी पाचन-क्रिया में विध्न पड़ जाता, कभी ज्वर चढ़ आता। तिस पर भी वह मशीन की तरह काम में लगे रहते। भाभा कभी-कभी झुँझला कर कहती--अजी, लेट भी रहो; बड़े धर्मात्मा बने हो। तुम्हारे जैसे दस-पॉच आदमी और होते, तो संसार का काम ही बन्द हो जाता। ब्रजनाथ इस बाधाकारी व्यंग का उत्तर न देते, दिन निकलते ही फिर वही चरखा ले बैठते।

यहॉ तक कि तीन सप्ताह बीत गये और पचीस रुपये हाथ आ गए। ब्रजनाथ सोचते थे--दो तीन दिन में बेड़ा पार है; लेकिन इक्कीसवें दिन उन्हें प्रचंड ज्वर चढ़ आया और तीन दिन तक न उतरा। छुट्टी लेनी पड़ी, शय्यासेवी बन गए। भादों का महीना था। भाभा ने समझा, पित्त का, प्रकोप है; लेकिन जब एक सप्ताह तक डाक्टर की औषधि सेवन करने पर भी ज्वर न उतरा तब घबरायी। ब्रजनाथ प्राय: ज्वर में बक-झक भी करने लगते। भाभा सुनकर डर के मारे कमरे में से भाग जाती। बच्चों को पकड़ कर दूसरे कमरे में बन्द कर देती। अब उसे शंका होने लगती थी कि कहीं यह कष्ट उन्हीं रुपयों के कारण तो नहीं भोगना पड़ रहा है ! कौन जाने, रुपयेवाले ने कुछ कर धर दिया हो ! जरूर यही बात है, नहीं तो औषधि से लाभ क्यों नहीं होता?

संकट पड़ने पर हम धर्म-भीरु हो जाते हैं, औषधियों से निराश होकर देवताओं की शरण लेते हैं। भाभा ने भी देवताओं की शरण ली। वह जन्माष्टमी, शिवरात्रि का कठिन व्रत शुरू किया।

आठ दिन पूरे हो गए। अंतिम दिन आया। प्रभात का समय था। भाभा ने ब्रजनाथ को दवा पिलाई और दोनों बालकों को लेकर दुर्गा जी की पूजा करने के लिए चली। उसका हृदय आराध्य देवी के प्रति श्रद्धा से परिपूर्ण था। मन्दिर के ऑंगन में पहुँची। उपासक आसनों पर बैठे हुए दुर्गापाठ कर रहे थे। धूप और अगर की सुगंध उड़ रही थी। उसने मन्दिर में प्रवेश किया। सामने दुर्गा की विशाल प्रतिमा शोभायमान थी। उसके मुखारविंद पर एक विलक्षण दीप्त झलक रही थी। बड़े-बड़े उज्जल नेत्रों से प्रभा की किरणें छिटक रही थीं। पवित्रता का एक समॉ-सा छाया हुआ था। भाभा इस दीप्तवर्ण मूर्ति के सम्मुख साधी ऑखों से ताक न सकी। उसके अन्त:करण में एक निर्मल, विशुद्ध भाव-पूर्ण भय का उदय हो आया। उसने ऑखें बन्द कर लीं। घुटनों के बल बैठ गयी, और हाथ जोड़ कर करुण स्वर से बोली—माता, मुझ पर दया करो।

उसे ऐसा ज्ञात हुआ, मानों देवी मुस्कराई। उसे उन दिव्य नेत्रों से एक ज्योति-सी निकल कर अपने हृदय में आती हुई मालूम हुई। उसके कानों में देवी के मुँह से निकले ये शब्द सुनाई दिए—पराया धन लौटा दे, तेरा भला होगा।

भाभा उठ बैठी। उसकी ऑंखों में निर्मल भक्ति का आभास झलक रहा था। मुखमंडल से पवित्र प्रेम बरसा पड़ता था। देवी ने कदाचित् उसे अपनी प्रभा के रंग में डूबा दिया था।

इतने में दूसरी एक स्त्री आई। उसके उज्जल केश बिखरे और मुरझाए हुए चेहरे के दोनों ओर लटक रहे थे। शरीर पर केवल एक श्वेत साड़ी थी। हाथ में चूड़ियों के सिवा और कोई आभूषण न था। शोक और नैराश्य की साक्षात् मूर्ति मालूम होती थी। उसने भी देवी के सामने सिर झुकाया और दोनों हाथों से ऑंचल फैला कर बोली—देवी, जिसने मेरा धन लिया हो, उसका सर्वनाश करो।

जैसे सितार मिजराब की चोट खा कर थरथरा उठता है, उसी प्रकार भाभा का हृदय अनिष्ट के भय से थरथरा उठा। ये शब्द तीव्र शर के समान उसके कलेजे में चुभ गए। उसने देवी की ओर कातर नेत्रों से देखा। उनका ज्योतिर्मय स्वरूप भयंकर था, नेत्रों से भीषण ज्वाला निकल रही थी। भाभा के अन्त:करण में सर्वथा आकाश से, मंदिर के सामने वाले वृक्षों से; मंदिर के स्तंभों से, सिंहासन के ऊपर जलते हुए दीपक से और देवी के विकराल मुँह से ये शब्द निकलकर गूँजने लगे--पराया धन लौटा दे, नहीं तो तेरा सर्वनाश हो जायगा।

भाभा खड़ी हो गई और उस वृद्‌धा से बोली-क्यों माता, तुम्हारा धन किसी ने ले लिया है?

वृद्‌धा ने इस प्रकार उसकी ओर देखा, मानों डूबते को तिनके का सहारा मिला। बोली—हॉं बेटी !

भाभा--कितने दिन हुए ?

वृद्‌धा--कोई डेढ़ महीना।

भामा--कितने रुपये थे?

वृद्‌धा--पूरे एक सौ बीस।

भामा--कैसे खोए?

वृद्‌धा--क्या जाने कहीं गिर गए। मेरे स्वामी पलटन में नौकर थे। आज कई बरस हुए, वह परलोक सिधारे। अब मुझे सरकार से आठ रुपए साल पेन्शन मिलती है। अक्की दो साल की पेन्शन एक साथ ही मिली थी। खजाने से रुपए लेकर आ रही थी। मालूम नहीं, कब और कहॉं गिर पड़े। आठ गिन्नियॉं थीं।

भामा--अगर वे तुम्हें मिल जायँ तो क्या दोगी।

वृद्‌धा--अधिक नहीं, उसमें से पचास रुपए दे दूँगी।

भामा रुपये क्या होंगे, कोई उससे अच्छी चीज दो।

वृद्‌धा--बेटी और क्या दूँ जब तक जीऊँगी, तुम्हारा यश गाऊँगी।

भामा--नहीं, इसकी मुझे आवश्यकता नहीं !

वृद्‌धा--बेटी, इसके सिवा मेरे पास क्या है?

भामा--मुझे आर्शीवाद दो। मेरे पति बीमार हैं, वह अच्छे हो जायँ।

वृद्‌धा--क्या उन्हीं को रुपये मिले हैं?

भामा--हॉं, वह उसी दिन से तुम्हें खोज रहे हैं।

वृद्‌धा घुटनों के बल बैठ गई, और ऑंचल फैला कर कम्पित स्वर से बोली--देवी ! इनका कल्याण करो।

भामा ने फिर देवी की ओर सशंक दृष्टि से देखा। उनके दिव्य रूप पर प्रेम का प्रकाश था। ऑंखों में दया की आनंददायिनी झलक थी। उस समय भामा के अंत:करण में कहीं स्वर्गलोक से यह ध्वनि सुनाई दी--जा तेरा कल्याण होगा।

संध्या का समय है। भामा ब्रजनाथ के साथ इक्के पर बैठी तुलसी के घर, उसकी थाती लौटाने जा रही है। ब्रजनाथ के बड़े परिश्रम की कमायी जो डाक्टर की भेंट हो चुकी है, लेकिन भामा ने एक पड़ोसी के हाथ अपने कानों के झुमके बेचकर रुपये जुटाए हैं। जिस समय झुमके बनकर आये थे, भामा बहुत प्रसन्न हुई थी। आज उन्हें बेचकर वह उससे भी अधिक प्रसन्न है।

जब ब्रजनाथ ने आठों गिन्नियॉं उसे दिखाई थीं, उसके हृदय में एक गुदगुदी-सी हुई थी; लेकिन यह हर्ष मुख पर आने का साहस न कर सका था। आज उन गिन्नियों को हाथ से जाते समय उसका हार्दिक आनन्द ऑंखों में चमक रहा है, ओठों पर नाच रहा है, कपोलों को रंग रहा है, और अंगों पर किलोल कर रहा है; वह इंद्रियों का आनंद था, यह आत्मा का आनंद है; वह आनंद लज्जा के भीतर छिपा हुआ था, यह आनंद गर्व से बाहर निकला पड़ता है।

तुलसी का आशीर्वाद सफल हुआ। आज पूरे तीन सप्ताह के बाद ब्रजनाथ तकिए के सहारे बैठे थे। वह बार-बार भामा को प्रेम-पूर्ण नेत्रों से देखते थे। वह आज उन्हें देवी मालूम होती थी। अब तक उन्होंने उसके बाह्य सौंदर्य की शोभ देखी थी, आज वह उसका आत्मिक सौंदर्य देख रहे हैं।

तुलसी का घर एक गली में था। इक्का सड़क पर जाकर ठहर गया। ब्रजनाथ इक्के पर से उतरे, और अपनी छड़ी टेकते हुए भामा के हाथों के सहारे तुलसी के घर पहुँचे। तुलसी ने रुपए लिए और दोनों हाथ फैला कर आशीर्वाद दिया--दुर्गा जी तुम्हारा कल्याण करें।

तुलसी का वर्णहीन मुख वैसे ही खिल गया, जैसे वर्षा के पीछे वृक्षों की पत्तियाँ खिल जाती हैं। सिमटा हुआ अंग फैल गया, गालों की झुर्रियाँ मिटती दीख पड़ीं। ऐसा मालूम होता थ, मानो उसका कायाकलूप हो गया।

वहाँ से आकर ब्रजनाथ अपवने द्वार पर बैठे हुए थे कि गोरेलाल आ कर बैठ गए। ब्रजनाथ ने मुँह फेर लिया।

गोरेलाल बोले--भाई साहब ! कैसी तबियत है?

ब्रजनाथ--बहुत अच्छी तरह हूँ।

गोरेलाल--मुझे क्षमा कीजिएगा। मुझे इसका बहुत खेद है कि आपके रुपये देने में इतना विलम्ब हुआ। पहली तारीख ही को घर से एक आवश्यक पत्र आ गया, और मैं किसी तरह तीन महीने की छुट्टी लेकर घर भागा। वहाँ की विपत्ति-कथा कहूँ, तो समाप्त न हो; लेकिन आपकी बीमारी की शोक-समाचार सुन कर आज भागा चला आ रहा हूँ। ये लीजिये, रुपये हाजिर हैं। इस विलम्ब के लिए अत्यंत लज्जित हूँ।

ब्रजनाथ का क्रोध शांत हो गया। विनय में कितनी शक्ति है ! बोले-जी हाँ, बीमार तो था; लेकिन अब अच्छा हो गया हूँ, आपको मेरे कारण व्यर्थ कष्ट उठाना पड़ा। यदि इस समय आपको असुविधा हो, तो रुपये फिर दे दीजिएगा। मैं अब उऋण हो गया हूँ। कोई जल्दी नहीं है।

गोरेलाल विदा हो गये, तो ब्रजनाथ रुपये लिये हुए भीतर आये और भामा से बोले--ये लो अपने रुपये; गोरेलाल दे गये।

भामा ने कहा--ये मरे रुपये नहीं तुलसी के हैं; एक बार पराया धन लेकर सीख गयी।

ब्रज॰--लेकिन तुलसी के पूरे रुपये तो दे दिये गये !

भामा--दे दिये तो क्या हुआ? ये उसके आशीर्वाद की न्योछावर है।

ब्रज॰-कान के झुमके कहाँ से आवेंगे?

भामा--झुमके न रहेंगे, न सही; सदा के लिए 'कान' तो हो गये।

बड़े घर की बेटी

बेनीमाधव सिंह गौरीपुर गाँव के जमींदार और नम्बरदार थे। उनके पितामह किसी समय बड़े धन-धान्य संपन्न थे। गाँव का पक्का तालाब और मंदिर जिनकी अब मरम्मत भी मुश्किल थी, उन्हीं के कीर्ति-स्तंभ थे। कहते हैं इस दरवाजे पर हाथी झूमता था, अब उसकी जगह एक बूढ़ी भैंस थी, जिसके शरीर में अस्थि-पंजर के सिवा और कुछ शेष न रहा था; पर दूध शायद बहुत देती थी; क्योंकि एक न एक आदमी हाँड़ी लिए उसके सिर पर सवार ही रहता था। बेनीमाधव सिंह अपनी आधी से अधिक संपत्ति वकीलों को भेंट कर चुके थे। उनकी वर्तमान आय एक हजार रुपये वार्षिक से अधिक न थी। ठाकुर साहब के दो बेटे थे। बड़े का नाम श्रीकंठ सिंह था। उसने बहुत दिनों के परिश्रम और उद्योग के बाद बी.ए. की डिग्री प्राप्त की थी। अब एक दफ्तर में नौकर था। छोटा लड़का लाल-बिहारी सिंह दोहरे बदन का, सजीला जवान था। भरा हुआ मुखड़ा,चौड़ी छाती। भैंस का दो सेर ताजा दूध वह उठ कर सबेरे पी जाता था। श्रीकंठ सिंह की दशा बिलकुल विपरीत थी। इन नेत्रप्रिय गुणों को उन्होंने बी०ए०--इन्हीं दो अक्षरों पर न्योछावर कर दिया था। इन दो अक्षरों ने उनके शरीर को निर्बल और चेहरे को कांतिहीन बना दिया था। इसी से वैद्यक ग्रंथों पर उनका विशेष प्रेम था। आयुर्वेदिक औषधियों पर उनका अधिक विश्वास था। शाम-सबेरे उनके कमरे से प्राय: खरल की सुरीली कर्णमधुर ध्वनि सुनायी दिया करती थी। लाहौर और कलकत्ते के वैद्यों से बड़ी लिखा-पढ़ी रहती थी।

श्रीकंठ इस अँगरेजी डिग्री के अधिपति होने पर भी अँगरेजी सामाजिक प्रथाओं के विशेष प्रेमी न थे; बल्कि वह बहुधा बड़े जोर से उसकी निंदा और तिरस्कार किया करते थे। इसी से गाँव में उनका बड़ा सम्मान था। दशहरे के दिनों में वह बड़े उत्साह से रामलीला होते और स्वयं किसी न किसी पात्र का पार्ट लेते थे। गौरीपुर में रामलीला के वही जन्मदाता थे। प्राचीन हिंदू सभ्यता का गुणगान उनकी धार्मिकता का प्रधान अंग था। सम्मिलित कुटुम्ब के तो वह एक-मात्र उपासक थे। आज-कल स्त्रियों को कुटुम्ब को कुटुम्ब में मिल-जुल कर रहने की जो अरुचि होती है, उसे वह जाति और देश दोनों के लिए हानिकारक समझते थे। यही कारण था कि गाँव की ललनाएँ उनकी निंदक थीं ! कोई-कोई तो उन्हें अपना शत्रु समझने में भी संकोच न करती थीं ! स्वयं उनकी पत्नी को ही इस विषय में उनसे विरोध था। यह इसलिए नहीं कि उसे अपने सास-ससुर, देवर या जेठ आदि घृणा थी; बल्कि उसका विचार था कि यदि बहुत कुछ सहने और तरह देने पर भी परिवार के साथ निर्वाह न हो सके, तो आये-दिन की कलह से जीवन को नष्ट करने की अपेक्षा यही उत्तम है कि अपनी खिचड़ी अलग पकायी जाय।

आनंदी एक बड़े उच्च कुल की लड़की थी। उसके बाप एक छोटी-सी रियासत के ताल्लुकेदार थे। विशाल भवन, एक हाथी, तीन कुत्ते, बाज, बहरी-शिकरे, झाड़-फानूस, आनरेरी मजिस्ट्रेट और ऋण, जो एक प्रतिष्ठित ताल्लुकेदार के भोग्य पदार्थ हैं, सभी यहाँ विद्यमान थे। नाम था भूपसिंह। बड़े उदार-चित्त और प्रतिभाशाली पुरुष थे; पर दुर्भाग्य से लड़का एक भी न था। सात लड़कियाँ हुईं और दैवयोग से सब की सब जीवित रहीं। पहली उमंग में तो उन्होंने तीन ब्याह दिल खोलकर किये; पर पंद्रह-बीस हजार रुपयों का कर्ज सिर पर हो गया, तो आँखें खुलीं, हाथ समेट लिया। आनंदी चौथी लड़की थी। वह अपनी सब बहनों से अधिक रूपवती और गुणवती थी। इससे ठाकुर भूपसिंह उसे बहुत प्यार करते थे। सुन्दर संतान को कदाचित् उसके माता-पिता भी अधिक चाहते हैं। ठाकुर साहब बड़े धर्म-संकट में थे कि इसका विवाह कहाँ करें? न तो यही चाहते थे कि ऋण का बोझ बढ़े और न यही स्वीकार था कि उसे अपने को भाग्यहीन समझना पड़े। एक दिन श्रीकंठ उनके पास किसी चंदे का रुपया माँगने आये। शायद नागरी-प्रचार का चंदा था। भूपसिंह उनके स्वभाव पर रीझ गये और धूमधाम से श्रीकंठसिंह का आनंदी के साथ ब्याह हो गया।

आनंदी अपने नये घर में आयी, तो यहाँ का रंग-ढंग कुछ और ही देखा। जिस टीम-टाम की उसे बचपन से ही आदत पड़ी हुई थी, वह यहां नाम-मात्र को भी न थी। हाथी-घोड़ों का तो कहना ही क्या, कोई सजी हुई सुंदर बहली तक न थी। रेशमी स्लीपर साथ लायी थी; पर यहाँ बाग कहाँ। मकान में खिड़कियाँ तक न थीं, न जमीन पर फर्श, न दीवार पर तस्वीरें। यह एक सीधा-सादा देहाती गृहस्थी का मकान था; किन्तु आनंदी ने थोड़े ही दिनों में अपने को इस नयी अवस्था के ऐसा अनुकूल बना लिया, मानों उसने विलास के सामान कभी देखे ही न थे।

एक दिन दोपहर के समय लालबिहारी सिंह दो चिड़िया लिये हुए आया और भावज से बोला--जल्दी से पका दो, मुझे भूख लगी है। आनंदी भोजन बनाकर उसकी राह देख रही थी। अब वह नया व्यंजन बनाने बैठी। हांड़ी में देखा, तो घी पाव-भर से अधिक न था। बड़े घर की बेटी, किफायत क्या जाने। उसने सब घी मांस में डाल दिया। लालबिहारी खाने बैठा, तो दाल में घी न था, बोला-दाल में घी क्यों नहीं छोड़ा?

आनंदी ने कहा--घी सब माँस में पड़ गया। लालबिहारी जोर से बोला--अभी परसों घी आया है। इतना जल्द उठ गया?

आनंदी ने उत्तर दिया--आज तो कुल पाव--भर रहा होगा। वह सब मैंने मांस में डाल दिया।

जिस तरह सूखी लकड़ी जल्दी से जल उठती है, उसी तरह क्षुधा से बावला मनुष्य जरा-जरा सी बात पर तिनक जाता है। लालबिहारी को भावज की यह ढिठाई बहुत बुरी मालूम हुई, तिनक कर बोला--मैके में तो चाहे घी की नदी बहती हो !

स्त्री गालियाँ सह लेती हैं, मार भी सह लेती हैं; पर मैके की निंदा उनसे नहीं सही जाती। आनंदी मुँह फेर कर बोली--हाथी मरा भी, तो नौ लाख का। वहाँ इतना घी नित्य नाई-कहार खा जाते हैं।

लालबिहारी जल गया, थाली उठाकर पलट दी, और बोला--जी चाहता है, जीभ पकड़ कर खींच लूँ।

आनंद को भी क्रोध आ गया। मुँह लाल हो गया, बोली--वह होते तो आज इसका मजा चखाते।

अब अपढ़, उजड्ड ठाकुर से न रहा गया। उसकी स्त्री एक साधारण जमींदार की बेटी थी। जब जी चाहता, उस पर हाथ साफ कर लिया करता था। खड़ाऊँ उठाकर आनंदी की ओर जोर से फेंकी, और बोला--जिसके गुमान पर भूली हुई हो, उसे भी देखूँगा और तुम्हें भी।

आनंदी ने हाथ से खड़ाऊँ रोकी, सिर बच गया; पर अँगली में बड़ी चोट आयी। क्रोध के मारे हवा से हिलते पत्ते की भाँति काँपती हुई अपने कमरे में आ कर खड़ी हो गयी। स्त्री का बल और साहस, मान और मर्यादा पति तक है। उसे अपने पति के ही बल और पुरुषत्व का घमंड होता है। आनंदी खून का घूँट पी कर रह गयी।

३

श्रीकंठ सिंह शनिवार को घर आया करते थे। वृहस्पति को यह घटना हुई थी। दो दिन तक आनंदी कोप-भवन में रही। न कुछ खाया न पिया, उनकी बाट देखती रही। अंत में शनिवार को वह नियमानुकूल संध्या समय घर आये और बाहर बैठ कर कुछ इधर-उधर की बातें, कुछ देश-काल संबंधी समाचार तथा कुछ नये मुकदमों आदि की चर्चा करने लगे। यह वार्तालाप दस बजे रात तक होता रहा। गाँव के भद्र पुरुषों को इन बातों में ऐसा आनंद मिलता था कि खाने-पीने की भी सुधि न रहती थी। श्रीकंठ को पिंड छुड़ाना मुश्किल हो जाता था। ये दो-तीन घंटे आनंदी ने बड़े कष्ट से काटे ! किसी तरह भोजन का समय आया। पंचायत उठी। एकांत हुआ, तो लालबिहारी ने कहा--भैया, आप जरा भाभी को समझा दीजिएगा कि मुँह सँभाल कर बातचीत किया करें, नहीं तो एक दिन अनर्थ हो जायगा।

बेनीमाधव सिंह ने बेटे की ओर साक्षी दी--हाँ, बहू-बेटियों का यह स्वभाव अच्छा नहीं कि मर्दों के मूँह लगें।

लालबिहारी--वह बड़े घर की बेटी हैं, तो हम भी कोई कुर्मी-कहार नहीं है। श्रीकंठ ने चिंतित स्वर से पूछा--आखिर बात क्या हुई?

लालबिहारी ने कहा--कुछ भी नहीं; यों ही आप ही आप उलझ पड़ीं। मैके के सामने हम लोगों को कुछ समझती ही नहीं।

श्रीकंठ खा-पीकर आनंदी के पास गये। वह भरी बैठी थी। यह हजरत भी कुछ तीखे थे। आनंदी ने पूछा--चित्त तो प्रसन्न है।

श्रीकंठ बोले--बहुत प्रसन्न है; पर तुमने आजकल घर में यह क्या उपद्रव मचा रखा है?

आनंदी की त्योरियों पर बल पड़ गये, झुँझलाहट के मारे बदन में ज्वाला-सी दहक उठी। बोली--जिसने तुमसे यह आग लगायी है, उसे पाऊँ, मुँह झुलस दूँ।

श्रीकंठ--इतनी गरम क्यों होती हो, बात तो कहो।

आनंदी--क्या कहूँ, यह मेरे भाग्य का फेर है ! नहीं तो गँवार छोकरा, जिसको चपरासगिरी करने का भी शऊर नहीं, मुझे खड़ाऊँ से मार कर यों न अकड़ता।

श्रीकंठ--सब हाल साफ-साफ कहा, तो मालूम हो। मुझे तो कुछ पता नहीं।

आनंदी--परसों तुम्हारे लाड़ले भाई ने मुझसे मांस पकाने को कहा। घी हाँडी में पाव-भर से अधिक न था। वह सब मैंने मांस में डाल दिया। जब खाने बैठा तो कहने लगा--दल में घी क्यों नहीं है? बस, इसी पर मेरे मैके को बुरा-भला कहने लगा--मुझसे न रहा गया। मैंने कहा कि वहाँ इतना घी तो नाई-कहार खा जाते हैं, और किसी को जान भी नहीं पड़ता। बस इतनी सी बात पर इस अन्यायी ने मुझ पर खड़ाऊँ फेंक मारी। यदि हाथ से न रोक लूँ, तो सिर फट जाय। उसी से पूछो, मैंने जो कुछ कहा है, वह सच है या झूठ।

श्रीकंठ की आँखें लाल हो गयीं। बोले--यहाँ तक हो गया, इस छोकरे का यह साहस ! आनंदी स्त्रियों के स्वभावानुसार रोने लगी; क्योंकि आँसू उनकी पलकों पर रहते हैं। श्रीकंठ बड़े धैर्यवान् और शांति पुरुष थे। उन्हें कदाचित् ही कभी क्रोध आता था; स्त्रियों के आँसू पुरुष की क्रोधाग्नि भड़काने में तेल का काम देते हैं। रात भर करवटें बदलते रहे। उद्विग्नता के कारण पलक तक नहीं झपकी। प्रात:काल अपने बाप के पास जाकर बोले--दादा, अब इस घर में मेरा निबाह न होगा।

इस तरह की विद्रोह-पूर्ण बातें कहने पर श्रीकंठ ने कितनी ही बार अपने कई मित्रों को आड़े हाथों लिया था; परन्तु दुर्भाग्य, आज उन्हें स्वयं वे ही बातें अपने मुँह से कहनी पड़ी ! दूसरों को उपदेश देना भी कितना सहज है!

बेनीमाधव सिंह घबरा उठे और बोले--क्यों?

श्रीकंठ--इसलिए कि मुझे भी अपनी मान--प्रतिष्ठा का कुछ विचार है। आपके घर में अब अन्याय और हठ का प्रकोप हो रहा है। जिनको बड़ों का आदर--सम्मान करना चाहिए, वे उनके सिर चढ़ते हैं। मैं दूसरे का नौकर ठहरा घर पर रहता नहीं। यहाँ मेरे पीछे स्त्रियों पर खड़ाऊँ और जूतों की बौछारें होती हैं। कड़ी बात तक चिन्ता नहीं। कोई एक की दो कह ले, वहाँ तक मैं सह सकता हूँ किन्तु यह कदापि नहीं हो सकता कि मेरे ऊपर लात-घूँसे पड़ें और मैं दम न मारुँ।

बेनीमाधव सिंह कुछ जवाब न दे सके। श्रीकंठ सदैव उनका आदर करते थे। उनके ऐसे तेवर देखकर बूढ़ा ठाकुर अवाक् रह गया। केवल इतना ही बोला--बेटा, तुम बुद्धिमान होकर ऐसी बातें करते हो? स्त्रियाँ इस तरह घर का नाश कर देती है। उनको बहुत सिर चढ़ाना अच्छा नहीं।

श्रीकंठ--इतना मैं जानता हूँ, आपके आशीर्वाद से ऐसा मूर्ख नहीं हूँ। आप स्वयं जानते हैं कि मेरे ही समझाने-बुझाने से, इसी गाँव में कई घर सँभल गये, पर जिस स्त्री की मान-प्रतिष्ठा का ईश्वर के दरबार में उत्तरदाता हूँ, उसके प्रति ऐसा घोर अन्याय और पशुवत् व्यवहार मुझे असह्य है। आप सच मानिए, मेरे लिए यही कुछ कम नहीं है कि लालबिहारी को कुछ दंड नहीं होता।

अब बेनीमाधव सिंह भी गरमाये। ऐसी बातें और न सुन सके। बोले--लालबिहारी तुम्हारा भाई है। उससे जब कभी भूल--चूक हो, उसके कान पकड़ो लेकिन

श्रीकंठ—लालबिहारी को मैं अब अपना भाई नहीं समझता।

बेनीमाधव सिंह--स्त्री के पीछे?

श्रीकंठ—जी नहीं, उसकी क्रूरता और अविवेक के कारण।

दोनों कुछ देर चुप रहे। ठाकुर साहब लड़के का क्रोध शांत करना चाहते थे, लेकिन यह नहीं स्वीकार करना चाहते थे कि लालबिहारी ने कोई अनुचित काम किया है। इसी बीच में गाँव के और कई सज्जन हुक्के-चिलम के बहाने वहाँ आ बैठे। कई स्त्रियों ने जब यह सुना कि श्रीकंठ पत्नी के पीछे पिता से लड़ने की तैयार हैं, तो उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। दोनों पक्षों की मधुर वाणियाँ सुनने के लिए उनकी आत्माएँ तिलमिलाने लगीं। गाँव में कुछ ऐसे कुटिल मनुष्य भी थे, जो इस कुल की नीतिपूर्ण गति पर मन ही मन जलते थे। वे कहा करते थे—श्रीकंठ अपने बाप से दबता है, इसीलिए वह दब्बू है। उसने विद्या पढ़ी, इसलिए वह किताबों का कीड़ा है। बेनीमाधव सिंह उसकी सलाह के बिना कोई काम नहीं करते, यह उनकी मूर्खता है। इन महानुभावों की शुभकामनाएँ आज पूरी होती दिखायी दीं। कोई हुक्का पीने के बहाने और कोई लगान की रसीद दिखाने आ कर बैठ गया। बेनीमाधव सिंह पुराने आदमी थे। इन भावों को ताड़ गये। उन्होंने निश्चय किया चाहे कुछ ही क्यों न हो, इन द्रोहियों को ताली बजाने का अवसर न दूँगा। तुरंत कोमल शब्दों में बोले--बेटा, मैं तुमसे बाहर नहीं हूँ। तम्हारा जो जी चाहे करो, अब तो लड़के से अपराध हो गया।

इलाहाबाद का अनुभव-रहित झल्लाया हुआ ग्रेजुएट इस बात को न समझ सका। उसे डिबेटिंग-क्लब में अपनी बात पर अड़ने की आदत थी, इन हथकंडों की उसे क्या खबर? बाप ने जिस मतलब से बात पलटी थी, वह उसकी समझ में न आया। बोला—लालबिहारी के साथ अब इस घर में नहीं रह सकता।

बेनीमाधव—बेटा, बुद्धिमान लोग मूर्खों की बात पर ध्यान नहीं देते। वह बेसमझ लड़का है। उससे जो कुछ भूल हुई, उसे तुम बड़े होकर क्षमा करो।

श्रीकंठ—उसकी इस दुष्टता को मैं कदापि नहीं सह सकता। या तो वही घर में रहेगा, या मैं ही। आपको यदि वह अधिक प्यारा है, तो मुझे विदा कीजिए, मैं अपना भार आप सँभाल लूँगा। यदि मुझे रखना चाहते हैं तो उससे कहिए, जहाँ चाहे चला जाय। बस यह मेरा अंतिम निश्चय है।

लालबिहारी सिंह दरवाजे की चौखट पर चुपचाप खड़ा बड़े भाई की बातें सुन रहा था। वह उनका बहुत आदर करता था। उसे कभी इतना साहस न हुआ था कि श्रीकंठ के सामने चारपाई पर बैठ जाय, हुक्का पी ले या पान खा ले। बाप का भी वह इतना मान न करता था। श्रीकंठ का भी उस पर हार्दिक स्नेह था। अपने होश में उन्होंने कभी उसे घुड़का तक न था। जब वह इलाहाबाद से आते, तो उसके लिए कोई न कोई वस्तु अवश्य लाते। मुगदर की जोड़ी उन्होंने ही बनवा दी थी। पिछले साल जब उसने अपने से ड्यौढ़े जवान को नागपंचमी के दिन दंगल में पछाड़ दिया, तो उन्होंने पुलकित होकर अखाड़े में ही जा कर उसे गले लगा लिया था, पाँच रुपये के पैसे लुटाये थे। ऐसे भाई के मुँह से आज ऐसी हृदय-विदारक बात सुनकर लालबिहारी को बड़ी ग्लानि हुई। वह फूट-फूट कर रोने लगा। इसमें संदेह नहीं कि अपने किये पर पछता रहा था। भाई के आने से एक दिन पहले से उसकी छाती धड़कती थी कि देखूँ भैया क्या कहते हैं। मैं उनके सम्मुख कैसे जाऊँगा, उनसे कैसे बोलूँगा, मेरी आँखें उनके सामने कैसे उठेगी। उसने समझा था कि भैया मुझे बुलाकर समझा देंगे। इस आशा के विपरीत आज उसने उन्हें निर्दयता की मूर्ति बने हुए पाया। वह मूर्ख था। परंतु उसका मन कहता था कि भैया मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। यदि श्रीकंठ उसे अकेले में बुलाकर दो-चार बातें कह देते; इतना ही नहीं दो-चार तमाचे भी लगा देते तो कदाचित् उसे इतना दुःख न होता; पर भाई का यह कहना कि अब मैं इसकी सूरत नहीं देखना चाहता, लालबिहारी से सहा न गया ! वह रोता हुआ घर आया। कोठारी में जा कर कपड़े पहने, आँखें पोंछी, जिसमें कोई यह न समझे कि रोता था। तब आनंदी के द्वार पर आकर बोला—भाभी, भैया ने निश्चय किया है कि वह मेरे साथ इस घर में न रहेंगे। अब वह मेरा मुँह नहीं देखना चाहते; इसलिए अब मैं जाता हूँ। उन्हें फिर मुँह न दिखाऊँगा ! मुझसे जो कुछ अपराध हुआ, उसे क्षमा करना।

यह कहते-कहते लालबिहारी का गला भर आया।

४

जिस समय लालबिहारी सिंह सिर झुकाये आनंदी के द्वार पर खड़ था, उसी समय श्रीकंठ सिंह भी आँखें लाल किये बाहर से आये। भाई को खड़ा देखा, तो घृणा से आँखें फेर लीं, और कतरा कर निकल गये। मानों उसकी परछाही से दूर भागते हों।

आनंदी ने लालबिहारी की शिकायत तो की थी, लेकिन अब मन में पछता रही थी वह स्वभाव से ही दयावती थी। उसे इसका तनिक भी ध्यान न था कि बात इतनी बढ़ जायगी। वह मन में अपने पति पर झुँझला रही थी कि यह इतने गरम क्यों होते हैं। उस पर यह भय भी लगा हुआ था कि कहीं मुझसे इलाहाबाद चलने को कहें, तो कैसे क्या करूँगी। इस बीच में जब उसने लालबिहारी को दरवाजे पर खड़े यह कहते सुना कि अब मैं जाता हूँ, मुझसे जो कुछ अपराध हुआ, क्षमा करना, तो उसका रहा-सहा क्रोध भी पानी हो गया। वह रोने लगी। मन का मैल धोने के लिए नयन-जल से उपयुक्त और कोई वस्तु नहीं है।

श्रीकंठ को देखकर आनंदी ने कहा—लाला बाहर खड़े बहुत रो रहे हैं।

श्रीकंठ--तो मैं क्या करूँ?

आनंदी—भीतर बुला लो। मेरी जीभ में आग लगे ! मैंने कहाँ से यह झगड़ा उठाया।

श्रीकंठ--मैं न बुलाऊँगा।

आनंदी--पछताओगे। उन्हें बहुत ग्लानि हो गयी है, ऐसा न हो, कहीं चल दें।

श्रीकंठ न उठे। इतने में लालबिहारी ने फिर कहा--भाभी, भैया से मेरा प्रणाम कह दो। वह मेरा मुँह नहीं देखना चाहते; इसलिए मैं भी अपना मुँह उन्हें न दिखाऊँगा।

लालबिहारी इतना कह कर लौट पड़ा, और शीघ्रता से दरवाजे की ओर बढ़ा। अंत में आनंदी कमरे से निकली और उसका हाथ पकड़ लिया। लालबिहारी ने पीछे फिर कर देखा और आँखों में आँसू भरे बोला--मुझे जाने दो।

आनंदी कहाँ जाते हो?

लालबिहारी--जहाँ कोई मेरा मुँह न देखे।

आनंदी—मैं न जाने दूँगी?

लालबिहारी—मैं तुम लोगों के साथ रहने योग्य नहीं हूँ।

आनंदी—तुम्हें मेरी सौगंध अब एक पग भी आगे न बढ़ाना।

लालबिहारी—जब तक मुझे यह न मालूम हो जाय कि भैया का मन मेरी तरफ से साफ हो गया, तब तक मैं इस घर में कदापि न रहूँगा।

आनंदी—मैं ईश्वर को साक्षी दे कर कहती हूँ कि तुम्हारी ओर से मेरे मन में तनिक भी मैल नहीं है।

अब श्रीकंठ का हृदय भी पिघला। उन्होंने बाहर आकर लालबिहारी को गले लगा लिया। दोनों भाई खूब फूट-फूट कर रोये। लालबिहारी ने सिसकते हुए कहा—भैया, अब कभी मत कहना कि तुम्हारा मुँह न देखूँगा। इसके सिवा आप जो दंड देंगे, मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा।

श्रीकंठ ने काँपते हुए स्वर में कहा--लल्लू ! इन बातों को बिल्कुल भूल जाओ। ईश्वर चाहेगा, तो फिर ऐसा अवसर न आवेगा।

बेनीमाधव सिंह बाहर से आ रहे थे। दोनों भाइयों को गले मिलते देखकर आनंद से पुलकित हो गये। बोल उठे—बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं। बिगड़ता हुआ काम बना लेती हैं।

गाँव में जिसने यह वृत्तांत सुना, उसी ने इन शब्दों में आनंदी की उदारता को सराहा—'बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं।'

पंच परमेश्वर

जुम्मन शेख अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी। साझे में खेती होती थी। कुछ लेन-देन में भी साझा था। एक को दूसरे पर अटल विश्वास था। जुम्मन जब हज करने गये थे, तब अपना घर अलगू को सौंप गये थे, और अलगू जब कभी बाहर जाते, तो जुम्मन पर अपना घर छोड़ देते थे। उनमें न खाना-पाना का व्यवहार था, न धर्म का नाता; केवल विचार मिलते थे। मित्रता का मूलमंत्र भी यही है।

इस मित्रता का जन्म उसी समय हुआ, जब दोनों मित्र बालक ही थे, और जुम्मन के पूज्य पिता, जुमराती, उन्हें शिक्षा प्रदान करते थे। अलगू ने गुरू जी की बहुत सेवा की थी, खूब प्याले धोये। उनका हुक्का एक क्षण के लिए भी विश्राम न लेने पाता था, क्योंकि प्रत्येक चिलम अलगू को आध घंटे तक किताबों से अलग कर देती थी। अलगू के पिता पुराने विचारों के मनुष्य थे। उन्हें शिक्षा की अपेक्षा गुरु की सेवा-शुश्रूषा पर अधिक विश्वास था। वह कहते थे कि विद्या पढ़ने ने नहीं आती; जो कुछ होता है, गुरु के आशीर्वाद से। बस, गुरु जी की कृपा-दृष्टि चाहिए। अतएव यदि अलगू पर जुमराती शेख के आशीर्वाद अथवा सत्संग का कुछ फल न हुआ, तो यह मानकर संतोष कर लेना कि विद्योपार्जन में मैंने यथाशक्ति कोई बात उठा नहीं रखी, विद्या उसके भाग्य ही में न थी, तो कैसे आती?

मगर जुमराती शेख स्वयं आशीर्वाद के कायल न थे। उन्हें अपने सोटे पर अधिक भरोसा था, और उसी सोटे के प्रताप से आज-पास के गाँवों में जुम्मन की पूजा होती थी। उनके लिखे हुए रेहननामे या बैनामे पर कचहरी का मुहर्रिर भी कदम न उठा सकता था। हल्के का डाकिया, कांस्टेबिल और तहसील का चपरासी--सब उनकी कृपा की आकांक्षा रखते थे। अतएव अलगू का मान उनके धन के कारण था, तो जुम्मन शेख अपनी अनमोल विद्या से ही सबके आदरपात्र बने थे।

२

जुम्मन शेख की एक बूढ़ी खाला (मौसी) थी। उसके पास कुछ थोड़ी-सी मिलकियत थी; परन्तु उसके निकट संबंधियों में कोई न था। जुम्मन ने लम्बे-चौड़े वादे करके वह मिलकियत अपने नाम लिखवा ली थी। जब तक दानपत्र की रजिस्ट्री न हुई थी, तब तक खालाजान का खूब आदर-सत्कार किया गया; उन्हें खूब स्वादिष्ट पदार्थ खिलाये गये। हलवे-पुलाव की वर्षा- सी की गयी; पर रजिस्ट्री की मोहर ने इन खातिरदारियों पर भी मानों मुहर लगा दी। जुम्मन की पत्नी करीमन रोटियों के साथ कड़वी बातों के कुछ तेज, तीखे सालन भी देने लगी। जुम्मन शेख भी निठुर हो गये। अब बेचारी खालाजान को प्राय: नित्य ही ऐसी बातें सुननी पड़ती थी।

बुढ़िया न जाने कब तक जियेगी। दो-तीन बीघे ऊसर क्या दे दिया, मानों मोल ले लिया है ! बघारी दाल के बिना रोटियाँ नहीं उतरतीं ! जितना रुपया इसके पेट में झोंक चुके, उतने से तो अब तक गाँव मोल ले लेते।

कुछ दिन खालाजान ने सुना और सहा; पर जब न सहा गया तब जुम्मन से शिकायत की। तुम्मन ने स्थानीय कर्मचारी—गृहस्वांमी—के प्रबंध देना उचित न समझा। कुछ दिन तक दिन तक और यों ही रो-धोकर काम चलता रहा। अन्त में एक दिन खाला ने जुम्मन से कहा—बेटा ! तुम्हारे साथ मेरा निर्वाह न होगा। तुम मुझे रुपये दे दिया करो, मैं अपना पका-खा लूँगी।

जुम्मन ने घृष्टता के साथ उत्तर दिया—रुपये क्या यहाँ फलते हैं?

खाला ने नम्रता से कहा—मुझे कुछ रूखा-सूखा चाहिए भी कि नहीं?

जुम्मन ने गम्भीर स्वर से जवाब़ दिया—तो कोई यह थोड़े ही समझा था कि तु मौत से लड़कर आयी हो?

खाला बिगड़ गयीं, उन्होंने पंचायत करने की धमकी दी। जुम्मन हँसे, जिस तरह कोई शिकारी हिरन को जाली की तरफ जाते देख कर मन ही मन हँसता है। वह बोले—हाँ, जरूर पंचायत करो। फैसला हो जाय। मुझे भी यह रात-दिन की खटखट पसंद नहीं।

पंचायत में किसकी जीत होगी, इस विषय में जुम्मन को कुछ भी संदेह न थ। आस-पास के गाँवों में ऐसा कौन था, उसके अनुग्रहों का ऋणी न हो; ऐसा कौन था, जो उसको शत्रु बनाने का साहस कर सके? किसमें इतना बल था, जो उसका सामना कर सके? आसमान के फरिश्ते तो पंचायत करने आवेंगे ही नहीं।

३

इसके बाद कई दिन तक बूढ़ी खाला हाथ में एक लकड़ी लिये आस-पास के गाँवों में दौड़ती रहीं। कमर झुक कर कमान हो गयी थी। एक-एक पग चलना दूभर था; मगर बात आ पड़ी थी। उसका निर्णय करना जरूरी था।

बिरला ही कोई भला आदमी होगा, जिसके समाने बुढ़िया ने दु:ख के आँसू न बहाये हों। किसी ने तो यों ही ऊपरी मन से हूँ-हाँ करके टाल दिया, और किसी ने इस अन्याय पर जमाने को गालियाँ दीं। कहा—कब्र में पाँव जटके हुए हैं, आज मरे, कल दूसरा दिन, पर हवस नहीं मानती। अब तुम्हें क्या चाहिए? रोटी खाओ और अल्लाह का नाम लो। तुम्हें अब खेती-बारी से क्या काम है? कुछ ऐसे सज्जन भी थे, जिन्हें हास्य-रस के रसास्वादन का अच्छा अवसर मिला। झुकी हुई कमर, पोपला मुँह, सन के-से बाल इतनी सामग्री एकत्र हों, तब हँसी क्यों न आवे? ऐसे न्यायप्रिय, दयालु, दीन-वत्सल पुरुष बहुत कम थे, जिन्होंने इस अबला के दुखड़े को गौर से सुना हो और उसको सांत्वना दी हो। चारों ओर से घूम-घाम कर बेचारी अलगू चौधरी के पास आयी। लाठी पटक दी और दम लेकर बोली—बेटा, तुम भी दम भर के लिये मेरी पंचायत में चले आना।

अलगू—मुझे बुला कर क्या करोगी? कई गाँव के आदमी तो आवेंगे ही।

खाला—अपनी विपद तो सबके आगे रो आयी। अब आनरे न आने का अख्तियार उनको है।

अलगू—यों आने को आ जाऊँगा; मगर पंचायत में मुँह न खोलूँगा।

खाला—क्यों बेटा?

अलगू—अब इसका कया जवाब दूँ? अपनी खुशी। जुम्मन मेरा पुराना मित्र है। उससे बिगाड़ नहीं कर सकता।

खाला—बेटा, क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे?

हमारे सोये हुए धर्म-ज्ञान की सारी सम्पत्ति लुट जाय, तो उसे खबर नहीं होता, परन्तु ललकार सुनकर वह सचेत हो जाता है। फिर उसे कोई जीत नहीं सकता। अलगू इस सवाल का काई उत्तर न दे सका, पर उसके
हृदय में ये शब्द गूँज रहे थे-

क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे?

४

संध्या समय एक पेड़ के नीचे पंचायत बैठी। शेख जुम्मन ने पहले से ही फर्श बिछा रखा था। उन्होंने पान, इलायची, हुक्के-तम्बाकू आदि का प्रबन्ध भी किया था। हाँ, वह स्वय अलबत्ता अलगू चौधरी के साथ जरा दूर पर बैठेजब पंचायत में कोई आ जाता था, तब दवे हुए सलाम से उसका स्वागत करते थे। जब सूर्य अस्त हो गया और चिड़ियों की कलरवयुक्त पंचायत पेड़ों पर बैठी, तब यहाँ भी पंचायत शुरू हुई। फर्श की एक-एक अंगुल जमीन भर गयी; पर अधिकांश दर्शक ही थे। निमंत्रित महाशयों में से केवल वे ही लोग पधारे थे, जिन्हें जुम्मन से अपनी कुछ कसर निकालनी थी। एक कोने में आग सुलग रही थी। नाई ताबड़तोड़ चिलम भर रहा था। यह निर्णय करना असम्भव था कि सुलगते हुए उपलों से अधिक धुआँ निकलता था या चिलम के दमों से। लड़के इधर-उधर दौड़ रहे थे। कोई आपस में गाली-गलौज करते और कोई रोते थे। चारों तरफ कोलाहल मच रहा था। गाँव के कुत्ते इस जमाव को भोज समझकर झुंड के झुंड जमा हो गए थे।

पंच लोग बैठ गये, तो बूढ़ी खाला ने उनसे विनती की--

'पंचों, आज तीन साल हुए, मैंने अपनी सारी जायदाद अपने भानजे जुम्मन के नाम लिख दी थी। इसे आप लोग जानते ही होंगे। जुम्मन ने मुझे ता-हयात रोटी-कपड़ा देना कबूल किया। साल-भर तो मैंने इसके साथ रो-धोकर काटा। पर अब रात-दिन का रोना नहीं सहा जाता। मुझे न पेट की रोटी मिलती है न तन का कपड़ा। बेकस बेवा हूँ। कचहरी दरबार नहीं कर सकती। तुम्हारे सिवा और किसको अपना दु:ख सुनाऊँ? तुम लोग जो राह निकाल दो, उसी राह पर चलूँ। अगर मुझमें कोई ऐब देखो, तो मेरे मुँह पर थप्पड़ मारी।

जुम्मन में बुराई देखो, तो उसे समझाओं, क्यों एक बेकस की आह लेता है ! मैं पंचों का हुक्म सिर-माथे पर चढ़ाऊँगी।'

रामधन मिश्र, जिनके कई असामियों को जुम्मन ने अपने गांव में बसा लिया था, बोले—जुम्मन मियां किसे पंच बदते हो? अभी से इसका निपटारा कर लो। फिर जो कुछ पंच कहेंगे, वही मानना पड़ेगा।

जुम्मन को इस समय सदस्यों में विशेषकर वे ही लोग दीख पड़े, जिनसे किसी न किसी कारण उनका वैमनस्य था। जुम्मन बोले—पंचों का हुक्म अल्लाह का हुक्म है। खालाजान जिसे चाहें, उसे बदें। मुझे कोई उज्र नहीं।

खाला ने चिल्लाकर कहा--अरे अल्लाह के बन्दे ! पंचों का नाम क्यों नहीं बता देता? कुछ मुझे भी तो मालूम हो।

जुम्मन ने क्रोध से कहा--इस वक्त मेरा मुँह न खुलवाओ। तुम्हारी बन पड़ी है, जिसे चाहो, पंच बदो।

खालाजान जुम्मन के आक्षेप को समझ गयीं, वह बोली--बेटा, खुदा से डरो। पंच न किसी के दोस्त होते हैं, ने किसी के दुश्मन। कैसी बात कहते हो! और तुम्हारा किसी पर विश्वास न हो, तो जाने दो; अलगू चौधरी को तो मानते हो, लो, मैं उन्हीं को सरपंच बदती हूँ।

जुम्मन शेख आनंद से फूल उठे, परन्तु भावों को छिपा कर बोले--अलगू ही सही, मेरे लिए जैसे रामधन वैसे अलगू।

अलगू इस झमेले में फँसना नहीं चाहते थे। वे कन्नी काटने लगे। बोले--खाला, तुम जानती हो कि मेरी जुम्मन से गाढ़ी दोस्ती है।

खाला ने गम्भीर स्वर में कहा--'बेटा, दोस्ती के लिए कोई अपना ईमान नहीं बेचता। पंच के दिल में खुदा बसता है। पंचों के मुँह से जो बात निकलती है, वह खुदा की तरफ से निकलती है।'

अलगू चौधरी सरपंच हुएं रामधन मिश्र और जुम्मन के दूसरे विरोधियों ने बुढ़िया को मन में बहुत कोसा।

अलगू चौधरी बोले--शेख जुम्मन ! हम और तुम पुराने दोस्त हैं ! जब काम पड़ा, तुमने हमारी मदद की है और हम भी जो कुछ बन पड़ा, तुम्हारी सेवा करते रहे हैं; मगर इस समय तुम और बुढ़ी खाला, दोनों हमारी निगाह में बराबर हो। तुमको पंचों से जो कुछ अर्ज करनी हो, करो।

जुम्मन को पूरा विश्वास था कि अब बाजी मेरी है। अलग यह सब दिखावे की बातें कर रहा है। अतएव शांत-चित्त हो कर बोले--पंचों, तीन साल हुए खालाजान ने अपनी जायदाद मेरे नाम हिब्बा कर दी थी। मैंने उन्हें ता-हयात खाना-कप्ड़ा देना कबूल किया था। खुदा गवाह है, आज तक मैंने खालाजान को कोई तकलीफ नहीं दी। मैं उन्हें अपनी माँ के समान समझता हूँ। उनकी खिदमत करना मेरा फर्ज है; मगर औरतों में जरा अनबन रहती है, उसमें मेरा क्या बस है? खालाजान मुझसे माहवार खर्च अलग माँगती है। जायदाद जितनी है; वह पंचों से छिपी नहीं। उससे इतना मुनाफा नहीं होता है कि माहवार खर्च दे सकूँ। इसके अलावा हिब्बानामे में माहवार खर्च का कोई जिक्र नही। नहीं तो मैं भूलकर भी इस झमेले मे न पड़ता। बस, मुझे यही कहना है। आइंदा पंचों का अख्तियार है, जो फैसला चाहें, करे।

अलगू चौधरी को हमेशा कचहरी से काम पड़ता था। अतएव वह पूरा कानूनी आदमी था। उसने जुम्मन से जिरह शुरू की। एक-एक प्रश्न जुम्मन के हृदय पर हथौड़ी की चोट की तरह पड़ता था। रामधन मिश्र इस प्रश्नों पर मुग्ध हुए जाते थे। जुम्मन चकित थे कि अलगू को क्या हो गया। अभी यह अलगू मेरे साथ बैठी हुआ कैसी-कैसी बातें कर रहा था ! इतनी ही देर में ऐसी कायापलट हो गयी कि मेरी जड़ खोदने पर तुला हुआ है। न मालूम कब की कसर यह निकाल रहा है? क्या इतने दिनों की दोस्ती कुछ भी काम न आवेगी?

जुम्मन शेख तो इसी संकल्प-विकल्प में पड़े हुए थे कि इतने में अलगू ने फैसला सुनाया--

जुम्मन शेख तो इसी संकल्प-विकल्प में पड़े हुए थे कि इतने में अलगू ने फैसला सुनाया--

जुम्मन शेख ! पंचों ने इस मामले पर विचार किया। उन्हें यह नीति संगत मालूम होता है कि खालाजान को माहवार खर्च दिया जाय। हमारा विचार है कि खाला की जायदाद से इतना मुनाफा अवश्य होता है कि माहवार खर्च दिया जा सके। बस, यही हमारा फैसला है। अगर जुम्मन को खर्च देना मंजूर न हो, तो हिब्वानामा रद्द समझा जाय।

यह फैसला सुनते ही जुम्मन सन्नाटे में आ गये। जो अपना मित्र हो, वह शत्रु का व्यवहार करे और गले पर छुरी फेरे, इसे समय के हेर-फेर के सिवा और क्या कहें? जिस पर पूरा भरोसा था, उसने समय पड़ने पर धोखा दिया। ऐसे ही अवसरों पर झूठे-सच्चे मित्रों की परीक्षा की जाती है। यही कलियुग की दोस्ती है। अगर लोग ऐसे कपटी-धोखेबाज न होते, तो देश में आपत्तियों का प्रकोप क्यों होता? यह हैजा-प्लेग आदि व्याधियाँ दुष्कर्मों के ही दंड हैं।

मगर रामधन मिश्र और अन्य पंच अलगू चौधरी की इस नीति-परायणता को प्रशंसा जी खोलकर कर रहे थे। वे कहते थे--इसका नाम पंचायत है ! दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया। दोस्ती, दोस्ती की जगह है, किन्तु धर्म का पालन करना मुख्य है। ऐसे ही सत्यवादियों के बल पर पृथ्वी ठहरी है, नहीं तो वह कब की रसातल को चली जाती।

इस फैसले ने अलगू और जुम्मन की दोस्ती की जड़ हिला दी। अब वे साथ-साथ बातें करते नहीं दिखायी देते। इतना पुराना मित्रता-रूपी वृक्ष
सत्य का एक झोंका भी न सह सका। सचमुच वह बालू की ही जमीन पर खड़ा था।

उनमें अब शिष्टाचार का अधिक व्यवहार होने लगा। एक दूसरे की आवभगत ज्यादा करने लगा। वे मिलते-जुलते थे, मगर उसी तरह जैसे तलवार से ढाल मिलती है।

जुम्मन के चित्त में मित्र की कुटिलता आठों पहर खटका करती थी। उसे हर घड़ी यही चिंता रहती थी कि किसी तरह बदला लेने का अवसर मिले।

५

अच्छे कामों की सिद्धि में बड़ी दरे लगती है; पर बुरे कामों की सिद्धि में यह बात नहीं होती; जुम्मन को भी बदला लेने का अवसर जल्द ही मिल गया। पिछले साल अलगू चौधरी बटेसर से बैलों की एक बहुत अच्छी गोई मोल लाये थे। बैल पछाहीं जाति के सुंदर, बडे-बड़े सीगोंवाले थे। महीनों तक आस-पास के गाँव के लोग दर्शन करते रहे। दैवयोग से जुम्मन की पंचायत के एक महीने के बाद इस जोड़ी का एक बैल मर गया। जुम्मन ने दोस्तों से कहा--यह दग़ाबाज़ी की सजा है। इन्सान सब्र भले ही कर जाय, पर खुदा नेक-बद सब देखता है। अलगू को संदेह हुआ कि जुम्मन ने बैल को विष दिला दिया है। चौधराइन ने भी जुम्मन पर ही इस दुर्घटना का दोषारोपण किया उसने कहा--जुम्मन ने कुछ कर-करा दिया है। चौधराइन और करीमन में इस विषय पर एक दिन खुब ही वाद-विवाद हुआ दोनों देवियों ने शब्द-बाहुल्य की नदी बहा दी। व्यंगय, वक्तोक्ति अन्योक्ति और उपमा आदि अलंकारों में बातें हुईं। जुम्मन ने किसी तरह शांति स्थापित की। उन्होंने अपनी पत्नी को डाँट-डपट कर समझा दिया। वह उसे उस रणभूमि से हटा भी ले गये। उधर अलगू चौधरी ने समझाने-बुझाने का काम अपने तर्क-पूर्ण सोंटे से लिया।

अब अकेला बैल किस काम का? उसका जोड़ बहुत ढूँढ़ा गया, पर न मिला। निदान यह सलाह ठहरी कि इसे बेच डालना चाहिए। गाँव में एक समझू साहु थे, वह इक्का-गाड़ी हाँकते थे। गाँव के गुड़-घी लाद कर मंडी ले जाते, मंडी से तेल, नमक भर लाते, और गाँव में बेचते। इस बैल पर उनका मन लहराया। उन्होंने सोचा, यह बैल हाथ लगे तो दिन-भर में बेखटके तीन खेप हों। आज-कल तो एक ही खेप में लाले पड़े रहते हैं। बैल देखा, गाड़ी में दोड़ाया, बाल-भौरी की पहचान करायी, मोल-तोल किया और उसे ला कर द्वार पर बाँध ही दिया। एक महीने में दाम चुकाने का वादा ठहरा। चौधरी को भी गरज थी ही, घाटे की परवाह न की।

समझू साहु ने नया बैल पाया, तो लगे उसे रगेदने। वह दिन में तीन-तीन, चार-चार खेपें करने लगे। न चारे की फिक्र थी, न पानी की, बस खेपों से काम था। मंडी ले गये, वहाँ कुछ सूखा भूसा सामने डाल दिया। बेचारा जानवर अभी दम भी न लेने पाया था कि फिर जोत दिया। अलगू चौधरी के घर था तो चैन की बंशी बचती थी। बैलराम छठे-छमाहे कभी बहली में जोते जाते थे। खूब उछलते-कूदते और कोसों तक दौड़ते चले जाते थे। वहाँ बैलराम का रातिब था, साफ पानी, दली हुई अरहर की दाल और भूसे के साथ खली, और यही नहीं, कभी-कभी घी का स्वाद भी चखने को मिल जाता था। शाम-सबेरे एक आदमी खरहरे करता, पोंछता और सहलाता था। कहाँ वह सुख-चैन, कहाँ यह आठों पहर कही खपत। महीने-भर ही में वह पिस-सा गया। इक्के का यह जुआ देखते ही उसका लहू सूख जाता था। एक-एक पग चलना दूभर था। हडियाँ निकल आयी थी; पर था वह पानीदार, मार की बरदाश्त न थी।

एक दिन चौथी खेप में साहु जी ने दूना बोझ लादा। दिन-भरका थका जानवर, पैर न उठते थे। पर साहु जी कोड़े फटकारने लगे। बस, फिर क्या था, बैल कलेजा तोड़ का चला। कुछ दूर दौड़ा और चाहा कि जरा

दम ले लूँ; पर साहु जी को जल्द पहुँचने की फिक्र थी; अतएव उन्होंने कई कोड़े बड़ी निर्दयता से फटकारे। बैल ने एक बार फिर जोर लगाया; पर अबकी बार शक्ति ने जवाब दे दिया। वह धरती पर गिर पड़ा, और ऐसा गिरा कि फिर न उठा। साहु जी ने बहुत पीटा, टाँग पकड़कर खीचा, नथनों में लकड़ी ठूँस दी; पर कहीं मृतक भी उठ सकता है? तब साहु जी को कुछ शक हुआ। उन्होंने बैल को गौर से देखा, खोलकर अलग किया; और सोचने लगे कि गाड़ी कैसे घर पहुँचे। बहुत चीखे-चिल्लाये; पर देहात का रास्ता बच्चों की आँख की तरह साँझ होते ही बंद हो जाता है। कोई नजर न आया। आस-पास कोई गाँव भी न था। मारे क्रोध के उन्होंने मरे हुए बैल पर और दुर्रे लगाये और कोसने लगे--अभागे। तुझे मरना ही था, तो घर पहुँचकर मरता ! ससुरा बीच रास्ते ही में मर रहा। अब गड़ी कौन खीचे? इस तरह साहु जी खूब जले-भुने। कई बोरे गुड़ और कई पीपे घी उन्होंने बेचे थे, दो-ढाई सौ रुपये कमर में बंधे थे। इसके सिवा गाड़ी पर कई बोरे नमक थे; अतएव छोड़ कर जा भी न सकते थे। लाचार वेचारे गाड़ी पर ही लेटे गये। वहीं रतजगा करने की ठान ली। चिलम पी, गाया। फिर हुक्का पिया। इस तरह साह जी आधी रात तक नींद को बहलाते रहें। अपनी जान में तो वह जागते ही रहे; पर पौ फटते ही जो नींद टूटी और कमर पर हाथ रखा, तो थैली गायब ! घबरा कर इधर-उधर देखा तो कई कनस्तर तेल भी नदारत ! अफसोस में बेचारे ने सिर पीट लिया और पछाड़ खाने लगा। प्रात: काल रोते-बिलखते घर पहँचे। सहुआइन ने जब यह बूरी सुनावनी सुनी, तब पहले तो रोयी, फिर अलगू चौधरी को गालियाँ देने लगी--निगोड़े ने ऐसा कुलच्छनी बैल दिया कि जन्म-भर की कमाई लुट गयी।

इस घटना को हुए कई महीने बीत गए। अलगू जब अपने बैल के दाम माँगते तब साहु और सहुआइन, दोनों ही झल्लाये हुए कुत्ते की तरह चढ़ बैठते और अंड-बंड बकने लगते—वाह ! यहाँ तो सारे जन्म की कमाई लुट गई, सत्यानाश हो गया, इन्हें दामों की पड़ी है। मुर्दा बैल दिया था, उस पर दाम माँगने चले हैं ! आँखों में धूल झोंक दी, सत्यानाशी बैल गले बाँध दिया, हमें निरा पोंगा ही समझ लिया है ! हम भी बनिये के बच्चे है, ऐसे बुद्धू कहीं और होंगे। पहले जाकर किसी गड़हे में मुँह धो आओ, तब दाम लेना। न जी मानता हो, तो हमारा बैल खोल ले जाओ। महीना भर के बदले दो महीना जोत लो। और क्या लोगे?

चौधरी के अशुभचिंतकों की कमी न थी। ऐसे अवसरें पर वे भी एकत्र हो जाते और साहु जी के बराने की पुष्टि करते। परन्तु डेढ़ सौ रुपये से इस तरह हाथ धो लेना आसान न था। एक बार वह भी गरम पड़े। साहु जी बिगड़ कर लाठी ढूँढ़ने घर चले गए। अब सहुआइन ने मैदान लिया। प्रश्नोत्तर होते-होते हाथापाई की नौबत आ पहुँची। सहुआइन ने घर में घुस कर किवाड़ बन्द कर लिए। शोरगुल सुनकर गाँव के भलेमानस घर से निकाला। वह परामर्श देने लगे कि इस तरह से काम न चलेगा। पंचायत कर लो। कुछ तय हो जाय, उसे स्वीकार कर लो। साहु जी राजी हो गए। अलगू ने भी हामी भर ली।

६

पंचायत की तैयारियाँ होने लगीं। दोनों पक्षों ने अपने-अपने दल बनाने शुरू किए। इसके बाद तीसरे दिन उसी वृक्ष के नीचे पंचायत बैठी। वही संध्या का समय था। खेतों में कौए पंचायत कर रहे थे। विवादग्रस्त विषय था यह कि मटर की फलियों पर उनका कोई स्वत्व है या नही, और जब तक यह प्रश्न हल न हो जाय, तब तक वे रखवाले की पुकार पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करना आवश्यकत समझते थे। पेड़ की डालियों पर बैठी शुक-मंडली में वह प्रश्न छिड़ा हुआ था कि मनुष्यों को उन्हें वेसुरौवत कहने का क्या अधिकार है, जब उन्हें स्वयं अपने मित्रों से दगां करने में भी संकोच नहीं होता।

पंचायत बैठ गई, तो रामधन मिश्र ने कहा-अब देरी क्या है ? पंचों का चुनाव हो जाना चाहिए। बोलो चौधरी ; किस-किस को पंच बदते हो।

अलगू ने दीन भाव से कहा-समझू साहु ही चुन लें।

समझू खड़े हुए और कड़कर बोले-मेरी ओर से जुम्मन शेख।

जुम्मन का नाम सुनते ही अलगू चौधरी का कलेजा धक्-धक् करने लगा, मानों किसी ने अचानक थप्पड़ मारा दिया हो। रामधन अलगू के मित्र थे। वह बात को ताड़ गए। पूछा-क्यों चौधरी तुम्हें कोई उज्र तो नही।

चौधरी ने निराश हो कर कहा-नहीं, मुझे क्या उज्र होगा?

अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान बहुधा हमारे संकुचित व्यवहारों का सुधारक होता है। जब हम राह भूल कर भटकने लगते हैं तब यही ज्ञान हमारा विश्वसनीय पथ-प्रदर्शक बन जाता है।

पत्र-संपादक अपनी शांति कुटी में बैठा हुआ कितनी धृष्टता और स्वतंत्रता के साथ अपनी प्रबल लेखनी से मंत्रिमंडल पर आक्रमण करता है: परंतु ऐसे अवसर आते हैं, जब वह स्वयं मंत्रिमंडल में सम्मिलित होता है। मंडल के भवन में पग धरते ही उसकी लेखनी कितनी मर्मज्ञ, कितनी विचारशील, कितनी न्याय-परायण हो जाती है। इसका कारण उत्तर-दायित्व का ज्ञान है। नवयुवक युवावस्था में कितना उद्दंड रहता है। माता-पिता उसकी ओर से कितने चितिति रहते है! वे उसे कुल-कलंक समझते हैंपरन्तु थौड़ी हीी समय में परिवार का बौझ सिर पर पड़ते ही वह अव्यवस्थित-चित्त उन्मत्त युवक कितना धैर्यशील, कैसा शांतचित्त हो जाता है, यह भी उत्तरदायित्व के ज्ञान का फल है।

जुम्मन शेख के मन में भी सरपंच का उच्च स्थान ग्रहण करते ही अपनी जिम्मेदारी का भाव पेदा हुआ। उसने सोचा, मैं इस वक्त न्याय और धर्म के सर्वोच्च आसन पर बैठा हूँ। मेरे मुँह से इस समय जो कुछ निकलेगा, वह देववाणी के सदृश है-और देववाणी में मेरे मनोविकारों का कदापि समावेश न होना चाहिए। मुझे सत्य से जौ भर भी टलना उचित नही!

पंचों ने दोनों पक्षों से सवाल-जवाब करने शुरू किए। बहुत देर तक दोनों दल अपने-अपने पक्ष का समर्थन करते रहे। इस विषय में तो सब सहमत थे कि समझू को बैल का मूल्य देना चाहिए। परन्तु वो महाशय इस कारण रियायत करना चाहते थे कि बैल के मर जाने से समझू को हानि हुई। उसके प्रतिकूल दो सभ्य मूल के अतिरिक्त समझू को दंड भी देना चाहते थे, जिससे फिर किसी को पशुओं के साथ ऐसी निर्दयता करने का साहस न हो। अन्त में जुम्मन ने फैसला सुनाया-

अलगू चौधरी और समझू साहु। पंचों ने तुम्हारे मामले पर अच्छी तरह विचार किया। समझू को उचित है कि बैल का पूरा दाम दें। जिस वक्त उन्होंने बैल लिया, उसे कोई बीमारी न थी। अगर उसी समय दाम दे दिए जाते, तो आज समझू उसे फेर लेने का आग्रह न करते। बैल की मृत्यु केवल इस कारण हुई कि उससे बड़ा कठिन परिश्रम लिया गया और उसके दाने-चारे का कोई प्रबंध न किया गया।

रामधन मिश्र बोले-समझू ने बैल को जान-बूझ कर मारा है, अतएव उससे दंड लेना चाहिए।

जुम्मन बोले-यह दूसरा सवाल है। हमको इससे कोई मतलब नहीं !

झगडू साहु ने कहा-समझू के साथं कुछ रियायत होनी चाहिए।

जुम्मन बोले-यह अलगू चौधरी की इच्छा पर निर्भर है। यह रियायत करें, तो उनकी भलमनसी।

अलगू चौधरी फूले न समाए। उठ खड़े हुए और जोर से बोल-पंच-परमेश्वर की जय!

इसके साथ ही चारों ओर से प्रतिध्वनि हुई-पंच परमेश्वर की जय! यह मनुष्य का काम नहीं, पंच में परमेश्वर वास करते हैं, यह उन्हीं की महिमा है। पंच के सामने खोटे को कौन खरा कह सकता है?

थोड़ी देर बाद जुम्मन अलगू के पास आए और उनके गले लिपट कर बोले-भैया, जब से तुमने मेरी पंचायत की तब से मैं तुम्हारा प्राण-घातक शत्रु बन गया था; पर आज मुझे ज्ञात हुआ कि पंच के पद पर बैठ कर न कोई किसी का दोस्त है, न दुश्मन। न्याय के सिवा उसे और कुछ नहीं सूझता। आज मुझे विश्वास हो गया कि पंच की जबान से खुदा बोलता है। अलगू रोने लगे। इस पानी से दोनों के दिलों का मैल धुल गया। मित्रता की मुरझाई हुई लता फिर हरी हो गई।

शंखनाद

भानु चौधरी अपने गाँव के मुखिया थे। गाँव में उनका बड़ा मान था। दारोगा जी उन्हें टाटा बिना जमीन पर न बैठने देते। मुखिया साहब को ऐसी धाक बँधी हुई थी कि उनकी मर्जी बिना गाँव में एक पत्ता भी नहीं हिल सकता था। कोई घटना, चाहे, वह सास-बहु का विवाद हो, चाहे मेड़ या खेत का झगड़ा, चौधरी साहब के शासनाधिकारी को पूर्णरुप से सचते करने के लिए काफी थी, वह तुरन्त घटना स्थल पर पहुँचते, तहकीकात होने लगती गवाह और सबूत के सिवा किसी अभियोग को सफलता सहित चलाने में जिन बातों की जरुरत होती है, उन सब पर विचार होता और चौधरी जी के दरबार से फैसला हो जाता। किसी को अदालत जाने की जरुरत न पड़ी। हॉ, इस कष्ट के लिए चौधरीसाहब कुछ फीस जरुर लेते थे। यदि किसी अवसर पर फीस मिलने में असुविधा के कारण उन्हें धीरज से काम लेना पड़ता तो गाँव में आफत मच जाती थी; क्योंकि उनके धीरज और दरोगा जी के क्रोध में कोई घनिष्ठ सम्बन्ध था। सारांश यह है कि चौधरी से उनके दोस्त-दुश्मन सभी चौकन्ने रहते थे।

२

चौधरी माहश्य के तीन सुयोग्य पुत्र थे। बड़े लड़के बितान एक सुशिक्षित मनुष्य थे। डाकिये के रजिस्टर पर दस्तखत कर लेते थे। बड़े अनुभवी, बड़े नीति कुशल। मिर्जई की जगह कमीज पहनते, कभी-कभी सिगरेट भी पीते, जिससे उनका गौरव बढ़ता था। यद्‌यपि उनके ये दुर्व्यसन बूढ़े चौधरी को नापसंद थे, पर बेचारे विवश थे; क्योंकि अदालत और कानून के मामले बितान के हाथों में थे। वह कानून का पुतला था। कानून की दफाएँ उसकी जबान पर रखी रहती थीं। गवाह गढ़ने में वह पूरा उस्ताद था। मँझले लड़के शान चौधरी कृषि-विभाग के अधिकारी थे। बुद्धि के मंद; लेकिन शरीर से बड़े परिश्रमी। जहॉं घास न जमती हो, वहॉं केसर जमा दें। तीसरे लड़के का नाम गुमान था। वह बड़ा रसिक, साथ ही उद्दंड भी था। मुहर्रम में ढोल इतने जोरों से बजाता कि कान के पर्दे फट जाते। मछली फँसाने का बड़ा शौकीन था बड़ा रँगील जवान था। खँजड़ी बजा-बजाकर जब वह मीठे स्वर से ख्याल गाता, तो रंग जम जाता। उसे दंगल का ऐसा शौक था कि कोसों तक धावा मारता; पर घरवाले कुछ ऐसे शुष्क थे कि उसके इन व्यसनों से तनिक भी सहानुभूति न रखते थे। पिता और भाइयों ने तो उसे ऊसर खेत समझ रखा था। घुड़की-धमकी, शिक्षा और उपदेश, स्नेह और विनय, किसी का उस पर कुछ भी असर नहीं हुआ। हॉं, भावजें अभी तक उसकी ओर से निराश न हुई थी। वे अभी तक उसे कड़वी दवाइयॉं पिलाये जाती थी; पर आलस्य वह राज रोग है जिसका रोग कभी नहीं सँभलता। ऐसा कोई बिराल ही दिन जाता होगा कि बॉंक गुमान को भावजों के कटुवाक्य न सुनने पड़ते हों। ये बिषैले शर कभी-कभी उसे कठोर ह्रदय में चुभ जाते; किन्तु यह घाव रात भर से अधिक न रहता। भोर होते ही थकना के साथ ही यह पीड़ा भी शांत हा जाती। तड़का हुआ, उसने हाथ-मुँह धोया, बंशी उठायी और तालाब की ओर चल खड़ा हुआ। भावजें फूलों की वर्षा किया करती; बूढ़े चौधरी पैतरे बदलते रहते और भाई लोग तीखी निगाह से देखा करते, पर अपनी धुन का पूरा बॉंका गुमान उन लोगों के बीच से इस तरह अकड़ता चला जाता, जैसे कोई मस्त हाथी कुत्तों के बीच से निकल जाता है। उसे सुमार्ग पर लाने के लिए क्या-क्या उपाय नही किये गये। बाप समझाता-बेटा ऐसी राह चलो जिसमें तुम्हें भी पैसें मिलें और गृहस्थी का भी निर्वाह हो। भाइयों के भरोसे कब तक रहोगे? मैं पका आम हूँ-आज टपक पड़ा या कल। फिर तुम्हारा निबाह कैसे होगा ? भाई बात भी न पूछेगे; भावजों का रंग देख रहे हो। तुम्हारे भी लड़के बाले है, उनका भार कैसे सँभालोगे ? खेती में जी न लगे, कास्टि-बिली में भरती करा दूँ ? बाँका गुमनान खड़ा-खड़ा यह सब सुनता, लेकिन पत्थर का देवता था, कभी न पसीजता ! इन माहश्य के अत्याचार का दंड उसकी स्त्री बेचारी को भोगना पड़ता था। मेहनत के घर के जितने काम होते, वे उसी के सिर थोपे जाते। उपले पाथती, कुंए से पानी लाती, आटा पीसती और तिस पर भी जेठानानियॉं सीधे मुँह बात न करती, वाक्य बाणों से छेदा करतीं। एक बार जब वह पति से कई दिन रुठी रही, तो बॉंके गुमान कुछ नर्म हुए। बाप से जाकर बोले-मुझे कोई दूकान खोलवा दीजिए। चौधरी ने परमात्मा को धन्यवाद दिया। फूले न समाये। कई सौ रुपये लगाकर कपड़े की दूकान खुलवा दी। गुमान के भाग जगे। तनजेब के चुन्नटदार कुरते बनवाये, मलमल का साफा धानी रंग में रँगवाया। सौदा बिके या न बिके, उसे लाभ ही होना था! दूकान खुली हुई है, दस-पाँच गाढ़े मित्र जमे हुए हैं, चरस की दम और खयाल की तानें उड़ रही हैं—

चल झपट री, जमुना-तट री, खड़ो, नटखट री।

इस तरह तीन महीने चैन से कटे। बाँके गुमान ने खूब दिल खोल कर अरमान निकाले, यहाँ तक कि सारी लागत लाभ हो गयी। टाट के टुकड़े के सिवा और कुछ न बचा। बूढ़े चौधरी कुएँ में गिरने चले, भावजों ने घोर आन्दोलन मचाया—अरे राम ! हमारे बच्चे और हम चीथड़ों को तरसें, गाढ़े का एक कुरता भी नसीब न हो, और इतनी बड़ी दूकान इस निखट्टू का कफ़न बन गई। अब कौन मुँह दिखायेगा? कौन मुँह लेकर घर में पैर रखेगा? किंतु बाँके गुमान के तेवर जरा भी मैले न हुए। वही मुँह लिए वह फिर घर आया और फिर वही पुरानी चाल चलने लगा। कानूनदां बिताने उनके ये ठाट-बाट देकर जल जाता। मैं सारे दिन पसीना बहाऊँ, मुझे नैनसुख का कुरता भी न मिले, यह अपाहिज सारे दिन चारपाई तोड़े और यों बन-ठन कर निकाले? एसे वस्त्र तो शायद मुझे अपने ब्याह में भी न मिले होंगे। मीठे शान के हृदय में भी कुछ ऐसे ही विचार उठते थे। अंत में यह जलन सही न गयी, और अग्नि भड़की; तो एक दिन कानूनदाँ बितान की पत्नी गुमनाम के सारे कपड़े उठा लायी और उन पर मिट्टी का तेल उँड़ेल कर आग लगा दी। ज्वाला उठी, सारे कपड़े देखत-देखते जल कर राख हो गए। गुमान रोते थे। दोनों भाई खड़े तमाशा देखते थे। बूढ़े चौधरी ने यह दृश्य देखा, और सिर पीट लिया। यह द्वेषाग्नि हैं। घर को जलाकर तक बुझेगी।

३

यह ज्वाला तो थोड़ी देर में शांत हो गयी, परन्तु ह्रदय की आग ज्यों की त्यों दहकती रही। अंत में एक दिन बूढ़े चौधरी ने घर के सब मेम्बरों को एकत्र किया और गूढ़ विषय पर विचार करने लगे कि बेड़ा कैसे पार हो। बितान से बोले- बेटा, तुमने आज देखा कि बात की बात में सैकड़ों रुपयों पर पानी फिर गया। अब इस तरह निर्वाह होना असम्भव है। तुम समझदार हो, मुकदमे-मामले करते हो, कोई ऐसी राह निकालो कि घर डूबने से बचे। मैं तो चाहता था कि जब तक चोला रहे, सबको समेटे रहूँ, मगर भगवान् के मन में कुछ और ही है।

बितान की नीतिकुशलता अपनी चतुर सहागामिनी के सामने लुप्त हो जाती थी। वह अभी उसका उत्तर सोच ही रहे थे कि श्रीमती जी बोल उठीं—दादा जी! अब समुझाने-बुझाने से काम नहीं चलेगा, सहते-सहते हमारा कलेजा पक गया। बेटे की जितनी पीर बाप को होगी, भाइयों को उतनी क्या, उसकी आधी भी नहीं हो सकती। मैं तो साफ कहती हूँ—गुमान को तुम्हारी कमाई में हक है, उन्हें कंचन के कौर खिलाओ और चाँदी के हिंडाले में झुलाओ। हममें न इतना बूता है, न इतना कलेजा। हम अपनी झोपड़ी अलग बना लेगें। हाँ, जो कुछ हमारा हो, वह हमको मिलना चाहिए। बाँट-बखरा कर दीजिए। बला से चार आदमी हँसेगे, अब कहाँ तक दुनिया की लाज ढोवें?

नीतिज्ञ बितान पर इस प्रबल वक्तृता का जो असर हुआ, वह उनके विकासित और पुमुदित चेहरे से झलक रहा था। उनमें स्वयं इतना साहस न था कि इस प्रस्ताव का इतनी स्पष्टता से व्यक्त कर सकते। नीतिज्ञ महाशय गंभीरता से बोले—जायदाद मुश्तरका, मन्कूला या गैरमन्कूला, आप के हीन-हायात तकसीम की जा सकती है, इसकी नजीरें मौजूद है। जमींदार को साकितुलमिल्कियत करने का कोई इस्तहक़ाक़ नहीं है।

अब मंदबुद्धि शान की बारी आयी, पर बेचारा किसान, बैलों के पीछे आँखें बंद करके चलने वाला, ऐसे गूढ़ विषय पर कैसे मुँह खोलता। दुविधा में पड़ा हुआ था। तब उसकी सत्यवक्ता धर्मपत्नी ने अपनी जेठानी का अनुसरण कर यह कठिन कार्य सम्पन्न किया। बोली—बड़ी बहन ने जो कुछ कहा, उसके सिवा और दूसरा उपाय नहीं। कोई तो कलेजा तोड़-तोड़ कर कमाये मगर पैसे-पैसे को तरसे, तन ढाँकने को वस्त्र तक न मिले, और कोई सुख की नींद सोये, हाथ बढ़ा-बढ़ा के खाय! ऐसी अंधेरे नगरी में अब हमारा निबाह न होगा।

शान चौधरी ने भी इस प्रस्ताव का मुक्तकंठ से अनुमोदन किया। अब बूढ़े चौधरी गुमान से बोले—क्यों बेटा, तुम्हें भी यह मंजूर है ? अभी कुछ नहीं बिगड़ा। यह आग अब भी बुझ सकती है। काम सबको प्यारा है, चाम किसी को नहीं। बोलो, क्या कहते हो ? कुछ काम-धंधा करोगे या अभी आँखें नहीं खुलीं ?

गुमान में धैर्य की कमी न थी। बातों को इस कान से सुन कर उस कान से उड़ा देना उसका नित्य-कर्म था। किंतु भाइयों की इस जन-मुरीदी पर उसे क्रोध आ गया। बोला—भाइयों की जो इच्छा है, वही मेरे मन में भी लगी हुई है। मैं भी इस जंजाल से भागना चाहता हूँ। मुझसे न मंजूरी हुई, न होगी। जिसके भाग्य में चक्की पीसना बदा हो, वह पीसे! मेरे भाग्य में चैन करना लिखा है, मैं क्यों अपना सिर ओखली में दूँ ? मैं तो किसी से काम करने को नहीं कहता। आप लोग क्यों मेरे पीछे पड़े हुए है। अपनी-अपनी फिक्र कीजिए। मुझे आध सेर आटे की कमी नही है।

इस तरह की सभाएँ कितनी ही बार हो चुकी थीं, परन्तु इस देश की सामाजिक और राजनीतिक सभाओं की तरह इसमें भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता था। दो-तीन दिन गुमान ने घर पर खाना नहीं खाया। जतन सिंह ठाकुर शौकीन आदमी थे, उन्हीं की चौपाल में पड़ा रहता। अंत में बूढ़े चौधरी गये और मना के लाये। अब फिर वह पुरानी गाड़ी अड़ती, मचलती, हिलती चलने लगी।

४

पांडे घर के चूहों की तरह, चौधरी के धर में बच्चें भी सयाने थे। उनके लिए घोड़े मिट्टी के घोड़े और नावें कागज की नावें थीं। फलों के विषय में उनका ज्ञान असीम था, गूलर और जंगली बेर के सिवा कोई ऐसा फल न था जिसे बीमारियों का घर न समझते हों, लेकिन गुरदीन के खोंचे में ऐसा प्रबल आकर्षण था कि उसकी ललकार सुनते ही उनका सारा ज्ञान व्यर्थ हो जाता साधारण बच्चों की तरह यदि सोते भी हो; तो चौंक पड़ते थे। गुरदीन उस था। गाँव में साप्ताहिक फेरे लगाता था। उसके शुभागमन की प्रतीक्षा और आकांक्षा में कितने ही बालकों को बिना किंडरागार्टन की रंगीन गोलियों के ही, संख्याएँ और दिनों के नाम याद हो गए थे। गुरदीन बूढ़ा-सा, मैला-कुचैला आदमी था; किन्तु आस-पास में उसका नाम उपद्रवी लड़कों के लिए हनुमान-मंत्र से कम न था। उसकी आवाज सुनते ही उसके खोंचे पर लड़कों का ऐसा धावा होता कि मक्खियों की असंख्य सेना को भी रण-स्थल से भागना पड़ता था। और जहाँ बच्चों के लिए मिठाइयाँ थीं, वहाँ गुरदीन के पास माताओं के लिए इससे भी ज्यादा मीठी बातें थी। माँ कितना ही मना करती रहे, बार-बार पैसा न रहने का बहाना करे पर गुरदीन चटपट मिठाईयों का दोनों बच्चों के हाथ में रख ही देता और स्नहे-पूर्ण भाव से कहता---बहू जी, पैसों की कोई चिन्ता न करो, फिर मिलते रहेंगे, कहीं भागे थोड़े ही जाते हैं। नारायण ने तुमको बच्चे दिए हैं, तो मुझे भी उनकी न्योछावर मिल जाती है, उन्हीं की बदौलत मेरे बाल-बच्चे भी जीते हैं। अभी क्या, ईश्वर इनका मौर तो दिखावे, फिर देखना कैसा ठनगन करता हूँ।

गुरदीन का यह व्यवहारा चाहे वाणिज्य-नियमों के प्रतिकूल ही क्यों न हो, चाहे, 'नौ नगद सही, तेरह उधार नही' वाली कहावत अनुभव-सिद्ध ही क्यों न हो, किन्तु मिष्टाभाषी गुरदीन को कभी अपने इस व्यवहार पर पछताने या उसमें संशोन करने की जरुरत नहीं हुई।

मंगल का शुभ दिन था। बच्चे बड़े बेचैनी से अपने दरवाजे पर खड़े गुरदीन की राह देख रहे थे। कई उत्साही लड़के पेड़ पर चढ़ गए और कोई-कोई अनुराग से विवश होकर गाँव के बाहर निकल गए थे। सूर्य भगवान् अपना सुनहला गाल लिए पूरब से पश्चिम जा पहुँचे थे, इतने में ही गुरदीन आता हुआ दिखाई दिया। लड़कों ने दौड़कर उसका दामन पकड़ा और आपस में खींचातानी होने लगी। कोई कहता था मेरे घर चलो; कोई अपने घर का न्योता देता था। सबसे पहले भानु चौधरी का मकान पड़ा। गुरदीन अपना खोंचा उतार दिया। मिठाइयों की लूट शुरु हो गयी। बालको और स्त्रियों का ठट्ट लग गया। हर्ष और विषाद, संतोष और लोभ, ईर्ष्या ओर क्षोभ, द्वेष और जलन की नाट्यशाला सज गयी। कनूनदाँ बितान की पत्नी अपने तीनों लड़कों को लिए हुए निकली। शान की पत्नी भी अपने दोनों लड़कों के साथ उपस्थित हुई। गुरदीन ने मीठी बातें करनी शुरु की। पैसे झोली में रखे, धेले की मिठाई दी और धेले का आशीर्वाद। लड़के दोनो लिए उछलते-कूदते घर में दाखिल हुए। अगर सारे गाँव में कोई ऐसा बालक था जिसने गुरदीन की उदारता से लाभ उठाया हो, तो वह बाँके गुमान का लड़का धान था।

यह कठिन था कि बालक धान अपने भाइयों-बहनों को हँस-हँस और उलल-उछल कर मिठाइयाँ खाते देख कर सब्र कर जाय! उस पर तुर्रा यह कि वे उसे मिठाइयाँ दिख-दिख कर ललचाते और चिढ़ाते थे। बेचारा धान चीखता और अपनी मात का आँचल पकड़-पकड़ कर दरवाजे की तरफ खींचता था; पर वह अबला क्या करे। उसका हृदय बच्चे के लिए ऐंठ-ऐंठ कर रह जाता था। उसके पास एक पैसा भी नहीं था। अपने दुर्भाग्य पर, जेठानियों की निष्ठुरता पर और सबसे ज्यादा अपने पति के निखट्टूपन पर कुढ़-कुढ़ कर रह जाती थी। अपना आदमी ऐसा निकम्मा न होता, तो क्यों दूसरों का मुँह देखना पड़ता, क्यों दूसरों के धक्के खाने पड़ते ? उठा लिया और प्यार से दिलासा देने लगी—बेटा, रोओ मत, अबकी गुरदीन आवेगा तो तुम्हें बहुत-सी मिठाई ले दूँगी, मैं इससे अच्छी मिठाई बाजार से मँगवा दूँगी, तुम कितनी मिठाई खाओग! यह कहते कहते उसकी आँखें भर अयी। आह! यह मनहूस मंगल आज ही फिर आवेगा; और फिर ये ही बहाने करने पड़ेगे! हाय, अपना प्यारा बच्चा धेले की मिठाई को तरसे और घर में किसी का पत्थर-सा कलेजा न पसीजे! वह बेचारी तो इन चिंताओं में डूबी हुई थी ओर धान किसी तरह चुप ही न होता था। जब कुछ वश न चला, तो माँ की गोद से जमीन पर उतर कर लोठने लगा और रो-रो कर दुनिया सिर पर उठा ली। माँ ने

बहुत बहलाया, फुसलाया, यहाँ तक कि उसे बच्चे के इस हठ पर क्रोध भी आ गया। मानव हृदय के रहस्य कभी समझ में नहीं आते। कहाँ तो बच्चे को प्यार से चिपटाती थी, ऐसी झल्लायी की उसे दो-तीन थप्पड़ जोर से लगाये और घुड़कर कर बोली—चुप रह आभगे! तेरा ही मुँह मिठाई खाने का है ? अपने दिन को नहीं रोता, मिठाई खाने चला है।

बाँका गुमान अपनी कोठरी के द्वार पर बैठा हुआ यह कौतुक बड़े ध्यान से देख रहा था। वह इस बच्चे को बहुत चाहता था। इस वक्त के थप्पड़ उसके हृदय में तेज भाले के समान लगे और चुभ गया। शायद उसका अभिप्राय भी यही था। धुनिया रुई को धुनने के लिए ताँत पर चोट लगाता है।

जिस तरह पत्थर और पानी में आग छिपी रहती है, उसी तरह मनुष्य के हृदय में भी, चाहे वह कैसा ही क्रूर और कठोर क्यों न हो, उत्कृष्ट और कोमल भाव छिपे रहते हैं। गुमान की आँखें भर आयी। आँसू की बूँदें बहुधा हमारे हृदय की मुलिनता को उज्जवल कर देती हैं। गुमान सचेत हो गया। उसने जा कर बच्चे का गोद में उठा लिया और अपनी पत्नी से करुणोत्पादक स्वर में बोला—बच्चे पर इतना क्रोध क्यों करती हो ? तुम्हारा दोषी मैं हूँ, मुझको जो दंड चाहो, दो। परमात्मा ने चाहा तो कल से लोग इस घर में मेरा और मेरे बाल-बच्चों का भी आदर करेंगे। तुमने आज मुझे सदा के लिए इस तरह जगा दिया, मानों मेरे कानों में शंखनाद कर मुझे कर्म-पथ में प्रवेश का उपदेश दिया हो।

नाग-पूजा

प्रात:काल था। आषढ़ का पहला दौंगड़ा निकल गया था। कीट-पतंग चारों तरफ रेंगते दिखायी देते थे। तिलोत्तमा ने वाटिका की ओर देखा तो वृक्ष और पौधे ऐसे निखर गये थे जैसे साबुन से मैने कपड़े निखर जाते हैं। उन पर एक विचित्र आध्यात्मिक शोभा छायी हुई थी मानों योगीवर आनंद में मग्न पड़े हों। चिड़ियों में असाधारण चंचलता थी। डाल-डाल, पात-पात चहकती फिरती थीं। तिलोत्तमा बाग में निकल आयी। वह भी इन्हीं पक्षियों की भाँति चंचल हो गयी थी। कभी किसी पौधे की देखती, कभी किसी फूल पर पड़ी हुई जल की बूँदो को हिलाकर अपने मुँह पर उनके शीतल छींटे डालती। लाज बीरबहूटियाँ रेंग रही थी। वह उन्हें चुनकर हथेली पर रखने लगी। सहसा उसे एक काला वृहत्काय साँप रेंगता दिखायी-दिया। उसने पिल्लाकर कहा—अम्माँ, नागजी जा रहे हैं। लाओ थोड़ा-सा दूध उनके लिए कटोरे में रख दूं।

अम्माँ ने कहा—जाने दो बेटी, हवा खाने निकले होंगे।

तिलोत्तमा—गर्मियों में कहाँ चले जाते हैं ? दिखायी नहीं देते।

माँ—कहीं जाते नहीं बेटी, अपनी बाँबी में पड़े रहते हैं।

तिलोत्तमा—और कहीं नहीं जाते ?

माँ—बेटी, हमारे देवता है और कहीं क्यों जायेगें ? तुम्हारे जन्म के साल से ये बराबर यही दिखायी देतें हैं। किसी से नही बोलते। बच्चा पास से निकल जाय, पर जरा भी नहीं ताकते। आज तक कोई चुहिया भी नहीं पकड़ी।

तिलोत्तमा—तो खाते क्या होंगे ?

माँ—बेटी, यह लोग हवा पर रहते हैं। इसी से इनकी आत्मा दिव्य हो जाती है। अपने पूर्वजन्म की बातें इन्हें याद रहती हैं। आनेवाली बातों को भी जानते हैं। कोई बड़ा योगी जब अहंकार करने लगता है तो उसे दंडस्वरुप इस योनि में जन्म लेना पड़ता है। जब तक प्रायश्चित पूरा नहीं होता तब तक वह इस योनि में रहता है। कोई-कोई तो सौ-सौ, दो-दो सौं वर्ष तक जीते रहते हैं।

तिलोत्तमा—इसकी पूजा न करो तो क्या करें।

माँ—बेटी, कैसी बच्चों की-सी बातें करती हो। नाराज हो जायँ तो सिर पर न जाने क्या विपत्ति आ पड़े। तेरे जन्म के साल पहले-पहल दिखायी दिये थे। तब से साल में दस-पाँच बार अवश्य दर्शन दे जाते हैं। इनका ऐसा प्रभाव है कि आज तक किसी के सिर में दर्द तक नहीं हुआ।

२

कई वर्ष हो गये। तिलोत्तमा बालिका से युवती हुई। विवाह का शुभ अवसर आ पहुँचा। बारात आयी, विवाह हुआ, तिलोत्तमा के पति-गृह जाने का मुहूर्त आ पहुँचा।

नयी वधू का श्रृंगार हो रहा था। भीतर-बाहर हलचल मची हुई थी, ऐसा जान पड़ता था भगदड़ पड़ी हुई है। तिलोत्तमा के हृदय में वियोग दु:ख की तरंगे उठ रही हैं। वह एकांत में बैठकर रोना चाहती है। आज माता-पिता, भाईबंद, सखियाँ-सहेलियाँ सब छूट जायेगी। फिर मालूम नहीं कब मिलने का संयोग हो। न जाने अब कैसे आदमियों से पाला पड़ेगा। न जाने उनका स्वभाव कैसा होगा। न जाने कैसा बर्ताव करेंगे। अममाँ की आँखें एक क्षण भी न थमेंगी। मैं एक दिन के लिए कही, चली जाती थी तो वे रो-रोकर व्यथित हो जाती थी। अब यह जीवनपर्यन्त का वियोग कैसे सहेंगी ? उनके सिर में दर्द होता था जब तक मैं धीरे-धीरे न मलूँ, उन्हें किसी तरह कल-चैन ही न पड़ती थी। बाबूजी को पान बनाकर कौन देगा ? मैं जब तक उनका भोजन न बनाऊँ, उन्हें कोई चीज रुचती ही न थी? अब उनका भोजन कौन बानयेगा ? मुझसे इनको देखे बिना कैसे रहा जायगा? यहाँ जरा सिर में दर्द भी होता था तो अम्माँ और बाबूजी घबरा जाते थे। तुरंत बैद-हकीम आ जाते थे। वहाँ न जाने क्या हाल होगा। भगवान् बंद घर में कैसे रहा जायगा ? न जाने वहाँ खुली छत है या नहीं। होगी भी तो मुझे कौन सोने देगा ? भीतर घुट-घुट कर मरुँगी। जगने में जरा देर हो जायगी तो ताने मिलेंगे। यहाँ सुबह को कोई जगाता था, तो अम्माँ कहती थीं, सोने दो। कच्ची नींद जाग जायगी तो सिर में पीड़ा होने लगेगी। वहाँ व्यंग सुनने पड़ेंगे, बहू आलसी है, दिन भर खाट पर पड़ी रहती है। वे (पति) तो बहुत सुशील मालूम होते हैं। हाँ, कुछ अभिमान अवश्य हैं। कहों उनका स्वाभाव निठुर हुआ तो...........?

सहसा उनकी माता ने आकर कहा-बेटी, तुमसे एक बात कहने की याद न रही। वहॉ नाग-पूजा अवश्य करती रहना। घर के और लोग चाहे मना करें; पर तुम इसे अपना कर्तव्य समझना। अभी मेरी ऑखें जरा-जरा झपक गयी थीं। नाग बाबा ने स्वप्न में दर्शन दिये।

तिलोत्तमा—अम्मॉ, मुझे भी उनके दर्शन हुए हैं, पर मुझे तो उन्होंले बड़ा विकाल रुप दिखाया। बड़ा भंयंकर स्वप्न था।

मॉ—देखना, तुम्हारे धर में कोई सॉंप न मारने पाये। यह मंत्र नित्य पास रखना।

तिलोत्तमा अभी कुछ जवाब न देने पायी थी कि अचानक बारात की ओर से रोने के शब्द सुनायी दिये, एक क्षण में हाहाकर मच गया। भंयकर शोक-घटना हो गयी। वर को सौंप ने काट लिया। वह बहू को बिदा कराने आ रहा था। पालकी में मसनद के नीचे एक काला सॉंप छिपा हुआ था। वर ज्यों ही पालकी में बैठा, सॉंप ने काट लिया।

चारों ओर कुहराम मच गया। तिलात्तमा पर तो मनों वज्रपात हो गया। उसकी मॉं सिर पीट-पीट रोने लगी। उसके पिता बाबू जगदीशचंद्र मूर्च्छित होकर गिर पड़े। हृदयरोग से पहले ही से ग्रस्त थे। झाड़-फूँक करने वाले आये, डाक्टर बुलाये गये, पर विष घातक था। जरा देर में वर के होंठ नीले पड़ गये, नख काले हो गये, मूर्छा आने लगी। देखते-देखते शरीर ठंडा पड़ गया। इधर उषा की लालिमा ने प्रकृति को अलोकित किया, उधर टिमटिमाता हुआ दीपक बुझ गया।

जैसे कोई मनुष्य बोरों से लदी हुई नाव पर बैठा हुआ मन में झुँझलाता है कि यह और तेज क्यों नहीं चलती , कहीं आराम से बैठने की जगह नहीं, राह इतनी हिल क्यों रही हैं, मैं व्यर्थ ही इसमें बैठा; पर अकस्मात् नाव को भँवर में पड़ते देख कर उसके मस्तूल से चिपट जाता है, वही दशा तिलोत्तमा की हुई। अभी तक वह वियोगी दु:ख में ही मग्न थी, ससुराल के कष्टों और दुर्व्यवस्थाओं की चिंताओं में पड़ी हुई थी। पर, अब उसे होश आया की इस नाव के साथ मैं भी डूब रही हूँ। एक क्षण पहले वह कदाचित् जिस पुरुष पर झुँझला रही थी, जिसे लुटेरा और डाकू समझ रही थी, वह अब कितना प्यारा था। उसके बिना अब जीवन एक दीपक था; बुझा हुआ। एक वृक्ष था; फल-फूल विहीन। अभी एक क्षण पहले वह दूसरों की इर्ष्या का कारण थी, अब दया और करुणा की।

थोड़े ही दिनों में उसे ज्ञात हो गया कि मैं पति-विहीन होकर संसार के सब सुखों से वंचित हो गयी।

३

एक वर्ष बीत गया। जगदीशचंद्र पक्के धर्मावलम्बी आदमी थे, पर तिलोत्तमा का वैधव्य उनसे न सहा गया। उन्होंने तिलोत्तमा के पुनर्विवाह का निश्चय कर लिया। हँसनेवालों ने तालियॉं बाजायीं पर जगदीश बाबू ने हृदय से काम लिया। तिलात्तमा पर सारा घर जान देता था। उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई बात न होने पाती यहॉं तक कि वह घर की मालकिन बना दी गई थी। सभी ध्यान रखते कि उसकी रंज ताजा न होने पाये। लेकिन उसके चेहरे पर उदासी छायी रहती थी, जिसे देख कर लोगों को दु:ख होता था। पहले तो मॉं भी इस सामाजिक अत्याचार पर सहमत न हुई; लेकिन बिरादरीवालों का विरोध ज्यों-ज्यों बढ़ता गया उसका विरोध ढीला पड़ता गया। सिद्धांत रुप से तो प्राय: किसी को आपत्ति न थी किन्तु उसे व्यवहार में लाने का साहस किसी में न था। कई महीनों के लगातार प्रयास के बाद एक कुलीन सिद्धांतवादी, सुशिक्षित वर मिला। उसके घरवाले भी राजी हो गये। तिलोत्तमा को समाज में अपना नाम बिकते देख कर दु:ख होता था। वह मन में कुढ़ती थी कि पिताजी नाहक मेरे लिए समाज में नक्कू बन रहे हैं। अगर मेरे भाग्य में सुहाग लिखा होता तो यह वज्र ही क्यों गिरता। तो उसे कभी-कभी ऐसी शंका होती थी कि मैं फिर विधवा हो जाऊँगी। जब विवाह निश्चित हो गया और वर की तस्वीर उसके सामने आयी तो उसकी ऑंखों में ऑंसू भर आये। चेहरे से कितनी सज्जनता, कितनी दृढ़ता, कितनी विचारशीलता टपकती थी। वह चित्र को लिए हुए माता के पास गयी और शर्म से सिर झुकाकर बोली-अम्मॉ, मुँह मुझे तो न खोलना चाहिए, पर अवस्था ऐसी आ पड़ी है कि बिना मुँह खोले रहा नहीं जाता। आप बाबूजी को मना कर दें। मैं जिस दशा में हूँ संतुष्ट हूँ। मुझे ऐसा भय हो रहा है कि अबकी फिर वही शोक घटना............

मॉं ने सहमी हुई ऑंखों से देख कर कहा—बेटी कैसी अशगुन की बात मुँह से निकाल रही हो। तुम्हारे मन में भय समा गया है, इसी से यह भ्रम होता है। जो होनी थी, वह हो चुकी। अब क्या ईश्वर क्या तुम्हारे पीछे पड़े ही रहेंगे ?

तिलोत्तमा—हॉं, मुझे तो ऐसा मालूम होता है ?

माँ—क्यों, तुम्हें ऐसी शंका क्यों होती है ?

तिलोत्तमा—न जाने क्यो ? कोई मेरे मन मे बैठा हुआ कह रहा है कि फिर अनिष्ट होगा। मैं प्रया: नित्य डरावने स्वप्न देखा करती हूँ। रात को मुझे ऐसा जान पड़ता है कि कोई प्राणी जिसकी सूरत साँप से बहुत मिलती-जुलती है मेरी चारपाई के चारों ओर घूमता है। मैं भय के मारे चुप्पी साध लेती हूँ। किसी से कुछ कहती नहीं।

माँ ने समझा यह सब भ्रम है। विवाह की तिथि नियत हो गयी। यह केवल तिलोत्तमा का पुनर्संस्कार न था, बल्कि समाज-सुधार का एक क्रियात्मक उदाहरण था। समाज-सुधारकों के दल दूर से विवाह सम्मिलित होने के लिए आने लगे, विवाह वैदिक रीति से हुआ। मेहमानों ने खूब वयाख्यान दिये। पत्रों ने खूब आलोचनाएँ कीं। बाबू जगदीशचंद्र के नैतिक साहस की सराहना होने लगी। तीसरे दिन बहू के विदा होने का मुहूर्त था।

जनवासे में यथासाध्य रक्षा के सभी साधनों से काम लिया गया था। बिजली की रोशनी से सारा जनवास दिन-सा हो गया था। भूमि पर रेंगती हुई चींटी भी दिखाई देती थी। केशों में न कहीं शिकन थी, न सिलवट और न झोल। शामियाने के चारों तरफ कनातें खड़ी कर दी गयी थी। किसी तरफ से कीड़ो-मकोड़ों के आने की संम्भावना न थी; पर भावी प्रबल होती है। प्रात:काल के चार बजे थे। तारागणों की बारात विदा हो रही थी। बहू की विदाई की तैयारी हो रही थी। एक तरफ शहनाइयाँ बज रही थी। दूसरी तरफ विलाप की आर्त्तध्वनि उठ रही थी। पर तिलोत्तमा की ऑंखों में ऑंसू न थे, समय नाजुक था। वह किसी तरह घर से बाहर निकल जाना चाहती थी। उसके सिर पर तलवार लटक रही थी। रोने और सहेलियों से गले मिलने में कोई आनंद न था। जिस प्राणी का फोड़ा चिलक रहा हो उसे जर्राह का घर बाग में सैर करने से ज्यादा अच्छा लगे, तो क्या आश्चर्य है।

वर को लोगों ने जगया। बाजा बजने लगा। वह पालकी में बैठने को चला कि वधू को विदा करा लाये। पर जूते में पैर डाला ही था कि चीख मार कर पैर खींच लिया। मालूम हुआ, पॉंव चिनगारियों पर पड़ गया। देखा तो एक काला साँप जूते में से निकलकर रेंगता चला जाता था। देखते-देखते गायब हो गया। वर ने एक सर्द आह भरी और बैठ गया। ऑंखों में अंधेरा छा गया।

एक क्षण में सारे जनवासे में खबर फैली गयी, लोग दौड़ पड़े। औषधियाँ पहले ही रख ली गयी थीं। सॉंप का मंत्र जाननेवाले कई आदमी बुला लिये गये थे। सभी ने दवाइयाँ दीं। झाड़-फूँक शुरु हुई। औषधियाँ भी दी गयी, पर काल के समान किसी का वश न चला। शायद मौत सॉंप का वेश धर कर आयी थी। तिलोत्तमा ने सुना तो सिर पीट लिया। वह विकल होकर जनवासे की तरफ दौड़ी। चादर ओढ़ने की भी सुधि न रही। वह अपने पति के चरणों को माथे से लगाकर अपना जन्म सफल करना चाहती थी। घर की स्त्रियों ने रोका। माता भी रो-रोकर समझाने लगी। लेकिन बाबू जगदीशचन्द्र ने कहा-कोई हरज नहीं, जाने दो। पति का दर्शन तो कर ले। यह अभिलाषा क्यों रह जाय। उसी शोकान्वित दशा में तिलोत्तमा जनवासे में पहुँची, पर वहाँ उसकी तस्कीन के लिए मरनेवाले की उल्टी साँसें थी। उन अधखुले नेत्रों में असहय आत्मवेदना और दारुण नैराश्य।

४

इस अद्‌भुत घटना का सामाचार दूर-दूर तक फैल गया। जड़वादोगण चकित थे, यह क्या माजरा है। आत्मवाद के भक्त ज्ञातभाव से सिर हिलाते थे मानों वे चित्रकालदर्शी हैं। जगदीशचन्द्र ने नसीब ठोंक लिया। निश्चय हो गया कि कन्या के भाग्य में विधवा रहना ही लिखा है। नाग की पूजा साल में दो बार होने लगी। तिलोत्तमा के चरित्र में भी एक विशेष अंतर दीखने लगा। भोग और विहार के दिन भक्ति और देवाराधना में कटने लगे। निराश प्राणियों का यही अवलम्ब है।

तीन साल बीत थे कि ढाका विश्वविद्‌यालय के अध्यापक ने इस किस्से को फिर ताजा किया। वे पशु-शास्त्र के ज्ञाता थे। उन्होंने साँपों के आचार-व्यवहार का विशेष रीति से अध्ययन किया। वे इस रहस्य को खोलना चाहते थे। जगदीशचंद्र को विवाह का संदेश भेजा। उन्होंने टाल-मटोल किया। दयाराम ने और भी आग्रह किया। लिखा, मैने वैज्ञानिक अन्वेषण के लिए यह निश्चय किया है। मैं इस विषधर नाग से लड़ना चाहता हूँ। वह अगर सौ दाँत ले कर आये तो भी मुझे कोई हानि नहीं पहुँचा सकता, वह मुझे काट कर आप ही मर जायेगा। अगर वह मुझे काट भी ले तो मेरे पास ऐसे मंत्र और औषधियाँ है कि मैं एक क्षण में उसके विष को उतार सकता हूँ। आप इस विषय में कुछ चिंता न किजिए। मैं विष के लिए अजेय हूँ।

जगदशीचंद्र को अब कोई उज्र न सूझा। हाँ, उन्होंने एक विशेष प्रयत्न यह किया कि ढाके में ही विवाह हो। अतएब वे अपने कुटुम्बियों को साथ ले कर विवाह के एक सप्ताह पहले गये। चलते समय अपने संदूक, बिस्तर आदि खूब देखभाल कर रखे कि साँप कहीं उनमें उनमें छिप कर न बैठा जाय। शुभ लगन में विवाह-संस्कार हो गया। तिलोत्तमा विकल हो रही थी। मुख पर एक रंग आता था, एक रंग जाता था, पर संस्कार में कोई विध्न-बाधा न पड़ी। तिलोत्तमा रो धो-कर ससुराल गयी। जगदीशचंद्र घर लौट आये, पर ऐसे चिंतित थे जैसे कोई आदमी सराय मे खुला हुआ संदूक छोड़ कर बाजार चला जाय।

तिलोत्तमा के स्वभाव में अब एक विचित्र रुपांतर हुआ। वह औरों से हँसती-बोलती आराम से खाती-पीती सैर करने जाती, थियेटरों और अन्य सामाजिक सम्मेलनों में शरीक होती। इन अवसरों पर प्रोफेसर दया राम से भी बड़े प्रेम का व्यवहार करती, उनके आराम का बहुत ध्यान रखती। कोई काम उनकी इच्छा के विरुद्ध न करती। कोई अजनबी आदमी उसे देखकर कह सकता था, गृहिणी हो तो ऐसी हो। दूसरों की दृष्टि में इस दम्पत्ति का जीवन आदर्श था, किन्तु आंतरिक दशा कुछ और ही थी। उनके साथ शयनागार में जाते ही उसका मुख विकृत हो जाता, भौंहें तन जाती, माथे पर बल पड़ जाते, शरीर अग्नि की भाँति जलने लगता, पलकें खुली रह जाती, नेत्रों से ज्वाला-सी निकलने लगती और उसमें से झुलसती हुई लपटें निकलती, मुख पर कालिमा छा जाती और यद्यपि स्वरुप में कोई विशेष अन्तर न दिखायी देखायी देता; पर न जाने क्यों भ्रम होने लगता, यह कोई नागिन है। कभी –कभी वह फुँकारने भी लगतीं। इस स्थिति में दयाराम को उनके समीप जाने या उससे कुछ बोलने की हिम्मत न पड़ती। वे उसके रुप-लावण्य पर मुग्ध थे, किन्तु इस अवस्था में उन्हें उससे घृणा होती। उसे इसी उन्माद के आवेग में छोड़ कर बाहर निकल आते। डाक्टरों से सलाह ली, स्वयं इस विषय की कितनी ही किताबों का अध्ययन किया; पर रहस्य कुछ समझ में न आया, उन्हें भौतिक विज्ञान में अपनी अल्पज्ञता स्वीकार करनी पड़ी।

उन्हें अब अपना जीवन असह्य जान पड़ता। अपने दुस्साहस पर पछताते। नाहक इस विपत्ति में अपनी जान फँसायी। उन्हें शंका होने लगी कि अवश्य कोई प्रेत-लीला है ! मिथ्यावादी न थे, पर जहाँ बुद्धि और तर्क का कुछ वश नहीं चलता, वहाँ मनुष्य विवश होकर मिथ्यावादी हो जाता है।

शनै:-शनै: उनकी यह हालत हो गयी कि सदैव तिलोत्तमा से सशंक रहते। उसका उन्माद, विकृत मुखाकृति उनके ध्यान से न उतरते। डर लगता कि कहीं यह मुझे मार न डाले। न जाने कब उन्माद का आवेग हो। यह चिन्ता ह्रदय को व्यथित किया करती। हिप्नाटिज्म, विद्युत्शक्ति और कई नये आरोग्यविधानों की परीक्षा की गयी । उन्हें हिप्नाटिज्म पर बहुत भरोसा था; लेकिन जब यह योग भी निष्फल हो गया तो वे निराश हो गये।

५

एक दिन प्रोफेसर दयाराम किसी वैज्ञनिक सम्मेलन में गए हुए थे। लौटे तो बारह बज गये थे। वर्षा के दिन थे। नौकर-चाकर सो रहे थे। वे तिलोत्तमा के शयनगृह में यह पूछने गये कि मेरा भोजन कहाँ रखा है। अन्दर कदम रखा ही था कि तिलोत्तमा के सिरंहाने की ओर उन्हें एक अतिभीमकाय काला साँप बैठा हुआ दिखायी दिया। प्रो. साहब चुपके से लौट आये। अपने कमरे में जा कर किसी औषधि की एक खुराक पी और पिस्तौल तथा साँगा ले कर फिर तिलोत्तमा के कमरे में पहुँचे। विश्वास हो गया कि यह वही मेरा पुराना शत्रु है। इतने दिनों में टोह लगाता हुआ यहाँ आ पहुँचा। पर इसे तिलोत्तामा से क्यों इतना स्नेह है। उसके सिरहने यों बैठा हुआ है मानो कोई रस्सी का टुकड़ा है। यह क्या रहस्य है ! उन्होंने साँपों के विषय में बड़ी अदभूत कथाएँ पढ़ी और सुनी थी, पर ऐसी कुतूहलजनक घटना का उल्लेख कहीं न देखा था। वे इस भाँति सशसत्र हो कर फिर कमरे में पहुँचे तो साँप का पात न था। हाँ, तिलोत्तमा के सिर पर भूत सवार हो गया था। वह बैठी हुई आग्ये हुई नेत्रों के द्वारा की ओर ताक रही थी। उसके नयनों से ज्वाला निकल रही थी, जिसकी आँच दो गज तक लगती। इस समय उन्माद अतिशय प्रचंड था। दयाराम को देखते ही बिजली की तरह उन पर टूट पड़ी और हाथों से आघात करने के बदले उन्हें दाँतों से काटने की चेष्टा करने लगी। इसके साथ ही अपने दोनों हाथ उनकी गरदन डाल दिये। दयाराम ने बहुतेरा चाहा, ऐड़ी-चोटी तक का जोर लगा कि अपना गला छुड़ा लें, लेकिन तिलोत्तमा का बाहुपाश प्रतिक्षण साँप की केड़ली की भाँति कठोर एवं संकुचित होता जाता था। उधर यह संदेह था कि इसने मुझे काटा तो कदाचित् इसे जान से हाथ धोना पड़े। उन्होंने अभी जो औषधि पी थी, वह सर्प विष से अधिक घातक थी। इस दशा में उन्हें यह शोकमय विचार उत्पन्न हुआ। यह भी कोई जीवन है कि दम्पति का उत्तरदायित्व तो सब सिर पर सवार, उसका सुख नाम का नहीं,

उलटे रात-दिन जान का खटका। यह क्या माया है। वह साँप कोई प्रेत तो नही है जो इसके सिर आकर यह दशा कर दिया करता है। कहते है कि ऐसी अवस्था में रोगी पर चोट की जाती है, वह प्रेत पर ही पड़ती हैं नीचे जातियों में इसके उदाहरण भी देखे हैं। वे इसी हैंसंबैस में पड़े हुए थे कि उनका दम घुटने लगा। तिलात्तमा के हाथ रस्सी के फंदे की भाँति उनकी गरदन को कस रहे थें वे दीन असहाय भाव से इधर-उधर ताकने लगे। क्योंकर जान बचे, कोई उपाय न सूझ पड़ता था। साँस लेना। दुस्तर हो गया, देह शिथिल पड़ गयी, पैर थरथराने लगे। सहसा तिलोत्तमा ने उनके बाँहों की ओर मुँह बढ़ाया। दयाराम काँप उठे। मृत्यु आँखें के सामने नाचने लगी। मन में कहा—यह इस समय मेरी स्त्री नहीं विषैली भयंकर नागिन है: इसके विष से जान बचानी मुश्किल है। अपनी औषधि पर जो भरोसा था, वह जाता रहा। चूहा उन्मत्त दशा में काट लेता है तो जान के लाले पड़ जाते है। भगवान् ? कितन विकराल स्वरुप है ? प्रत्यक्ष नागिन मालूम हो रही है। अब उलटी पड़े या सीधी इस दशा का अंत करना ही पड़ेगा। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि अब गिरा ही चाहता हूँ। तिलोत्तमा बार-बार साँप की भाँति फुँकार मार कर जीभ निकालते हुए उनकी ओर झपटती थी। एकाएक वह बड़े कर्कश स्वर से बोली—'मूर्ख ? तेरा इतना साहस कि तू इस सुंदरी से प्रेमलिंगन करे।' यह कहकर वह बड़े वेग से काटने को दौड़ी। दयाराम का धैर्य जाता रहा। उन्होंने दहिना हाथ सीधा किया और तिलोत्तमा की छाती पर पिस्तौल चला दिया। तिलोत्तमा पर कुछ असर न हुआ। बाहें और भी कड़ी हो गयी; आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगी। दयाराम ने दूसरी गोली दाग दी। यह चोट पूरी पड़ी। तिलोत्तमा का बाहु-बंधन ढीला पड़ गया। एक क्षण में उसके हाथ नीचे को लटक गये, सिर झुक गया और वह भूमि पर गिर पड़ी।

तब वह दृश्य देखने में आया जिसका उदाहराण कदाचित् अलिफलैला चंद्रकांता में भी न मिले। वही फ्लँग के पास, जमीन पर एक काला दीर्घकाय सर्प पड़ा तड़प रहा था। उसकी छाती और मुँह से खून की धारा बह रही थी।

दयाराम को अपनी आँखों पर विश्वास न आता था। यह कैसी अदभुत प्रेत-लीला थी! समस्या क्या है किससे पूछूँ ? इस तिलस्म को तोड़ने का प्रयत्न करना मेरे जीवन का एक कर्त्तव्य हो गया। उन्होंने साँगे से साँप की देह मे एक कोचा मारा और फिर वे उसे लटकाये हुए आँगन में लाये। बिलकुल बेदम हो गया था। उन्होंने उसे अपने कमरे में ले जाकर एक खाली संदूक में बंदकर दिया। उसमें भुस भरवा कर बरामदे में लटकाना चाहते थे। इतना बड़ा गेहुँवन साँप किसी ने न देखा होगा।

तब वे तिलोत्तमा के पास गये। डर के मारे कमरे में कदम रखने की हिम्मत न पड़ती थी। हाँ, इस विचार से कुछ तस्कीन होती थी कि सर्प प्रेत मर गया है तो उसकी जान बच गयी होगी। इस आशा और भय की दशा में वे अन्दर गये तो तिलोत्तमा आईने के सामने खड़ी केश सँवार रही थी।

दयाराम को मानो चारों पदार्थ मिल गये। तिलोत्तमा का मुख-कमल खिला हुआ था। उन्होंने कभी उसे इतना प्रफुल्लित न देखा था। उन्हें देखते ही वह उनकी ओर प्रेम से चली और बोली—आज इतनी रात तक कहाँ रहे ?

दयाराम प्रेमोन्नत हो कर बोले—एक जलसे में चला गया था। तुम्हारी तबीयत कैसी हे ? कहीं दर्द नहीं है ?

तिलोत्तमा ने उनको आश्चर्य से देख कर पूछा—तुम्हें कैसे मालूम हुआ ? मेरी छाती में ऐसा दर्द हो रहा है, जैस चिलक पड़ गयी हो।

विश्वास

उन दिनो मिस जोसी बम्बई सभ्य-समाज की राधिका थी। थी तो वह एक छोटी सी कन्या पाठशाला की अध्यापिका पर उसका ठाट-बाट, मान-सम्मान बड़ी-बडी धन-रानियों को भी लज्जित करता था। वह एक बड़े महल में रहती थी, जो किसी जमाने में सतारा के महाराज का निवास-स्थान था। वहॉँ सारे दिन नगर के रईसों, राजों, राज-कमचारियों का तांता लगा रहता था। वह सारे प्रांत के धन और कीर्ति के उपासकों की देवी थी। अगर किसी को खिताब का खब्त था तो वह मिस जोशी की खुशामद करता था। किसी को अपने या संबधी के लिए कोई अच्छा ओहदा दिलाने की धुन थी तो वह मिस जोशी की अराधना करता था। सरकारी इमारतों के ठीके ; नमक, शराब, अफीम आदि सरकारी चीजों के ठीके ; लोहे-लकड़ी, कल-पुरजे आदि के ठीके सब मिस जोशी ही के हाथो में थे। जो कुछ करती थी वही करती थी, जो कुछ होता था उसी के हाथो होता था। जिस वक्त वह अपनी अरबी घोड़ो की फिटन पर सैर करने निकलती तो रईसों की सवारियां आप ही आप रास्ते से हट जाती थी, बड़े दुकानदार खड़े हो-हो कर सलाम करने लगते थे। वह रूपवती थी, लेकिन नगर में उससे बढ़कर रूपवती रमणियां भी थी। वह सुशिक्षिता थीं, वक्चतुर थी, गाने में निपुण, हंसती तो अनोखी छवि से, बोलती तो निराली घटा से, ताकती तो बांकी चितवन से ; लेकिन इन गुणो में उसका एकाधिपत्य न था। उसकी प्रतिष्ठा, शक्ति और कीर्ति का कुछ और ही रहस्य था। सारा नगर ही नही ; सारे प्रान्त का बच्चा जानता था कि बम्बई के गवर्नर मिस्टर जौहरी मिस जोशी के बिना दामों के गुलाम है।मिस जोशी की आंखो का इशारा उनके लिए नादिरशाही हुक्म है। वह थिएटरो में दावतों में, जलसों में मिस जोशी के साथ साये की भॉँति रहते है। और कभी-कभी उनकी मोटर रात के सन्नाटे में मिस जोशी के मकान से निकलती हुई लोगो को दिखाई देती है। इस प्रेम में वासना की मात्रा अधिक है या भक्ति की, यह कोई नही जानता । लेकिन मिस्टर जौहरी विवाहित है और मिस जौशी विधवा, इसलिए जो लोग उनके प्रेम को कलुषित कहते है, वे उन पर कोई अत्याचार नहीं करते।

बम्बई की व्यवस्थापिका-सभा ने अनाज पर कर लगा दिया था और जनता की ओर से उसका विरोध करने के लिए एक विराट सभा हो रही थी। सभी नगरों से प्रजा के प्रतिनिधि उसमें सम्मिलित होने के लिए हजारो की संख्या में आये थे। मिस जोशी के विशाला भवन के सामने, चौड़े मैदान में हरी-भरी घास पर बम्बई की जनता उपनी फरियाद सुनाने के लिए जमा थी। अभी तक सभापति न आये थे, इसलिए लोग बैठे गप-शप कर रहे थे। कोई कर्मचारी पर आक्षेप करता था, कोई देश की स्थिति पर, कोई अपनी दीनता पर— अगर हम लोगो में अगड़ने का जरा भी सामर्थ्य होता तो मजाल थी कि यह कर लगा दिया जाता, अधिकारियों का घर से बाहर निकलना मुश्किल हो जाता। हमारा जरुरत से ज्यादा सीधापन हमें अधिकारियों के हाथों का खिलौना बनाए हुए है। वे जानते हैं कि इन्हें जितना दबाते जाओ, उतना दबते जायेगें, सिर नहीं उठा सकते। सरकार ने भी उपद्रव की आंशका से सशस्त्र पुलिस बुला ली।ै उस मैदान के चारों कोनो पर सिपाहियों के दल डेरा डाले पड़े थे। उनके अफसर, घोड़ों पर सवार, हाथ में हंटर लिए, जनता के बीच में निश्शंक भाव से घोंड़े दौड़ाते फिरते थे, मानों साफ मैदान है। मिस जोशी के ऊंचे बरामदे में नगर के सभी बड़े-बड़े रईस और राज्याधिकारी तमाशा देखने के लिए बैठे हुए थे। मिस जोशी मेहमानों का आदर-सत्कार कर रही थीं और मिस्टर जौहरी, आराम-कुर्सी परलेटे, इस जन-समूह को घृणा और भय की दृष्टि से देख रहे थे।

सहसा सभापति महाशय आपटे एक किराये के तांगे पर आते दिखाई दिये। चारों तरफ हलचल मच गई, लोग उठ-उठकर उनका स्वागत करने दौड़े और उन्हें ला कर मंच पर बेठा दिया। आपटे की अवस्था ३०-३५ वर्ष से अधिक न थी ; दुबले-पतले आदमी थे, मुख पर चिन्ता का गाढ़ा रंग-चढ़ा हुआ था। बाल भी पक चले थे, पर मुख पर सरल हास्य की रेखा झलक रही थी। वह एक सफेद मोटा कुरता पहने थे, न पांव में जूते थे, न सिर पर टोपी। इस अद्धर्नग्न, दुर्बल, निस्तेज प्राणी में न जाने कौल-सा जादू था कि समस्त जनता उसकी पूजा करती थी, उसके पैरों में न जाने कौन सा जादू था कि समस्त जरत उसकी पूजा करती थी, उसकेपैरोे पर सिर रगड़ती थी। इस एक प्राणी क हाथों में इतनी शक्ति थी कि वह क्षण मात्र में सारी मिलों को बंद करा सकता था, शहर का सारा कारोबार मिटा सकता था। अधिकारियों को उसके भय से नींद न आती थी, रात को सोते-सोते चौंक पड़ते थे। उससे ज्यादा भंयकर जन्तु अधिकारियों की दृष्टिमें दूसरा

नथा। ये प्रचंड शासन-शक्ति उस एक हड्डी के आदमी से थरथर कांपती थी, क्योंकि उस हड्डी मेंएक पवित्र, निष्कलंक, बलवान और दिव्य आत्मा का निवास था।

२

आपटे नें मंच पर खड़ें होकरह पहले जनता को शांत चित रहने और अहिंसा-व्रत पालन करने का आदेश दिया। फिर देश में राजनिनतिक स्थिति का वर्णन करने लगे। सहसा उनकी दृष्टि सामने मिस जोशी के बरामदे की ओर गई तो उनका प्रजा-दुख पीड़ित हृदय तिलमिला उठा। यहां अगणित प्राणी अपनी विपत्ति की फरियाद सुनने के लिए जमा थे और वहां मेंजो पर चाय और बिस्कुट, मेवे और फल, बर्फ और शराब की रेल-पेल थी। वे लोग इन अभागों को देख-देख हंसते और तालियां बजाते थे। जीवन में पहली बार आपटे की जबान काबू से बाहर हो गयी। मेघ की भांति गरज कर बोले—

‘इधर तो हमारे भाई दाने-दाने को मुहताज हो रहे है, उधर अनाज पर कर लगाया जा रहा है, केवल इसलिए कि राजकर्मचारियों के हलवे-पूरी में कमी न हो। हम जो देश जो देश के राजा हैं, जो छाती फाड़ कर धरती से धन निकालते हैं, भूखों मरते हैं; और वे लोग, जिन्हें हमने अपने सुख और शाति की व्यवस्था करने के लिए रखा है, हमारे स्वामी बने हुए शराबों की बोतले उड़ाते हैं। कितनी अनोखी बात है कि स्वामी भूखों मरें और सेवक शराबें उड़ायें, मेवे खायें और इटली और स्पेन की मिठाइयां चलें! यह किसका अपराध है? क्या सेवकों का? नहीं, कदापि नहीं, हमारा ही अपराध है कि हमने अपने सेवकों को इतना अधिकार दे रखा है। आज हम उच्च स्वर से कह देना चाहते हैं कि हम यह क्रूर और कुटिल व्यवहार नहीं सह सकते।यह हमारें लिए असह्य है कि हम और हमारे बाल-बच्चे दानों को तरसें और कर्मचारी लोग, विलास में डूबें हुए हमारे करूण-क्रन्दन की जरा भी परवा न करत हुए विहार करें। यह असह्य है कि हमारें घरों में चूल्हें न जलें और कर्मचारी लोग थिएटरों में ऐश करें, नाच-रंग की महफिलें सजायें, दावतें उड़ायें, वेश्चाओं पर कंचन की वर्षा करें। संसार में और ऐसा कौन ऐसा देश होगा, जहां प्रजा तो भूखी मरती हो और प्रधान कर्मचारी अपनी प्रेम-क्रिड़ा में मग्न हो, जहां स्त्रियां गलियों में ठोकरें खाती फिरती हों और अध्यापिकाओं का वेष धारण करने वाली वेश्याएं आमोद-प्रमोद के नशें में चूर हों----

३

एकाएक सशस्त्र सिपाहियों के दल में हलचल पड़ गई। उनका अफसर हुक्म दे रहा था—सभा भंग कर दो, नेताओं को पकड़ लो, कोई न जाने पाए। यह विद्रोहात्म व्याख्यान है।

मिस्टर जौहरी ने पुलिस के अफसर को इशारे पर बुलाकर कहा—और किसी को गिरफ्तार करने की जरुरत नहीं। आपटे ही को पकड़ो। वही हमारा शत्रु है।

पुलिस ने डंडे चलने शुरु किये। और कई सिपाहियों के साथ जाकर अफसर ने अपटे का गिरफ्तार कर लिया।

जनता ने त्यौरियां बदलीं। अपने प्यारे नेता को यों गिरफ्तार होते देख कर उनका धैर्य हाथ से जाता रहा।

लेकिन उसी वक्त आपटे की ललकार सुनाई दी—तुमने अहिंसा-व्रत लिया है ओर अगर किसी ने उस व्रत को तोड़ा तो उसका दोष मेरे सिर होगा। मैं तुमसे सविनय अनुरोध करता हूं कि अपने-अपने घर जाओं। अधिकारियों ने वही किया जो हम समझते थे। इस सभा से हमारा जो उद्देश्य था वह पूरा हो गया। हम यहां बलवा करने नहीं , केवल संसार की नैतिक सहानुभूति प्राप्त करने के लिए जमाहुए थे, और हमारा उद्देश्य पूराहो गया।

एक क्षण में सभा भंग हो गयी और आपटे पुलिस की हवालात में भेज दिए गये

४

मिस्टर जौहरी ने कहा—बच्चा बहुत दिनों के बाद पंजे में आए हैं, राज-द्रोह कामुकदमा चलाकर कम से कम १० साल के लिए अंडमान भेंजूगां।

मिस जोशी—इससे क्या फायदा?

‘क्यों? उसको अपने किए की सजा मिल जाएगी।’

'लेकिन सोचिए, हमें उसका कितना मूल्य देना पड़ेगा। अभी जिस बात को गिने-गिनाये लोग जानते हैं, वह सारे संसार में फैलेगी और हम कहीं मुंह दिखाने लायक नहीं रहेंगें। आप अखबारों में संवाददाताओं की जबान तो नहीं बंद कर सकते।'

'कुछ भी हो मैं इसे जोल में सड़ाना चाहता हूं। कुछ दिनों के लिए तो चैन की नींद नसीब होगी। बदनामी से डरना ही व्यर्थ है। हम प्रांत के सारे समाचार-पत्रों को अपने सदाचार का राग अलापने के लिए मोल ले सकते हैं। हम प्रत्येक लांछन को झूठ साबित कर सकते हैं, आपटे पर मिथ्या दोषारोपरण का अपराध लगा सकते हैं।'

'मैं इससे सहज उपाय बतला सकती हूं। आप आपटे को मेरे हाथ में छोड़ दीजिए। मैं उससे मिलूंगी और उन यंत्रों से, जिनका प्रयोग करने में हमारी जाति सिद्धहस्त है, उसके आंतरिक भावों और विचारों की थाह लेकर आपके सामने रख दूंगी। मैं ऐसे प्रमाण खोज निकालना चाहती हूंजिनके उत्तर में उसे मुंह खोलने का साहस न हो, और संसार की सहानुभूति उसके बदले हमारे साथ हो। चारों ओर से यही आवाज आये कि यह कपटी ओर धूर्त था और सरकर ने उसके साथ वही व्यवहार किया है जो होना चाहिए। मुझे विश्वास है कि वह षंड्यंत्रकारियों को मुखिया है और मैं इसे सिद्ध कर देना चाहती हूं। मैं उसे जनता की दृष्टि में देवता नहीं बनाना चाहतीं हूं, उसको राक्षस के रुप में दिखाना चाहती हूं।

'ऐसा कोई पुरुष नहीं है, जिस पर युवती अपनी मोहिनी न डाल सके।'

'अगर तुम्हें विश्वास है कि तुम यह काम पूरा कर दिखाओंगी, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं तो केवल उसे दंड देना चाहता हूं।'

'तो हुक्म दे दीजिए कि वह इसी वक्त छोड़ दिया जाय।'

'जनता कहीं यह तो न समझेगी कि सरकार डर गयी?'

'नहीं, मेरे ख्याल में तो जनता पर इस व्यवहार का बहुत अच्छा असर पड़ेगा। लोग समझेगें कि सरकार ने जनमत का सम्मान किया है।'

'लेकिन तुम्हें उसेक घर जाते लोग देखेंगे तो मन में क्या कहेंगे?'

'नकाब डालकर जाऊंगी, किसी को कानोंकान खबर न होगी।'

'मुझे तो अब भी भय है कि वह तुम्हे संदेह की दृष्टि से देखेगा और तुम्हारे पंजे में न आयेगा, लेकिन तुम्हारी इच्छा है तो आजमा देखों।'

यह कहकर मिस्टर जौहरी ने मिस जोशी को प्रेममय नेत्रों से देखा, हाथ मिलाया और चले गए।

आकाश पर तारे निकले हुए थे, चैत की शीतल, सुखद वायु चल रही थी, सामने के चौड़े मैदान में सन्नाटा छाया हुआ था, लेकिन मिस जोशी को ऐसा मालूम हुआ मानों आपटे मंच पर खड़ा बोल रहा है। उसक शांत, सौम्य, विषादमय स्वरुप उसकी आंखों में समाया हुआ था।

५

प्रात:काल मिस जोशी अपने भवन से निकली, लेकिन उसके वस्त्र बहुत साधारण थे और आभूषण के नाम शरीर पर एक धागा भी नथा। अलंकार-विहीन हो कर उसकी छवि स्वच्छ, जल की भांति और भी निखर गयी। उसने सड़क पर आकर एक तांगा लिया और चली।

अपटे का मकान गरीबों के एक दूर के मुहल्ले में था। तांगेवाला मकान का पता जानता था। कोई दिक्कत न हुई। मिस जोशी जब मकान के द्वार पर पहुंची तो न जाने क्यों उसका दिल धड़क रहा था। उसने कांपते हुए हाथों से कुंडी खटखटायी। एक अधेड़ औरत निकलकर द्वार खोल दिय। मिस जोशी उस घर की सादगी देख दंग रह गयी। एक किनारें चारपाई पड़ी हुई थी, एक टूटी आलमारी में कुछ किताबें चुनी हुई थीं, फर्श पर खिलने का डेस्क था ओर एक रस्सी की अलगनी पर कपड़े लटक रहे थे। कमरे के दूसरे हिस्से में एक लोहे का चूल्हा था और खाने के बरतन पड़े हुए थे। एक लम्बा-तगड़ा आदमी, जो उसी अधेड़ औरत का पति था, बैठा एक टूटे हुए ताले की मरम्मत कर रहा था और एक पांच-छ वर्ष का तेजस्वी बालक आपटे की पीठ पर चढ़ने के लिए उनके गले में हाथ डाल रहा था।आपटे इसी लोहार के साथ उसी घर में रहते थे। समाचार-पत्रों के लेख लिखकर जो कुछ मिलता उसे दे देते और इस भांति गृह-प्रबंध की चिंताओं से छुट्टी पाकर जीवन व्यतीत करते थें।

मिस जोशी को देखकर आपटे जरा चौंके, फिर खड़े होकर उनका स्वागत किया ओर सोचने लगे कि कहां बैठाऊं। अपनी दरिद्रता पर आज उन्हें जितनी लाज आयी उतनी और कभी न आयी थी। मिस जोशी

उनका असमंजस देखकर चारपाई पर बैठ गयी और जरा रुखाई से बोली---मैं बिना बुलाये आपके यहां आने के लिए क्षमा मांगती हूं किंतु काम ऐसा जरुरी था कि मेरे आये बिना पूरा न हो सकता। क्या मैं एक मिनट के लिए आपसे एकांत में मिल सकती हूं।

आपटे ने जगन्नाथ की ओर देख कर कमरे से बाहर चले जाने का इशारा किया। उसकी स्त्री भी बाहर चली गयी। केवल बालक रह गया। वह मिस जोशी की ओर बार-बार उत्सुक आंखों से देखता था। मानों पूछ रहा हो कि तुम आपटे दादा की कौन हो?

मिस जोशी ने चारपाई से उतर कर जमीन पर बैठते हुए कहा---आप कुछ अनुमान कर सकते हैं कि इस वक्त क्यों आयी हूं।

आपटे ने झेंपते हुए कहा---आपकी कृपा के सिवा और क्या कारण हो सकता है?

मिस जोशी---नहीं, संसार इतना उदार नहीं हुआ कि आप जिसे गांलियां दें, वह आपको धन्यवाद दे। आपको याद है कि कल आपने अपने व्याख्यान में मुझ पर क्या-क्या आक्षेप किए थे? मैं आपसे जोर देकर कहती हूं किवे आक्षेप करके आपने मुझपर घोर अत्याचार किया है। आप जैसे सहृदय, शीलवान, विद्वान आदमी से मुझे ऐसी आशा न थी। मैं अबला हूं, मेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं है? क्या आपको उचित था कि एक अबला पर मिथ्यारोपण करें? अगर मैं पुरुष होती तो आपसे ड्यूल खेलने काक आग्रह करती । अबला हूं, इसलिए आपकी सज्जनता को स्पर्श करना ही मेरे हाथ में है। आपने मुझ पर जो लांछन लगाये हैं, वे सर्वथा निर्मूल हैं।

आपटे ने दृढ़ता से कहा---अनुमान तो बाहरी प्रमाणों से ही किया जाता है।

मिस जोशी—बाहरी प्रमाणों से आप किसी के अंतस्तल की बात नहीं जान सकते ।

आपटे—जिसका भीतर-बाहर एक न हो, उसे देख कर भ्रम में पड़ जाना स्वाभाविक है।

मिस जाशी—हां, तो वह आपका भ्रम है और मैं चाहती हूं कि आप उस कलंक को मिटा दे जो आपने मुझ पर लगाया है। आप इसके लिए प्रायश्चित करेंगे?

आपटे---अगर न करूं तो मुझसे बड़ा दुरात्मा संसार में न होगा।

मिस जोशी—आप मुझपर विश्वास करते हैं।

आपटे—मैंने आज तक किसी रमणी पर विश्वास नहीं किया।

मिस जोशी—क्या आपको यह संदेह हो रहा है कि मैं आपके साथ कौशल कर रही हूं?

आपटे ने मिस जोशी की ओर अपने सदय, सजल, सरल नेत्रों से देख कर कहा—बाई जी, मैं गंवार और अशिष्ट प्राणी हूं। लेकिन नारी-जाति के लिए मेरे हृदय में जो आदर है, वह श्रद्धा से कम नहीं है, जो मुझे देवताओं पर हैं। मैंने अपनी माता का मुख नहीं देखा, यह भी नहीं जानता कि मेरा पिता कौन था; किंतु जिस देवी के दया-वृक्ष की छाया में मेरा पालन-पोषण हुआ उनकी प्रेम-मूर्ति आज तक मेरी आंखों के सामने है और नारी के प्रति मेरी भक्ति को सजीव रखे हुए है। मै उन शब्दों को मुंह से निकालने के लिए अत्यंत दु:खी और लज्जित हूं जो आवेश में निकल गये, और मै आज ही समाचार-पत्रों में खेद प्रकट करके आपसे क्षमा की प्रार्थना करुंगा।

मिस जोशी का अब तक अधिकांश स्वार्थी आदमियों ही से साबिका पड़ा था, जिनके चिकने-चुपड़े शब्दों में मतलब छुपा हुआ था। आपटे के सरल विश्वास पर उसका चित्त आनंद से गद्गद हो गया। शायद वह गंगा में खड़ी होकर अपने अन्य मित्रों से यह कहती तो उसके फैशनेबुल मिलने वालों में से किसी को उस पर विश्वास न आता। सब मुंह के सामने तो 'हां-हां' करते, पर बाहर निकलते ही उसका मजाक उड़ाना शुरु करते। उन कपटी मित्रों के सम्मुख यह आदमी था जिसके एक-एक शब्द में सच्चाई झलक रही थी, जिसके शब्द अंतस्तल से निकलते हुए मालूम होते थे।

आपटे उसे चुप देखकर किसी और ही चिंता में पड़े हुए थें।उन्हें भय हो रहा था अब मैं चाहे कितना क्षमा मांगू, मिस जोशी के सामने कितनी सफाइयां पेश करूं, मेरे आक्षेपों का असर कभी न मिटेगा।

इस भाव ने अज्ञात रुप से उन्हें अपने विषय की गुप्त बातें कहने की प्रेरणा की जो उन्हें उसकी दृष्टि में लघु बना दें, जिससे वह भी उन्हें नीच समझने लगे, उसको संतोष हो जाए कि यह भी कलुषित आत्मा है। बोले—मैं जन्म से अभागा हूं। माता-पिता का तो मुंह ही देखना नसीब न हुआ, जिस दयाशील महिला ने मुझे आश्रय दिया था, वह भी मुझे १३ वर्ष की अवस्था में अनाथ छोड़कर परलोक सिधार गयी। उस समय मेरे सिर पर जो कुछ बीती उसे याद करके इतनी लज्जा आती हे कि किसी को मुंह न दिखाऊं। मैंने धोबी

का काम किया; मोची का काम किया; घोड़े की साईसी की; एक होटल में बरतन मांजता रहा; यहां तक कि कितनी ही बार क्षुधासे व्याकुल होकर भीख मांगी। मजदूरी करने को बुरा नहीं समझता, आज भी मजदूरी ही करता हूं। भीख मांगनी भी किसी-किसी दशा में क्षम्य है, लेकिन मैंने उस अवस्था में ऐसे-ऐसे कर्म किए, जिन्हें कहते लज्जा आती है—चोरी की, विश्वासघात किया, यहां तक कि चोरी के अपराध में कैद की सजा भी पायी।

मिस जोशी ने सजल नयन होकर कहा—आज यह सब बातें मुझसे क्यों कर रहे हैं? मैं इनका उल्लेख करके आपको कितना बदनाम कर सकतीं हूं, इसका आपको भय नहीं है?

आपटे ने हंसकर कहा—नहीं, आपसे मुझे भय नहीं है।

मिस जोशी—अगर मैं आपसे बदला लेना चाहूं, तो?

आपटे---जब मैं अपने अपराध पर लज्जित होकर आपसे क्षमा मांग रहा हूं, तो मेरा अपराध रहा ही कहाँ, जिसका आप मुझसे बदला लेंगी। इससे तो मुझे भय होता है कि आपने मुझे क्षमा नहीं किया। लेकिन यदि मैंने आपसे क्षमा न मांगी तो मुझसे तो बदला न ले सकतीं। बदला लेने वाले की आंखें यो सजल नहीं हो जाया करतीं। मैं आपको कपट करने के अयोग्य समझता हूं। आप यदि कपट करना चाहतीं तो यहां कभी न आतीं।

मिस जोशी—मै आपका भेद लेने ही के लिए आयी हूं।

आपटे---तो शौक से लीजिए। मैं बतला चुका हूं कि मैंने चोरी के अपराध में कैद की सजा पायी थी। नासिक के जेल में रखा गया था। मेरा शरीर दुर्बल था, जेल की कड़ी मेहनत न हो सकती थी और अधिकारी लोग मुझे कामचोर समझ कर बेंतो से मारते थे। आखिर एक दिन मैं रात को जेल से भाग खड़ा हुआ।

मिस जोशी—आप तो छिपे रुस्तम निकले!

आपटे--- ऐसा भागा कि किसी को खबर न हुई। आज तक मेरे नाम वारंट जारी है और ५०० रु0 का इनाम भी है।

मिस जोशी----तब तो मैं आपको जरुर पकड़ा दूंगी।

आपटे---तो फिर मैं आपको अपना असल नाम भी बता देता हूं। मेरा नाम दामोदर मोदी है। यह नाम तो पुलिस से बचने के लिए रख छोड़ा है।

बालक अब तक तो चुपचाप बैठा हुआ था। मिस जोशी के मुंह से पकड़ाने की बात सुनकर वह सजग हो गया। उन्हें डांटकर बोला—हमाले दादा को कौन पकड़ेगा?

मिस जोशी---सिपाही और कौन?

बालक---हम सिपाही को मालेंगे।

यह कहकर वह एक कोने से अपने खेलने वाला डंडा उठा लाया और आपटे के पास वीरोचिता भाव से खड़ा हो गया, मानो सिपाहियों से उनकी रक्षा कर रहा है।

मिस जोशी---आपका रक्षक तो बड़ा बहादुर मालूम होता है।

आपटे----इसकी भी एक कथा है। साल-भर होता है, यह लड़का खो गया था। मुझे रास्ते में मिला। मैं पूछता-पूछता इसे यहां लाया। उसी दिन से इन लोगों से मेरा इतना प्रेम हो गया कि मैं इनके साथ रहने लगा।

मिस जोशी---आप अनुमान कर सकते हैं कि आपका वृतान्त सुनकर मैं आपको क्या समझ रही हूं।

आपटे---वही, जो मैं वास्तव में हूं---नीच, कमीना धूर्त....

मिस जोशी---नहीं, आप मुझ पर फिर अन्याय कर रहे है। पहला अन्याय तो क्षमा कर सकती हूं, यह अन्याय क्षमा नहीं कर सकती। इतनी प्रतिकूल दशाओं में पड़कर भी जिसका हृदय इतना पवित्र, इतना निष्कपट, इतना सदय हो, वह आदमी नहीं देवता है। भगवन्, आपने मुझ पर जो आक्षेप किये वह सत्य हैं। मैं आपके अनुमान से कहीं भ्रष्ट हूं। मैं इस योग्य भी नहीं हूं कि आपकी ओर ताक सकूं। आपने अपने हृदय की विशालता दिखाकर मेरा असली स्वरुप मेरे सामने प्रकट कर दिया। मुझे क्षमा कीजिए, मुझ पर दया कीजिए।

यह कहते-कहते वह उनके पैंरो पर गिर पड़ी। आपटे ने उसे उठा लिया और बोले----ईश्वर के लिए मुझे लज्जित न करो।

मिस जोशी ने गद्गद कंठ से कहा---आप इन दुष्टों के हाथ से मेरा उद्धार कीजिए। मुझे इस योग्य बनाइए कि आपकी विश्वासपात्री बन सकूं। ईश्वर साक्षी है कि मुझे कभी-कभी अपनी दशा पर कितना दुख होता है। मैं बार-बार चेष्टा करती हूं कि अपनी दशा सुधारुं;इस विलासिता के जाल को तोड़ दूं, जो मेरी आत्मा को चारों तरफ से जकड़े हुए है, पर दुर्बल आत्मा अपने निश्चय पर स्थित नहीं रहती। मेरा पालन-पोषण जिस ढंग से हुआ, उसका यह परिणाम होना स्वाभाविक-सा मालूम होता है। मेरी उच्च शिक्षा ने गृहिणी-जीवन से मेरे मन में घृणा पैदा कर दी। मुझे किसी पुरुष के अधीन रहने का विचार अस्वाभाविक जान पड़ता था। मैं गृहिणी की जिम्मेदारियों और चिंताओं को अपनी मानसिक स्वाधीनता के लिए विष-तुल्य समझती थी। मैं तर्कबुद्धि से अपने स्त्रीत्व को मिटा देना चाहती थी, मैं पुरुषों की भांति स्वतंत्र रहना चाहती थी। क्यों किसी की पांबद होकर रहूं? क्यों अपनी इच्छाओं को किसी व्यक्ति के सांचे में ढालू? क्यों किसी को यह अधिकार दूं कि तुमने यह क्यों किया, वह क्यों किया? दाम्पत्य मेरी निगाह में तुच्छ वस्तु थी। अपने माता-पिता की आलोचना करना मेरे लिए अचित नहीं, ईश्वर उन्हें सद्गति दे, उनकी राय किसी बात पर न मिलती थी। पिता विद्वान् थे, माता के लिए 'काला अक्षर भैंस बराबर' था। उनमें रात-दिन वाद-विवाद होता रहता था। पिताजी ऐसी स्त्री से विवाह हो जाना अपने जीवन का सबसे बड़ा दुर्भाग्य समझते थे। वह यह कहते कभी न थकते थे कि तुम मेरे पांव की बेड़ी बन गयीं, नहीं तो मैं न जाने कहां उड़कर पहुंचा होता। उनके विचार मे सारा दोष माता की अशिक्षा के सिर था। वह अपनी एकमात्र पुत्री को मूर्खा माता से संसर्ग से दूररखना चाहते थे। माता कभी मुझसे कुछ कहतीं तो पिताजी उन पर टूट पड़ते—तुमसे कितनी बार कह चुका कि लड़की को डांटो मत, वह स्वयं अपना भला-बुरा सोच सकती है, तुम्हारे डांटने से उसके आत्म-सम्मान का कितनाधक्का लगेगा, यह तुम नहीं जान सकतीं। आखिर माताजी ने निराश होकर मुझे मेरे हाल पर छोड़ दिया और कदाचित् इसी शोक में चल बसीं। अपने घर की अशांति देखकर मुझे विवाह से और भी घृणा हो गयी। सबसे बड़ा असर मुझ पर मेरे कालेज की लेडी प्रिंसिपल का हुआ जो स्वयं अविवाहित थीं। मेरा तो अब यह विचार है कि युवको की शिक्षा का भार केवल आदर्श चरित्रों पर रखना चाहिए। विलास में रत, कालेजों के शौकिन प्रोफेसर विद्यार्थियों पर कोई अच्छा असर नहीं डाल सकते । मैं इस वक्त ऐसी बात आपसे कह रही हूं। पर अभी घर जाकर यह सब भूल जाऊंगी। मैं जिस संसार में हूं, उसकी जलवायु ही दूषित है। वहां सभी मुझे कीचड़ में लतपत देखना चाहते है।, मेरे विलासासक्त रहने में ही उनका स्वार्थ है। आप वह पहले आदमी हैं जिसने मुझ पर विश्वास किया है, जिसने मुझसे निष्कपट व्यवहार किया है। ईश्वर के लिए अब मुझे भूल न जाइयेगा।

आपटे ने मिस जोशी की ओर वेदना पूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—अगर मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूं तो यह मेरे लिए सौभाग्य की बात होगी। मिस जोशी! हम सब मिट्टी के पुतले हैं, कोई निर्दोष नहीं। मनुष्य बिगड़ता है तो परिस्थितियों से, या पूर्व संस्कारों से । परिस्थितियों का त्याग करने से ही बच सकता है, संस्कारों से गिरने वाले मनुष्य का मार्ग इससे कहीं कठिन है। आपकी आत्मा सुन्दर और पवित्र है, केवल परिस्थितियों ने उसे कुहरे की भांति ढंक लिया है। अब विवेक का सूर्य उदय हो गया है, ईश्वर ने चाहातो कुहरा भी फट जाएगा। लेकिन सबसे पहले उन परिस्थितियों का त्याग करने को तैयार हो जाइए।

मिस जोशी—यही आपको करना होगा।

आपटे ने चुभती हुई निगाहों से देख कर कहा—वैद्य रोगी को जबरदस्ती दवा पिलाता है।

मिस जोशी –मैं सब कुछ करुगीं। मैं कड़वी से कड़वी दवा पियूंगी यदि आप पिलायेंगे। कल आप मेरे घर आने की कृपा करेंगे, शाम को?

आपटे---अवश्य आऊंगा।

मिस जोशी ने विदा देते हुए कहा---भूलिएगा नहीं, मैं आपकी राह देखती रहूंगी। अपने रक्षक को भी लाइएगा।

यह कहकर उसने बालक को गोद मे उठाया ओर उसे गले से लगा कर बाहर निकल आयी।

गर्व के मारे उसके पांव जमीन पर न पड़ते थे। मालूम होता था, हवामें उड़ी जा रही है, प्यास से तड़पते हुए मनुष्य को नदी का तट नजर आने लगा था।

६

दूसरे दिन प्रात:काल मिस जोशी ने मेहमानों के नाम दावती कार्ड भेजे और उत्सव मनाने की तैयारियां करने लगी। मिस्टर आपटे के सम्मान में पार्टी दी जा रही थी। मिस्टर जौहरी ने कार्ड

देखा तो मुस्कराये। अब महाशय इस जाल से बचकरह कहां जायेगे। मिस जोशी ने ने उन्हें फसाने के लिए यह अच्छी तरकीब निकाली। इस काम में निपुण मालूम होती है। मैंने सकझा था, आपटे चालाक आदमी होगा, मगर इन आन्दोलनकारी विद्राहियों को बकवास करने के सिवा और क्या सूझ सकती है।

चार ही बजे मेहमान लोग आने लगे। नगर के बड़े-बड़े अधिकारी, बड़े-बड़े व्यापारी, बड़े-बड़े विद्वान, समाचार-पत्रों के सम्पादक, अपनी-अपनी महिलाओं के साथ आने लगे। मिस जोशी ने आज अपने अच्छे-से-अच्छे वस्त्र और आभूषण निकाले हुए थे, जिधर निकल जाती थी मालूम होता था, अरुण प्रकाश की छटा चली आरही है। भवन में चारों ओर सुगंध की लपटे आ रही थीं और मधुर संगीत की ध्वनि हवा में गूंज रहीं थी।

पांच बजते-बजते मिस्टर जौहरी आ पहुंचे और मिस जोशी से हाथ मिलाते हुए मुस्करा कर बोले—जी चाहता है तुम्हारे हाथ चूम लूं। अब मुझे विश्वास हो गया कि यह महाशय तुम्हारे पंजे से नहीं निकल सकते।

मिसेज पेटिट बोलीं---मिस जोशी दिलों का शिकार करने के लिए ही बनाई गई है।

मिस्टर सोराब जी---मैंने सुना है, आपटे बिलकुल गंवार-सा आदमी है।

मिस्टर भरुचा---किसी यूनिवर्सिटी में शिक्षा ही नहीं पायी, सभ्यता कहां से आती?

मिस्टर भरुचा---आज उसे खूब बनाना चाहिए।

महंत वीरभद्र डाढ़ी के भीतर से बोले---मैंने सुना है नास्तिक है। वर्णाश्रम धर्म का पालन नहीं करता।

मिस जोशी---नास्तिक तो मै भी हूं। ईश्वर पर मेरा भी विश्वास नहीं है।

महंत---आप नास्तिक हों, पर आप कितने ही नास्तिकों को आस्तिक बना देती हैं।

मिस्टर जौहरी---आपने लाख की बात की कहीं मंहत जी!

मिसेज भरुचा—क्यों महंत जी, आपको मिस जोशी ही न आस्तिक बनाया है क्या?

सहसा आपटे लोहार के बालक की उंगली पकड़े हुए भवन में दाखिल हुए। वह पूरे फैशनेबुल रईस बने हुए थे। बालक भी किसी रईस का लड़का मालूम होता था। आज आपटे को देखकर लोगो को विदित हुआ कि वह कितना सुदंर, सजीला आदमी है। मुख से शौर्य निकल रहा था, पोर-पोर से शिष्टता झलकती थी, मालूम होता था वह इसी समाज में पला है। लोग देख रहे थे कि वह कहीं चूके और तालियां बजायें, कही कदम फिसले और कहकहे लगायें पर आपटे मंचे हुए खिलाड़ी की भांति, जो कदम उठाता था वह सधा हुआ, जो हाथ दिखलाता था वह जमा हुआ। लोग उसे पहले तुच्छ समझते थे, अब उससे ईर्ष्या करने लगे, उस पर फबतियां उड़ानी शुरु कीं। लेकिन आपटे इस कला में भी एक ही निकला। बात मुंह से निकली ओर उसने जवाब दिया, पर उसके जवाब में मालिन्य या कटुता का लेश भी न होता था। उसका एक-एक शब्द सरल, स्वच्छ , चित्त को प्रसन्न करने वाले भावों में डूबा होता था। मिस जोशी उसकी वाक्यचातुरी पर फुल उठती थी?

सोराब जी---आपने किस यूनिवर्सिटी से शिक्षा पायी थी?

आपटे---यूनिवर्सिटी में शिक्षा पायी होती तो आज मैं भी शिक्षा-विभाग का अध्यक्ष होता।

मिसेज भरुचा—मैं तो आपको भयंककर जंतु समझती थी?

आपटे ने मुस्करा कर कहा—आपने मुझे महिलाओं के सामने न देखा होगा।

सहसा मिस जोशी अपने सोने के कमरे में गयी ओर अपने सारे वस्त्राभूषण उतार फेंके। उसके मुख से शुभ्र संकल्प का तेज निकल रहा था। नेंत्रो से दबी ज्योति प्रस्फुटित हो रही थी, मानों किसी देवता ने उसे वरदान दिया हो। उसने सजे हुए कमरे को घृणा से देखा, अपने आभूषणों को पैरों से ठुकरा दिया और एक मोटी साफ साड़ी पहनकर बाहर निकली। आज प्रात:काल ही उसने यह साड़ी मंगा ली थी।

उसे इस नेय वेश में देख कर सब लोग चकित हो गये। कायापलट कैसी? सहसा किसी की आंखों को विश्वास न आया; किंतु मिस्टर जौहरी बगलें बजाने लगे। मिस जोशी ने इसे फंसाने के लिए यह कोई नया स्वांग रचा है।

‘मित्रों! आपको याद है, परसों महाशय आपटे ने मुझे कितनी गांलियां दी थी। यह महाशय खड़े हैं । आज मैं इन्हें उस दुर्व्यवहार का दण्ड देना चाहती हूं। मैं कल इनके मकान पर जाकर इनके जीवन के सारे गुप्त रहस्यों को जान आयी। यह जो जनता की भीड़ गरजते फिरते है, मेरे एक ही निशाने पर गिर पड़े। मैं उन रहस्यों के खोलने में अब विलंब न करुंगी, आप लोग अधीर हो रहे होगें। मैंने जो कुछ देखा, वह इतना

भंयकर है कि उसका वृतांत सुनकर शायद आप लोगों को मूर्छा आ जायेगी। अब मुझे लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि यह महाशय पक्के देशद्रोही है....'

मिस्टर जौहरी ने ताली बजायी ओर तालियों के हॉल गूंज उठा।

मिस जोशी---लेकिन राज के द्रोही नहीं, अन्याय के द्रोही, दमन के द्रोही, अभिमान के द्रोही---

चारों ओर सन्नाटा छा गया। लोग विस्मित होकर एक दूसरे की ओर ताकने लगे।

मिस जोशी---गुप्त रुप से शस्त्र जमा किए है और गुप्त रुप से हत्याएँ की हैं.........

मिस्टर जौहरी ने तालियां बजायी और तालियां का दौगड़ा फिर बरस गया।

मिस जोशी—लेकिन किस की हत्या? दु:ख की, दरिद्रता की, प्रजा के कष्टों की, हठधर्मी की ओर अपने स्वार्थ की।

चारों ओर फिर सन्नाटा छा गया और लोग चकित हो-हो कर एक दूसरे की ओर ताकने लगे, मानो उन्हें अपने कानों पर विश्वास नहीं है।

मिस जोशी—महाराज आपटे ने डकैतियां की और कर रहे हैं---

अब की किसी ने ताली न बजायी, लोग सुनना चाहते थे कि देखे आगे क्या कहती है।

'उन्होंने मुझ पर भी हाथ साफ किया है, मेरा सब कुछ अपहरण कर लिया है, यहां तक कि अब मैं निराधार हूं और उनके चरणों के सिवा मेरे लिए कोई आश्रय नहीं है। प्राण्धार! इस अबला को अपने चरणों में स्थान दो, उसे डूबने से बचाओ। मैं जानती हूं तुम मुझे निराश न करोंगें।'

यह कहते-कहते वह जाकर आपटे के चरणों में गिर पड़ी। सारी मण्डली स्तंभित रह गयी।

७

एक सप्ता गुजर चुका था। आपटे पुलिस की हिरासत में थे। उन पर चार अभियोग चलाने की तैयारियां चल रहीं थी। सारे प्रांत में हलचल मची हुई थी। नगर में रोज सभाएं होती थीं, पुलिस रोज दस-पांच आदमियां को पकड़ती थी। समाचार-पत्रों में जोरों के साथ वाद-विवाद हो रहा था।

रात के नौ बज गये थे। मिस्टर जौहरी राज-भवन में मेंज पर बैठे हुए सोच रहे थे कि मिस जोशी को क्यों कर वापस लाएं? उसी दिन से उनकी छाती पर सांप लोट रहा था। उसकी सूरत एक क्षण के लिए आंखों से न उतरती थी।

वह सोच रहे थे, इसने मेरे साथ ऐसी दगा की! मैंने इसके लिएक्या कुछ नहीं किया? इसकी कौन-सी इच्छा थी, जो मैने पूरी नहीं की इसी ने मुझसे बेवफाई की। नहीं, कभी नहीं, मैं इसके बगैर जिंदा नहीं रह सकता। दुनिया चाहे मुझे बदनाम करे, हत्यारा कहे, चाहे मुझे पद से हाथ धोना पड़े, लेकिन आपटे को नहीं छोड़ूगां। इस रोड़े को रास्ते से हटा दूंगा, इस कांटे को पहलू से निकाल बाहर करुंगा।

सहसा कमरे का दरवाजा खुला और मिस जाशी ने प्रवेश किया। मिस्टर जौहरी हकबका कर कुर्सी पर से उठ खड़े हुए, यह सोच रहे थे कि शायद मिस जोशी ने निराश होकर मेरे पास आयी हैं, कुछ रुखे, लेकिन नम्र भाव से बोले---आओ बाला, तुम्हारी याद में बैठा था। तुम कितनी ही बेवफाई करो, पर तुम्हारी याद मेरे दिल से नहीं निकल सकती।

मिस जोशी---आप केवल जबान से कहते है।

मिस्टर जौहरी—क्या दिल चीरकर दिखा दूं?

मिस जोशी—प्रेम प्रतिकार नहीं करता, प्रेम में दुराग्रह नहीं होता। आप मरे खून के प्यासे हो रहे हैं, उस पर भी आप कहते हैं, मैं तुम्हारी याद करता हूं। आपने मेरे स्वामी को हिरासत में डाल रखा है, यह प्रेम है! आखिर आप मुझसे क्या चाहते हैं? अगर आप समझ रहे हों कि इन सख्तियों से डर कर मै आपकी शरण आ जाऊंगी तो आपका भ्रम है। आपको अख्तियार है कि आपटे को काले पानी भेज दें, फांसी चढ़ा दें, लेकिन इसका मुझ परकोई असर न होगा।वह मेरे स्वमी हैं, मैं उनको अपना स्वामी समझती हूं। उन्होने अपनी विशाल उदारता से मेरा उद्धार किया । आप मुझे विषय के फंदो में फंसाते थे, मेरी आत्मा को कलुषित करते थे। कभी आपको यह खयाल आया कि इसकी आत्मा पर क्या बीत रही होगी? आप मुझे आत्मशुन्य समझते थे। इस देवपुरुष ने अपनी निर्मल स्वच्छ आत्मा के आकर्षण से मुझे पहली ही मुलाकात में खींच लिया। मैं उसकी हो गयी और मरते दम तक उसी की रहूंगी। उस मार्ग से अब आप हटा नहीं सकते। मुझे एक सच्ची आत्मा की जरुरत थी , वह मुझे मिल गयी। उसे पाकर अब तीनों लोक की सम्पदा मेरी आंखो में तुच्छ है। मैं उनके वियोग में चाहे प्राण दे दूं, पर आपके काम नहीं आ सकती।

मिस्टर जौहरी---मिस जोशी । प्रेम उदार नहीं होता, क्षमाशील नहीं होता । मेरे लिए तुम सर्वस्व हो, जब तक मैं समझता हूं कि तुम मेरी हो। अगर तुम मेरी नहीं हो सकती तो मुझे इसकी क्या चिंता हो सकती है कि तुम किस दिशा में हो?

मिस जोशी—यह आपका अंतिम निर्णय है?

मिस्टर जौहरी—अगर मैं कह दूं कि हां, तो?

मिस जोशी ने सीने से पिस्तौल निकाल कर कहा---तो पहले आप की लाश जमीन पर फड़कती होगी और आपके बाद मेरी ,बोलिए। यह आपका अंतिम निर्णय निश्चय है?

यह कहकर मिस जोशी ने जौहरी की तरफ पिस्तौल सीधा किया। जौहरी कुर्सी से उठ खड़े हुए और मुस्कर बोले—क्या तुम मेरे लिए कभी इतना साहस कर सकती थीं? जाओं, तुम्हारा आपटे तुम्हें मुबारक हो। उस पर से अभियोग उठा लिया जाएगा। पवित्र प्रेम ही मे यह साहस है। अब मुझे विश्वास हो गया कि तुम्हारा प्रेम पवित्र है। अगर कोई पुराना पापी भविष्यवाणी कर सकता है तो मैं कहता हूं, वह दिन दूर नहीं है, जब तुम इस भवन की स्वामिनी होगी। आपटे ने मुझे प्रेम के क्षेत्र में नहीं, राजनीति के क्षेत्र में भी परास्त कर दिया। सच्चा आदमी एक मुलाकात में ही जीवन बदल सकता है, आत्मा को जगा सकता है और अज्ञान को मिटा कर प्रकाश की ज्योति फैला सकता है, यह आज सिद्ध हो गया।

नरक का मार्ग

रात "भक्तमाल" पढ़ते-पढ़ते न जाने कब नींद आ गयी। कैसे-कैसे महात्मा थे जिनके लिए भगवत्-प्रेम ही सब कुछ था, इसी में मग्न रहते थे। ऐसी भक्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। क्या मैं वह तपस्या नहीं कर सकती? इस जीवन में और कौन-सा सुख रखा है? आभूषणों से जिसे प्रेम हो जाने , यहां तो इनको देखकर आंखे फूटती है;धन-दौलत पर जो प्राण देता हो वह जाने, यहां तो इसका नाम सुनकर ज्वर-सा चढ़ आता हैं। कल पगली सुशीला ने कितनी उमंगों से मेरा श्रृंगार किया था, कितने प्रेम से बालों में फूल गूंथे। कितना मना करती रही, न मानी। आखिर वही हुआ जिसका मुझे भय था। जितनी देर उसके साथ हंसी थी, उससे कहीं ज्यादा रोयी। संसार में ऐसी भी कोई स्त्री है, जिसका पति उसका श्रृंगार देखकर सिर से पांव तक जल उठे? कौन ऐसी स्त्री है जो अपने पति के मुंह से ये शब्द सुने—तुम मेरा परलोग बिगाड़ोगी, और कुछ नहीं, तुम्हारे रंग-ढंग कहे देते हैं---और मनुष्य उसका दिल विष खा लेने को चाहे। भगवान्! संसार में ऐसे भी मनुष्य हैं। आखिर मैं नीचे चली गयी और 'भक्तिमाल' पढ़ने लगी। अब वृंदावन बिहारी ही की सेवा करुंगी उन्हीं को अपना श्रृंगार दिखाऊंगी, वह तो देखकर न जलेगे। वह तो हमारे मन का हाल जानते हैं।

२

भगवान! मैं अपने मन को कैसे समझाऊं! तुम अंतर्यामी हो, तुम मेरे रोम-रोम का हाल जानते हो। मैं चाहती हुं कि उन्हें अपना इष्ट समझूं, उनके चरणों की सेवा करुं, उनके इशारे पर चलूं, उन्हें मेरी किसी बात से, किसी व्यवहार से नाममात्र, भी दु:ख न हो। वह निर्दोष हैं, जो कुछ मेरे भाग्य में था वह हुआ, न उनका दोष है, न माता-पिता का, सारा दोष मेरे नसीबों ही का है। लेकिन यह सब जानते हुए भी जब उन्हें आते देखती हूं, तो मेरा दिल बैठ जाता है, मुह पर मुरदनी सी-छा जाती है, सिर भारी हो जाता है, जी चाहता है इनकी सूरत न देखूं, बात तक करने को जी नही चाहता;कदाचित् शत्रु को भी देखकर किसी का मन इतना क्लांत नहीं होता होगा। उनके आने के समय दिल में धड़कन सी होने लगती है। दो-एक दिन के लिए कहीं चले जाते हैं तो दिल पर से बोझ उठ जाता है। हंसती भी हूं, बोलती भी हूं, जीवन में कुछ आनंद आने लगता है लेकिन उनके आने का समाचार पाते ही फिर चारों ओर अंधकार! चित्त की ऐसी दशा क्यों है, यह मैं नहीं कह सकती। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि पूर्वजन्म में हम दोनों में बैर था, उसी बैर का बदला लेने के लिए उन्होंने मुझेसे विवाह किया है, वही पुराने संस्कार हमारे मन में बने हुए हैं। नहीं तो वह मुझे देख-देख कर क्यों जलते और मैं उनकी सूरत से क्यों घृणा करती? विवाह करने का तो यह मतलब नहीं हुआ करता! मैं अपने घर कहीं इससे सुखी थी। कदाचित् मैं जीवन-पर्यन्त अपने घर आनंद से रह सकती थी। लेकिन इस लोक-प्रथा का बुरा हो, जो अभागिन कनयाओं को किसी-न-किसी पुरुष के गलें में बांध देना अनिवार्य समझती है। वह क्या जानता है कि कितनी युवतियां उसके नाम को रो रही है, कितने अभिलाषाओं से लहराते हुए, कोमल हृदय उसके पैरो तल रौंदे जा रहे है? युवति के लिए पति कैसी-कैसी मधुर कल्पनाओं का स्रोत्र होता है, पुरुष में जो उत्तम है, श्रेष्ठ है, दर्शनीय है, उसकी सजीव मूर्ति इस शब्द के ध्यान में आते ही उसकी नजरों के सामने आकर खड़ी हो जाती है।लेकिन मेरे लिए यह शब्द क्या है। हृदय में उठने वाला शूल, कलेजे में खटकनेवाला कांटा, आंखो में गड़ने वाली किरकिरी, अंत:करण को बेधने वाला व्यंग बाण! सुशीला को हमेशा हंसते देखती हूं। वह कभी अपनी दरिद्रता का गिला नहीं करती; गहने नहीं हैं, कपड़े नहीं हैं, भाड़े के नन्हेंसे मकान में रहती है, अपने हाथों घर का सारा काम-काज करती है , फिर भी उसे रोतेनहीे देखती अगर अपने बस की बात होती तो आज अपने धन को उसकी दरिद्रता से बदल लेती। अपने पतिदेव को मुस्कराते हुए घर में आते देखकर उसका सारा दु:ख दारिद्रय छूमंतर हो जाता है, छाती गज-भर की हो जाती है। उसके प्रेमालिंगन में वह सुख है, जिस पर तीनों लोक का धन न्योछावर कर दूं।

३

आज मुझसे जब्त न हो सका। मैंने पूछा—तुमने मुझसे किसलिए विवाह किया था? यह प्रश्न महीनों से मेरे मन में उठता था, पर मन को रोकती चली आती थी। आज प्याला छलक पड़ा। यह प्रश्न सुनकर कुछ बौखला-से गये, बगलें झाकने लगे, खीसें निकालकर बोले—घर संभालने के लिए, गृहस्थी का भार उठाने के लिए, और नहीं क्या भोग-विलास के लिए? घरनी के बिना यह आपको भूत का

डेरा-सा मालूम होता था। नौकर-चाकर घर की सम्पति उडाये देते थे। जो चीज जहां पड़ी रहती थी, कोई उसको देखने वाला न था। तो अब मालूम हुआ कि मैं इस घर की चौकसी के लिए लाई गई हूं। मुझे इस घर की रक्षा करनी चाहिए और अपने को धन्य समझना चाहिए कि यह सारी सम्पति मेरी है। मुख्य वस्तु सम्पत्ति है, मै तो केवल चौकी दारिन हूं। ऐसे घर में आज ही आग लग जाये! अब तक तो मैं अनजान में घर की चौकसी करती थी, जितना वह चाहते हैं उतना न सही, पर अपनी बुद्धि के अनुसार अवश्य करती थी। आज से किसी चीज को भूलकर भी छूने की कसम खाती हूं। यह मैं जानती हूं। कोई पुरुष घर की चौकसी के लिए विवाह नहीं करता और इन महाशय ने चिढ़ कर यह बात मुझसे कही। लेकिन सुशीला ठीक कहती है, इन्हें स्त्री के बिना घर सुना लगता होगा, उसी तरह जैसे पिंजरे में चिड़िया को न देखकर पिंजरा सूना लगता है। यह हम स्त्रियों का भाग्य!

४

मालूम नहीं, इन्हें मुझ पर इतना संदेह क्यो होता है। जब से नसीब इस घर में लाया हैं, इन्हें बराबर संदेह-मूलक कटाक्ष करते देखती हूं। क्या कारण है? जरा बाल गुथवाकर बैठी और यह होठ चबाने लगे। कहीं जाती नहीं, कहीं आती नहीं, किसी से बोलती नहीं, फिर भी इतना संदेह! यह अपमान असह्य है। क्या मुझे अपनी आबरु प्यारी नहीं? यह मुझे इतनी छिछोरी क्यों समझते हैं, इन्हें मुझपर संदेह करते लज्जा भी नहीं आती? काना आदमी किसी को हंसते देखता है तो समझता है लोग मुझी पर हंस रहे है। शायद इन्हें भी यही बहम हो गया है कि मैं इन्हें चिढ़ाती हूं। अपने अधिकार के बाहर से बाहर कोई काम कर बैठने से कदाचित् हमारे चित्त की यही वृत्ति हो जाती है। भिक्षुक राजा की गद्दी पर बैठकर चैन की नींद नहीं सो सकता। उसे अपने चारों तरफ शुत्र दिखायी देंगें। मै समझती हूं, सभी शादी करने वाले बुड्ढ़ो का यही हाल है।

आज सुशीला के कहने से मैं ठाकुर जी की झांकी देखने जा रही थी। अब यह साधारण बुद्धि का आदमी भी समझ सकता हैकि फूहड़ बहू बनकर बाहर निकलना अपनी हंसी उड़ाना है, लेकिन आप उसी वक्त न जाने किधर से टपक पड़े और मेरी ओर तिरस्कापूर्ण नेत्रों से देखकर बोले—कहां की तैयारी है?

मैंने कह दिया, जरा ठाकुर जी की झांकी देखने जाती हूं।इतना सुनते ही त्योरियां चढ़ाकर बोले—तुम्हारे जाने की कुछ जरुरत नहीं। जो अपने पति की सेवा नहीं कर सकती, उसे देवताओं के दर्शन से पुण्य के बदले पाप होता। मुझसे उड़ने चली हो । मैं औरतों की नस-नस पहचानता हूं।

ऐसा क्रोध आया कि बस अब क्या कहूं। उसी दम कपड़े बदल डाले और प्रण कर लिया कि अब कभ दर्शन करने जाऊंगी। इस अविश्वास का भी कुछ ठिकाना है! न जाने क्या सोचकर रुक गयी। उनकी बात का जवाब तो यही था कि उसी क्षण घरसे चल खड़ी हुई होती, फिर देखती मेरा क्या कर लेते।

इन्हें मेरा उदास और विमन रहने पर आश्चर्य होता है। मुझे मन-में कृतघ्न समझते है। अपनी समणमें इन्होने मरे से विवाह करके शायद मुझ पर एहसान किया है। इतनी बड़ी जायदाद और विशाल सम्पत्ति की स्वामिनी होकर मुझे फूले न समाना चाहिए था, आठो पहरइनका यशगान करते रहना चाहिये था। मैं यह सब कुछ न करके उलटे और मुंह लटकाए रहती हूं। कभी-कभी बेचारे पर दया आती है। यह नहीं समझते कि नारी-जीवन में कोई ऐसी वस्तु भी है जिसे देखकर उसकी आंखों में स्वर्ग भी नरकतुल्य हो जाता है।

५

तीन दिन से बीमान हैं। डाक्टर कहते हैं, बचने की कोई आशा नहीं, निमोनिया हो गया है। पर मुझे न जाने क्यों इनका गम नहीं है। मैं इनती वज्र-हृदय कभी न थी।न जाने वह मेरी कोमलता कहां चली गयी। किसी बीमार की सूरत देखकर मेरा हृदय करुणा से चंचल हो जाता था, मैं किसी का रोना नहीं सुन सकती थी। वही मैं हूं कि आज तीन दिन से उन्हें बगल के कमरे में पड़े कराहते सुनती हूं और एक बार भी उन्हें देखने न गयी, आंखो में आंसू का जिक्र ही क्या। मुझे ऐसा मालूम होता है, इनसे मेरा कोई नाता ही नहीं मुझे चाहे कोई पिशाचनी कहे, चाहे कुलटा, पर मुझे तो यह कहने में लेशमात्र भी संकोच नहीं है कि इनकी बीमारी से मुझे एक प्रकार का ईर्ष्यामय आनंद आ रहा है। इन्होने मुझे यहां कारावास दे रखा था—मैं इसे विवाह का पवित्र नाम नहींदेना चाहती---यह कारावास ही है। मैं इतनी उदार नहीं हूं कि जिसने मुझे कैद मे डाल रखा हो उसकी पूजा करुं, जो मुझे लात से मारे उसक पैरो का चूंमू। मुझे तो मालूम हो रहा था। ईश्वर इन्हें इस पाप का दण्ड दे रहे है। मै निस्सकोंच होकर कहती हूं कि मेरा इनसे विवाह नहीं हुआ है।

स्त्री किसी के गले बांध दिये जाने से ही उसकी विवाहिता नहीं हो जाती। वही संयोग विवाह का पद पा सकता है। जिंसमे कम-से-कम एक बार तो हृदय प्रेम से पुलकित हो जाय! सुनती हूं, महाशय अपने कमरे में पड़े-पड़े मुझे कोसा करते हैं, अपनी बीमारी का सारा बुखार मुझ पर निकालते हैं, लेकिन यहां इसकी परवाह नहीं। जिसकाह जी चाहे जायदाद ले, धन ले, मुझे इसकी जरुरत नहीं!

६

आज तीन दिन हुए, मैं विधवा हो गयी, कम-से-कम लोग यही कहते हैं। जिसका जो जी चाहे कहे, पर मैं अपने को जो कुछ समझती हूं वह समझती हूं। मैंने चूड़िया नहीं तोड़ी, क्यों तोड़ू? क्यों तोड़ू? मांग में सेंदुर पहले भी न डालती थी, अब भी नहीं डालती। बूढ़े बाबा का क्रिया-कर्म उनके सुपुत्र ने किया, मैं पास न फटकी। घर में मुझ पर मनमानी आलोचनाएं होती हैं, कोई मेरे गुंथे हुए बालों को देखकर नाक सिंकोड़ता हैं, कोई मेरे आभूषणों पर आंख मटकाता है, यहां इसकी चिंता नहीं। उन्हें चिढ़ाने को मैं भी रंग=-बिरंगी साड़िया पहनती हूं, और भी बनती-संवरती हूं, मुझे जरा भी दु:ख नहीं हैं। मैं तो कैद से छूट गयी। इधर कई दिन सुशीला के घर गयी। छोटा-सा मकान है, कोई सजावट न सामान, चारपाइयां तक नहीं, पर सुशीला कितने आनंद से रहती है। उसका उल्लास देखकर मेरे मन में भी भांति-भांति की कल्पनाएं उठने लगती हैं---उन्हें कुत्सित क्यों कहुं, जब मेरा मन उन्हें कुत्सित नहीं समझता ।इनके जीवन में कितना उत्साह है।आंखे मुस्कराती रहती हैं, ओठों पर मधुर हास्य खेलता रहता है, बातों में प्रेम का स्रोत बहताहुआजान पड़ता है। इस आनंद से, चाहे वह कितना ही क्षणिक हो, जीवन सफल हो जाता है, फिर उसे कोई भूल नहीं सकता, उसी स्मृति अंत तक के लिए काफी हो जाती है, इस मिजराब की चोट हृदय के तारों को अंतकाल तक मधुर स्वरों में कंपित रखसकती है।

एक दिन मैने सुशीला से कहा---अगर तेरे पतिदेव कहीं परदेश चले जाए तो रोत-रोते मर जाएगी!

सुशीला गंभीर भाव से बोली—नहीं बहन, मरुगीं नहीं , उनकी याद सदैव प्रफुल्लित करती रहेगी, चाहे उन्हें परदेश में बरसों लग जाएं।

मैं यही प्रेम चाहती हूं, इसी चोट के लिए मेरा मन तड़पता रहता है, मै भी ऐसी ही स्मृति चाहती हूं जिससे दिल के तार सदैव बजते रहें, जिसका नशा नित्य छाया रहे।

७

रात रोते-रोते हिचकियां बंध गयी। न-जाने क्यो दिल भर आता था। अपना जीवन सामने एक बीहड़ मैदान की भांति फैला हुआ मालूम होता था, जहां बगूलों के सिवा हरियाली का नाम नहीं। घर फाड़े खाता था, चित्त ऐसा चंचल हो रहा था कि कहीं उड़ जाऊं। आजकल भक्ति के ग्रंथो की ओर ताकने को जी नहीं चाहता, कही सैर करने जाने की भी इच्छा नहीं होती, क्या चाहती हूं वह मैं स्वयं भी नहीं जानती। लेकिन मै जो जानती वह मेरा एक-एक रोम-रोम जानता है, मैं अपनी भावनाओं को संजीव मूर्ति हैं, मेरा एक-एक अंग मेरी आंतरिक वेदना का आर्तनाद हो रहा है।

मेरे चित्त की चंचलता उस अंतिम दशा को पहंच गयी है, जब मनुष्य को निंदा की न लज्जा रहती है और न भय। जिन लोभी, स्वार्थी माता-पिता ने मुझे कुएं में ढकेला, जिस पाषाण-हृदय प्राणी ने मेरी मांग में सेंदुर डालने का स्वांग किया, उनके प्रति मेरे मन में बार-बार दुष्कामनाएं उठती हैं। मैं उन्हे लज्जित करना चाहती हूं। मैं अपने मुंह में कालिख लगा कर उनके मुख में कालिख लगाना चाहती हूं मैअपने प्राणदेकर उन्हे प्राणदण्ड दिलाना चाहती हूं।मेरा नारीत्व लुप्त हो गया है,। मेरे हृदय में प्रचंड ज्वाला उठी हुई है।

घर के सारे आदमी सो रहे है थे। मैं चुपके से नीचे उतरी , द्वार खोला और घर से निकली, जैसे कोई प्राणी गर्मी से व्याकुल होकर घर से निकले और किसी खुली हुई जगह की ओर दौड़े।उस मकान में मेरा दम घुट रहा था।

सड़क पर सन्नाटा था, दुकानें बंद हो चुकी थी। सहसा एक बुढियां आती हुई दिखायी दी। मैं डरी कहीं यह चुड़ैल न हो। बुढिया ने मेरे समीप आकर मुझे सिर से पांव तक देखा और बोली ---किसकी राह देखरही हो

मैंने चिढ़ कर कहा---मौत की!

बुढ़िया---तुम्हारे नसीबों में तो अभी जिन्दगी के बड़े-बड़े सुख भोगने लिखे हैं। अंधेरी रात गुजर गयी, आसमान पर सुबह की रोशनी नजर आ रही हैं।

मैने हंसकर कहा---अंधेरे में भी तुम्हारी आंखे इतनी तेज हैंकि नसीबों की लिखावट पढ़ लेती हैं?

बुढ़िया---आंखो से नहीं पढती बेटी, अक्ल से पढ़ती हूं, धूप में चूड़े नही सुफेद किये हैं।। तुम्हारे दिन गये और अच्छे दिन आ रहे है। हंसो मत बेटी, यही काम करते इतनी उम्र गुजर गयी। इसी बुढ़िया की बदौलत जो नदी में कूदने जा रही थीं, वे आज फूलों की सेज पर सो रही है, जो जहर का प्याल पीने को तैयार थीं, वे आज दूध की कुल्लियां कर रही हैं। इसीलिए इतनी रात गये निकलती हू कि अपने हाथों किसी अभागिन का उद्धार हो सके तो करुं। किसी से कुछ नहीं मांगती, भगवान् का दिया सब कुछ घर में है, केवल यही इच्छा है उन्हे धन, जिन्हे संतान की इच्छा है उन्हें संतान, बस औरक्या कहूं, वह मंत्र बता देती हूं कि जिसकी जो इच्छा जो वह पूरी हो जाये।

मैंने कहा---मुझे न धन चाहिए न संतान। मेरी मनोकामना तुम्हारे बस की बात नहीं है।

बुढ़िया हंसी—बेटी, जो तुम चाहती हो वह मै जानती हूं; तुम वह चीज चाहती हो जो संसार में होते हुए स्वर्ग की है, जो देवताओं के वरदान से भी ज्यादा आनंदप्रद है, जो आकाश कुसुम है,गुलर का फूल है और अमावसा का चांद है। लेकिन मेरे मंत्र में वह शंक्ति है जो भाग्य को भी संवार सकती है। तुम प्रेम की प्यासी हो, मैं तुम्हे उस नाव पर बैठा सकती हूं जो प्रेम के सागर में, प्रेम की तंरगों पर क्रीड़ा करती हुई तुम्हे पार उतार दे।

मैने उत्कंठित होकर पूछा—माता, तुम्हारा घर कहां है।

बुढिया---बहुत नजदीक है बेटी, तुम चलों तो मैं अपनी आंखो पर बैठा कर ले चलूं।

मुझे ऐसा मालूम हुआ कि यह कोई आकाश की देवी है। उसेक पीछ-पीछे चल पड़ी।

८

आह! वह बुढिया, जिसे मैं आकाश की देवी समझती थी, नरक की डाइन निकली। मेरा सर्वनाश हो गया। मैं अमृत खोजती थी, विष मिला, निर्मल स्वच्छ प्रेम की प्यासी थी, गंदे विषाक्त नाले में गिर पड़ी वह वस्तु न मिलनी थी, न मिली। मैं सुशीला का –सा सुख चाहती थी, कुलटाओं की विषय-वासना नहीं। लेकिन जीवन-पथ में एक बार उलटी राह चलकर फिर सीधे मार्ग पर आना कठिन है?

लेकिन मेरे अध:पतन का अपराध मेरे सिर नहीं, मेरे माता-पिता और उस बूढ़े पर है जो मेरा स्वामी बनना चाहता था। मैं यह पंक्तियां न लिखतीं, लेकिन इस विचार से लिख रही हूं कि मेरी आत्म-कथा पढ़कर लोगों की आंखे खुलें; मैं फिर कहती हूं कि अब भी अपनी बालिकाओ के लिए मत देखों धन, मत देखों जायदाद, मत देखों कुलीनता, केवल वर देखों। अगर उसके लिए जोड़ा का वर नहीं पा सकते तो लड़की को क्वारी रख छोड़ो, जहर दे कर मार डालो, गला घोंट डालो, पर किसी बूढ़े खूसट से मत ब्याहो। स्त्री सब-कुछ सह सकती है। दारुण से दारुण दु:ख, बड़े से बड़ा संकट, अगर नहीं सह सकती तो अपने यौवन-काल की उंमगो का कुचला जाना।

रही मैं, मेरे लिए अब इस जीवन में कोई आशा नहीं । इस अधम दशा को भी उस दशा से न बदलूंगी, जिससे निकल कर आयी हूं।

स्त्री और पुरुष

विपिन बाबू के लिए स्त्री ही संसार की सुन्दर वस्तु थी। वह कवि थे और उनकी कविता के लिए स्त्रियों के रुप और यौवन की प्रशसा ही सबसे चिंताकर्षक विषय था। उनकी दृष्टि में स्त्री जगत में व्याप्त कोमलता, माधुर्य और अलंकारों की सजीव प्रतिमा थी। जबान पर स्त्री का नाम आते ही उनकी आंखे जगमगा उठती थीं, कान खड़ें हो जाते थे, मानो किसी रसिक ने गाने की आवाज सुन ली हो। जब से होश संभाला, तभी से उन्होंने उस सुंदरी की कल्पना करनी शुरु की जो उसके हृदय की रानी होगी; उसमें ऊषा की प्रफुल्लता होगी, पुष्प की कोमलता, कुंदन की चमक, बसंत की छवि, कोयल की ध्वनि—वह कवि वर्णित सभी उपमाओं से विभूषित होगी। वह उस कल्पित मूत्रि के उपासक थे, कविताओं में उसका गुण गाते, वह दिन भी समीप आ गया था, जब उनकी आशाएं हरे-हरे पत्तों से लहरायेंगी, उनकी मुरादें पूरी हो होगी। कालेज की अंतिम परीक्षा समाप्त हो गयी थी और विवाह के संदेशे आने लगे थे।

२

विवाह तय हो गया। बिपिन बाबू ने कन्या को देखने का बहुत आग्रह किया, लेकिन जब उनके मांमू ने विश्वास दिलाया कि लड़की बहुत ही रुपवती है, मैंने अपनी आंखों से देखा है, तब वह राजी हो गये। धूमधाम से बारात निकली और विवाह का मुहूर्त आया। वधू आभूषणों से सजी हुई मंडप में आयी तो विपिन को उसके हाथ-पांव नजर आये। कितनी सुंदर उंगलिया थीं, मानों दीप-शिखाएं हो, अंगो की शोभा कितनी मनोहारिणी थी। विपिन फूले न समाये। दूसरे दिन वधू विदा हुई तो वह उसके दर्शनों के लिए इतने अधीर हुए कि ज्यों ही रास्ते में कहारों ने पालकी रखकर मुंह-हाथ धोना शुरु किया, आप चुपके से वधू के पास जा पहुंचे। वह घूंघट हटाये, पालकी से सिर निकाले बाहर झांक रही थी। विपिन की निगाह उस पर पड़ गयी। यह वह परम सुंदर रमणी न थी जिसकी उन्होने कल्पना की थी, जिसकी वह बरसों से कल्पना कर रहे थे---यह एक चौड़े मुंह, चिपटी नाक, और फुले हुए गालों वाली कुरुपा स्त्री थी। रंग गोरा था, पर उसमें लाली के बदले सफदी थी; और फिर रंग कैसा ही सुंदर हो, रुप की कमी नहीं पूरी कर सकता। विपिन का सारा उत्साह ठंडा पड़ गया---हां! इसे मेरे ही गले पड़ना था। क्या इसके लिए समस्त संसार में और कोई न मिलता था? उन्हें अपने मांमू पर क्रोध आया जिसने वधू की तारीफों के पुल बांध दिये थे। अगर इस वक्त वह मिल जाते तो विपिन उनकी ऐसी खबर लेता कि वह भी याद करते।

जब कहारों ने फिर पालकियां उठायीं तो विपिन मन में सोचने लगा, इस स्त्री के साथ कैसे मैं बोलूगा, कैसे इसके साथ जीवन काटंगा। इसकी ओर तो ताकने ही से घृणा होती है। ऐसी कुरुपा स्त्रियां भी संसार में हैं, इसका मुझे अब तक पता न था। क्या मुंह ईश्वर ने बनाया है, क्या आंखे है! मैं और सारे ऐबों की ओर से आंखे बंद कर लेता, लेकिन वह चौड़ा-सा मुंह! भगवान्! क्या तुम्हें मुझी पर यह वज्रपात करना था।

३

विपिन हो अपना जीवन नरक-सा जान पड़ता था। वह अपने मांमू से लड़ा। ससुर को लंबा खर्रा लिखकर फटकारा, मां-बाप से हुज्जत की और जब इससे शांति न हुई तो कहीं भाग जाने की बात सोचने लगा। आशा पर उसे दया अवश्य आती थी। वह अपने का समझाता कि इसमें उस बेचारी का क्या दोष है, उसने जबरदस्ती तो मुझसे विवाह किया नहीं। लेकिन यह दया और यह विचार उस घृणा को न जीत सकता था जो आशा को देखते ही उसके रोम-रोम में व्याप्त हो जाती थी। आशा अपने अच्छे-से-अच्छे कपड़े पहनती; तरह-तरह से बाल संवारती, घंटो आइने के सामने खड़ी होकर अपना श्रृंगार करती, लेकन विपिन को यह शुतुरगमज-से मालूम होते। वह दिल से चाहती थी कि उन्हें प्रसन्न करुं, उनकी सेवा करने के लिए अवसर खोजा करती थी; लेकिन विपिन उससे भागा-भागा फिरता था। अगर कभी भेंट हो जाती तो कुछ ऐसी जली-कटी बातें करने लगता कि आशा रोती हुई वहां से चली जाती।

सबसे बुरी बात यह थी कि उसका चरित्र भ्रष्ट होने लगा। वह यह भूल जाने की चेष्टा करने लगा कि मेरा विवाह हो गया है। कई-कई दिनों क आशा को उसके दर्शन भी न होते। वह उसके कहकहे की आवाजे बाहर से आती हुई सुनती, झरोखे से देखती कि वह दोस्तों के गले में हाथ डालें सैर करने जा रहे है और तड़प कर रहे जाती।

एक दिन खाना खाते समय उसने कहा—अब तो आपके दर्शन ही नहीं होतें। मेरे कारण घर छोड़ दीजिएगा क्या ?

विपिन ने मुंह फेर कर कहा—घर ही पर तो रहता हूं। आजकल जरा नौकरी की तलाश है इसलिए दौड़-धूप ज्यादा करनी पड़ती है।

आशा—किसी डाक्टर से मेरी सूरत क्यों नहीं बनवा देते ? सुनती हूं, आजकल सूरत बनाने वाले डाक्टर पैदा हुए है।

विपिन— क्यों नाहक चिढ़ती हो, यहां तुम्हे किसने बुलाया था ?

आशा— आखिर इस मर्ज की दवा कौन करेंगा ?

विपिन— इस मर्ज की दवा नहीं है। जो काम ईश्चर से ने करते बना उसे आदमी क्या बना सकता है ?

आशा – यह तो तुम्ही सोचो कि ईश्वर की भुल के लिए मुझे दंड दे रहे हो। संसार में कौन ऐसा आदमी है जिसे अच्छी सूरत बुरी लगती हो, किन तुमने किसी मर्द को केवल रुपहीन होने के कारण क्वांरा रहते देखा है, रुपहीन लड़कियां भी मां-बाप के घर नहीं बैठी रहतीं। किसी-न-किसी तरह उनका निर्वाह हो ही जाता है; उसका पति उप पर प्राण ने देता हो, लेकिन दूध की मक्खी नहीं समझता।

विपिन ने झुंझला कर कहा—क्यों नाहक सिर खाती हो, मै तुमसे बहस तो नहीं कर रहा हूं। दिल पर जब्र नहीं किया जा सकता और न दलीलों का उस पर कोई असर पड़ सकता है। मैं तुम्हे कुछ कहता तो नहीं हूं, फिर तुम क्यों मुझसे हुज्जत करती हो ?

आशा यह झिड़की सुन कर चली गयी। उसे मालूम हो गया कि इन्होने मेरी ओर से सदा के लिए हृदय कठोर कर लिया है।

४

विपिन तो रोज सैर-सपाटे करते, कभी-कभी रात को गायब रहते। इधर आशा चिंता और नैराश्य से घुलते-घुलते बीमार पड़ गयी। लेकिन विपिन भूल कर भी उसे देखने न आता, सेवा करना तो दूर रहा। इतना ही नहीं, वह दिल में मानता था कि वह मर जाती तो गला छुटता, अबकी खुब देखभाल कर अपनी पसंद का विवाह करता।

अब वह और भी खुल खेला। पहले आशा से कुछ दबता था, कम-से-कम उसे यह धड़का लगा रहता था कि कोई मेरी चाल-ढ़ाल पर निगाह रखने वाला भी है। अब वह धड़का छुट गया। कुवासनाओं में ऐसा लिप्त हो गया कि मरदाने कमरे में ही जमघटे होने लगे। लेकिन विषय-भोग में धन ही का सर्वनाश होता, इससे कहीं अधिक बुद्धि और बल का सर्वनाश होता है। विपिन का चेहरा पीला लगा, देह भी क्षीण होने लगी, पसलियों की हड्डियां निकल आयीं आंखों के इर्द-गिर्द गढ़े पड़ गये। अब वह पहले से कहीं ज्यादा शोक करता, नित्य तेल लगता, बाल बनवाता, कपड़े बदलता, किन्तु मुख पर कांति न थी, रंग-रोगन से क्या हो सकता ?

एक दिन आशा बरामदे में चारपाई पर लेटी हुई थी। इधर हफ्तों से उसने विपिन को न देखा था। उन्हे देखने की इच्छा हुई। उसे भय था कि वह सन आयेंगे, फिर भी वह मन को न रोक सकी। विपिन को बुला भेजा। विपिन को भी उस पर कुछ दया आ गयी आ गयी। आकार सामने खड़े हो गये। आशा ने उनके मुंह की ओर देखा तो चौक पड़ी। वह इतने दुर्बल हो गये थे कि पहचनाना मुशिकल था। बोली—तुम भी बीमार हो क्या? तुम तो मुझसे भी ज्यादा घुल गये हो।

विपिन—उंह, जिंदगी में रखा ही क्या है जिसके लिए जीने की फिक्र करुं !

आशा—जीने की फिक्र न करने से कोई इतना दुबला नहीं हो जाता। तुम अपनी कोई दवा क्यों नहीं करते?

यह कह कर उसने विपिन का दाहिन हाथ पकड़ कर अपनी चारपाई पर बैठा लिया। विपिन ने भी हाथ छुड़ाने की चेष्टा न की। उनके स्वाभाव में इस समय एक विचित्र नम्रता थी, जो आशा ने कभी ने देखी थी। बातों से भी निराशा टपकती थी। अक्खड़पन या क्रोध की गंध भी न थी। आशा का ऐसा मालुम हुआ कि उनकी आंखो में आंसू भरे हुए है।

विपिन चारपाई पर बैठते हुए बोले—मेरी दवा अब मौत करेगी। मै तुम्हें जलाने के लिए नहीं कहता। ईश्वर जानता है, मैं तुम्हे चोट नहीं पहुंचाना चाहता। मै अब ज्यादा दिनों तक न जिऊंगा। मुझे किसी भयंकर रोग के लक्षण दिखाई दे रहे है। डाक्टर नें भी वही कहा है। मुझे इसका खेद है कि मेरे हाथों तुम्हे कष्ट पहुंचा पर क्षमा करना। कभी-कभी बैठे-बैठे मेरा दिल डूब दिल डूब जाता है, मूर्छा-सी आ जाती है।

यह कहतें-कहते एकाएक वह कांप उठे। सारी देह में सनसनी सी दौड़ गयी। मूर्छित हो कर चारपाई पर गिर पड़े और हाथ-पैर पटकने लगे।

मुंह से फिचकुर निकलने लगा। सारी देह पसीने से तर हो गयी।

आशा का सारा रोग हवा हो गया। वह महीनों से बिस्तर न छोड़ सकी थी। पर इस समय उसके शिथिल अंगो में विचित्र स्फुर्ति दौड़ गयी। उसने तेजी से उठ कर विपिन को अच्छी तरह लेटा दिया और उनके मुख पर पानी के छींटे देने लगी। महरी भी दौड़ी आयी और पंखा झलने लगी। पर भी विपिन ने आंखें न खोलीं। संध्या होते-होते उनका मुंह टेढ़ा हो गया और बायां अंग शुन्य पड़ गया। हिलाना तो दूर रहा, मूंह से बात निकालना भी मुश्किल हो गया। यह मूर्छा न थी, फालिज था।

५

फालिज के भयंकर रोग में रोगी की सेवा करना आसान काम नहीं है। उस पर आशा महीनों से बीमार थी। लेकिन उस रोग के सामने वह पना रोग भूल गई। 15 दिनों तक विपिन की हालत बहुत नाजुक रही। आशा दिन-के-दिन और रात-की-रात उनके पास बैठी रहती। उनके लिए पथ्य बनाना, उन्हें गोद में सम्भाल कर दवा पिलाना, उनके जरा-जरा से इशारों को समझाना उसी जैसी धैयशाली स्त्री का काम था। अपना सिर दर्द से फटा करता, ज्वर से देह तपा करती, पर इसकी उसे जरा भी परवा न थी।

१५ दिनों बाद विपिन की हालत कुछ सम्भली। उनका दाहिना पैर तो लुंज पड़ गया था, पर तोतली भाषा में कुछ बोलने लगे थे। सबसे बुरी गत उनके सुन्दर मुख की हुई थी। वह इतना टेढ़ा हो गया था जैसे कोई रबर के खिलौने को खींच कर बढ़ा दें। बैटरी की मदद से जरा देर के लिए बैठे या खड़े तो हो जाते थे; लेकिन चलने–फिरने की ताकत न थी।

एक दिनों लेटे–लेटे उन्हे क्या ख्याल आया। आईना उठा कर अपना मुंह देखने लगे। ऐसा कुरुप आदमी उन्होने कभी न देखा था। आहिस्ता से बोले––आशा, ईश्वर ने मुझे गरुर की सजा दे दी। वास्तव में मुझे यह उसी बुराई का बदला मिला है, जो मैने तुम्हारे साथ की। अब तुम अगर मेरा मुंह देखकर घृणा से मुंह फेर लो तो मुझेसे उस दुर्व्यवहार का बदला लो, जो मैने, तुम्हारे साथ किए है।

आशा ने पति की ओर कोमल भाव से देखकर कहा––मै तो आपको अब भी उसी निगाह से देखती हुं। मुझे तो आप में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता।

६

विपिन––वाह, बन्दर का–सा मुंह हो गया है, तुम कहती हो कि कोई अन्तर ही नहीं। मैं तो अब कभी बाहर न निकलूंगा। ईश्वर ने मुझे सचमुच दंड दिया।

बहुत यत्न किए गए पर विपिन का मुंह सीधा न हुआ। मुख्य का बायां भाग इतना टेढ़ा हो गया था कि चेहरा देखकर डर मालूम होता था। हां, पैरों में इतनी शक्ति आ गई कि अब वह चलने–फिरने लगे।

आशा ने पति की बीमारी में देवी की मनौती की थी। आज उसी की पुजा का उत्सव था। मुहल्ले की स्त्रियां बनाव–सिंगार किये जमा थीं। गाना–बजाना हो रहा था।

एक सेहली ने पुछा––क्यों आशा, अब तो तुम्हें उनका मुंह जरा भी अच्छा न लगता होगा।

आशा ने गम्भीर होकर कहा––मुझे तो पहले से कहीं मुंह जरा भी अच्छा न लगता होगा।

‘चलों, बातें बनाती हो।’

‘नही बहन, सच कहती हुं; रुप के बदले मुझे उनकी आत्मा मिल गई जो रुप से कहीं बढ़कर है।’

विपिन कमरे में बैठे हुए थे। कई मित्र जमा थे। ताश हो रहा था।

कमरे में एक खिड़की थी जो आंगन में खुलती थी। इस वक्त वह बन्दव थी। एक मित्र ने उसे चुपके से खोल दिया। एक मित्र ने उसे चुपके दिया और शीशे से झांक कर विपिन से कहा–– आज तो तुम्हारे यहां पारियों का अच्छा जमघट है।

विपिन––बन्दा कर दो।

‘अजी जरा देखो तो: कैसी–कैसी सूरतें है ! तुम्हे इन सबों में कौन सबसे अच्छी मालूम होती है ?

विपिन ने उड़ती हुई नजरों से देखकर कहा––मुझे तो वहीं सबसे अच्छी मालूम होती है जो थाल में फुल रख रही है।

'वाह री आपकी निगाह ! क्या सूरत के साथ तुम्हारी निगाह भी बिगड़ गई? मुझे तो वह सबसे बदसुरत मालूम होती है।'

'इसलिए कि तुम उसकी सूरत देखते हो और मै उसकी आत्मा देखता हूं।'

'अच्छा, यही मिसेज विपिन हैं?'

'जी हां, यह वही देवी है।

उद्धार

हिंदू समाज की वैवाहिक प्रथा इतनी दुषित, इतनी चिंताजनक, इतनी भयंकर हो गयी है कि कुछ समझ में नहीं आता, उसका सुधार क्योंकर हो। बिरलें ही ऐसे माता–पिता होंगे जिनके सात पुत्रों के बाद एक भी कन्या उत्पन्न हो जाय तो वह सहर्ष उसका स्वागत करें। कन्या का जन्म होते ही उसके विवाह की चिंता सिर पर सवार हो जाती है और आदमी उसी में डुबकियां खाने लगता है। अवस्था इतनी निराशमय और भयानक हो गई है कि ऐसे माता–पिताओं की कमी नहीं है जो कन्या की मृत्यु पर हृदय से प्रसन्न होते है, मानों सिर से बाधा टली। इसका कारण केवल यही है कि देहज की दर, दिन दूनी रात चौगुनी, पावस–काल के जल–गुजरे कि एक या दो हजारों तक नौबत पहुंच गई है। अभी बहुत दिन नहीं गुजरे कि एक या दो हजार रुपये दहेज केवल बड़े घरों की बात थी, छोटी–छोटी शादियों पांच सौ से एक हजार तक तय हो जाती थीं; अब मामुली–मामुली विवाह भी तीन–चार हजार के नीचे तय नहीं होते । खर्च का तो यह हाल है और शिक्षित समाज की निर्धनता और दरिद्रता दिन बढ़ती जाती है। इसका अन्त क्या होगा ईश्वर ही जाने। बेटे एक दर्जन भी हों तो माता–पिता का चिंता नहीं होती। वह अपने ऊपर उनके विवाह–भार का अनिवार्य नहीं समझता, यह उसके लिए ‘कम्पलसरी’ विषय नहीं, ‘आप्शनल’ विषय है। होगा तों कर देगें; नही कह देंगे––बेटा, खाऒं कमाऒं, कमाई हो तो विवाह कर लेना। बेटों की कुचरित्रता कलंक की बात नहीं समझी जाती; लेकिन कन्या का विवाह तो करना ही पड़ेगा, उससे भागकर कहां जायेगें ? अगर विवाह में विलम्ब हुआ और कन्या के पांव कहीं ऊंचे नीचे पड़ गये तो फिर कुटुम्ब की नाक कट गयी; वह पतित हो गया, टाट बाहर कर दिया गया। अगर वह इस दुर्घटना को सफलता के साथ गुप्त रख सका तब तो कोई बात नहीं; उसकों कलंकित करने का किसी का साहस नहीं; लेकिन अभाग्यवश यदि वह इसे छिपा न सका, भंडाफोड़ हो गया तो फिर माता–पिता के लिए, भाई–बंधुओं के लिए संसार में मुंह दिखाने को नहीं रहता। कोई अपमान इससे दुस्सह, कोई विपत्ति इससे भीषण नहीं। किसी भी व्याधि की इससे भयंकर कल्पना नहीं की जा सकती। लुत्फ तो यह है कि जो लोग बेटियों के विवाह की कठिनाइयों को भोगा चुके होते है वहीं अपने बेटों के विवाह के अवसर पर बिलकुल भुल जाते है कि हमें कितनी ठोकरें खानी पड़ी थीं, जरा भी सहानुभूति नही प्रकट करतें, बल्कि कन्या के विवाह में जो तावान उठाया था उसे चक्र–वृद्धि ब्याज के साथ बेटे के विवाह में वसूल करने पर कटिबद्ध हो जाते हैं। कितने ही माता–पिता इसी चिंता में ग्रहण कर लेता है, कोई बूढ़े के गले कन्या का मढ़ कर अपना गला छुड़ाता है, पात्र–कुपात्र के विचार करने का मौका कहां, ठेलमठेल है।

मुंशी गुलजारीलाल ऐसे ही हतभागे पिताओं में थे। यों उनकी स्थिति बूरी न थी। दो–ढ़ाई सौ रुपये महीने वकालत से पीट लेते थे, पर खानदानी आदमी थे, उदार हृदय, बहुत किफायत करने पर भी माकूल बचत न हो सकती थी। सम्बन्धियों का आदर–सत्कार न करें तो नहीं बनता, मित्रों की खातिरदारी न करें तो नही बनता। फिर ईश्वर के दिये हुए दो पुत्र थे, उनका पालन–पोषण, शिक्षण का भार था, क्या करते ! पहली कन्या का विवाह टेढ़ी खीर हो रहा था। यह आवश्यक था कि विवाह अच्छे घराने में हो, अन्यथा लोग हंसेगे और अच्छे घराने के लिए कम–से–कम पांच हजार का तखमीना था। उधर पुत्री सयानी होती जाती थी। वह अनाज जो लड़के खाते थे, वह भी खाती थी; लेकिन लड़कों को देखो तो जैसे सूखों का रोग लगा हो और लड़की शुक्ल पक्ष का चांद हो रही थी। बहुत दौड़–धूप करने पर बचारे को एक लड़का मिला। बाप आबकारी के विभाग में ४०० रु० का नौकर था, लड़का सुशिक्षित। स्त्री से आकार बोले, लड़का तो मिला और घरबार–एक भी काटने योग्य नहीं; पर कठिनाई यही है कि लड़का कहता है, मैं अपना विवाह न करुंगा। बाप ने समझाया, मैने कितना समझाया, औरों ने समझाया, पर वह टस से मस नहीं होता। कहता है, मै कभी विवाह न करुंगा। समझ में नहीं आता, विवाह से क्यों इतनी घृणा करता है। कोई कारण नहीं बतलाता, बस यही कहता है, मेरी इच्छा। मां बाप का एकलौता लड़का है। उनकी परम इच्छा है कि इसका विवाह हो जाय, पर करें क्या? यों उन्होने फलदान तो रख लिया है पर मुझसे कह दिया है कि लड़का स्वभाव का हठीला है, अगर न मानेगा तो फलदान आपको लौटा दिया जायेगा।

स्त्री ने कहा––तुमने लड़के को एकांत में बुलावकर पूछा नहीं?

गुलजारीलाल––बुलाया था। बैठा रोता रहा, फिर उठकर चला गया। तुमसे क्या कहूं, उसके पैरों पर गिर पड़ा; लेकिन बिना कुछ कहे उठाकर चला गया।

स्त्री--देखो, इस लड़की के पीछे क्या-क्या झेलना पड़ता है?

गुलजारीलाल--कुछ नहीं, आजकल के लौंडे सैलानी होते हैं। अंगरेजी पुस्तकों में पढ़ते है कि विलायत में कितने ही लोग अविवाहित रहना ही पसंद करते है। बस यही सनक सवार हो जाती है कि निर्द्वद्व रहने में ही जीवन की सुख और शांति है। जितनी मुसीबतें है वह सब विवाह ही में है। मैं भी कालेज में था तब सोचा करता था कि अकेला रहूंगा और मजे से सैर-सपाटा करुंगा।

स्त्री--है तो वास्तव में बात यही। विवाह ही तो सारी मुसीबतों की जड़ है। तुमने विवाह न किया होता तो क्यों ये चिंताएं होतीं ? मैं भी क्वांरी रहती तो चैन करती।

२

इसके एक महीना बाद मुंशी गुलजारीलाल के पास वर ने यह पत्र लिखा--

'पूज्यवर,

सादर प्रणाम।

मैं आज बहुत असमंजस में पड़कर यह पत्र लिखने का साहस कर रहा हूं। इस धृष्टता को क्षमा कीजिएगा।

आपके जाने के बाद से मेरे पिताजी और माताजी दोनों मुझ पर विवाह करने के लिए नाना प्रकार से दबाव डाल रहे है। माताजी रोती है, पिताजी नाराज होते हैं। वह समझते है कि मैं अपनी जिद के कारण विवाह से भागता हूं। कदाचिता उन्हे यह भी सन्देह हो रहा है कि मेरा चरित्र भ्रष्ट हो गया है। मैं वास्तविक कारण बताते हुए डारता हूं कि इन लोगों को दु:ख होगा और आश्चर्य नहीं कि शोक में उनके प्राणों पर ही बन जाय। इसलिए अब तक मैने जो बात गुप्त रखी थी, वह आज विवश होकर आपसे प्रकट करता हूं और आपसे साग्रह निवेदन करता हूं कि आप इसे गोपनीय समझिएगा और किसी दशा में भी उन लोगों के कानों में इसकी भनक न पड़ने दीजिएगा। जो होना है वह तो होगा है, पहले ही से क्यों उन्हे शोक में डुबाऊं। मुझे ५-६ महीनों से यह अनुभव हो रहा है कि मैं क्षय रोग से ग्रसित हूं। उसके सभी लक्षण प्रकट होते जाते है। डाक्टरों की भी यही राय है। यहां सबसे अनुभवी जो दो डाक्टर हैं, उन दोनों ही से मैने अपनी आरोग्य-परीक्षा करायी और दोनो ही ने स्पष्ट कहा कि तुम्हे सिल है। अगर माता-पिता से यह कह दूं तो वह रो-रो कर मर जायेगें। जब यह निश्चय है कि मैं संसार में थोड़े ही दिनों का मेहमान हूं तो मेरे लिए विवाह की कल्पना करना भी पाप है। संभव है कि मैं विशेष प्रयत्न करके साल दो साल जीवित रहूं, पर वह दशा और भी भयंकर होगी, क्योकि अगर कोई संतान हुई तो वह भी मेरे संस्कार से अकाल मृत्यु पायेगी और कदाचित् स्त्री को भी इसी रोग-राक्षस का भक्ष्य बनना पड़े। मेरे अविवाहित रहने से जो बीतेगी, मुझ पर बीतेगी। विवाहित हो जाने से मेरे साथ और कई जीवों का नाश हो जायगा। इसलिए आपसे मेरी प्रार्थना है कि मुझे इस बन्धन में डालने के लिए आग्रह न कीजिए, अन्यथा आपको पछताना पड़ेगा।

सेवक

'हजारीलाल।'

पत्र पढ़कर गुलजारीलाल ने स्त्री की ओर देखा और बोले--इस पत्र के विषय में तुम्हारा क्या विचार हैं।

स्त्री--मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि उसने बहाना रचा है।

गुलजारीलाल--बस-बस, ठीक यही मेरा भी विचार है। उसने समझा है कि बीमारी का बहाना कर दूंगा तो आप ही हट जायेंगे। असल में बीमारी कुछ नहीं। मैने तो देखा ही था, चेहरा चमक रहा था। बीमार का मुंह छिपा नहीं रहता।

स्त्री--राम नाम ले के विवाह करो, कोई किसी का भाग्य थोड़े ही पढ़े बैठा है।

गुलजारीलाल--यही तो मै सोच रहा हूं।

स्त्री--न हो किसी डाक्टर से लड़के को दिखाओं । कहीं सचमुच यह बीमारी हो तो बेचारी अम्बा कहीं की न रहे।

गुलजारीलाल-तुम भी पागल हो क्या? सब हीले-हवाले हैं। इन छोकरों के दिल का हाल मैं खुब जानता हूं। सोचता होगा अभी सैर-सपाटे कर रहा हूं, विवाह हो जायगा तो यह गुलछर्रे कैसे उड़ेगे!

स्त्री--तो शुभ मुहूर्त देखकर लग्न भिजवाने की तैयारी करो।

हजारीलाल बड़े धर्म–सन्देह में था। उसके पैरों में जबरदस्ती विवाह की बेड़ी डाली जा रही थी और वह कुछ न कर सकता था। उसने ससुर का अपना कच्चा चिट्ठा कह सुनाया; मगर किसी ने उसकी बालों पर विश्वास न किया। मां–बाप से अपनी बीमारी का हाल कहने का उसे साहस न होता था। न जाने उनके दिल पर क्या गुजरे, न जाने क्या कर बैठें? कभी सोचता किसी डाक्टर की शहदत लेकर ससूर के पास भेज दूं, मगर फिर ध्यान आता, यदि उन लोगों को उस पर भी विश्वास न आया, तो? आजकल डाक्टरी से सनद ले लेना कौन–सा मुश्किल काम है। सोचेंगे, किसी डाक्टर को कुछ दे दिलाकर लिखा लिया होगा। शादी के लिए तो इतना आग्रह हो रहा था, उधर डाक्टरों ने स्पष्ट कह दिया था कि अगर तुमने शादी की तो तुम्हारा जीवन–सुत्र और भी निर्बल हो जाएगा। महीनों की जगह दिनों में वारा–न्यारा हो जाने की सम्भावना है।

लग्न आ चुकी थी। विवाह की तैयारियां हो रही थीं, मेहमान आते–जाते थे और हजारीलाल घर से भागा–भागा फिरता था। कहां चला जाऊं? विवाह की कल्पना ही से उसके प्राण सूख जाते थे। आह ! उस अबला की क्या गति होगी ? जब उसे यह बात मालूम होगी तो वह मुझे अपने मन में क्या कहेगी? कौन इस पाप का प्रायश्चित करेगा ? नहीं, उस अबला पर घोर अत्याचार न करुंगा, उसे वैधव्य की आग में न जलाऊंगा। मेरी जिन्दगी ही क्या, आज न मरा कल मरुंगा, कल नहीं तो परसों, तो क्यों न आज ही मर जाऊं। आज ही जीवन का और उसके साथ सारी चिंताओं को, सारी विपत्तियों का अन्त कर दूं। पिता जी रोयेंगे, अम्मां प्राण त्याग देंगी; लेकिन एक बालिका का जीवन तो सफल हो जाएगा, मेरे बाद कोई अभागा अनाथ तो न रोयेगा।

क्यों न चलकर पिताजी से कह दूं? वह एक–दो दिन दु:खी रहेंगे, अम्मां जी दो–एक रोज शोक से निराहार रह जायेगीं, कोई चिंता नहीं। अगर माता–पिता के इतने कष्ट से एक युवती की प्राण–रक्षा हो जाए तो क्या छोटी बात है?

यह सोचकर वह धीरे से उठा और आकर पिता के सामने खड़ा हो गया।

रात के दस बज गये थे। बाबू दरबारीलाल चारपाई पर लेटे हुए हुक्का पी रहे थे। आज उन्हे सारा दिन दौड़ते गुजरा था। शामियाना तय किया; बाजे वालों को बयाना दिया; आतिशबाजी, फुलवारी आदि का प्रबन्ध किया। घंटो ब्राहमणों के साथ सिर मारते रहे, इस वक्त जरा कमर सीधी कर रहें थे कि सहसा हजारीलाल को सामने देखकर चौंक पड़ें। उसका उतरा हुआ चेहरा सजल आंखे और कुंठित मुख देखा तो कुछ चिंतित होकर बोले––क्यों लालू, तबीयत तो अच्छी है न? कुछ उदास मालूम होते हो।

हजारीलाल––मै आपसे कुछ कहना चाहता हूं; पर भय होता है कि कहीं आप अप्रसन्न न हों।

दरबारीलाल––समझ गया, वही पुरानी बात है न ? उसके सिवा कोई दूसरी बात हो शौक से कहो।

हजारीलाल––खेद है कि मैं उसी विषय में कुछ कहना चाहता हूं।

दरबारीलाल––यही कहना चाहता हो न मुझे इस बन्धन में न डालिए, मैं इसके अयोग्य हूं, मै यह भार सह नहीं सकता, बेड़ी मेरी गर्दन को तोड़ देगी, आदि या और कोई नई बात ?

हजारीलाल––जी नहीं नई बात है। मैं आपकी आज्ञा पालन करने के लिए सब प्रकार तैयार हूं; पर एक ऐसी बात है, जिसे मैने अब तक छिपाया था, उसे भी प्रकट कर देना चाहता हूं। इसके बाद आप जो कुछ निश्चय करेंगे उसे मैं शिरोधार्य करुंगा।

हजारीलाल ने बड़े विनीत शब्दों में अपना आशय कहा, डाक्टरों की राय भी बयान की और अन्त में बोलें––ऐसी दशा में मुझे पूरी आशा है कि आप मुझे विवाह करने के लिए बाध्य न करेंगें।

दरबारीलाल ने पुत्र के मुख की और गौर से देखा, कहे जर्दी का नाम न था, इस कथन पर विश्वास न आया; पर अपना अविश्वास छिपाने और अपना हार्दिक शोक प्रकट करने के लिए वह कई मिनट तक गहरी चिंता में मग्न रहे। इसके बाद पीड़ित कंठ से बोले––बेटा, इस इशा में तो विवाह करना और भी आवश्यक है। ईश्वर न करें कि हम वह बुरा दिन देखने के लिए जीते रहे, पर विवाह हो जाने से तुम्हारी कोई निशानी तो रह जाएगी। ईश्वर ने कोई संतान दे दी तो वही हमारे बुढ़ापे की लाठी होगी, उसी का मुंह देखरेख कर दिल को समझायेंगे, जीवन का कुछ आधार तो रहेगा। फिर आगे क्या होगा, यह कौन कह सकता है ? डाक्टर किसी की कर्म–रेखा तो नहीं पढ़ते, ईश्वर की लीला अपरम्पार है, डाक्टर उसे नहीं समझ सकते । तुम निश्चिंत होकर बैठों, हम जो कुछ करते है, करने दो। भगवान चाहेंगे तो सब कल्याण ही होगा।

हजारीलाल ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। आंखे डबडबा आयीं, कंठावरोध के कारण मुंह तक न खोल सका। चुपके से आकर अपने कमरे मे लेट रहा।

तीन दिन और गुजर गये, पर हजारीलाल कुछ निश्चय न कर सका। विवाह की तैयारियों में रखे जा चुके थे। मंत्रेयी की पूजा हो चूकी थी और द्वार पर बाजों का शोर मचा हुआ था। मुहल्ले के लड़के जमा होकर बाजा सुनते थे और उल्लास से इधर-उधर दौड़ते थे।

संध्या हो गयी थी। बरात आज रात की गाड़ी से जाने वाली थी। बरातियों ने अपने वस्त्राभूष्ण पहनने शुरु किये। कोई नाई से बाल बनवाता था और चाहता था कि खत ऐसा साफ हो जाय मानों वहां बाल कभी थे ही नहीं, बुढ़े अपने पके बाल को उखड़वा कर जवान बनने की चेष्टा कर रहे थे। तेल, साबुन, उबटन की लूट मची हुई थी और हजारीलाल बगीचे मे एक वृक्ष के नीचे उदास बैठा हुआ सोच रहा था, क्या करुं?

अन्तिम निश्चय की घड़ी सिर पर खड़ी थी। अब एक क्षण भी विल्म्ब करने का मौका न था। अपनी वेदना किससे कहें, कोई सुनने वाला न था।

उसने सोचा हमारे माता-पिता कितने अदुरदर्शी है, अपनी उमंग में इन्हे इतना भी नही सूझता कि वधु पर क्या गुजरेगी। वधू के माता-पिता कितने अदूरर्शी है, अपनी उमंग मे भी इतने अन्धे हो रहे है कि देखकर भी नहीं देखते, जान कर नहीं जानते।

क्या यह विवाह है? कदापि नहीं। यह तो लड़की का कुएं में डालना है, भाड़ मे झोंकना है, कुंद छुरे से रेतना है। कोई यातना इतनी दुस्सह, कर अपनी पुत्री का वैधव्य् के अग्नि-कुंड में डाल देते है। यह माता-पिता है? कदापि नहीं। यह लड़की के शत्रु है, कसाई है, बधिक हैं, हत्यारे है। क्या इनके लिए कोई दण्ड नहीं ? जो जान-बूझ कर अपनी प्रिय संतान के खुन से अपने हाथ रंगते है, उसके लिए कोई दण्ड नहीं? समाज भी उन्हे दण्ड नहीं देता, कोई कुछ नहीं कहता। हाय !

यह सोचकर हजारीलाल उठा और एक ओर चुपचाप चल दिया। उसके मुख पर तेज छाया हुआ था। उसने आत्म-बलिदान से इस कष्ट का निवारण करने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। उसे मृत्यु का लेश-मात्र भी भय न था। वह उस दशा का पहुंच गया था जब सारी आशाएं मृत्यु पर ही अवलम्बित हो जाती है।

उस दिन से फिर किसी ने हजारीलाल की सूरत नहीं देखी। मालूम नहीं जमीन खा गई या आसमान। नादियों मे जाल डाले गए, कुओं में बांस पड़ गए, पुलिस में हुलिया गया, समाचार-पत्रों मे विज्ञप्ति निकाली गई, पर कहीं पता न चला ।

कई हफ्तो के बाद, छावनी रेलवे से एक मील पश्चिम की ओर सड़क पर कुछ हड्डियां मिलीं। लोगो को अनुमान हुआ कि हजारीलाल ने गाड़ी के नीचे दबकर जान दी, पर निश्चित रुप से कुछ न मालुम हुआ।

भादों का महीना था और तीज का दिन था। घरों में सफाई हो रही थी। सौभाग्यवती रमणियां सोलहो श्रृंगार किए गंगा-स्नान करने जा रही थीं। अम्बा स्नान करके लौट आयी थी और तुलसी के कच्चे चबूतरे के सामने खड़ी वंदना कर रही थी। पतिगृह में उसे यह पहली ही तीज थी, बड़ी उमंगो से व्रत रखा था। सहसा उसके पति ने अन्दर आ कर उसे सहास नेत्रों से देखा और बोला--मुंशी दरबारी लाल तुम्हारे कौन होते है, यह उनके यहां से तुम्हारे लिए तीज पठौनी आयी है। अभी डाकिया दे गया है।

यह कहकर उसने एक पार्सल चारपाई पर रख दिया। दरबारीलाल का नाम सुनते ही अम्बा की आंखे सजल हो गयीं। वह लपकी हुयी आयी और पार्सल स्मृतियां जीवित हो गयीं, ह्रदय में हजारीलाल के प्रति श्रद्धा का एक उद्-गार-सा उठ पड़ा। आह! यह उसी देवात्मा के आत्मबलिदान का पुनीत फल है कि मुझे यह दिन देखना नसीब हुआ। ईश्वर उन्हे सद्-गति दें। वह आदमी नहीं, देवता थे, जिसने अपने कल्याण के निमित्त अपने प्राण तक समर्पण कर दिए।

पति ने पूछा--दरबारी लाल तुम्हारी चचा हैं।

अम्बा--हां।

पति--इस पत्र में हजारीलाल का नाम लिखा है, यह कौन है?

अम्बा--यह मुंशी दरबारी लाल के बेटे हैं।

पति--तुम्हारे चचरे भाई ?

अम्बा--नहीं, मेरे परम दयालु उद्धारक, जीवनदाता, मुझे अथाह जल में डुबने से बचाने वाले, मुझे सौभाग्य का वरदान देने वाले।

पति ने इस भाव कहा मानो कोई भूली हुई बात याद आ गई हो--आह! मैं समझ गया। वास्तव में वह मनुष्य नहीं देवता थे।

निर्वासन

परशुराम –वहीं—वहीं दालान में ठहरो!

मर्यादा—क्यों, क्या मुझमें कुछ छूत लग गई!

परशुराम—पहले यह बताओं तुम इतने दिनों से कहां रहीं, किसके साथ रहीं, किस तरह रहीं और फिर यहां किसके साथ आयीं? तब, तब विचार...देखी जाएगी।

मर्यादा—क्या इन बातों को पूछने का यही वक्त है; फिर अवसर न मिलेगा?

परशुराम—हां, यही बात है। तुम स्नान करके नदी से तो मेरे साथ ही निकली थीं। मेरे पीछे-पीछे कुछ देर तक आयीं भी; मै पीछे फिर-फिर कर तुम्हें देखता जाता था,फिर एकाएक तुम कहां गायब हो गयीं?

मर्यादा – तुमने देखा नहीं, नागा साधुओं का एक दल सामने से आ गया। सब आदमी इधर-उधर दौड़ने लगे। मै भी धक्के में पड़कर जाने किधर चली गई। जरा भीड़ कम हुई तो तुम्हें ढूंढ़ने लगी। बासू का नाम ले-ले कर पुकारने लगी, पर तुम न दिखाई दिये।

परशुराम – अच्छा तब?

मर्यादा—तब मै एक किनारे बैठकर रोने लगी, कुछ सूझ ही न पड़ता कि कहां जाऊं, किससे कहूं, आदमियों से डर लगता था। संध्या तक वहीं बैठी रोती रही।ै

परशुराम—इतना तूल क्यों देती हो? वहां से फिर कहां गयीं?

मर्यादा—संध्या को एक युवक ने आ कर मुझसे पूछा, तुम्हारेक घर के लोग कहीं खो तो नहीं गए है? मैने कहा—हां। तब उसने तुम्हारा नाम, पता, ठिकाना पूछा। उसने सब एक किताब पर लिख लिया और मुझसे बोला—मेरे साथ आओ, मै तुम्हें तुम्हारे घर भेज दूंगा।

परशुराम—वह आदमी कौन था?

मर्यादा—वहां की सेवा-समिति का स्वयंसेवक था।

परशुराम –तो तुम उसके साथ हो लीं?

मर्यादा—और क्या करती? वह मुझे समिति के कार्यलय में ले गया। वहां एक शामियाने में एक लम्बी दाढ़ीवाला मनुष्य बैठा हुआ कुछ लिख रहा था। वही उन सेवकों का अध्यक्ष था। और भी कितने ही सेवक वहां खड़े थे। उसने मेरा पता-ठिकाना रजिस्टर में लिखकर मुझे एक अलग शामियाने में भेज दिया, जहां और भी कितनी खोयी हुई स्त्रियों बैठी हुई थीं।

परशुराम—तुमने उसी वक्त अध्यक्ष से क्यों न कहा कि मुझे पहुंचा दीजिए?

पर्यादा—मैने एक बार नहीं सैकड़ो बार कहा; लेकिन वह यह कहते रहे, जब तक मेला न खत्म हो जाए और सब खोयी हुई स्त्रियां एकत्र न हो जाएं, मैं भेजने का प्रबन्ध नहीं कर सकता। मेरे पास न इतने आदमी हैं, न इतना धन?

परशुराम—धन की तुम्हे क्या कमी थी, कोई एक सोने की चीज बेच देती तो काफी रूपए मिल जाते।

मर्यादा—आदमी तो नहीं थे।

परशुराम—तुमने यह कहा था कि खर्च की कुछ चिन्ता न कीजिए, मैं अपने गहने बेचकर अदा कर दूंगी?

मर्यादा—सब स्त्रियां कहने लगीं, घबरायी क्यों जाती हो? यहां किस बात का डर है। हम सभी जल्द अपने घर पहुंचना चाहती है; मगर क्या करें? तब मैं भी चुप हो रही।

परशुराम – और सब स्त्रियां कुएं में गिर पड़ती तो तुम भी गिर पड़ती?

मर्यादा—जानती तो थी कि यह लोग धर्म के नाते मेरी रक्षा कर रहे हैं, कुछ मेरे नौकरी या मजूर नहीं हैं, फिर आग्रह किस मुंह से करती? यह बात भी है कि बहुत-सी स्त्रियों को वहां देखकर मुझे कुछ तसल्ली हो गईग् परशुराम—हां, इससे बढ़कर तस्कीन की और क्या बात हो सकती थी? अच्छा, वहां के दिन तस्कीन का आनन्द उठाती रही? मेला तो दूसरे ही दिन उठ गया होगा?

मर्यादा—रात- भर मैं स्त्रियों के साथ उसी शामियाने में रही।

परशुराम—अच्छा, तुमने मुझे तार क्यों न दिलवा दिया?

मर्यादा—मैंने समझा, जब यह लोग पहुंचाने की कहते ही हैं तो तार क्यों दूं?

परशुराम—खैर, रात को तुम वहीं रही। युवक बार-बार भीतर आते रहे होंगे?

मर्यादा—केवल एक बार एक सेवक भोजन के लिए पूछने आयास था, जब हम सबों ने खाने से इन्कार कर दिया तो वह चला गया और फिर कोई न आया। मैं रात-भर जगती रही।

परशुराम—यह मैं कभी न मानूंगा कि इतने युवक वहां थे और कोई अन्दर न गया होगा। समिति के युवक आकाश के देवता नहीं होत। खैर, वह दाढ़ी वाला अध्यक्ष तो जरूर ही देखभाल करने गया होगा?

मर्यादा—हां, वह आते थे। पर द्वार पर से पूछ-पूछ कर लौट जाते थे। हां, जब एक महिला के पेट में दर्द होने लगा था तो दो-तीन बार दवाएं पिलाने आए थे।

परशुराम—निकली न वही बात!मै इन धूर्तों की नस-नस पहचानता हूं। विशेषकर तिलक-मालाधारी दढ़ियलों को मैं गुरू घंटाल ही समझता हूं। तो वे महाशय कई बार दवाई देने गये? क्यों तुम्हारे पेट में तो दर्द नहीं होने लगा था.?

मर्यादा—तुम एक साधु पुरूष पर आक्षेप कर रहे हो। वह बेचारे एक तो मेरे बाप के बराबर थे, दूसरे आंखे नीची किए रहने के सिवाय कभी किसी पर सीधी निगाह नहीं करते थे।

परशुराम—हां, वहां सब देवता ही देवता जमा थे। खैर, तुम रात-भर वहां रहीं। दूसरे दिन क्या हुआ?

मर्यादा—दूसरे दिन भी वहीं रही। एक स्वयंसेवक हम सब स्त्रियों को साथ में लेकर मुख्य-मुख्य पवित्र स्थानो का दर्शन कराने गया। दो पहर को लौट कर सबों ने भोजन किया।

परशुराम—तो वहां तुमने सैर-सपाटा भी खूब किया, कोई कष्ट न होने पाया। भोजन के बाद गाना-बजाना हुआ होगा?

मर्यादा—गाना बजाना तो नहीं, हां, सब अपना-अपना दुखड़ा रोती रहीं, शाम तक मेला उठ गया तो दो सेवक हम लोगों को ले कर स्टेशन पर आए।

परशुराम—मगर तुम तो आज सातवें दिन आ रही हो और वह भी अकेली?

मर्यादा—स्टेशन पर एक दुर्घटना हो गयी।

परशुराम—हां, यह तो मैं समझ ही रहा था। क्या दुर्घटना हुई?

मर्यादा—जब सेवक टिकट लेने जा रहा था, तो एक आदमी ने आ कर उससे कहा—यहां गोपीनाथ के धर्मशाला में एक आदमी ठहरे हुए हैं, उनकी स्त्री खो गयी है, उनका भला-सास नाम है, गोरे-गोरे लम्बे-से खूबसूरत आदमी हैं, लखनऊ मकान है, झवाई टोले में। तुम्हारा हुलिया उसने ऐसा ठीक बयान किया कि मुझे उसस पर विश्वास आ गया। मैं सामने आकर बोली, तुम बाबूजी को जानते हो? वह हंसकर बोला, जानता नहीं हूं तो तुम्हें तलाश क्यो करता फिरता हूं। तुम्हारा बच्चा रो-रो कर हलकान हो रहा है। सब औरतें कहने लगीं, चली जाओं, तुम्हारे स्वामीजी घबरा रहे होंगे। स्वयंसेवक ने उससे दो-चार बातें पूछ कर मुझे उसके साथ कर दिया। मुझे क्या मालूम था कि मैं किसी नर-पिशाच के हाथों पड़ी जाती हूं। दिल मैं खुशी थी किअब बासू को देखूंगी तुम्हारे दर्शन करूंगी। शायद इसी उत्सुकता ने मुझे असावधान कर दिया।

परशुराम—तो तुम उस आदमी के साथ चल दी? वह कौन था?

मर्यादा—क्या बतलाऊं कौन था? मैं तो समझती हूं, कोई दलाल था?

परशुराम—तुम्हे यह न सूझी कि उससे कहतीं, जा कर बाबू जी को भेज दो?

मर्यादा—अदिन आते हैं तो बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।

परशुराम—कोई आ रहा है।

मर्यादा—मैं गुसलखाने में छिपी जाती हूं।

परशुराम –आओ भाभी, क्या अभी सोयी नहीं, दस तो बज गए होंगे।

भाभी—वासुदेव को देखने को जी चाहता था भैया, क्या सो गया?

परशुराम—हां, वह तो अभी रोते-रोते सो गया।

भाभी—कुछ मर्यादा का पता मिला? अब पता मिले तो भी तुम्हारे किस काम की। घर से निकली स्त्रियां थान से छूटी हुई घोड़ी हैं। जिसका कुछ भरोसा नहीं।

परशुराम—कहां से कहां लेकर मैं उसे नहाने लगा।

भाभी—होनहार हैं, भैया होनहार। अच्छा, तो मै जाती हूं।

मर्यादा—(बाहर आकर) होनहार नहीं हूं, तुम्हारी चाल है। वासुदेव को प्यार करने के बहाने तुम इस घर पर अधिकार जमाना चाहती हो।

परशुराम –बको मत! वह दलाल तुम्हें कहां ले गया।

मर्यादा—स्वामी, यह न पूछिए, मुझे कहते लज्ज आती है।

परशुराम—यहां आते तो और भी लज्ज आनी चाहिए थी।

मर्यादा—मै परमात्मा को साक्षी देती हूं, कि मैंने उसे अपना अंग भी स्पर्श नहीं करने दिया।

पराशुराम—उसका हुलिया बयान कर सकती हो।

मर्यादा—सांवला सा छोटे डील डौल काआदमी था।नीचा कुरता पहने हुए था।

परशुराम—गले में ताबीज भी थी?

मर्यादा—हां,थी तो।

परशुराम—वह धर्मशाले का मेहतर था।मैने उसे तुम्हारे गुम हो जाने की चर्चा की थी। वहउस दुष्ट ने उसका वह स्वांग रचा।

मर्यादा—मुझे तो वह कोई ब्रहमण मालूम होता था।

परशुराम—नहीं मेहतर था। वह तुम्हें अपने घर ले गया?

मर्यादा—हां, उसने मुझे तांगे पर बैठाया और एक तंग गली में, एक छोटे- से मकान के अन्दर ले जाकर बोला, तुम यहीं बैठो, मुम्हारें बाबूजी यहीं आयेंगे। अब मुझे विदित हुआ कि मुझे धोखा दिया गया। रोने लगी। वह आदमी थोडी देर बाद चला गया और एक बुढिया आ कर मुझे भांति-भांति के प्रलोभन देने लगी। सारी रात रो-रोकर काटी दूसरे दिन दोनों फिर मुझे समझाने लगे कि रो-रो कर जान दे दोगी, मगर यहां कोई तुम्हारी मदद को न आयेगा। तुम्हाराएक घर डूट गया। हम तुम्हे उससे कहीं अच्छा घर देंगें जहां तुम सोने के कौर खाओगी और सोने से लद जाओगी। लब मैने देखा किक यहां से किसी तरह नहीं निकल सकती तो मैने कौशल करने का निश्चय किया।

परशुराम—खैर, सुन चुका। मैं तुम्हारा ही कहना मान लेता हूं कि तुमने अपने सतीत्व की रक्षा की, पर मेरा हृदय तुमसे घृणा करता है, तुम मेरे लिए फिर वह नहीं निकल सकती जो पहले थीं। इस घर में तुम्हारे लिए स्थान नहीं है।

मर्यादा—स्वामी जी, यह अन्याय न कीजिए, मैं आपकी वही स्त्री हूं जो पहले थी। सोचिए मेरी दशा क्या होगी?

परशुराम—मै यह सब सोच चुका और निश्चय कर चुका। आज छ: दिन से यह सोच रहा हूं। तुम जानती हो कि मुझे समाज का भय नहीं। छूत-विचार को मैंने पहले ही तिलांजली दे दी, देवी-देवताओं को पहले ही विदा कर चुका:पर जिस स्त्री पर दूसरी निगाहें पड चुकी, जो एक सप्ताह तक न-जाने कहां और किस दशा में रही, उसे अंगीकार करना मेरे लिए असम्भव है। अगर अन्याय है तो ईश्वर की ओर से है, मेरा दोष नहीं।

मर्यादा—मेरी विवशमा पर आपको जरा भी दया नहीं आती?

परशुराम—जहां घृणा है, वहां दया कहां? मै अब भी तुम्हारा भरण-पोषण करने को तैयार हूं।जब तक जीऊगां, तुम्हें अन्न-वस्त्र का कष्ट न होगा पर तुम मेरी स्त्री नहीं हो सकतीं।

मर्यादा—मैं अपने पुत्र का मुह न देखूं अगर किसी ने स्पर्श भी किया हो।

परशुराम—तुम्हारा किसी अन्य पुरूष के साथ क्षण-भर भी एकान्त में रहना तुम्हारे पतिव्रत को नष्ट करने के लिए बहुत है। यह विचित्र बंधन है, रहे तो जन्म-जन्मान्तर तक रहे: टूटे तो क्षण-भर में टूट जाए। तुम्हीं बताओं, किसी मुसलमान ने जबरदस्ती मुझे अपना उच्छिट भोलन खिला दियया होता तो मुझे स्वीकार करतीं?

मर्यादा—वह.... वह.. तो दूसरी बात है।

परशुराम—नहीं, एक ही बात है। जहां भावों का सम्बन्ध है, वहां तर्क और न्याय से काम नहीं चलता। यहां तक अगर कोई कह दे कि तुम्हारें पानी को मेहतर ने छू लिया है तब भी उसे ग्रहण करने से तुम्हें घृणा आयेगी। अपने ही दिन से सोचो कि तुम्हारेंसाथ न्याय कर रहा हूं या अन्याय।

मर्यादा—मै तुम्हारी छुई चीजें न खाती, तुमसे पृथक रहती पर तुम्हें घर से तो न निकाल सकती थी। मुझे इसलिए न दुत्कार रहे हो कि तुम घर के स्वामी हो और कि मैं इसका पलन करतजा हूं।

परशुराम—यह बात नहीं है। मै इतना नीच नहीं हूं।

मर्यादा—तो तुम्हारा यहीं अतिमं निश्चय है?

परशुराम—हां, अंतिम।

मर्यादा-- जानते हो इसका परिणाम क्या होगा?

परशुराम—जानता भी हूं और नहीं भी जानता।

मर्यादा—मुझे वासुदेव ले जाने दोगे?

परशुराम—वासुदेव मेरा पुत्र है।

मर्यादा—उसे एक बार प्यार कर लेने दोगे?

परशुराम—अपनी इच्छा से नहीं, तुम्हारी इच्छा हो तो दूर से देख सकती हो।

मर्यादा—तो जाने दो, न देखूंगी। समझ लूंगी कि विधवा हूं और बांझ भी। चलो मन, अब इस घर में तुम्हारा निबाह नहीं है। चलो जहां भाग्य ले जाय।

नैराश्य लीला

पंडित हृदयनाथ अयोध्या के एक सम्मानित पुरूष थे। धनवान तो नहीं लेकिन खाने पिने से खुश थे। कई मकान थे, उन्ही के किराये पर गुजर होता था। इधर किराये बढ गये थे, उन्होंने अपनी सवारी भी रख ली थी। बहुत विचार शील आदमी थे, अच्छी शिक्षा पायी थी। संसार का काफी तरजुरबा था, पर क्रियात्मक शकित् से व्रचित थे, सब कुछ न जानते थे। समाज उनकी आंखों में एक भयंकर भूत था जिससे सदैव डरना चाहिए। उसे जरा भी रूष्ट किया तो फिर जाने की खैर नहीं। उनकी स्त्री जागेश्वरी उनका प्रतिबिम्ब, पति के विचार उसके विचार और पति की इच्छा उसकी इच्छा थी, दोनों प्राणियों में कभी मतभेद न होता था। जागेश्चरी खिव की उपासक थी। हृदयनाथ वैष्णव थे, दोनो धर्मनिष्ट थे। उससे कहीं अधिक , जितने समान्यत: शिक्षित लोग हुआ करते है। इसका कदाचित् यह कारण था कि एक कन्या के सिवा उनके और कोई सनतान न थी। उनका विवाह तेरहवें वर्ष में हो गया था और माता-पिता की अब यही लालसा थी कि भगवान इसे पुत्रवती करें तो हम लोग नवासे के नाम अपना सब-कुछ लिख लिखाकर निश्चित हो जायें।

किन्तु विधाता को कुछ और ही मन्जूर था। कैलाश कुमारी का अभी गौना भी न हुआ था, वह अभी तक यह भी न जानने पायी थी कि विवाह का आश्य क्या है कि उसका सोहाग उठ गया। वैधव्य ने उसके जीवन की अभिलाषाओं का दीपक बुझा दिया।

माता और पिता विलाप कर रहे थे, घर में कुहराम मचा हुआ था, पर कैलाशकुमारी भौंचक्की हो-हो कर सबके मुंह की ओर ताकती थी। उसकी समझ में यह न आता था कि ये लोग रोते क्यों हैं। मां बाप की इकलौती बेटी थी। मां-बाप के अतिरिक्त वह किसी तीसरे व्यक्ति को उपने लिए आवश्यक न समझती थी। उसकी सुख कल्पनाओं में अभी तक पति का प्रवेश न हुआ था। वह समझती थी, स्त्रीयां पति के मरने पर इसलिए राती है कि वह उनका और बच्चों का पालन करता है। मेरे घर में किस बात की कमी है? मुझे इसकी क्या चिन्ता है कि खायेंगे क्या, पहनेगें क्या? मुढरे जिस चीज की जरूरत होगी बाबूजी तुरन्त ला देंगे, अम्मा से जो चीज मागूंगी वह दे देंगी। फिर रोऊं क्यों?वह अपनी मां को रोते देखती तो रोती, पती के शोक से नहीं, मां के प्रेम से । कभी सोचती, शायद यह लोग इसलिए रोते हैं कि कहीं मैं कोई ऐसी चीज न मांग बैठूं जिसे वह दे न सकें। तो मै ऐसी चीज मांगूगी ही क्यो? मै अब भी तो उन से कुछ नहीं मांगती, वह आप ही मेरे लिए एक न एक चीज नित्य लाते रहते हैं? क्या मैं अब कुछ और हो जाऊगीं? इधर माता का यहा हाल था कि बेटी की सूरत देखते ही आंखों से आंसू की झडी लग जाती। बाप की दशा और भी करूणाजनक थी। घर में आना-जाना छोड दिया। सिर पर हाथ धरे कमरे में अकेले उदास बैठे रहते। उसे विशेष दु:ख इस बात का था कि सहेलियां भी अब उसके साथ खेलने न आती। उसने उनके घर लाने की माता से आज्ञा मांगी तो फूट-फूट कर रोने लगीं माता-पिता की यह दशा देखी तो उसने उनके सामने जाना छोड दिया, बैठी किस्से कहानियां पढा करती। उसकी एकांतप्रियता का मां-बाप ने कुछ और ही अर्थ समझा। लडकी शोक के मारे घुली जाती है, इस वज्राघात ने उसके हृदय को टुकडे-टुकडे कर डाला है।

एक दिन हृदयनाथ ने जागेश्वरी से कहा—जी चाहता है घर छोड कर कहीं भाग जाऊं। इसका कष्ट अब नहीं देखा जाता।

जागेश्वरी—मेरी तो भगवान से यही प्राथर्ना है कि मुझे संसार से उठा लें। कहां तक छाती पर पत्थर कीस सिल रखूं।

हृदयनाथ—किसी भातिं इसका मन बहलाना चाहिए, जिसमें शोकमय विचार आने ही न पायें। हम लोंगों को दु:खी और रोते देख कर उसका दु:ख और भी दारूण हो जाता है।

जागेश्वरी—मेरी तो बुद्धि कुछ काम नहीं करती।

हृदयनाथ—हम लोग यों ही मातम करते रहे तो लडंकी की जान पर बन जायेगी। अब कभी कभी थिएटर दिखा दिया, कभी घर में गाना-बजाना करा दिया। इन बातों से उसका दिल बहलता रहेगा।

जागेशवरी—मै तो उसे देखते ही रो पडती हूं। लेकिन अब जब्त करूंगी तुम्हारा विचार बहुत अच्छा है। विना दिल बहलाव के उसका शोक न दूर होगा।

हृदयनाथ—मैं भी अब उससे दिल बहलाने वाली बातें किया करूगां। कल एक सैरबीं लाऊगा, अच्छे-अच्छे दृश्य जमा करूगां। ग्रामोफोन तो अज ही मगवाये देता हूं। बस उसे हर वक्त किसी न किसी कात में लगाये रहना चाहिए। एकातंवास शोक-ज्वाला के लिए समीर के समान है।

उस दिन से जागेश्वरी ने कैलाश कुमारी के लिए विनोद और प्रमोद के समान लमा करनेशुरू किये। कैलासी मां के पास आती तो उसकी आंखों में आसू की बूंदे न देखती, होठों पर हंसी की आभा दिखाई देती। वह मुस्करा कर कहती –बेटी, आज थिएटर में बहुत अच्छा तमाशा होने वाला है, चलो देख आयें। कभी गंगा-स्नान की ठहरती, वहां मां-बेटी किश्ती पर बैठकर नदी में जल विहार करतीं, कभी दोनों संध्या-समय पाकै की ओर चली जातीं। धीरे-धीरे सहेलियां भी आने लगीं। कभी सब की सब बैठकर ताश खेलतीं। कभी गाती-बजातीं। पण्डित हृदय नाथ ने भी विनोद की सामग्रियां जुटायीं। कैलासी को देखते ही मग्न होकर बोलते—बेटी आओ, तुम्हें आज काश्मीर के दृश्य दिखाऊं: कभी ग्रामोफोन बजाकर उसे सुनाते। कैलासी इन सैर-सपाटों का खूब आन्नद उठाती। अतने सुख से उसके दिन कभी न गुजरे थे।

2

इस भांति दो वर्ष बीत गये। कैलासी सैर-तमाशे की इतनी आदि हो गयी कि एक दिन भी थिएटर न जाती तो बेकल-ससी होने लगती। मनोरंजन नवीननता का दास है और समानता का शत्रु। थिएटरों के बाद सिनेमा की सनक सवार हुई। सिनेमा के बाद मिस्मेरिज्म और हिपनोटिज्म के तमाशों की सनक सवार हुई। सिनेमा के बाद मिस्मेरिज्म और हिप्नोटिज्म के तमाशों की। ग्रामोफोन के नये रिकार्ड आने लगे। संगीत का चस्का पड गया। बिरादरी में कहीं उत्सव होता तो मां-बेटी अवश्स्य जातीं। कैलासी नित्य इसी नशे में डूबी रहती, चलती तो कुछ गुनगुनती हुई, किसी से बाते करती तो वही थिएटर की और सिनेमा की। भौतिक संसार से अब कोई वास्ता न था, अब उसका निवास कल्पना संसार में था। दूसरे लोक की निवासिन होकर उसे प्राणियों से कोई सहानुभूति न रहीं, किसी के दु:ख पर जरा दया न आती। स्वभाव में उच्छूंखलता का विकास हुआ, अपनी सुरूचि पर गर्व करने लगी। सहेलियों से डींगे मारती, यहां के लोग मूर्ख है, यह सिनेमा की कद्र क्या करेगें। इसकी कद्र तो पश्चिम के लोग करते है। वहां मनोरंजन की सामाग्रियां उतनी ही आवश्यक है जितनी हवा। जभी तो वे उतने प्रसनन-चित्त रहते है, मानो किसी बात की चिंता ही नहीं। यहां किसी को इसका रस ही नहीं। जिन्हें भगवान ने सामर्थ्य भी दिया है वह भी सरंशाम से मुह ढांक कर पडे रहमे हैं। सहेलियां कैलासी की यह गर्व-पूर्ण बातें सुनतीं और उसकी और भी प्रशंसा करतीं। वह उनका अपमान करने के आवेश में आप ही हास्यास्पद बन जाती थी।

पडोसियों में इन सैर-सपाटों की चर्चा होने लगी। लोक-सम्मति किसी की रिआयत नहीं करती। किसी ने सिर पर टोपी टेढी रखी और पडोसियों की आंखों में खुबा कोई जरा अकड कर चला और पडोसियों ने अवाजें कसीं। विधवा के लिए पूजा-पाठ है, तीर्थ-व्रत है, मोटा खाना पहनना है, उसे विनोदऔर विलास, राग और रंग की क्या जरूरत? विधाता ने उसके द्वार बंद रि दिये है। लडकी प्यारी सही, लेकिन शर्म और हया भी कोई चीज होती है। जब मां-बाप ही उसे सिर चढाये हुए है तो उसका क्या दोष? मगर एक दिन आंखे खुलेगी अवश्य।महिलाएं कहतीं, बाप तो मर्द है, लेकिन मां कैसी है। उसको जरा भी विचार नहीं कि दुनियां क्या कहेगी। कुछ उन्हीं की एक दुलारी बेटी थोडे ही है, इस भांतिमन बढाना अच्छा नहीं।

कुद दिनों तक तो यह खिचडी आपस में पकती रही। अंत को एक दिन कई महिलाओं ने जागेश्वरी के घर पदार्पण किया। जागेश्वरी ने उनका बडा आदर-सत्कार किया। कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद एक महिला बोली—महिलाएं रहस्य की बातें करने में बहुत अभ्यस्त होती है—बहन, तुम्हीं मजे में हो कि हंसी-खुसी में दिन काट देती हो। हमुं तो दिन पहाड हो जाता है। न कोई काम न धंधा, कोई कहां तक बातें करें?

दूसरी देवी ने आंखें मटकाते हुए कहा—अरे, तो यह तो बदे की बात है। सभी के दिन हंसी-खुंशी से कटें तो रोये कौन। यहां तो सुबह से शाम तक चक्की-चूल्हे से छुट्टी नहीं मिलती: किसी बच्चे को दस्त आ रहें तो किसी को ज्वर चढा हुआ है: कोई मिठाइयों की रट कहा है: तो कोई पैसो के लिए महानामथ मचाये हुए है। दिन भर हाय-हाय करते बीत जाता है। सारे दिन कठपुतलियों की भांति नाचती रहती हूं।

तीसरी रमणी ने इस कथन का रहस्यमय भाव से विरोध किया—बदे की बात नहीं, वैसा दिल चाहिए। तुम्हें तो कोई राजसिंहासन पर बिठा दे तब भी तस्कीन न होगी। तब और भी हाय-हाय करोगी।

इस पर एक वृद्धा ने कहा—नौज ऐसा दिल: यह भी कोई दिल है कि घर में चाहे आग लग जाय, दुनिया में कितना ही उपहास हो रहा हो, लेकिन आदमी अपने राग-रंग में मस्त रह। वह दिल है कि पत्थर : हम गृहिणी कहलाती है, हमारा काम है अपनी गृहस्थी में रत रहना। आमोद-प्रमोद में दिन काटना हमारा काम नहीं।

और महिलाओं ने इन निर्दय व्यंग्य पर लज्जित हो कर सिर झुका लिया। वे जागेश्वरी की चटुकियां लेना चाहती थीं। उसके साथ बिल्ली और चूहे की निर्दयी क्रीडा करना चाहती थीं। आहत को तडपाना उनका उद्देश्य था। इस खुली हुई चोट ने उनके पर-पीडन प्रेम के लिए कोई गुंजाइश न छोडी: किंतु जागेश्वरी को ताडना मिल गयी। स्त्रियों के विदा होने के बाद उसने जाकर पति से यह सारी कथा सुनायी। हृदयनाथ उन पुरूषों में न थे जो प्रत्येक अवसर पर अपनी आत्मिक स्वाधीनता का स्वांग भरते है, हठधर्मी को आत्म-स्वातन्त्रय के नाम से छिपाते है। वह सचिन्त भाव से बोले---तो अब क्या होगा?

जागेश्वरी—तुम्हीं कोई उपाय सोचो।

हृदयनाथ—पडोसियों ने जो आक्षेप किया है वह सवर्था उचित है। कैलाशकुमारी के स्वभाव में मुझें एक सविचित्र अन्तर दिखाई दे रहा है। मुझे स्वंम ज्ञात हो रहा है कि उसके मन बहलाव के लिए हम लोंगों ने जो उपाय निकाला है वह मुनासिब नहीं है। उनका यह कथन सत्य है कि विधवाओं के लिए आमोद-प्रामोद वर्जित है। अब हमें यह परिपाटी छोडनी पडेगी।

जागेश्वरी—लेकिन कैलासी तो अन खेल-तमाशों के बिना एक दिन भी नहीं रह सकती।

हृदयनाथ—उसकी मनोवृत्तियों को बदलना पडेगा।

3

शनै:शैने यह विलोसोल्माद शांत होने लगा। वासना का तिरस्कार किया जाने लगा। पंडित जी संध्या समय ग्रमोफोन न बजाकर कोई धर्म-ग्रंथ सुनते। स्वाध्याय, संसम उपासना में मां-बेटी रत रहने लगीं। कैलासी को गुरू जी ने दीक्षा दी, मुहल्ले और बिरादरी की स्त्रियां आयीं, उत्सव मनाया गया।

मां-बेटी अब किश्ती पर सैर करने के लिए गंगा न जातीं, बल्कि स्नान करने के लिए। मंदिरो में नित्य जातीं। दोनां एकादशी का निर्जल व्रम रखने लगीं। कैलासी को गुरुजी नित्य संध्या-समय धर्मोपदेश करते। कुछ दिनों तक तो कैलासी को यह विचार-परिर्वतन बहुत कष्टजनक मालूम हुआ, पर धर्मनिष्ठा नारियों का स्वाभाविक गुण है, थोडे ही दिनो में उसे धर्म से रूची हो गयी। अब उसे अपनी अवस्था का ज्ञान होने लगा था। विषय-वासना से चित्त आप ही आप खिंचने लगा। पति का यथार्थ आशय समझ में आने लगा था। पति ही स्त्री का सच्चा पथ प्रदर्शक और सच्चा सहायक है। पतिविहीन होना किसी घोर पाप का प्रायश्चित है। मैने पूर्व-जन्म में कोई अकर्म किया होगा। पतिदेव जीवित होते तो मै फिर माया में फंस जाती। प्रायश्चित कर अवसर कहां मिलता। गुरूजी का वचन सत्य है कि परमात्मा ने तुम्हें पूर्व कर्मों के प्रायश्चित का अवसर दिया है। वैधव्य यातना नहीं है, जीवोद्धर का साधन है। मेरा उद्धार त्याग, विराग, भक्ति और उपासना से होगा।

कुछ दिनों के बाद उसकी धार्मिक वृत्ति इतनी प्रबल हो गयी, कि अन्य प्राणियों से वह पृथक् रहने लगी। किसी को न छूती, महरियों से दूर रहती, सहेलियों से गले तक न मिलती, दिन में दो-दो तीन-तीन बार स्नान करती, हमेशा कोई न कोई धर्म-ग्रन्थ पढा करती। साधु –महात्माओं के सेवा-सत्कार में उसे आत्मिक सुख प्राप्त होता। जहां किसी महात्मा के आने की खबर पाती, उनके दर्शनों के लिए कवकल हो जाती। उनकी अमृतवाणी सुनने से जी न भरता। मन संसार से विरक्त होने लगा। तल्लीनता की अवस्था प्राप्त हो गयी। घंटो ध्यान और चिंतन में मग्न रहती। समाजिक बंधनो से घृण हो गयी। घंटो ध्यान और चिंतन में मग्न रहती। हृदय स्वाधिनता के लिए लालायित हो गया: यहां तक कि तीन ही बरसों में उसने संन्यास ग्रहण करने का निश्चय कर लिया।

मां-बाप को यह समाचार ज्ञात हुआ ता होश उड गये। मां बोली—बेटी, अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है कि तुम ऐसी बातें सोचती हो।

कैलाशकुमारी—माया-मोह से जितनी जल्द निवृत्ति हो जाय उतना ही अच्छा।

हृदयनाथ—क्या अपने घर मे रहकर माया-मोह से मुक्त नहीं हो सकती हो? माया-मोह का स्थान मन है, घर नहीं।

जागेश्वरी—कितनी बदनामी होगी।

कैलाशकुमारी—अपने को भगवान् के चरणों पर अर्पण कर चुकी तो बदनामी क्या चिंता?

जागेश्वरी—बेटी, तुम्हें न हो , हमको तो है। हमें तो तुम्हारा ही सहरा है। तुमने जो संयास लिया तो हम किस आधार पर जियेंगे?

कैलाशकुमारी—परमात्मा ही सबका आधार है। किसी दूसरे प्राणी का आश्रय लेना भूल है।

दूसरे दिन यह बात मुहल्ले वालों के कानों में पहुंच गयी। जब कोई अवस्था असाध्य हो जाती है तो हम उस पर व्यंग करने लगते है। 'यह तो होना ही था, नयी बात क्या हुई, लडिकियों को इस तरह स्वछंद नहीं कर दिया जाता, फूले न समाते थे कि लडकी ने कुल का नाम उज्जवल कर दिया। पुराण पढती है, उपनिषद् और वेदांत का पाठ करती है, धार्मिक समस्याओं पर ऐसी-ऐसी दलीलें करती है कि बडे-बडे विद्वानों की जबान बंद हो जाती है तो अब क्यों पछताते है?' भद्र पुरूषों में कई दिनों तक यही आलोचना हाती रही। लेकिन जैसे अपने बच्चे के दौडते-दौडते –धम से गिर पडने पर हम पहले क्रोध के आवेश में उसे झिडकियां सुनाते है, इसके बाद गोद में बिठाकर आंसू पोछतें और फुसलाने का लगते है: उसी तरह इन भद्र पुरूषों ने व्यग्य के बाद इस गुत्थी के सुलझाने का उपाय सोचना शुरू किया। कई सज्जन हृदयनाथ के पास आये और सिर झुकाकर बैठ गये। विषय का आरम्भ कैसे हो?

कई मिनट के बाद एक सज्जन ने कहा –ससुना है डाक्टर गौड का प्रस्ताव आज बहुमत से स्वीकृत हो गया।

दूसरे महाश्य बोले—यह लोग हिंदू-धर्म का सर्वनाश करके छोडेगें। कोई क्या करेगा, जब हमारे साधु-महात्मा, हिंदू-जाति के स्तंभ है, इतने पतित हो गए हैं कि भोली-भाली युवतियों को बहकाने में संकोच नहीं करते तो सर्वनाश होनें में रह ही क्या गया।

हृदयनाथ—यह विपत्ति तो मेरे सिर ही पडी हुई है। आप लोगों को तो मालूम होगा।

पहले महाश्य –आप ही के सिर क्यों, हम सभी के सिर पडी हुई है।

दूसरो महाश्य –समस्त जाति के सिर कहिए।

हृदयनाथ—उद्धार का कोई उपाय सोचिए।

पहले महाश्य—अपने समझाया नहीं?

हृदयनाथ—समझा के हार गया। कुछ सुनती ही नहीं।

तीसरे महाश्य—पहले ही भूल हुई। उसे इस रास्ते पर उतरना ही नहीं चाहिए था।

पहले महाशय—उस पर पछताने से क्या होगा? सिर पर जो पडी है, उसका उपाय सोचना चाहिए। आपने समाचार-पत्रों में देखा होगा, कुछ लोगों की सलाह है कि विधवाओं से अध्यापको का काम लेना चाहिए। यद्यपि मैं इसे भी बहुत अच्छा नहीं समझता,पर संन्यासिनी बनने से तो कहीं अच्छा है। लडकी अपनी आंखों के सामने तो रहेगी। अभिप्राय केवल यही है कि कोई ऐसा कामा होना चाहिए जिसमें लडकी का मन लगें। किसी अवलम्ब के बिना मनुष्य को भटक जाने की शंका सदैव बनी रहती है। जिस घर में कोई नहीं रहता उसमें चमगादड बसेरा कर लेते हैं।

दूसरे महाशय –सलाह तो अच्छी है। मुहल्ले की दस-पांच कन्याएं पढने के लिए बुला ली जाएं। उन्हे किताबें, गुडियां आदि इनाम मिलता रहे तो बडे शौक से आयेंगी। लडकी का मन तो लग जायेगा।

हृदयनाथ—देखना चाहिए। भरसक समझाऊगां।

ज्यों ही यह लोग विदा हुए: हृदयनाथ ने कैलाशकुमारी के सामने यह तजवीज पेश की कैलासी को सुन्यस्त के उच्च पद के सामने अध्यापिका बनना अपमानजनक जान पडता था। कहां वह महात्माओं का सत्संग, वह पर्वतो की गुफा, वह सुरम्य प्राकृतिक दृश्य वहहिमराशि की ज्ञानमय ज्योति, वह मानसरावर और कैलास की शुभ्र छटा, वह आत्मदर्शन की विशाल कल्पनाएं, और कहां बालिकाओं को चिडियों की भांति पढाना। लेकिन हृदयनाथ कई दिनों तक लगातार से वा धर्म का माहातम्य उसके हृदय पर अंकित करते रहे। सेवा ही वास्तविक संन्यस है। संन्यासी केवल अपनी मुक्ति का इच्छुक होता है, सेवा व्रतधरी अपने को परमार्थ की वेदी पर बलि दे देता है। इसका गौरव कहीं अधिक है। देखो, ऋषियों में दधीचि का जो यश है, हरिश्चंद्र की जो कीर्ति है, सेवा त्याग है, आदि। उन्होंने इस कथन की उपनिषदों और वेदमंत्रों से पुष्टि की यहां तक कि धीरे-धीरे कैलासी के विचारों में परिवतर्न होने लगा। पंडित जी ने मुहल्ले वालों की लडकियों को एकत्र किया, पाठशाला का जन्म हो गया। नाना प्रकार के चित्र और खिलौने मंगाए। पंडित जी स्वंय

कैलाशकुमारी के साथ लडकियों को पढाते। कन्याएं शौक से आतीं। उन्हे यहां की पढाई खेल मालूम होता। थोडे ही हदनों में पाठशाला की धूम हो गयी, अन्य मुहल्लों की कन्याएं भी आने लगीं।

४

कैलास कुमारी की सेवा-प्रवृत्ति दिनों-दिन तीव्र होने लगी। दिन भर लडकियों को लिए रहती: कभी पढाती, कभी उनके साथ खेलती, कभी सीना-पिरोना सिखाती। पाठशाला ने परिवार का रूप धारण कर लिया। कोई लडकी बीमार हो जाती तो तुरन्त उसके घर जाती, उसकी सेवा-सुश्रूषा करती, गा कर या कहानियां सुनाकर उसका दिल बहलाती।

पाठशाला को खुले हुए साल-भर हुआ था। एक लडकी को, जिससे वह बहुत प्रेम करती थी, चेचक निकल आयी। कैलासी उसे देखने गई। मां-बाप ने बहुत मना किया, पर उसने न माना। कहा, तुरन्त लौट आऊंगी। लडकी की हालत खराब थी। कहां तो रोते-रोते तालू सूखता था, कहां कैलासी को देखते ही सारे कष्ट भाग गये। कैलासी एक घंटे तक वहां रही। लडकी बराबर उससे बातें करती रही। लेकिन जब वह चलने को उठी तो लडकी ने रोना शुरू कर दिया। कैलासी मजबूर होकर बैठ गयी। थोडी देर बाद वह फिर उठी तो फिर लडकी की यह दशा हो गयी। लडकी उसे किसी तरह छोडती ही न थी। सारा दिन गुजर गया। रात को भी रात को लडकी ने जाने न दियां। हृदयनाथ उसे बुलाने को बार-बार आदमी भेजते, पर वह लडकी को छोडकर न जा सकती। उसे ऐसी शंका होती थी कि मैं यहां से चली और लडकी हाथ से गयी। उसकी मां विमाता थी। इससे कैलासी को उसके ममत्व पर विश्वास न होता था। इस प्रकार तीन दिनों तक वह वहां राही। आठों पहर बालिका के सिरहाने बैठी पंखा झलती रहती। बहुत थक जाती तो दीवार से पीठ टेक लेती। चौथे दिन लडकी की हालत कुछ संभलती हुई मालूम हुई तो वह अपने घर आयी। मगर अभी स्नान भी न करने पायी थी कि आदमी पहुंचा—जल्द चलिए, लडकी रो-रो कर जान दे रही है।

हृदयनाथ ने कहा—कह दो, अस्पताल से कोई नर्स बुला लें।

कैलसकुमारी-दादा, आप व्यर्थ में झुझलाते हैं। उस बेचारी की जान बच जाय, मै तीन दिन नहीं, जीन महिने उसकी सेवा करने को तैयार हूं। आखिर यह देह किस काम आएगी।

हृदयनाथ—तो कन्याएं कैसे पढेगी?

कैलासी—दो एक दिन में वह अच्छी हो जाएगी, दाने मुरझाने लगे हैं, तब तक आप लरा इन लडकियों की देखभाल करते रहिएगा।

हृदयनाथ—यह बीमारी छूत फैलाती है।

कैलासी—(हंसकर) मर जाऊंगी तो आपके सिर से एक विपत्ति टल जाएगी। यह कहकर उसने उधर की राह ली। भोजन की थाली परसी रह गयी।

तब हृदयनाथ ने जागेश्वरी से कहा---जान पडता है, बहुत जल्द यह पाठशाला भी बन्द करनी पडेगी।

जागेश्वरी—बिना मांझी के नाव पार लगाना बहुत कठिन है। जिधर हवा पाती है, उधर बह जाती है।

हृदयनाथ—जो रास्ता निकालता हूं वही कुछ दिनों के बाद किसी दलदल में फंसा देता है। अब फिर बदनामी के समान होते नजर आ रहे है। लोग कहेंगें, लडकी दूसरों के घर जाती है और कई-कई दिन पडी रहती है। क्या करूं, कह दूं, लडकियों को न पढाया करो?

जागेश्वरी –इसके सिवा और हो क्या सकता है।

कैलाशकुमारी दो दिन बाद लौटी तो हृदयनाथ ने पाठशाला बंद कर देने की समस्या उसके सामने रखी। कैलासी ने तीव्र स्वर से कहा—अगर आपको बदनामी का इतना भय है तो मुझे विष देदीजिए। इसके सिवा बदनामी से बचने का और कोई उपाय नहीं है।

हृदयनाथ—बेटी संसार में रहकर तो संसार की-सी करनी पडेगी।

कैलासी तो कुछ मालूम भी तो हो कि संसार मुझसे क्या चाहता है। मुझमें जीव है, चेतना है, जड क्योंकर बन जाऊ। मुझसे यह नहीं हो सकता कि अपने को अभाहगन, दुखिया समझूं और एक टुकडा रोटी खाकर पडी रहूं। ऐसा क्यों करूं? संसार मुझे जो चाहे समझे, मै अपने को अभागिनी नहीं समझती। मै अपने आत्म-सम्मान की रक्षा आप कर सकती हूं। मैं इसे घोर अपमान समझती हूं कि पग-पग पर मुझ पर शंका की जाए, नित्य कोई चरवाहों की भांति मेरे पीछे लाठी लिए घूमता रहे कि किसी खेत में न जाने बूडू। यह दशा मेरे लिए असहय हैं।

यह कहकर कैलाशकुमारी वहां से चली गयी कि कहीं मुंह से अनर्गल शब्द न निकल पडें। इधर कुछ दिनों से उसे अपनी बेकसी का यर्थाथ ज्ञान होने लगा था स्त्री पुरूष की कितली अधीन है, मानो स्त्री को विधाता ने इसलिए बनाया है कि पुरूषों के अधिन रहं यह सोचकर वह समाज के अत्याचार पर दांत पीसने लगती थी।

पाठशाला तो दूसरे दिन बन्द हो गयी, किन्तु उसी दिन कैलाशकुमारी को पुरूषों से जलन होने लगी। जिस सुख-भोग से प्रारब्ध हमें वंचित कर देता है उससे हमे द्वेष हो जाता है। गरीब आदमी इसीलए तो अमीरों से जलता है और धन की निन्दा करता है। कैलाशी बार-बार झुंझलाति कि स्त्री क्यों पुरूष पर इतनी अवलम्बित है? पुरूशष क्यों स्त्री के भग्य का विधायक है? स्त्री क्यों नित्य पुरूषों का आश्रय चाहे, उनका मुंह ताके? इसलिए न कि स्त्रियों में अभिमान नहीं है, आत्म सम्मान नहीं है। नारी हृदय के कोमल भाव, उसे कुत्ते का दुम हिलाना मालूम होने लगे। प्रेम कैसा। यह सब ढोग है, स्त्री पुरूष के अधिन है, उसकी खुशमद न करे, सेवा न करे, तो उसका निर्वाह कैसे हो।

एक दिन उसने अपने बाल गूंथे और जूडे में एक गुलाब का फूल लगा लिया। मां ने देखा तो ओठं से जीभ दबा ली। महरियों ने छाती पर हाथ रखे।

इसी तरह एक दिन उसने रंगीन रेशमी साडी पहन ली। पडोसिनों में इस पर खूब आलोचनाएं हुई।

उसने एकादशी का व्रत रखनाउ छोड दिया जो पिछले आठ वर्षों से रखमी आयीं थी। कंघी और आइने को वह अब त्याज्य न समझती थी।

सहालग के दिन आए। नित्य प्रति उसके द्वार पर से बरातें निकलतीं । मुहल्ले की स्त्रियां अपनी अटारियों पर खडी होकर देखती। वर के रंग –रूप, आकर-प्रकार पर टिकाएं होती, जागेश्वरी से भी बिना एक आख देखे रहा नह जाता। लेकिन कैलाशकुमारी कभी भूलकर भी इन जालूसो को न देखती। कोई बरात या विवाह की बात चलाता तो वह मुहं फेर लेती। उसकी दृष्टि में वह विवाह नहीं, भोली-भाली कन्याओं का शिकार था। बरातों को वह शिकारियों के कुत्ते समझती। यह विवाह नहीं बलिदान है।

५

तीज का व्रत आया। घरों की सफाई होने लगी। रमणियां इस व्रत को तैयारियां करने लगीं। जागेश्वरी ने भी व्रत का सामान किया। नयी-नयी साडिया मगवायीं। कैलाशकुमारी के ससुराल से इस अवसर पर कपडे , मिठाईयां और खिलौने आया करते थे।अबकी भी आए। यह विवाहिता स्त्रियों का व्रत है। इसका फल है पति का कल्याण। विधवाएं भी अस व्रत का यथेचित रीति से पालन करती है। ति से उनका सम्बन्ध शारीरिक नहीं वरन् आध्यात्मिक होता है। उसका इस जीवन के साथ अन्त नहीं होता, अनंतकाल तक जीवित रहता है। कैलाशकुमारी अब तक यह व्रत रखती आयी थी। अब उसने निश्चय किया मै व्रत न रखूंगी। मां ने तो माथा ठोंक लिया। बोली—बेटी, यह व्रत रखना धर्म है।

कैलाशकुमारी-पुरष भी स्त्रियों के लिए कोई व्रत रखते है?

जागेश्वरी—मर्दों में इसकी प्रथा नहीं है।

कैलाशकुमारी—इसलिए न कि पुरूषों की जान उतनी प्यारी नही होती जितनी स्त्रियों को पुरूषों की जान ?

जागेश्वरी—स्त्रियां पुरूषों की बराबरी कैसे कर सकती हैं? उनका तो धर्म है अपने पुरूष की सेवा करना।

कैलाशकुमारी—मै अपना धर्म नहीं समझती। मेरे लिए अपनी आत्मा की रक्षा के सिवा और कोई धर्म नहीं?

जागेश्वरी—बेटी गजब हो जायेगा, दुनिया क्या कहेगी?

कैलाशकुमारी –फिर वही दुनिया? अपनी आत्मा के सिवा मुझे किसी का भय नहीं।

हृदयनाथ ने जागेश्वरी से यह बातें सुनीं तो चिन्ता सागर में डूब गए। इन बातों का क्या आश्य? क्या आत्म-सम्मान को भाव जाग्रत हुआ है या नैरश्य की क्रूर क्रीडा है? धनहीन प्राणी को जब कष्ट-निवारण का कोई उपाय नहीं रह जाता तो वह लज्जा को त्याग देता है। निस्संदेह नैराश्य ने यह भीषण रूप धारण किया है। सामान्य दशाओं में नैराश्य अपने यथार्थ रूप मे आता है, पर गर्वशील प्राणियों में वह परिमार्जित रूप ग्रहण कर लेता है। यहां पर हृदयगत कोमल भावों को अपहरण कर लेता है—चरित्र में अस्वाभाविक विकास

उत्पन्न कर देता है—मनुष्य लोक-लाज उपवासे और उपहास की ओर से उदासीन हो जाता है, नैतिक बन्धन टूट जाते है। यह नैराश्य की अतिंम अवस्था है।

हृदयनाथ इन्हीं विचारों मे मग्न थे कि जागेश्वरी ने कहा –अब क्या करनाउ होगा?

जागेश्वरी—कोई उपाय है?

हृदयनाथ—बस एक ही उपाय है, पर उसे जबान पर नहीं ला सकता

कौशल

पंडित बलराम शास्त्री की धर्मपत्नी माया को बहुत दिनों से एक हार की लालसा थी और वह सैकडो ही बार पंडित जी से उसके लिए आग्रह कर चुकी थी, किन्तु पण्डित जी हीला-हवाला करते रहते थे। यह तो साफ-साफ ने कहते थे कि मेरे पास रूपये नही है—इनसे उनके पराक्रम में बट्टा लगता था—तर्कनाओं की शरण लिया करते थे। गहनों से कुछ लाभ नहीं एक तो धातु अच्छी नहीं मिलती,श् उस पर सोनार रुपसे के आठ-आठ आने कर देता है और सबसे बडी बात यह है कि घर में गहने रखना चोरो को नेवता देन है। घडी-भर श्रृगांर के लिए इतनी विपत्ति सिर पर लेना मूर्खो का काम है। बेचारी माया तर्क –शास्त्र न पढी थी, इन युक्तियों के सामने निरूत्तर हो जाती थी। पडोसिनो को देख-देख कर उसका जी ललचा करता था, पर दुख किससे कहे। यदि पण्डित जी ज्यादा मेहनत करने के योग्य होते तो यह मुश्किल आसान हो जाती । पर वे आलसी जीव थे, अधिकांश समय भोजन और विश्राम में व्यतित किया करते थे। पत्नी जी की कटूक्तियां सुननी मंजूर थीं, लेकिन निद्रा की मात्रा में कमी न कर सकते थे।

एक दिन पण्डित जी पाठशाला से आये तो देखा कि माया के गले में सोने का हार विराज रहा है। हार की चमक से उसकी मुख-ज्योति चमक उठी थी। उन्होने उसे कभी इतनी सुन्दर न समझा था। पूछा –यह हार किसका है?

माया बोली—पडोस में जो बाबूजी रहते हैं उन्ही की स्त्री का है।
आज उनसे मिलने गयी थी, यह हार देखा , बहुत पसंद आया। तुम्हें दिखाने के लिए पहन कर चली आई। बस, ऐसा ही एक हार मुझे बनवा दो।

पण्डित—दूसरे की चीज नाहक मांग लायी। कहीं चोरी हो जाए तो हार तो बनवाना ही पडे, उपर से बदनामी भी हो।

माया—मैंतो ऐसा ही हार लूगी। २० तोले का है।

पण्डित—फिर वही जिद।

माया—जब सभी पहनती हैं तो मै ही क्यों न पहनूं?

पण्डित—सब कुएं में गिर पडें तो तुम भी कुएं में गिर पडोगी। सोचो तो, इस वक्त इस हार के बनवाने में ६०० रुपये लगेगे। अगर १ रु० प्रति सैकडा ब्याज रखलिया जाय ता – वर्ष मे ६०० रू० के लगभग १००० रु० हो जायेगें। लेकिन ५ वर्ष में तुम्हारा हार मुश्किल से ३०० रू० का रह जायेगा। इतना बडा नुकसान उठाकर हार पहनने से क्या सुख? सह हार वापस कर दो , भोजन करो और आराम से पडी रहो। यह कहते हुए पण्डित जी बाहर चले गये।

रात को एकाएक माया ने शोर मचाकर कहा –चोर,चोर,हाय, घर में चोर , मुझे घसीटे लिए जाते हैं।

पण्डित जी हकबका कर उठे और बोले –कहा, कहां? दौडो,दौडो।

माया—मेरी कोठारी में गया है। मैनें उसकी परछाईं देखी ।

पण्डित—लालटेन लाओं, जरा मेरी लकडी उठा लेना।

माया—मुझसे तो डर के उठा नहीं जाता।

कई आदमी बाहर से बोले—कहां है पण्डित जी, कोई सेंध पडी है क्या?

माया—नहीं,नहीं, खपरैल पर से उतरे हैं। मेरी नीदं खुली तो कोई मेरे ऊपर झुका हुआ था। हाय रे, यह तो हार ही ले गया, पहने-पहने सो गई थी। मुए ने गले से निकाल लिया । हाय भगवान,

पण्डित—तुमने हार उतार क्यां न दिया था?

माया-मै क्या जानती थी कि आज ही यह मुसीबत सिर पडने वाली है, हाय भगवान्,

पण्डित—अब हाय-हाय करने से क्या होगा? अपने कर्मों को रोओ। इसीलिए कहा करता था कि सब घडी बराबर नहीं जाती, न जाने कब क्या हो जाए। अब आयी समझ में मेरी बात, देखो, और कुछ तो न ले गया?

पडोसी लालटेन लिए आ पहुंचे। घर में कोना –कोना देखा। करियां देखीं, छत पर चढकर देखा, अगवाडे-पिछवाडे देखा, शौच गृह में झाका, कहीं चोर का पता न था।

एक पडोसी—किसी जानकार आदमी का काम है।

दूसरा पडोसी—बिना घर के भेदिये के कभी चोरी नहीं होती। और कुछ तो नहीं ले गया?

माया—और तो कुछ नहीं गया। बरतन सब पडे हुए हैं। सन्दूक भी बन्द पडे है। निगोडे को ले ही जाना था तो मेरी चीजें ले जाता । परायी चीज ठहरी। भगवान् उन्हें कौन मुंह दिखाऊगी।

पण्डित—अब गहने का मजा मिल गया न?

माया—हाय, भगवान्, यह अपजस बदा था।

पण्डित—कितना समझा के हार गया, तुम न मानीं, न मानीं। बात की बात में ६००रू० निकल गए, अब देखूं भगवान कैसे लाज रखते हैं।

माया—अभागे मेरे घर का एक-एक तिनका चुन ले जाते तो मुझे इतना दु:ख न होता। अभी बेचारी ने नया ही बनावाया था।

पण्डित—खूब मालूम है, २० तोले का था?

माया—२० ही तोले को तो कहती थी?

पण्डित—बधिया बैठ गई और क्या?

माया—कह दूंगी घर में चोरी हो गयी। क्या लेगी? अब उनके लिए कोई चोरी थोडे ही करने जायेगा।

पण्डित तुम्हारे घर से चीज गयी, तुम्हें देनी पडेगी। उन्हे इससे क्या प्रयोजन कि चोर ले गया या तुमने उठाकर रख लिया। पतिययेगी ही नही।

माया –तो इतने रूपये कहां से आयेगे?

पण्डित—कहीं न कहीं से तो आयेंगे ही,नहीं तो लाज कैसे रहेगी: मगर की तुमने बडी भूल ।

माया—भगवान् से मंगनी की चीज भी न देखी गयी। मुझे काल ने घेरा था, नहीं तो इस घडी भर गले में डाल लेने से ऐसा कौन-सा बडा सुख मिल गया? मै हूं ही अभागिनी।

पण्डित—अब पछताने और अपने को कोसने से क्या फायदा? चुप हो के बैठो, पडोसिन से कह देना, घबराओं नहीं, तुम्हारी चीज जब तक लौटा न देंगें, तब तक हमें चैन न आयेगा।

२

पण्डित बालकराम को अब नित्य ही चिंता रहने लगी कि किसी तरह हार बने। यों अगर टाट उलट देते तो कोई बात न थी । पडोसिन को सन्तोष ही करना पडता, ब्राह्मण से डाडं कौन लेता , किन्तु पण्डित जी ब्राह्मणत्व के गौरव को इतने सस्ते दामों न बेचना चाहते थे। आलस्य छोडंकर धनोपार्जन में दत्तचित्त हो गये।

छ: महीने तक उन्होने दिन को दिन और रात को रात नहीं जाना। दोपहर को सोना छोड दिया, रात को भी बहुत देर तक जागते। पहले केवल एक पाठशाला में पढाया करते थे। इसके सिवा वह ब्राह्मण के लिए खुले हुए एक सौ एक व्यवसायों में सभी को निंदनिय समझते थे। अब पाठशाला से आकर संध्या एक जगह 'भगवत्' की कथा कहने जाते वहां से लौट कर ११-१२ बजे रात तक जन्म कुंडलियां, वर्ष-फल आदि बनाया करते। प्रात:काल मन्दिर में 'दुर्गा जी का पाठ करते । माया पण्डित जी का अध्यवसाय देखकर कभी-कभी पछताती कि कहां से मैने यह विपत्ति सिर पर लीं कहीं बीमार पड जायें तो लेने के देने पडे। उनका शरीर क्षीण होते देखकर उसे अब यह चिनता व्यथित करने जगी। यहां तक कि पांच महीने गुजर गये।

एक दिन संध्या समय वह दिया-बत्ति करने जा रही थी कि पण्डित जी आये, जेब से पुडिया निकाल कर उसके सामने फेंक दी और बोले—लो, आज तुम्हारे ऋण से मुक्त हो गया।

माया ने पुडिया खोली तो उसमें सोने का हार था, उसकी चमक-दमक, उसकी सुन्दर बनावट देखकर उसके अन्त:स्थल में गुदगदी –सी होने लगी । मुख पर आन्नद की आभा दौड गई। उसने कातर नेत्रों से देखकर पूछा—खुश हो कर दे रहे हो या नाराज होकर1.

पण्डित—इससे क्या मतलब? ऋण तो चुकाना ही पडेगा, चाहे खुशी हो या नाखुशी।

माया—यह ऋण नहीं है।

पण्डित—और क्या है, बदला सही।

माया—बदला भी नहीं है।

पण्डित फिर क्या है।

माया—तुम्हारी ..निशानी?

पण्डित—तो क्या ऋण के लिए कोई दूसरा हार बनवाना पडेगा?

माया—नहीं-नहीं, वह हार चारी नहीं गया था। मैनें झूठ-मूठ शोर मचाया था।

पण्डित—सच?

माया—हां, सच कहती हूं।

पण्डित—मेरी कसम?

माया—तुम्हारे चरण छूकर कहती हूं।

पण्डित—तो तमने मुझसे कौशल किया था?

माया-हां?

पण्डित—तुम्हे मालूम है, तुम्हारे कौशल का मुझे क्या मूल्य देना पडा।

माया—क्या ६०० रु० से ऊपर?

पण्डित—बहुत ऊपर? इसके लिए मुझे अपने आत्मस्वातंत्रय को बलिदान करना पडा।

स्वर्ग की देवी

भाग्य की बात ! शादी विवाह में आदमी का क्या अख्तियार । जिससे ईश्वर ने, या उनके नायबों – ब्रह्मण—ने तय कर दी, उससे हो गयी। बाबू भारतदास ने लीला के लिए सुयोग्य वर खोजने में कोई बात उठा नही रखी। लेकिन जैसा घर-घर चाहते थे, वैसा न पा सके। वह लडकी को सुखी देखना चाहते थे, जैसा हर एक पिता का धर्म है ; किंतु इसके लिए उनकी समझ में सम्पत्ति ही सबसे जरूरी चीज थी। चरित्र या शिक्षा का स्थान गौण था। चरित्र तो किसी के माथे पर लिखा नही रहता और शिक्षा का आजकल के जमाने में मूल्य ही क्या ? हां, सम्पत्ति के साथ शिक्षा भी हो तो क्या पूछना ! ऐसा घर बहुत ढढा पर न मिला तो अपनी विरादरी के न थे। बिरादरी भी मिली, तो जायजा न मिला!; जायजा भी मिला तो शर्ते तय न हो सकी। इस तरह मजबूर होकर भारतदास को लीला का विवाह लाला सन्तसरन के लडके सीतासरन से करना पडा। अपने बाप का इकलौता बेटा था, थोडी बहुत शिक्षा भी पायी थी, बातचीत सलीके से करता था, मामले-मुकदमें समझता था और जरा दिल का रंगीला भी था । सबसे बडी बात यह थी कि रूपवान, बलिष्ठ, प्रसन्न मुख, साहसी आदमी था ; मगर विचार वही बाबा आदम के जमाने के थे। पुरानी जितनी बाते है, सब अच्छी ; नयी जितनी बातें है, सब खराब है। जायदाद के विषय में जमींदार साहब नये-नये दफों का व्यवहार करते थे, वहां अपना कोई अख्तियार न था ; लेकिन सामाजिक प्रथाओं के कटटर पक्षपाती थे। सीतासरन अपने बाप को जो करते या कहते वही खुद भी कहता था। उसमें खुद सोचने की शक्ति ही न थी। बुद्वि की मंदता बहुधा सामाजिक अनुदारता के रूप में प्रकट होती है।

२

लीला ने जिस दिन घर में पॉव रखा उसी दिन उसकी परीक्षा शुरू हुई। वे सभी काम, जिनकी उसके घर में तारीफ होती थी यहां वर्जित थे। उसे बचपन से ताजी हवा पर जान देना सिखाया गया था, यहां उसके सामने मुंह खोलना भी पाप था। बचपन से सिखाया गया था रोशनी ही जीवन है, यहां रोशनी के दर्शन दुर्भभ थे। घर पर अहिंसा, क्षमा और दया ईश्वरीय गुण बताये गये थे, यहां इनका नाम लेने की भी स्वाधीनता थी। संतसरन बडे तीखे, गुस्सेवर आदमी थे, नाक पर मक्खी न बैठने देते। धूर्तता और छल-कपट से ही उन्होने जायदाद पैदा की थी। और उसी को सफल जीवन का मंत्र समझते थे। उनकी पत्नी उनसे भी दो अंगुल ऊंची थीं। मजाल क्या है कि बहू अपनी अंधेरी कोठरी के द्वार पर खडी हो जाय, या कभी छत पर टहल सकें । प्रलय आ जाता, आसमान सिर पर उठा लेती। उन्हें बकने का मर्ज था। दाल में नमक का जरा तेज हो जाना उन्हें दिन भर बकने के लिए काफी बहाना था । मोटी-ताजी महिला थी, छींट का घाघरेदार लंहगा पहने, पानदान बगल में रखे, गहनो से लदी हुई, सारे दिन बरोठे में माची पर बैठीे रहती थी। क्या मजाल कि घर में उनकी इच्छा के विरूद्व एक पत्ता भी हिल जाय ! बहू की नयी-नयी आदतें देख देख जला करती थी। अब काहे की आबरू होगी। मुंडेर पर खडी हो कर झांकती है। मेरी लडकी ऐसी दीदा-दिलेर होती तो गला घोंट देती। न जाने इसके देश में कौन लोग बसते है ! गहनें नही पहनती। जब देखो नंगी – बुच्ची बनी बैठी रहती है। यह भी कोई अच्छे लच्छन है। लीला के पीछे सीतासरन पर भी फटकार पडती। तुझे भी चॉंदनी में सोना अच्छा लगता है, क्यों ? तू भी अपने को मर्द कहता कहेगा ? यह मर्द कैसा कि औरत उसके कहने में न रहे। दिन-भर घर में घुसा रहता है। मुंह में जबान नही है ? समझता क्यों नही ?

सीतासरन कहता---अम्मां, जब कोई मेरे समझाने से माने तब तो?

मां---मानेगी क्यो नही, तू मर्द है कि नही ? मर्द वह चाहिए कि कडी निगाह से देखे तो औरत कांप उठे।

सीतासरन -----तुम तो समझाती ही रहती हो ।

मां ---मेरी उसे क्या परवाह ? समझती होगी, बुढिया चार दिन में मर जायगी तब मैं मालकिन हो ही जाउँगी

सीतासरन --- तो मैं भी तो उसकी बातों का जबाब नही दे पाता। देखती नही हो कितनी दुर्बल हो गयी है। वह रंग ही नही रहा। उस कोठरी में पडे-पडे उसकी दशा बिगडती जाती है।

बेटे के मुंह से ऐसी बातें सुन माता आग हो जाती और सारे दिन जलती ; कभी भाग्य को कोसती, कभी समय को ।

सीतासरन माता के सामने तो ऐसी बातें करता ; लेकिन लीला के सामने जाते ही उसकी मति बदल जाती थी। वह वही बातें करता था जो लीला को अच्छी लगती। यहां तक कि दोनों वृद्वा की हंसी उडातें। लीला को इस में ओर कोई सुख न था । वह सारे दिन कुढती रहती। कभी चूल्हे के सामने न बैठी थी ; पर यहां पसेरियों आटा थेपना पडता, मजूरों और टहलुओं के लिए रोटी पकानी पडती। कभी-कभी वह चूल्हे के सामने बैठी घंटो रोती। यह बात न थी कि यह लोग कोई महाराज-रसोइया न रख सकते हो; पर घर की पुरानी प्रथा यही थी कि बहू खाना पकाये और उस प्रथा का निभाना जरूरी था। सीतासरन को देखकर लीला का संतप्त हृदय एक क्षण के लिए शान्त हो जाता था।

गर्मी के दिन थे और सन्ध्या का समय था। बाहर हवा चलती, भीतर देह फुकती थी। लीला कोठरी में बैठी एक किताब देख रही थी कि सीतासरन ने आकर कहा--- यहां तो बडी गर्मी है, बाहर बैठो।

लीला—यह गर्मी तो उन तानो से अच्छी है जो अभी सुनने पडेगे।

सीतासरन—आज अगर बोली तो मैं भी बिगड जाऊंगा।

लीला—तब तो मेरा घर में रहना भी मुश्किल हो जायेगा।

सीतासरन—बला से अलग ही रहेंगे !

लीला—मैं मर भी लाऊं तो भी अलग रहूं । वह जो कुछ कहती सुनती है, अपनी समझ से मेरे भले ही के लिए कहती-सुनती है। उन्हें मुझसे कोई दुश्मनी थोडे ही है। हां, हमें उनकी बातें अच्छी न लगें, यह दूसरी बात है।उन्होंने खुद वह सब कष्ट झेले है, जो वह मुझे झेलवाना चाहती है। उनके स्वास्थ्य पर उन कष्टो का जरा भी असर नही पडा। वह इस ६५ वर्ष की उम्र में मुझसे कहीं टांठी है। फिर उन्हें कैसे मालूम हो कि इन कष्टों से स्वास्थ्य बिगड सकता है।

सीतासरन ने उसके मुरझाये हुए मुख की ओर करुणा नेत्रों से देख कर कहा—तुम्हें इस घर में आकर बहुत दु:ख सहना पडा। यह घर तुम्हारे योग्य न था। तुमने पूर्व जन्म में जरूर कोई पाप किया होगा।

लीला ने पति के हाथो से खेलते हुए कहा—यहां न आती तो तुम्हारा प्रेम कैसे पाती ?

३

पांच साल गुजर गये। लीला दो बच्चों की मां हो गयी। एक लडका था, दूसरी लडकी । लडके का नाम जानकीसरन रखा गया और लडकी का नाम कामिनी। दोनो बच्चे घर को गुलजार किये रहते थे। लडकी लडकी दादा से हिली थी, लडका दादी से । दोनों शोख और शरीर थें। गाली दे बैठना, मुंह चिढा देना तो उनके लिए मामूली बात थी। दिन-भर खाते और आये दिन बीमार पडे रहते। लीला ने खुद सभी कष्ट सह लिये थे पर बच्चों में बुरी आदतों का पडना उसे बहुत बुरा मालूम होता था; किन्तु उसकी कौन सुनता था। बच्चों की माता होकर उसकी अब गणना ही न रही थी। जो कुछ थे बच्चे थे, वह कुछ न थी। उसे किसी बच्चे को डाटने का भी अधिकार न था, सांस फाड खाती थी।

सबसे बडी आपत्ति यह थी कि उसका स्वास्थ्य अब और भी खराब हो गया था। प्रसब काल में उसे वे भी अत्याचार सहने पडे जो अज्ञान, मूर्खता और अंध विश्वास ने सौर की रक्षा के लिए गढ रखे है। उस काल-कोठरी में, जहॉं न हवा का गुजर था, न प्रकाश का, न सफाई का, चारों और दुर्गन्ध, और सील और गन्दगी भरी हुई थी, उसका कोमल शरीर सूख गया। एक बार जो कसर रह गयी वह दूसरी बार पूरी हो गयी। चेहरा पीला पड गया, आंखे घंस गयीं। ऐसा मालूम होता, बदन में खून ही नही रहा। सूरत ही बदल गयी।

गर्मियों के दिन थे। एक तरफ आम पके, दूसरी तरफ खरबूजे । इन दोनो फलो की ऐसी अच्छी फसल कभी न हुई थी अबकी इनमें इतनी मिठास न जाने कहा से आयी थी कि कितना ही खाओ मन न भरे। संतसरन के इलाके से आम औरी खरबूजे के टोकरे भरे चले आते थे। सारा घर खूब उछल-उछल खाता था। बाबू साहब पुरानी हड्डी के आदमी थे। सबेरे एक सैकडे आमों का नाश्ता करते, फिर पसेरी-भर खरबूज चट कर जाते। मालकिन उनसे पीछे रहने वाली न थी। उन्होने तो एक वक्त का भोजन ही बन्द कर दिया। अनाज सडने वाली चीज नही। आज नही कल खर्च हो जायेगा। आम और खरबूजे तो एक दिन भी नही ठहर सकते। शुदनी थी और क्या। यों ही हर साल दोनों चीजों की रेल-पेल होती थी; पर किसी को कभी कोई शिकायत न होती थी। कभी पेट में गिरानी मालूम हुई तो हड की फंकी मार ली। एक दिन बाबू संतसरन के पेट में मीठा-मीठा दर्द होने लगा। आपने उसकी परवाह न की । आम खाने बैठ गये। सैकड़ा पूरा करके उठे ही थे कि कै हुई । गिर पडे फिर तो तिल-तिल करके पर कै और दस्त होने लगे। हैजा हो गया। शहर के

डाक्टर बुलाये गये, लेकिन आने के पहले ही बाबू साहब चल बसे थे। रोना-पीटना मच गया। संध्या होते-होते लाश घर से निकली। लोग दाह-क्रिया करके आधी रात को लौटे तो मालकिन को भी कै दस्त हो रहे थे। फिर दौड धूप शुरू हुई; लेकिन सूर्य निकलते-निकलते वह भी सिधार गयी। स्त्री-पुरूष जीवनपर्यंत एक दिन के लिए भी अलग न हुए थे। संसार से भी साथ ही साथ गये, सूर्यास्त के समय पति ने प्रस्थान किया, सूर्योदय के समय पत्नी ने ।

लेकिन मुशीबत का अभी अंत न हुआ था। लीला तो संस्कार की तैयारियों मे लगी थी; मकान की सफाई की तरफ किसी ने ध्यान न दिया। तीसरे दिन दोनो बच्चे दादा-दादी के लिए रोत-रोते बैठक में जा पंहुचे। वहां एक आले का खरबूजज कटा हुआ पडा था; दो-तीन कलमी आम भी रखे थे। इन पर मक्खियां भिनक रही थीं। जानकी ने एक तिपाई पर चढ कर दोनों चीजें उतार लीं और दोंनों ने मिलकर खाई। शाम होत-होते दोनों को हैजा हो गया और दोंनो मां-बाप को रोता छोड चल बसे। घर में अंधेरा हो गया। तीन दिन पहले जहां चारों तरफ चहल-पहल थी, वहां अब सन्नाटा छाया हुआ था, किसी के रोने की आवाज भी सुनायी न देती थी। रोता ही कौन ? ले-दे के कुल दो प्राणी रह गये थे। और उन्हें रोने की सुधि न थी।

४

लीला का स्वास्थ्य पहले भी कुछ अच्छा न था, अब तो वह और भी बेजान हो गयी। उठने-बैठने की शक्ति भी न रही। हरदम खोयी सी रहती, न कपडे-लत्ते की सुधि थी, न खाने-पीने की । उसे न घर से वास्ता था, न बाहर से । जहां बैठती, वही बैठी रह जाती। महीनों कपडे न बदलती, सिर में तेल न डालती बच्चे ही उसके प्राणो के आधार थे। जब वही न रहे तो मरना और जीना बराबर था। रात-दिन यही मनाया करती कि भगवान् यहां से ले चलो । सुख-दु:ख सब भुगत चुकी। अब सुख की लालसा नही है; लेकिन बुलाने से मौत किसी को आयी है ?

सीतासरन भी पहले तो बहुत रोया-धोया; यहां तक कि घर छोडकर भागा जाता था; लेकिन ज्यों-ज्यो दिन गुजरते थे बच्चों का शोक उसके दिल से मिटता था; संतान का दु:ख तो कुछ माता ही को होता है। धीरे-धीरे उसका जी संभल गया। पहले की भॉंति मित्रों के साथ हंसी-दिल्लगी होने लगी। यारों ने और भी चंग पर चढाया । अब घर का मालिक था, जो चाहे कर सकता था, कोई उसका हाथ रोकने वाला नही था। सैर’-सपाटे करने लगा। तो लीला को रोते देख उसकी आंखे सजग हो जाती थीं, कहां अब उसे उदास और शोक-मग्न देखकर झुंझला उठता। जिंदगी रोने ही के लिए तो नही है। ईश्वर ने लडके दिये थे, ईश्वर ने ही छीन लिये। क्या लडको के पीछे प्राण दे देना होगा ? लीला यह बातें सुनकर भौंचक रह जाती। पिता के मुंह से ऐसे शब्द निकल सकते है। संसार में ऐसे प्राणी भी है।

होली के दिन थे। मर्दाना में गाना-बजाना हो रहा था। मित्रों की दावत का भी सामान किया गया था । अंदर लीला जमींन पर पडी हुई रो रही थी त्याहोर के दिन उसे रोते ही कटते थें आज बच्चे बच्चे होते तो अच्छे- अच्छे कपडे पहने कैसे उछलते फिरते! वही न रहे तो कहां की तीज और कहां के त्योहार।

सहसा सीतासरन ने आकर कहा – क्या दिन भर रोती ही रहोगी ? जरा कपडे तो बदल डालो , आदमी बन जाओ । यह क्या तुमने अपनी गत बना रखी है ?

लीला—तुम जाओ अपनी महफिल मे बैठो, तुम्हे मेरी क्या फिक्र पडी है।

सीतासरन—क्या दुनिया में और किसी के लडके नही मरते ? तुम्हारे ही सिर पर मुसीबत आयी है ?

लीला—यह बात कौन नही जानता। अपना-अपना दिल ही तो है। उस पर किसी का बस है ?

सीतासरन मेरे साथ भी तो तुम्हारा कुछ कर्तव्य है ?

लीला ने कुतूहल से पति को देखा, मानो उसका आशय नही समझी। फिर मुंह फेर कर रोने लगी।

सीतासरन – मै अब इस मनहूसत का अन्त कर देना चाहता हूं। अगर तुम्हारा अपने दिल पर काबू नही है तो मेरा भी अपने दिल पर काबू नही है। मैं अब जिंदगी – भर मातम नही मना सकता।

लीला—तुम रंग-राग मनाते हो, मैं तुम्हें मना तो नही करती ! मैं रोती हूं तो क्यूं नही रोने देते।

सीतासरन—मेरा घर रोने के लिए नही है ?

लीला—अच्छी बात है, तुम्हारे घर में न रोउंगी।

5

लीला ने देखा, मेरे स्वामी मेरे हाथ से निकले जा रहे है। उन पर विषय का भूत सवार हो गया है और कोई समझाने वाला नहीं। वह अपने होश मे नही है। मैं क्या करुं, अगर मैं चली

जाती हूं तो थोडे ही दिनो में सारा ही घर मिट्टी में मिल जाएगा और इनका वही हाल होगा जो स्वार्थी मित्रो के चुंगल में फंसे हुए नौजवान रईसों का होता है। कोई कुलटा घर में आ जाएगी और इनका सर्वनाश कर देगी। ईश्वा ! मैं क्या करूं ? अगर इन्हें कोई बीमारी हो जाती तो क्या मैं उस दशा मे इन्हें छोडकर चली जाती ? कभी नही। मैं तन मन से इनकी सेवा-सुश्रूषा करती, ईश्वर से प्रार्थना करती, देवताओं की मनौतियां करती। माना इन्हें शारीरिक रोग नही है, लेकिन मानसिक रोग अवश्य है। आदमी रोने की जगह हंसे और हंसने की जगह रोये, उसके दीवाने होने में क्या संदेह है ! मेरे चले जाने से इनका सर्वनाश हो जायेगा। इन्हें बचाना मेरा धर्म है।

हां, मुझें अपना शोक भूल जाना होगा। रोऊंगी, रोना तो तकदीर में लिखा ही है—रोऊंगी, लेकिन हंस-हंस कर । अपने भाग्य से लडूंगी। जो जाते रहे उनके नाम के सिवा और कर ही क्या सकती हूं, लेकिन जो है उसे न जाने दूंगी। आ, ऐ टूटे हुए ह्रदय ! आज तेरे टुकडों को जमा करके एक समाधि बनाऊं और अपने शोक को उसके हवाले कर दूं। ओ रोने वाली आंखों, आओ, मेरे आसुंओं को अपनी विहंसित छटा में छिपा लो। आओ, मेरे आभूषणों, मैंने बहुत दिनों तक तुम्हारा अपमान किया है, मेरा अपराध क्षमा करो। तुम मेरे भले दिनो के साक्षी हो, तुमने मेरे साथ बहुत विहार किए है, अब इस संकट में मेरा साथ दो ; मगर देखो दगा न करना ; मेरे भेदों को छिपाए रखना।

पिछले पहर को पहफिल में सन्नाटा हो गया। हू-हा की आवाजें बंद हो गयी। लीला ने सोचा क्या लोग कही चले गये, या सो गये ? एकाएक सन्नाटा क्यों छा गया। जाकर दहलीज में खडी हो गयी और बैठक में झांककर देखा, सारी देह में एक ज्वाला-सी दौड गयी। मित्र लोग विदा हो गये थे। समाजियो का पता न था। केवल एक रमणी मसनद पर लेटी हुई थी और सीतासरन सामने झुका हुआ उससे बहुत धीरे-धीरे बातें कर रहा था। दोनों के चेहरों और आंखो से उनके मन के भाव साफ झलक रहे थे। एक की आंखों में अनुराग था, दूसरी की आंखो में कटाक्ष ! एक भोला-भोला ह्रदय एक मायाविनी रमणी के हाथों लुटा जाता था। लीला की सम्पत्ति को उसकी आंखों के सामने एक छलिनी चुराये जाती थी। लीला को ऐसा क्रोध आया कि इसी समय चलकर इस कुल्टा को आडे हाथों लूं, ऐसा दुत्कारूं वह भी याद करें, खडे-,खडे निकाल दूं। वह पत्नी भाव जो बहुत दिनो से सो रहा था, जाग उठा और विकल करने लगा। पर उसने जब्त किया। वेग में दौडती हुई तृष्णाएं अक्समात् न रोकी जा सकती थी। वह उलटे पांव भीतर लौट आयी और मन को शांत करके सोचने लगी—वह रूप रंग में, हाव-भाव में, नखरे-तिल्ले में उस दुष्टा की बराबरी नही कर सकती। बिलकुल चांद का टुकडा है, अंग-अंग में स्फूर्ति भरी हुई है, पोर-पोर में मद छलक रहा है। उसकी आंखों में कितनी तृष्णा है। तृष्णा नही, बल्कि ज्वाला ! लीला उसी वक्त आइने के सामने गयी । आज कई महीनो के बाद उसने आइने में अपनी सूरत देखी। उस मुख से एक आह निकल गयी। शोक न उसकी कायापलट कर दी थी। उस रमणी के सामने वह ऐसी लगती थी जैसे गुलाब के सामने जूही का फूल

६

सीतासरन का खुमार शाम को टूटा । आखें खुलीं तो सामने लीला को खडे मुस्करातेदेखा।उसकी अनोखी छवि आंखों में समा गई। ऐसे खुश हुए मानो बहुत दिनो के वियोग के बाद उससे भेंट हुई हो। उसे क्या मालूम था कि यह रुप भरने के लिए कितने आंसू बहाये है; कैशों मे यह फूल गूंथने के पहले आंखों में कितने मोती पिरोये है। उन्होनें एक नवीन प्रेमोत्साह से उठकर उसे गले लगा लिया और मुस्कराकर बोले—आज तो तुमने बडे-बडे शास्त्र सजा रखे है, कहां भागूं ?

लीला ने अपने ह्रदय की ओर उंगली दिखकर कहा –-यहा आ बैठो बहुत भागे फिरते हो, अब तुम्हें बांधकर रखूगीं । बाग की बहार का आनंद तो उठा चुके, अब इस अंधेरी कोठरी को भी देख लो।

सीतासरन ने जज्जित होकर कहा—उसे अंधेरी कोठरी मत कहो लीला वह प्रेम का मानसरोवर है !

इतने मे बाहर से किसी मित्र के आने की खबर आयी। सीताराम चलने लगे तो लीला ने हाथ उनका पकडकर हाथ कहा—मैं न जाने दूंगी।

सीतासरन-- अभी आता हूं।

लीला—मुझे डर है कहीं तुम चले न जाओ।

सीतासरन बाहर आये तो मित्र महाशय बोले –आज दिन भर सोते हो क्या ? बहुत खुश नजर आते हो। इस वक्त तो वहां चलने की ठहरी थी न ? तुम्हारी राह देख रही है।

सीतासरन—चलने को तैयार हूं, लेकिन लीला जाने नहीं देगीं।

मित्र—निरे गाउदी ही रहे। आ गए फिर बीवी के पंजे में ! फिर किस बिरते पर गरमाये थे ?

सीतासरन—लीला ने घर से निकाल दिया था, तब आश्रय ढूढता – फिरता था। अब उसने द्वार खोल दिये है और खडी बुला रही है।

मित्र—आज वह आनंद कहां ? घर को लाख सजाओ तो क्या बाग हो जायेगा ?

सीतासरन—भई, घर बाग नही हो सकता, पर स्वर्ग हो सकता है। मुझे इस वक्त अपनी क्षद्रता पर जितनी लज्जा आ रही है, वह मैं ही जानता हूं। जिस संतान शोक में उसने अपने शरीर को घुला डाला और अपने रूप-लावण्य को मिटा दिया उसी शोक को केवल मेरा एक इशारा पाकर उसने भुला दिया। ऐसा भुला दिया मानो कभी शोक हुआ ही नही ! मैं जानता हूं वह बडे से बडे कष्ट सह सकती है। मेरी रक्षा उसके लिए आवश्यक है। जब अपनी उदासीनता के कारण उसने मेरी दशा बिगडते देखी तो अपना सारा शोक भूल गयी। आज मैंने उसे अपने आभूषण पहनकर मुस्कराते हुंए देखा तो मेरी आत्मा पुलकित हो उठी । मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि वह स्वर्ग की देवी है और केवल मुझ जैसे दुर्बल प्राणी की रक्षा करने भेजी गयी है। मैने उसे कठोर शब्द कहे, वे अगर अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर भी मिल सकते, तो लौटा लेता। लीला वास्तव में स्वर्ग की देवी है!

आधार

सारे गाँव मे मथुरा का सा गठीला जवान न था। कोई बीस बरस की उमर थी । मसें भीग रही थी। गउएं चराता, दूध पीता, कसरत करता, कुश्ती लडता था और सारे दिन बांसुरी बजाता हाट मे विचरता था। ब्याह हो गया था, पर अभी कोई बाल-बच्चा न था। घर में कई हल की खेती थी, कई छोटे-बडे भाई थे। वे सब मिलचुलकर खेती-बारी करते थे। मथुरा पर सारे गाँव को गर्व था, जब उसे जॉंघिये-लंगोटे, नाल या मुग्दर के लिए रूपये-पैसे की जरूरत पडती तो तुरन्त दे दिये जाते थे। सारे घर की यही अभिलाषा थी कि मथुरा पहलवान हो जाय और अखाडे मे अपने सवाये को पछाडे। इस लाड – प्यार से मथुरा जरा टर्रा हो गया था। गायें किसी के खेत मे पडी है और आप अखाडे मे दंड लगा रहा है। कोई उलाहना देता तो उसकी त्योरियां बदल जाती। गरज कर कहता, जो मन मे आये कर लो, मथुरा तो अखाडा छोडकर हांकने न जायेंगे ! पर उसका डील-डौल देखकर किसी को उससे उलझने की हिम्मत न पडती । लोग गम खा जाते

गर्मियो के दिन थे, ताल-तलैया सूखी पडी थी। जोरों की लू चलने लगी थी। गाँव में कहीं से एक सांड आ निकला और गउओं के साथ हो लिया। सारे दिन गउओं के साथ रहता, रात को बस्ती में घुस आता और खूंटो से बंधे बैलो को सींगों से मारता। कभी-किसी की गीली दीवार को सींगो से खोद डालता, घर का कूडा सींगो से उडाता। कई किसानो ने साग-भाजी लगा रखी थी, सारे दिन सींचते-सींचते मरते थे। यह सांड रात को उन हरे-भरे खेतों में पहुंच जाता और खेत का खेत तबाह कर देता । लोग उसे डंडों से मारते, गाँव के बाहर भगा आते, लेकिन जरा देर में गायों में पहुंच जाता। किसी की अक्ल काम न करती थी कि इस संकट को कैसे टाला जाय। मथुरा का घर गांव के बीच मे था, इसलिए उसके खेतो को सांड से कोई हानि न पहुंचती थी। गांव में उपद्रव मचा हुआ था और मथुरा को जरा भी चिन्ता न थी।

आखिर जब धैर्य का अंतिम बंधन टूट गया तो एक दिन लोगों ने जाकर मथुरा को घेरा और बौले—भाई, कहो तो गांव में रहें, कहीं तो निकल जाएं । जब खेती ही न बचेगी तो रहकर क्या करेगें .? तुम्हारी गायों के पीछे हमारा सत्यानाश हुआ जाता है, और तुम अपने रंग में मस्त हो। अगर भगवान ने तुम्हें बल दिया है तो इससे दूसरो की रक्षा करनी चाहिए, यह नही कि सबको पीस कर पी जाओ । सांड तुम्हारी गायों के कारण आता है और उसे भगाना तुम्हारा काम है ; लेकिन तुम कानो में तेल डाले बैठे हो, मानो तुमसे कुछ मतलब ही नही।

मथुरा को उनकी दशा पर दया आयी। बलवान मनुष्य प्राय: दयालु होता है। बोला—अच्छा जाओ, हम आज सांड को भगा देंगे।

एक आदमी ने कहा—दूर तक भगाना, नही तो फिर लोट आयेगा।

मथुरा ने कंधे पर लाठी रखते हुए उत्तर दिया—अब लौटकर न आयेगा।

2

चिलचिलाती दोपहरी थी। मथुरा सांड को भगाये लिए जाता था। दोंनो पसीने से तर थे। सांड बार-बार गांव की ओर घूमने की चेष्टा करता, लेकिन मथुरा उसका इरादा ताडकर दूर ही से उसकी राह छेंक लेता। सांड क्रोध से उन्मत्त होकर कभी-कभी पीछे मुडकर मथुरा पर तोड करना चाहता लेकिन उस समय मथुरा सामाना बचाकर बगल से ताबड-तोड इतनी लाठियां जमाता कि सांड को फिर भागना पडता कभी दोनों अरहर के खेतो में दौडते, कभी झाडियों में । अरहर की खूटियों से मथुरा के पांव लहू-लुहान हो रहे थे, झाडियों में धोती फट गई थी, पर उसे इस समय सांड का पीछा करने के सिवा और कोई सुध न थी। गांव पर गांव आते थे और निकल जाते थे। मथुरा ने निश्चय कर लिया कि इसे नदी पार भगाये बिना दम न लूंगा। उसका कंठ सूख गया था और आंखें लाल हो गयी थी, रोम-रोम से चिनगारियां सी निकल रही थी, दम उखड गया था ; लेकिन वह एक क्षण के लिए भी दम न लेता था। दो ढाई घंटो के बाद जाकर नदी आयी। यही हार-जीत का फैसला होने वाला था, यही से दोनों खिलाडियों को अपने दांव-पेंच के जौहर दिखाने थे। सांड सोचता था, अगर नदी में उतर गया तो यह मार ही डालेगा, एक बार जान लडा कर लौटने की कोशिश करनी चाहिए। मथुरा सोचता था, अगर वह लौट पडा तो इतनी मेहनत व्यर्थ हो जाएगी और गांव के लोग मेरी हंसी उडायेगें। दोनों अपने – अपने घात में थे। सांड ने बहुत चाहा कि तेज दौडकर आगे निकल जाऊं और वहां से पीछे को फिरूं, पर मथुरा ने उसे मुडने का मौका न दिया। उसकी

जान इस वक्त सुई की नोक पर थी, एक हाथ भी चूका और प्राण भी गए, जरा पैर फिसला और फिर उठना नशीब न होगा। आखिर मनुष्य ने पशु पर विजय पायी और सांड को नदी में घुसने के सिवाय और कोई उपाय न सूझा। मथुरा भी उसके पीछे नदी मे पैठ गया और इतने डंडे लगाये कि उसकी लाठी टूट गयी।

३

अब मथुरा को जोरो से प्यास लगी। उसने नदी में मुंह लगा दिया और इस तरह हौंक-हौंक कर पीने लगा मानो सारी नदी पी जाएगा। उसे अपने जीवन में कभी पानी इतना अच्छा न लगा था और न कभी उसने इतना पानी पीया था। मालूम नही, पांच सेर पी गया या दस सेर लेकिन पानी गरम था, प्यास न बुंझी ; जरा देर में फिर नदी में मुंह लगा दिया और इतना पानी पीया कि पेट में सांस लेने की जगह भी न रही। तब गीली धोती कंधे पर डालकर घर की ओर चल दिया।

लेकिन दस की पांच पग चला होगा कि पेट में मीठा-मीठा दर्द होने लगा। उसने सोचा, दौड कर पानी पीने से ऐसा दर्द अकसर हो जाता है, जरा देर में दूर हो जाएगा। लेकिन दर्द बढने लगा और मथुरा का आगे जाना कठिन हो गया। वह एक पेड के नीचे बैठ गया और दर्द से बैचेन होकर जमीन पर लोटने लगा। कभी पेट को दबाता, कभी खडा हो जाता कभी बैठ जाता, पर दर्द बढता ही जाता था। अन्त में उसने जोर-जोर से कराहना और रोना शुरू किया; पर वहां कौन बैठा था जो, उसकी खबर लेता। दूर तक कोई गांव नही, न आदमी न आदमजात। बेचारा दोपहरी के सन्नाटे में तडप-तडप कर मर गया। हम कडे से कडा घाव सह सकते है लेकिन जरा सा-भी व्यतिक्रम नही सह सकते। वही देव का सा जवान जो कोसो तक सांड को भगाता चला आया था, तत्वों के विरोध का एक वार भी न सह सका। कौन जानता था कि यह दौड उसके लिए मौत की दौड होगी ! कौन जानता था कि मौत ही सांड का रूप धरकर उसे यों नचा रही है। कौरन जानता था कि जल जिसके बिना उसके प्राण ओठों पर आ रहे थे, उसके लिए विष का काम करेगा।

संध्या समय उसके घरवाले उसे ढूंढते हुए आये। देखा तो वह अनंत विश्राम में मग्न था।

४

एक महीना गुजर गया। गांववाले अपने काम-धंधे में लगे । घरवालों ने रो-धो कर सब्र किया; पर अभागिनी विधवा के आंसू कैसे पुंछते । वह हरदम रोती रहती। आंखे चांहे बन्द भी हो जाती, पर हृदय नित्य रोता रहता था। इस घर में अब कैसे निर्वाह होगा ? किस आधार पर जिऊंगी ? अपने लिए जीना या तो महात्माओं को आता है या लम्पटों ही को । अनूपा को यह कला क्या मालूम ? उसके लिए तो जीवन का एक आधार चाहिए था, जिसे वह अपना सर्वस्व समझे, जिसके लिए वह लिये, जिस पर वह घमंड करे । घरवालों को यह गवारा न था कि वह कोई दूसरा घर करे। इसमें बदनामी थी। इसके सिवाय ऐसी सुशील, घर के कामों में कुशल, लेन-देन के मामलो में इतनी चतुर और रंग रूप की ऐसी सराहनीय स्त्री का किसी दूसरे के घर पड जाना ही उन्हें असह्य था। उधर अनूपा के मैककवाले एक जगह बातचीत पक्की कर रहे थे। जब सब बातें तय हो गयी, तो एक दिन अनूपा का भाई उसे विदा कराने आ पहुंचा ।

अब तो घर में खलबली मची। इधर कहा गया, हम विदा न करेगें । भाई ने कहा, हम बिना विदा कराये मानेंगे नही। गांव के आदमी जमा हो गये, पंचायत होने लगी। यह निश्चय हुआ कि अनूपा पर छोड दिया जाय, जी चाहे रहे। यहां वालो को विश्वास था कि अनूपा इतनी जल्द दूसरा घर करने को राजी न होगी, दो-चार बार ऐसा कह भी चुकी थी। लेकिन उस वक्त जो पूछा गया तो वह जाने को तैयार थी। आखिर उसकी विदाई का सामान होने लगा। डोली आ गई। गांव-भर की स्त्रिया उसे देखने आयीं। अनूपा उठ कर अपनी सांस के पैरो में गिर पडी और हाथ जोडकर बोली—अम्मा, कहा-सुनाद माफ करना। जी में तो था कि इसी घर में पडी रहूं, पर भगवान को मंजूर नही है।

यह कहते-कहते उसकी जबान बन्द हो गई।

सास करूणा से विह्वल हो उठी। बोली—बेटी, जहां जाओं वहां सुखी रहो। हमारे भाग्य ही फूट गये नही तो क्यों तुम्हें इस घर से जाना पडता। भगवान का दिया और सब कुछ है, पर उन्होने जो नही दिया उसमें अपना क्या बस ; बस आज तुम्हारा देवर सयाना होता तो बिगडी बात बन जाती। तुम्हारे मन में बैठे तो इसी को अपना समझो : पालो-पोसो बडा हो जायेगा तो सगाई कर दूंगी।

यह कहकर उसने अपने सबसे छोटे लडके वासुदेव से पूछा—क्यों रे ! भौजाई से शादी करेगा ?

वासुदेव की उम्र पांच साल से अधिक न थी। अबकी उसका ब्याह होने वाला था। बातचीत हो चुकी थी। बोला—तब तो दूसरे के घर न जायगी न ?

मा—नही, जब तेरे साथ ब्याह हो जायगी तो क्यों जायगी ?

वासुदेव-- तब मैं करूंगा

मां—अच्छा, उससे पूछ, तुझसे ब्याह करेगी।

वासुदेव अनूप की गोद में जा बैठा और शरमाता हुआ बोला—हमसे ब्याह करोगी ?

यह कह कर वह हंसने लगा; लेकिन अनूप की आंखें डबडबा गयीं, वासुदेव को छाती से लगाते हुए बोली ---अम्मा, दिल से कहती हो ?

सास—भगवान् जानते है !

अनूपा—आज यह मेरे हो गये ?

सास—हां सारा गांव देख रहा है ।

अनूपा—तो भैया से कहला भैजो, घर जायें, मैं उनके साथ न जाऊंगी।

अनूपा को जीवन के लिए आधार की जरूरत थी। वह आधार मिल गया। सेवा मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है। सेवा ही उस के जीवन का आधार है।

अनूपा ने वासुदेव को लालन-पोषण शुरू किया। उबटन और तैल लगाती, दूध-रोटी मल-मल के खिलाती। आप तालाब नहाने जाती तो उसे भी नहलाती। खेत में जाती तो उसे भी साथ ले जाती। थौडे की दिनों में उससे हिल-मिल गया कि एक क्षण भी उसे न छोडता। मां को भूल गया। कुछ खाने को जी चाहता तो अनूपा से मांगता, खेल में मार खाता तो रोता हुआ अनूपा के पास आता। अनूपा ही उसे सुलाती, अनूपा ही जगाती, बीमार हो तो अनूपा ही गोद में लेकर बदलू वैध के घर जाती, और दवायें पिलाती।

गांव के स्त्री-पुरूष उसकी यह प्रेम तपस्या देखते और दांतो उंगली दबाते। पहले बिरले ही किसी को उस पर विश्वास था। लोग समझते थे, साल-दो-साल में इसका जी ऊब जाएगा और किसी तरफ का रास्ता लेगी; इस दुधमुंहे बालक के नाम कब तक बैठी रहेगी; लेकिन यह सारी आशंकाएं निमूर्ल निकलीं। अनूपा को किसी ने अपने व्रत से विचलित होते न देखा। जिस ह्रदय मे सेवा को स्रोत बह रहा हो—स्वाधीन सेवा का—उसमें वासनाओं के लिए कहां स्थान ? वासना का वार निर्मम, आशाहीन, आधारहीन प्राणियों पर ही होता है चोर की अंधेरे में ही चलती है, उजाले में नही।

वासुदेव को भी कसरत का शोक था। उसकी शक्ल सूरत मथुरा से मिलती-जुलती थी, डील-डौल भी वैसा ही था। उसने फिर अखाडा जगाया। और उसकी बांसुरी की तानें फिर खेतों में गूजने लगीं।

इस भाँति १३ बरस गुजर गये। वासुदेव और अनूपा में सगाई की तैयारी होने लगीं।

५

लेकिन अब अनूपा वह अनूपा न थी, जिसने १४ वर्ष पहले वासुदेव को पति भाव से देखा था, अब उस भाव का स्थान मातृभाव ने लिया था। इधर कुछ दिनों से वह एक गहरे सोच में डूबी रहती थी। सगाई के दिन ज्यो-ज्यों निकट आते थे, उसका दिल बैठा जाता था। अपने जीवन में इतने बडे परिवर्तन की कल्पना ही से उसका कलेजा दहक उठता था। जिसे बालक की भॉति पाला-पोसा, उसे पति बनाते हुए, लज्जा से उसका मुंख लाल हो जाता था।

द्वार पर नगाडा बज रहा था। बिरादरी के लोग जमा थे। घर में गाना हो रहा था ! आज सगाई की तिथि थी :

सहसा अनूपा ने जा कर सास से कहा—अम्मां मै तो लाज के मारे मरी जा रही हूं।

सास ने भौंचक्की हो कर पूछा—क्यों बेटी, क्या है ?

अनूपा—मैं सगाई न करूंगी।

सास—कैसी बात करती है बेटी ? सारी तैयारी हो गयी। लोग सुनेंगे तो क्या कहेगें ?

अनूपा—जो चाहे कहें, जिनके नाम पर १४ वर्ष बैठी रही उसी के नाम पर अब भी बैठी रहूंगी। मैंने समझा था मरद के बिना औरत से रहा न जाता होगा। मेरी तो भगवान ने इज्जत आबरू निबाह दी। जब नयी उम्र के दिन कट गये तो अब कौन चिन्ता है ! वासुदेव की सगाई कोई लडकी खोजकर कर दो। जैसे अब तक उसे पाला, उसी तरह अब उसके बाल-बच्चों को पालूंगी।

एक आंच की कसर

सारे नगर में महाशय यशोदानन्द का बखान हो रहा था। नगर ही में नही, समस्त प्रान्त में उनकी कीर्ति की जाती थी, समाचार पत्रों में टिप्पणियां हो रही थी, मित्रो से प्रशंसापूर्ण पत्रों का तांता लगा हुआ था। समाज-सेवा इसको कहते है ! उन्नत विचार के लोग ऐसा ही करते है। महाशय जी ने शिक्षित समुदाय का मुख उज्जवल कर दिया। अब कौन यह कहने का साहस कर सकता है कि हमारे नेता केवल बात के धनी है, काम के धनी नही है ! महाशय जी चाहते तो अपने पुत्र के लिए उन्हें कम से कम बीज हतार रूपये दहेज में मिलते, उस पर खुशामद घाते में ! मगर लाला साहब ने सिद्वांत के सामने धन की रत्ती बराबर परवा न की और अपने पुत्र का विवाह बिना एक पाई दहेज लिए स्वीकार किया। वाह ! वाह ! हिम्मत हो तो ऐसी हो, सिद्वांत प्रेम हो तो ऐसा हो, आदर्श-पालन हो तो ऐसा हो । वाह रे सच्चे वीर, अपनी माता के सच्चे सपूत, तूने वह कर दिखाया जो कभी किसी ने किया था। हम बडे गर्व से तेरे सामने मस्तक नवाते है।

महाशय यशोदानन्द के दो पुत्र थे। बडा लडका पढ लिख कर फाजिल हो चुका था। उसी का विवाह तय हो रहा था और हम देख चुके है, बिना कुछ दहेज लिये।

आज का तिलक था। शाहजहांपुर स्वामीदयाल तिलक ले कर आने वाले थे। शहर के गणमान्य सज्जनों को निमन्त्रण दे दिये गये थे। वे लोग जमा हो गये थे। महफिल सजी7 हुई थी। एक प्रवीण सितारिया अपना कौशल दिखाकर लोगो को मुग्ध कर रहा था। दावत को सामान भी तैयार था ? मित्रगण यशोदानन्द को बधाईयां दे रहे थे।

एक महाशय बोले—तुमने तो कमाल कर दिया !

दूसरे—कमाल ! यह कहिए कि झण्डे गाड दिये। अब तक जिसे देखा मंच पर व्याख्यान झाडते ही देखा। जब काम करने का अवसर आता था तो लोग दुम लगा लेते थे।

तीसरे—कैसे-कैसे बहाने गढे जाते है—साहब हमें तो दहेज से सख्त नफरत है यह मेरे सिद्वांत के विरुद्व है, पर क्या करुं क्या, बच्चे की अम्मीजान नहीं मानती। कोई अपने बाप पर फेंकता है, कोई और किसी खर्राट पर।

चौथे—अजी, कितने तो ऐसे बेहया है जो साफ-साफ कह देते है कि हमने लडके को शिक्षा – दीक्षा में जितना खर्च किया है, वह हमें मिलना चाहिए। मानो उन्होने यह रूपये उन्होन किसी बैंक में जमा किये थे।

पांचवें—खूब समझ रहा हूं, आप लोग मुझ पर छींटे उडा रहे है।
इसमें लडके वालों का ही सारा दोष है या लडकी वालों का भी कुछ है।

पहले—लडकी वालों का क्या दोष है सिवा इसके कि वह लडकी का बाप है।

दूसरे—सारा दोष ईश्वर का जिसने लडकियां पैदा कीं । क्यों ?

पांचवे—मैं चयह नही कहता। न सारा दोष लडकी वालों का हैं, न सारा दोष लडके वालों का। दोनों की दोषी है। अगर लडकी वाला कुछ न दे तो उसे यह शिकायत करने का कोई अधिकार नही है कि डाल क्यों नही लायें, सुंदर जोडे क्यों नही लाये, बाजे-गाजे पर धूमधाम के साथ क्यों नही आये ? बताइए !

चौथे—हां, आपका यह प्रश्न गौर करने लायक है। मेरी समझ में तो ऐसी दशा में लडकें के पिता से यह शिकायत न होनी चाहिए।

पांचवें---तो यों कहिए कि दहेज की प्रथा के साथ ही डाल, गहनें और जोडो की प्रथा भी त्याज्य है। केवल दहेज को मिटाने का प्रयत्न करना व्यर्थ है।

यशोदानन्द----यह भी Lame excuse[1] है। मैंने दहेज नही लिया है।, लेकिन क्या डाल-गहने ने ले जाऊंगा।

पहले---महाशय आपकी बात निराली है। आप अपनी गिनती हम दुनियां वालों के साथ क्यों करते हैं ? आपका स्थान तो देवताओं के साथ है।

दूसरा----20 हजार की रकम छोड दी ? क्या बात है।

१------थोथी दलील

यशोदानन्द---मेरा तो यह निश्चय है कि हमें सदैव principles [1] पर स्थिर रहना चाहिए। principal [2] के सामने money[3] की कोई value[4] नही है। दहेज की कुप्रथा पर मैंने खुद कोई व्याख्यान नही दिया, शायद कोई नोट तक नही लिखा। हां, conference[5] में इस प्रस्ताव को second[6] कर चुका हूं। मैं उसे तोडना भी चाहूं तो आत्मा न तोडने देगी। मैं सत्य कहता हूं, यह रूपये लूं तो मुझे इतनी मानसिक वेदना होगी कि शायद मैं इस आघात स बच ही न सकूं।

पांचवें---- अब की conference आपको सभापति न बनाये तो उसका घोर अन्याय है।

यशोदानन्द—मैंने अपनी duty [7] कर दीउसका recognition[8] हो या न हो, मुझे इसकी परवाह नही।

इतने में खबर हुई कि महाशय स्वामीदयाल आ पंहुचे । लोग उनका अभिवादन करने को तैयार हुए, उन्हें मसनद पर ला बिठाया और तिलक का संस्कार आरंम्भ हो गया। स्वामीदयाल ने एक ढाक के पत्तल पर नारियल, सुपारी, चावल पान आदि वस्तुएं वर के सामने रखीं। ब्राह्म्णों ने मंत्र पढें हवन हुआ और वर के माथे पर तिलक लगा दिया गया। तुरन्त घर की स्त्रियो ने मंगलाचरण गाना शुरू किया। यहां पहफिल में महाशय यशोदानन्द ने एक चौकी पर खडे होकर दहेज की कुप्रथा पर व्याख्यान देना शुरू किया। व्याख्यान पहले से लिखकर तैयार कर लिया गया था। उन्होनें दहेज की ऐतिहासिक व्याख्या की थी।

पूर्वकाल में दहेज का नाम भी न थ। महाशयों ! कोई जानता ही न था कि दहेज या ठहरोनी किस चिडिया का नाम है। सत्य मानिए, कोई जानता ही न था कि ठहरौनी है क्या चीज, पशु या पक्षी, आसमान में या जमीन में, खाने में या पीने में । बादशाही जमाने में इस प्रथा की बुंनियाद पडी। हमारे युवक सेनाओं में सम्मिलित होने लगे । यह वीर लोग थें, सेनाओं में जाना गर्व समझते थे। माताएं अपने दुलारों को अपने हाथ से शस्त्रों से सजा कर रणक्षेत्र भेजती थीं। इस भॉँति युवकों की संख्या कम होने लगी और लडकों का मोल-तोल शुरू हुआ। आज यह नौवत आ गयी है कि मेरी इस तुच्छ –महातुच्छ सेवा पर पत्रों में टिप्पणियां हो रही है मानों मैंने कोई असाधारण काम किया है। मै कहता हूं ; अगर आप संसार में जीवित रहना चाहते हो तो इस प्रथा क तुरन्त अन्त कीजिए।

१----सिद्वांतों । २----सिद्वांत 3-----धन । 4-----मूल्य ।
5--- सभा । 6---अनुमोदन । ७ कर्तव्य । ८----कदर ।

एक महाशय ने शंका की----क्या इसका अंत किये बिना हम सब मर जायेगें ?

यशोदानन्द-अगर ऐसा होता है तो क्या पूछना था, लोगो को दंड मिल जाता और वास्तव में ऐसा होना चाहिए। यह ईश्वर का अत्याचार है कि ऐसे लोभी, धन पर गिरने वाले, बुर्दा-फरोश, अपनी संतान का विक्रय करने वाले नराधम जीवित है। और समाज उनका तिरस्कार नही करता । मगर वह सब बुर्द-फरोश है------इत्यादि।

व्याख्यान बहुंतद लम्बा ओर हास्य भरा हुआ था। लोगों ने खूब वाह-वाह की । अपना वक्तव्य समाप्त करने के बाद उन्होने अपने छोटे लडके परमानन्द को, जिसकी अवस्था ७ वर्ष की थी, मंच पर खडा किया। उसे उन्होनें एक छोटा-सा व्याख्यान लिखकर दे रखा था। दिखाना चाहते थे कि इस कुल के छोटे बालक भी कितने कुशाग्र बुद्वि है। सभा समाजों में बालकों से व्याख्यान दिलाने की प्रथा है ही, किसी को कुतूहल न हुआ।बालक बडा सुन्दर, होनहार, हंसमुख था। मुस्कराता हुआ मंच पर आया और एक जेब से कागज निकाल कर बडे गर्व के साथ उच्च स्वर में पढने लगा------

प्रिय बंधुवर,

नमस्कार !

आपके पत्र से विदित होता है कि आपको मुझ पर विश्वास नही है। मैं ईश्वर को साक्षी करके धन आपकी सेवा में इतनी गुप्त रीति से पहुंचेगा कि किसी को लेशमात्र भी सन्देह न होगा । हां केवल एक जिज्ञासा करने की धृष्टता करता हूं। इस व्यापार को गुप्त रखने से आपको जो सम्मान और प्रतिष्ठा –लाभ होगा और मेरे निकटवर्ती में मेरी जो निंदा की जाएगी, उसके उपलक्ष्य में मेरे साथ क्या रिआयत होगी ? मेरा विनीत अनुरोध है कि २५ में से ५ निकालकर मेरे साथ न्याय किया जाय..........।

महाशय श्योदानन्द घर में मेहमानों के लिए भोजन परसने का आदेश करने गये थे। निकले तो यह बाक्य उनके कानों में पडा—२५ में से ५ मेरे साथ न्याय किया कीजिए ।‘ चेहरा फक हो गया, झपट कर लडके के पास गये, कागज उसके हाथ से छीन लिया और बौले--- नालायक, यह क्या पढ रहा है, यह तो

किसी मुवक्किल का खत है जो उसने अपने मुकदमें के बारें में लिखा था। यह तू कहां से उठा लाया, शैतान जा वह कागज ला, जो तुझे लिखकर दिया गया था।

एक महाशय-----पढने दीजिए, इस तहरीर में जो लुत्फ है, वह किसी दूसरी तकरीर में न होगा।

दूसरे---जादू वह जो सिर चढ के बोलें !

तीसरे—अब जलसा बरखास्त कीजिए । मैं तो चला।

चौथै—यहां भी चलतु हुए।

यशोदानन्द—बैठिए-बैठिए, पत्तल लगाये जा रहे है।

पहले—बेटा परमानन्द, जरा यहां तो आना, तुमने यह कागज कहां पाया ?

परमानन्द---बाबू जी ही तो लिखकर अपने मेज के अन्दर रख दिया था। मुझसे कहा था कि इसे पढना। अब नाहक मुझसे खफा रहे है।

यशोदानन्द---- वह यह कागज था कि सुअर ! मैंने तो मेज के ऊपर ही रख दिया था। तूने ड्राअर में से क्यों यह कागज निकाला ?

परमानन्द---मुझे मेज पर नही मिला ।

यशोदान्नद---तो मुझसे क्यों नही कहा, ड्राअर क्यों खोला ? देखो, आज ऐसी खबर लेता हूं कि तुम भी याद करोगे।

पहले यह आकाशवाणी है।

दूसरे----इस को लीडरी कहते है कि अपना उल्लू सीधा करो और नेकनाम भी बनो।

तीसरे----शरम आनी चाहिए। यह त्याग से मिलता है, धोखेधडी से नही।

चौथे---मिल तो गया था पर एक आंच की कसर रह गयी।

पांचवे---ईश्वर पांखंडियों को यों ही दण्ड देता है

यह कहते हुए लोग उठ खडे हुए। यशोदानन्द समझ गये कि भंडा फूट गया, अब रंग न जमेगा। बार-बार परमानन्द को कुपित नेत्रों से देखते थे और डंडा तौलकर रह जाते थे। इस शैतान ने आज जीती-जिताई बाजी खो दी, मुंह में कालिख लग गयी, सिर नीचा हो गया। गोली मार देने का काम किया है।

उधर रास्ते में मित्र-वर्ग यों टिप्पणियां करते जा रहे थे-------

एक ईश्वर ने मुंह में कैसी कालिमा लगायी कि हयादार होगा तो अब सूरत न दिखाएगा।

दूसरा--ऐसे-ऐसे धनी, मानी, विद्वान लोग ऐसे पतित हो सकते है। मुझे यही आश्चर्य है। लेना है तो खुले खजाने लो, कौन तुम्हारा हाथ पकडता है; यह क्या कि माल चुपके-चुपके उडाओं और यश भी कमाओं !

तीसरा--मक्कार का मुंह काला !

चौथा—यशोदानन्द पर दया आ रही है। बेचारी ने इतनी धूर्तता की, उस पर भी कलई खुल ही गयी। बस एक आंच की कसर रह गई।

माता का ह्रदय

माधवी की आंखों में सारा संसार अंधेरा हो रहा था । काई अपना मददगार दिखाई न देता था। कहीं आशा की झलक न थी। उस निर्धन घर में वह अकेली पडी रोती थी और कोई आंसू पोंछने वाला न था। उसके पति को मरे हुए २२ वर्ष हो गए थे। घर में कोई सम्पत्ति न थी। उसने न- जाने किन तकलीफों से अपने बच्चे को पाल-पोस कर बडा किया था। वही जवान बेटा आज उसकी गोद से छीन लिया गया था और छीनने वाले कौन थे ? अगर मृत्यु ने छीना होता तो वह सब्र कर लेती। मौत से किसी को द्वेष नहीं होता। मगर स्वार्थियों के हाथों यह अत्याचार असह्य हो रहा था। इस घोर संताप की दशा में उसका जी रह-रह कर इतना विफल हो जाता कि इसी समय चलूं और उस अत्याचारी से इसका बदला लूं जिसने उस पर निष्ठुर आघात किया है। मारूं या मर जाऊं। दोनों ही में संतोष हो जाएगा।

कितना सुंदर, कितना होनहार बालक था ! यही उसके पति की निशानी, उसके जीवन का आधार उसकी अम्र भर की कमाई थी। वही लडका इस वक्त जेल मे पडा न जाने क्या-क्या तकलीफें झेल रहा होगा ! और उसका अपराध क्या था ? कुछ नही। सारा मुहल्ला उस पर जान देता था। विधालय के अध्यापक उस पर जान देते थे। अपने-बेगाने सभी तो उसे प्यार करते थे। कभी उसकी कोई शिकायत सुनने में नहीं आयी।ऐसे बालक की माता होन पर उसे बधाई देती थी। कैसा सज्जन, कैसा उदार, कैसा परमार्थी ! खुद भूखो सो रहे मगर क्या मजाल कि द्वार पर आने वाले अतिथि को रूखा जबाब दे। ऐसा बालक क्या इस योग्य था कि जेल में जाता ! उसका अपराध यही था, वह कभी-कभी सुनने वालों को अपने दुखी भाइयों का दुखडा सुनाया करता था। अत्याचार से पीडित प्राणियों की मदद के लिए हमेशा तैयार रहता था। क्या यही उसका अपराध था?

दूसरो की सेवा करना भी अपराध है ? किसी अतिथि को आश्रय देना भी अपराध है ?

इस युवक का नाम आत्मानंद था। दुर्भाग्यवश उसमें वे सभी सद्‌गुण थे जो जेल का द्वार खोल देते है। वह निर्भीक था, स्पष्टवादी था, साहसी था, स्वदेश-प्रेमी था, नि:स्वार्थ था, कर्तव्यपरायण था। जेलल जाने के लिए इन्हीं गुणो की जरूरत है। स्वाधीन प्राणियों के लिए वे गुण स्वर्ग का द्वार खोल देते है, पराधीनो के लिए नरक के ! आत्मानंद के सेवा-कार्य ने, उसकी वक्तृतताओं ने और उसके राजनीतिक लेखो ने उसे सरकारी कर्मचारियों की नजरों में चढा दिया था। सारा पुलिस-विभाग नीचे से ऊपर तक उससे सर्तक रहता था, सबकी निगाहें उस पर लगीं रहती थीं। आखिर जिले में एक भयंकर डाके ने उन्हे इच्छित अवसर प्रदान कर दिया।

आत्मानंद के घर की तलाशी हुई, कुछ पत्र और लेख मिले, जिन्हें पुलिस ने डाके का बीजक सिद्व किया। लगभग २० युवकों की एक टोली फांस ली गयी। आत्मानंद इसका मुखिया ठहराया गया। शहादतें हुई । इस बेकारी और गिरानी के जमाने में आत्मा सस्ती और कौन वस्तु हो सकती है। बेचने को और किसी के पास रह ही क्या गया है। नाम मात्र का प्रलोभन देकर अच्छी-से-अच्छी शहादतें मिल सकती है, और पुलिस के हाथ तो निकृष्ट-से- निकृष्ट गवाहियां भी देववाणी का महत्व प्राप्त कर लेती है। शहादतें मिल गयीं, महीनें-भर तक मुकदमा क्या चला एक स्वांग चलता रहा और सारे अभियुक्तों को सजाएं दे दी गयीं। आत्मानंद को सबसे कठोर दंड मिला ८ वर्ष का कठिन कारावास। माधवी रोज कचहरी जाती; एक कोने में बैठी सारी कार्यवाई देखा करती।

मानवी चरित्र कितना दुर्बल, कितना नीच है, इसका उसे अब तक अनुमान भी न हुआ था। जब आत्मानंद को सजा सुना दी गयी और वह माता को प्रणाम करके सिपाहियों के साथ चला तो माधवी मूर्छित होकर गिर पडी । दो-चार सज्जनों ने उसे एक तांगे पर बैठाकर घर तक पहुंचाया। जब से वह होश में आयी है उसके ह्रदय में शूल-सा उठ रहा है। किसी तरह धैर्य नही होता । उस घोर आत्म-वेदना की दशा में अब जीवन का एक लक्ष्य दिखाई देता है और वह इस अत्याचार का बदला है।

अब तक पुत्र उसके जीवन का आधार था। अब शत्रुओं से बदला लेना ही उसके जीवन का आधार होगा। जीवन में उसके लिए कोई आशा न थी। इस अत्याचार का बदला लेकर वह अपना जन्म सफल समझगी। इस अभागे नर-पिशाच बगची ने जिस तरह उसे रक्त के आसूं रॅलाये हैं उसी भांति यह भी उस रूलायेगी। नारी-ह्रदय कोमल है लेकिन केवल अनुकूल दशा में: जिस दशा में पुरूष दूसरों को दबाता है, स्त्री शील और विनय की देवी हो जाती है। लेकिन जिसके हाथों में अपना सर्वनाश हो गया हो उसके प्रति स्त्री

की पुरूष से कम घ्ज़्णा ओर क्रोध नहीं होता अंतर इतना ही है कि पुरूष शास्त्रों से काम लेता है, स्त्री कौशल से ।

रा भीगती जाती थी और माधवी उठने का नाम न लेती थी। उसका दु:ख प्रतिकार के आवेश में विलीन होता जाता था। यहां तक कि इसके सिवा उसे और किसी बात की याद ही न रही। उसने सोचा, कैसे यह काम होगा? कभी घर से नहीं निकली।वैधव्य के २२ साल इसी घर कट गये लेकिन अब निकूलूंगीं। जबरदस्ती निकलूंगी, भिखारिन बनूगीं, टहलनी बनूगी, झूठ बोलूंगी, सब कुकर्म करूंगी। सत्कर्म के लिए संसार में स्थान नहीं। ईश्वर ने निराश होकर कदाचित् इसकी ओर से मुंह फेर लिया है। जभी तो यहां ऐसे-ऐसे अत्याचार होते है। और पापियों को दडं नहीं मिलता। अब इन्हीं हाथों से उसे दंड दूगी।

2

संध्या का समय था। लखनऊ के एक सजे हुए बंगले में मित्रों की महफिल जमी हुई थी। गाना-बजाना हो रहा था। एक तरफ आतशबाजियां रखी हुई थीं। दूसरे कमरे में मेजों पर खना चुना जा रहा था। चारों तरफ पुलिस के कर्मचारी नजर आते थें वह पुलिस के सुपरिंटेंडेंट मिस्टर बगीची का बंगला है। कई दिन हुए उन्होने एक मार्के का मुकदमा जीता था।अफसरो ने खुश होकर उनकी तरक्की की दी थी। और उसी की खुशी में यह उत्सव मनाया जा रहा था। यहां आये दिन ऐसे उत्सव होते रहते थे। मुफ्त के गवैये मिल जाते थे, मुफ्त की अतशबाजी; फल और मेवे और मिठाईयां आधे दामों पर बाजार से आ जाती थीं। और चट दावतो हो जाती थी। दूसरों के जहों सौ लगते, वहां इनका दस से काम चल जाता था। दौड़-धूप करने को सिपाहियों की फौज थी हीं। और यह मार्के का मुकदमा क्या था? वह जिसमें निरपराध युवकों को बनावटी शहादत से जेल में ठूस दिया गया था।

गाना समाप्त होने पर लोग भोजन करने बैठें। बेगार के मजदूर और पल्लेदार जो बाजार से दावत और सजावट के सामान लाये थे, रोते या दिल में गालियां देते चले गये थे; पर एक बुढ़िया अभी तक द्वार पर बैठी हुई थी। और अन्य मजदूरों की तरह वह भूनभुना कर काम न करती थी। हुक्म पाते ही खुश-दिल मजदूर की तरह हुक्म बजा लाती थी। यह मधवी थी, जो इस समय मजूरनी का वेष धारण करके अपना घतक संकल्प पूरा करने आयी। थी।

मेहमान चले गये। महफिल उठ गयी। दावत का समान समेट दिया गया। चारों ओर सन्नाटा छा गया; लेकिन माधवी अभी तक वहीं बैठी थी।

सहसा मिस्टर बागची ने पूछा—बुड्ढी तू यहां क्यों बैठी है? तुझे कुछ खाने को मिल गया?

माधवी—हां हुजूर, मिल गया। बागची—तो जाती क्यों नहीं?

माधवी—कहां जाऊं सरकार , मेरा कोई घर-द्वार थोड़े ही है। हुकुम हो तो यहीं पडी रहूं। पाव-भर आटे की परवस्ती हो जाय हुजुर।

बगची –नौकरी करेगी?2

माधवी—क्यो न करूंगी सरकार, यही तो चाहती हूं।

बागची—लड़का खिला सकती है?

माधवी—हां हजूर, वह मेरे मन का काम है।

बगची—अच्छी बात है। तु आज ही से रह। जा घर में देख, जो काम बतायें, वहा कर।

3

एक महीना गुजर गया। माधवी इतना तन-मन से काम करती है कि सारा घर उससे खुश है। बहू जी का मीजाज बहुम ही चिड़चिड़ा है। वह दिन-भर खाट पर पड़ी रहती है और बात-बात पर नौकरों पर झल्लाया करती है। लेकिन माधवी उनकी घुड़कियों को भी सहर्ष सह लेती है। अब तक मुश्किल से कोई दाई एक सप्ताह से अधिक ठहरी थी। माधवी का कलेजा है कि जली-कटी सुनकर भी मुख पर मैल नहीं आने देती।

मिस्टर बागची के कई लड़के हो चुके थे, पर यही सबसे छोटा बच्चा बच रहा था। बच्चे पैदा तो हृष्ट-पृष्ट होते, किन्तु जन्म लेते ही उन्हे एक –न एक रोग लग जाता था और कोई दो-चार महीनें, कोई साल भर जी कर चल देता था। मां-बाप दोनों इस शिशु पर प्राण देते थे। उसे जरा जुकाम भी हो तो दोनो विकल हो जाते। स्त्री-पुरूष दोनो शिक्षित थे, पर बच्चे की रक्षा के लिए टोना-टोटका , दुआता-बीच, जन्तर-मंतर एक से भी उन्हें इनकार न था।

माधवी से यह बालक इतना हिल गया कि एक क्षण के लिए भी उसकी गोद से न उतरता। वह कहीं एक क्षण के लिए चली जाती तो रो-रो कर दुनिया सिर पर उठा लेता। वह सुलाती तो सोता, वह दूध पिलाती तो पिता, वह खिलाती तो खेलता, उसी को वह अपनी माता समझता। माधवी के सिवा उसके लिए संसार में कोई अपना न था। बाप को तो वह दिन-भर में केवल दो-नार बार देखता और समझता यह कोई परदेशी आदमी है। मां आलस्य और कमजारी के मारे गोद में लेकर टहल न सकती थी। उसे वह अपनी रक्षा का भार संभालने के योग्य न समझता था, और नौकर-चाकर उसे गोद में ले लेते तो इतनी वेदर्दी से कि उसके कोमल अंगो मे पीड़ा होने लगती थी। कोई उसे ऊपर उछाल देता था, यहां तक कि अबोध शिशु का कलेजा मुंह को आ जाता था। उन सबों से वह डरता था। केवल माधवी थी जो उसके स्वभाव को समझती थी। वह जानती थी कि कब क्या करने से बालक प्रसन्न होगा। इसलिए बालक को भी उससे प्रेम था।

माधवी ने समझाया था, यहां कंचन बरसता होगा; लेकिन उसे देखकर कितना विस्मय हुआ कि बडी मुश्किल से महीने का खर्च पूरा पडता है। नौकरों से एक-एक पैसे का हिसाब लिया जाता था और बहुधा आवश्यक वस्तुएं भी टाल दी जाती थीं। एक दिन माधवी ने कहा—बच्चे के लिए कोई तेज गाड़ी क्यों नहीं मंगवा देतीं। गोद में उसकी बाढ़ मारी जाती है।

मिसेज बागजी ने कुठिंत होकर कहा—कहां से मगवां दूं? कम से कम ५०-६० रुपयं में आयेगी। इतने रुपये कहां है?

माधवी—मलकिन, आप भी ऐसा कहती है!

मिसेज बगची—झूठ नहीं कहती। बाबू जी की पहली स्त्री से पांच लड़कियां और है। सब इस समय इलाहाबाद के एक स्कूल में पढ रही हैं। बड़ी की उम्र १५-१६ वर्ष से कम न होगी। आधा वेतन तो उधार ही चला जाता है। फिर उनकी शादी की भी तो फिक्र है। पांचो के विवाह में कम-से-कम २५ हजार लगेंगे। इतने रूपये कहां से आयेगें। मै चिंता के मारे मरी जाती हूं। मुझे कोई दूसरी बीमारी नहीं है केवल चिंता का रोग है।

माधवी—घूस भी तो मिलती है।

मिसेज बागची—बूढ़ी, ऐसी कमाई में बरकत नहीं होती। यही क्यों सच पूछो तो इसी घूस ने हमारी यह दुर्गती कर रखी है। क्या जाने औरों को कैसे हजम होती है। यहां तो जब ऐसे रूपये आते है तो कोई-न-कोई नुकसान भी अवश्य हो जाता है। एक आता है तो दो लेकर जाता है। बार-बार मना करती हूं, हराम की कौड़ी घर मे न लाया करो, लेकिन मेरी कौन सुनता है।

बात यह थी कि माधवी को बालक से स्नेह होता जाता था। उसके अमंगल की कल्पना भी वह न कर सकती थी। वह अब उसी की नींद सोती और उसी की नींद जागती थी। अपने सर्वनाश की बात याद करके एक क्षण के लिए बागची पर क्रोध तो हो आता था और घाव फिर हरा हो जाता था; पर मन पर कुत्सित भावों का आधिपत्य न था। घाव भर रहा था, केवल ठेस लगने से दर्द हो जाता था। उसमें स्वंय टीस या जलन न थी। इस परिवार पर अब उसे दया आती थी। सोचती, बेचारे यह छीन-झपट न करें तो कैसे गुजर हो। लड़कियों का विवाह कहां से करेगें! स्त्री को जब देखो बीमार ही रहती है। उन पर बाबू जी को एक बोतल शराब भी रोज चाहिए। यह लोग स्वयं अभागे है। जिसके घर में ५-५क्वारी कन्याएं हों, बालक हो-हो कर मर जाते हों, घरनी दा बीमार रहती हो, स्वामी शराब का तली हो, उस पर तो यों ही ईश्वर का कोप है। इनसे तो मैं अभागिन ही अच्छी!

४

दुर्बल बलकों के लिए बरसात बुरी बला है। कभी खांसी है, कभी ज्वर, कभी दस्त। जब हवा में ही शीत भरी हो तो कोई कहां तक बचाये। माधवी एक दिन आपने घर चली गयी थी। बच्चा रोने लगा तो मां ने एक नौकर को दिया, इसे बाहर बहला ला। नौकर ने बाहर ले जाकर हरी-हरी घास पर बैठा दिया,। पानी बरस कर निकल गया था। भूमि गीली हो रही थी। कहीं-कहीं पानी भी जमा हो गया था। बालक को पानी में छपके लगाने से ज्यादा प्यारा और कौन खेल हो सकता है। खूब प्रेम से उमंग-उमंग कर पानी में लोटने लगां नौकर बैठा और आदमियों के साथ गप-शप करता घंटो गुजर गये। बच्चे ने खूब सर्दी खायी। घर आया तो उसकी नाक बह रही थीं रात को माधवी ने आकर देखा तो बच्चा खांस रहा था। आधी रात के करीब उसके गले से खुरखुर की आवाज निकलने लगी। माधवी का कलेजा सन से हो गया।

स्वामिनी को जगाकर बोली—देखो तो बच्चे को क्या हो गया है। क्या सर्दी-वर्दी तो नहीं लग गयी। हां, सर्दी ही मालूम होती है।

स्वामिनी हकबका कर उठ बैठी और बालक की खुरखराहट सुनी तो पांव तलेजमीन निकल गयीं यह भंयकर आवाज उसने कई बार सुनी थी और उसे खूब पहचानती थी। व्यग्र होकर बोली—जरा आग जलाओ। थोड़ा-सा तंग आ गयी। आज कहार जरा देर के लिए बाहर ले गया था, उसी ने सर्दी में छोड़ दिया होगा।

सारी रात दोंनो बालक को सेंकती रहीं। किसी तरह सवेरा हुआ। मिस्टर बागची को खबर मिली तो सीधे डाक्टर के यहां दौड़े। खैरियत इतनी थी कि जल्द एहतियात की गयी। तीन दिन में अच्छा हो गया; लेकिन इतना दुर्बल हो गया था कि उसे देखकर डर लगता था। सच पूछों तो माधवी की तपस्या ने बालक को बचायां। माता-पिता सो जाता, किंतु माधवी की आंखों में नींद न थी। खना-पीना तक भूल गयी। देवताओं की मनौतियां करती थी, बच्चे की बलाएं लेती थी, बिल्कुल पागल हो गयी थी, यह वही माधवी है जो अपने सर्वनाश का बदला लेने आयी थी। अपकार की जगह उपकार कर रही थी।विष पिलाने आयी थी, सुधा पिला रही थी। मनुष्य में देवता कितना प्रबल है!

प्रात:काल का समय था। मिस्टर बागची शिशु के झूले के पास बैठे हुए थे। स्त्री के सिर में पीड़ा हो रही थी। वहीं चारपाई पर लेटी हुई थी और माधवी समीप बैठी बच्चे के लिए दुध गरम कर रही थी। सहसा बागची ने कहा—बूढ़ी, हम जब तक जियेंगे तुम्हारा यश गयेंगे। तुमने बच्चे को जिला लियां

स्त्री—यह देवी बनकर हमारा कष्ट निवारण करने के लिए आ गयी। यह न होती तो न जाने क्या होता। बूढ़ी, तुमसे मेरी एक विनती है। यों तो मरना जीना प्रारब्ध के हाथ है, लेकिन अपना-अपना पौरा भी बड़ी चीज है। मैं अभागिनी हूं। अबकी तुम्हारे ही पुण्य-प्रताप से बच्चा संभल गया। मुझे डर लग रहा है कि ईश्वर इसे हमारे हाथ से छीन ने ले। सच कहतीं हूं बूढ़ी, मुझे इसका गोद में लेते डर लगता हैं। इसे तुम आज से अपना बच्चा समझो। तुम्हारा होकर शायद बच जाय। हम अभागे हैं, हमारा होकर इस पर नित्य कोई-न-कोई संकट आता रहेगा। आज से तुम इसकी माता हो जाआ। तुम इसे अपने घर ले जाओ। जहां चाहे ले जाओ, तुम्हारी गोंद मे देर मुझे फिर कोई चिंता न रहेगी। वास्तव में तुम्हीं इसकी माता हो, मै तो राक्षसी हूं।

माधवी—बहू जी, भगवान् सब कुशल करेगें, क्यों जी इतना छोटा करती हो?

मिस्टर बागची—नहीं-नहीं बूढ़ी माता, इसमें कोई हरज नहीं है। मै मस्तिष्क से तो इन बांतो को ढकोसला ही समझता हूं; लेकिन हृदय से इन्हें दूर नहीं कर सकता। मुझे स्वयं मेरी माता जीने एक धाबिन के हाथ बेच दिया था। मेरे तीन भाई मर चुके थे। मै जो बच गया तो मां-बाप ने समझा बेचने से ही इसकी जान बच गयी। तुम इस शिशु को पालो-पासो। इसे अपना पुत्र समझो। खर्च हम बराबर देते रहेंगें। इसकी कोई चिंता मत करना। कभी –कभी जब हमारा जी चाहेगा, आकर देख लिया करेगें। हमें विश्वास है कि तुम इसकी रक्षा हम लोंगों से कहीं अच्छी तरह कर सकती हो। मैं कुकर्मी हूं। जिस पेशे में हूं, उसमें कुकर्म किये बगैर काम नहीं चल सकता। झूठी शहादतें बनानी ही पड़ती है, निरपराधों को फंसाना ही पड़ता है। आत्मा इतनी दुर्बल हो गयी है कि प्रलोभन में पड़ ही जाता हूं। जानता ही हूं कि बुराई का फल बुरा ही होता है; पर परिस्थिति से मजबूर हूं। अगर न करूं तो आज नालायक बनाकर निकाल दिया जाऊं। अग्रेज हजारों भूलें करें, कोई नहीं पूछता। हिनदूस्तानी एक भूल भी कर बैठे तो सारे अफसर उसके सिर हो जाते है। हिंदुस्तानियत को दोष मिटाने केलिए कितनी ही ऐसी बातें करनी पड़ती है जिनका अग्रेंज के दिल में कभी ख्याल ही नहीं पैदा हो सकता। तो बोलो, स्वीकार करती हो?

माधवी गद्‌गद् होकर बोली—बाबू जी, आपकी इच्छा है तो मुझसे भी जो कुछ बन पडेगा, आपकी सेवा कर दूंगीं भगवान् बालक को अमर करें, मेरी तो उनसे यही विनती है।

माधवी को ऐसा मालूम हो रहा था कि स्वर्ग के द्‌वार सामने खुले हैं और स्वर्ग की देवियां अंचल फैला-फैला कर आशीर्वाद दे रही हैं, मानो उसके अंतस्तल में प्रकाश की लहरें-सी उठ रहीं है। स्नेहमय सेवा में कि कितनी शांति थी।

बालक अभी तक चादर ओढ़े सो रहा था। माधवी ने दूध गरम हो जाने पर उसे झूले पर से उठाया, तो चिल्ला पड़ी। बालक की देह ठंडी हो गयी थी और मुंह पर वह पीलापन आ गया था जिसे देखकर कलेजा हिल जाता है, कंठ से आह निकल आती है और आंखों से आसूं बहने लगते हैं। जिसने इसे एक बारा देखा है फिर कभी नहीं भूल सकता। माधवी ने शिशु को गोंद से चिपटा लिया, हालाकिं नीचे उतार दोना चाहिए था।

कुहराम मच गया। मां बच्चे को गले से लगाये रोती थी; पर उसे जमीन पर न सुलाती थी। क्या बातें हो रही रही थीं और क्या हो गया। मौत को धोखा दोने में आन्नद आता है। वह उस वक्त कभी नहीं आती जब लोग उसकी राह देखते होते हैं। रोगी जब संभल जाता है, जब वह पथ्य लेने लगता है, उठने-बैठने लगता है, घर-भर खुशियां मनाने लगता है, सबकों विश्वास हो जाता है कि संकट टल गया, उस वक्त घात में बैठी हुई मौत सिर पर आ जाती है। यही उसकी निठुर लीला है।

आशाओं के बाग लगाने में हम कितने कुशल हैं। यहां हम रक्त के बीज बोकर सुधा के फल खाते हैं। अग्नि से पौधों को सींचकर शीतल छांह में बैठते हैं। हां, मंद बुद्धि।

दिन भर मातम होता रहा; बाप रोता था, मां तड़पती थी और माधवी बारी-बारी से दोनो को समझाती थी।यदि अपने प्राण देकर वह बालक को जिला सकती तो इस समया अपना धन्य भाग समझती। वह अहित का संकल्प करके यहां आयी थी और आज जब उसकी मनोकामना पूरी हो गयी और उसे खुशी से फूला न समाना चाहिए था, उस उससे कहीं घोर पीड़ा हो रही थी जो अपने पुत्र की जेल यात्रा में हुई थी। रूलाने आयी थी और खुद राती जा रहीं थी। माता का हृदय दया का आगार है। उसे जलाओ तो उसमें दया की ही सुगंध निकलती है, पीसो तो दया का ही रस निकलता है। वह देवी है। विपत्ति की क्रूर लीलाएं भी उस स्वच्छ निर्मल स्रोत को मलिन नहीं कर सकतीं।

परीक्षा

नादिरशाह की सेना में दिल्ली के कत्लेआम कर रखा है। गलियों मे खून की नदियां बह रही हैं। चारो तरफ हाहाकार मचा हुआ है। बाजार बंद है। दिल्ली के लोग घरों के द्वार बंद किये जान की खैर मना रहे है। किसी की जान सलामत नहीं है। कहीं घरों में आग लगी हुई है, कहीं बाजार लुट रहा है; कोई किसी की फरियाद नहीं सुनता। रईसों की बेगमें महलो से निकाली जा रही है और उनकी बेहुरती की जाती है। ईरानी सिपाहियों की रक्त पिपासा किसी तरह नहीं बुझती। मानव हृदया की क्रूरता, कठोरता और पैशाचिकता अपना विकरालतम रूप धारण किये हुए है। इसी समया नादिर शाह ने बादशाही महल में प्रवेश किया।

दिल्ली उन दिनों भोग-विलास की केंद्र बनी हुई थी। सजावट और तकल्लुफ के सामानों से रईसों के भवन भरे रहते थे। स्त्रियों को बनाव-सिगांर के सिवा कोई काम न था। पुरूषों को सुख-भोग के सिवा और कोई चिन्ता न थी। राजीनति का स्थान शेरो-शायरी ने ले लिया था। समस्त प्रन्तो से धन खिंच-खिंच कर दिल्ली आता था। और पानी की भांति बहाया जाता था। वेश्याओं की चादीं थी। कहीं तीतरों के जोड़ होते थे, कहीं बटेरो और बुलबुलों की पलियां ठनती थीं। सारा नगर विलास –निद्रा में मग्न था। नादिरशाह शाही महल में पहुंचा तो वहां का सामान देखकर उसकी आंखें खुल गयीं। उसका जन्म दरिद्र-घर में हुआ था। उसका समसत जीवन रणभूमि में ही कटा था। भोग विलास का उसे चसका न लगा था। कहां रण-क्षेत्र के कष्ट और कहां यह सुख-साम्राज्य। जिधर आंख उठती थी, उधर से हटने का नाम न लेती थी।

संध्या हो गयी थी। नादिरशाह अपने सरदारों के साथ महल की सैर करता और अपनी पसंद की सचीजों को बटोरता हुआ दीवाने-खास में आकर कारचोबी मसनद पर बैठ गया, सरदारों को वहां से चले जाने का हुक्म दे दिया, अपने सबहथियार रख दिये और महल के दरागा को बुलाकर हुक्म दिया—मै शाही बेगमों का नाच देखना चाहता हूं। तुम इसी वक्त उनको सुंदर वस्त्राभूषणों से सजाकर मेरे सामने लाओं खबरदार, जरा भी देर न हो! मै कोई उज्र या इनकार नहीं सुन सकता।

२

दारोगा ने यह नादिरशाही हुक्म सुना तो होश उड़ गये। वह महिलएं जिन पर सूर्य की दृटि भी नहीं पड़ी कैसे इस मजलिस में आयेंगी! नाचने का तो कहना ही क्या! शाही बेगमों का इतना अपमान कभी न हुआ था। हा नरपिशाच! दिल्ली को खून से रंग कर भी तेरा चित्त शांत नहीं हुआ। मगर नादिरशाह के सम्मुख एक शब्द भी जबान से निकालना अग्नि के मुख में कूदना था! सिर झुकाकर आदाग लाया और आकर रनिवास में सब वेगमों को नादीरशाही हुक्म सुना दिया; उसके साथ ही यह इत्तला भी दे दी कि जरा भी ताम्मुल न हो , नादिरशाह कोई उज्र या हिला न सुनेगा! शाही खानदोन पर इतनी बड़ी विपत्ति कभी नहीं पड़ी; पर अस समय विजयी बादशाह की आज्ञा को शिरोधार्य करने के सिवा प्राण-रक्षा का अन्य कोई उपाय नहीं था।

बेगमों ने यह आज्ञा सुनी तो हतबुद्धि-सी हो गयीं। सारेरनिवास में मातम-सा छा गया। वह चहल-पहल गायब हो गयीं। सैकडो हृदयों से इस सहायता-याचक लोचनों से देखा, किसी ने खुदा और रसूल का सुमिरन किया; पर ऐसी एक महिला भी न थी जिसकी निगाह कटार या तलवार की तरफ गयी हो। यद्यपी इनमें कितनी ही बेगमों की नसों में राजपूतानियों का रक्त प्रवाहित हो रहा था; पर इंद्रियलिप्सा ने जौहर की पुरानी आग ठंडी कर दी थी। सुख-भोग की लालसा आत्म सम्मान का सर्वनाश कर देती है। आपस में सलाह करके मर्यादा की रक्षा का कोई उपाया सोचने की मुहलत न थी। एक-एक पल भाग्य का निर्णय कर रहा था। हताश का निर्णय कर रहा था। हताश होकर सभी ललपाओं ने पापी के सम्मुख जाने का निश्चय किया। आंखों से आसूं जारी थे, अश्रु-सिंचित नेत्रों में सुरमा लगाया जा रहा था और शोक-व्यथित हृदयां पर सुगंध का लेप किया जा रहा था। कोई केश गुंथतीं थी, कोई मांगो में मोतियों पिरोती थी। एक भी ऐसे पक्के इरादे की स्त्री न थी, जो इश्वर पर अथवा अपनी टेक पर, इस आज्ञा का उल्लंघन करने का साहस कर सके।

एक घंटा भी न गुजरने पाया था कि बेगमात पूरे-के-पूरे, आभूषणों से जगमगातीं, अपने मुख की कांति से बेले और गुलाब की कलियों को लजातीं, सुगंध की लपटें उड़ाती, छमछम करती हुई दीवाने-खास में आकर दनादिरशाह के सामने खड़ी हो गयीं।

३

नादिर शाह ने एक बार कनखियों से परियों के इस दल को देखा और तब मसनद की टेक लगाकर लेट गया। अपनी तलवार और कटार सामने रख दी। एक क्षण में उसकी आंखें झपकने लगीं। उसने एक अगड़ाई ली और करवट बदल ली। जरा देर में उसके खर्राटों की अवाजें सुनायी देने लगीं। ऐसा जान पड़ा कि गहरी निद्रा में मग्न हो गया है। आध घंटे तक वह सोता रहा और बेगमें ज्यों की त्यों सिर निचा किये दीवार के चित्रों की भांति खड़ी रहीं। उनमें दो-एक महिलाएं जो ढीठ थीं, घूघंट की ओट से नादिरशाह को देख भी रहीं थीं और आपस में दबी जबान में कानाफूसी कर रही थीं—कैसा भंयकर स्वरूप है! कितनी रणोन्मत आंखें है! कितना भारी शरीर है! आदमी काहे को है, देव है।

सहसा नादिरशाह की आंखें खुल गई परियों का दल पूर्ववत् खड़ा था। उसे जागते देखकर बेगमों ने सिर नीचे कर लिये और अंग समेट कर भेड़ो की भांति एक दूसरे से मिल गयीं। सबके दिल धड़क रहे थे कि अब यह जालिम नाचने-गाने को कहेगा, तब कैसे होगा! खुदा इस जालिम से समझे! मगर नाचा तो न जायेगा। चाहे जान ही क्यों न जाय। इससे ज्यादा जिल्लत अब न सही जायगी।

सहसा नादिरशाह कठोर शब्दों में बोला—ऐ खुदा की बंदियो, मैने तुम्हारा इम्तहान लेने के लिए बुलाया था और अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि तुम्हारी निसबत मेरा जो गुमान था, वह हर्फ-ब-हर्फ सच निकला। जब किसी कौम की औरतों में गैरत नहीं रहती तो वह कौम मुरदा हो जाती है।

देखना चाहता था कि तुम लोगों में अभी कुछ गैरत बाकी है या नहीं। इसलिए मैने तुम्हें यहां बुलाया था। मै तुमहारी बेहुरमली नहीं करना चाहता था। मैं इतना ऐश का बंदा नहीं हूं , वरना आज भेड़ो के गल्ले चाहता होता। न इतना हवसपरस्त हूं, वरना आज फारस में सरोद और सितार की तानें सुनाता होता, जिसका मजा मै हिंदुस्तानी गाने से कहीं ज्यादा उठा सकता हूं। मुझे सिर्फ तुम्हारा इम्तहान लेना था। मुझे यह देखकर सचा मलाल हो रहा है कि तुममें गैरत का जौहर बाकी न रहा। क्या यह मुमकिन न था कि तुम मेरे हुक्म को पैरों तले कुचल देतीं? जब तुम यहां आ गयीं तो मैने तुम्हें एक और मौका दिया। मैने नींद का बहाना किया। क्या यह मुमकिन न था कि तुममें से कोई खुदा की बंदी इस कटार को उठाकर मेरे जिगर में चुभा देती। मै कलामेपाक की कसम खाकर कहता हूं कि तुममें से किसी को कटार पर हाथ रखते देखकर मुझे बेहद खुशी होती, मै उन नाजुक हाथों के सामने गरदन झुका देता! पर अफसोस है कि आज तैमूरी खानदान की एक बेटी भी यहां ऐसी नहीं निकली जो अपनी हुरमत बिगाड़ने पर हाथ उठाती! अब यह सल्लतनत जिंदा नहीं रह सकती। इसकी हसती के दिन गिने हुए हैं। इसका निशान बहुत जल्द दुनिया से मिट जाएगा। तुम लोग जाओ और हो सके तो अब भी सल्तनत को बचाओ वरना इसी तरह हवस की गुलामी करते हुए दुनिया से रुखसत हो जाओगी।

तेंतर

आखिर वही हुआ जिसकी आंशका थी; जिसकी चिंता में घर के सभी लोग और विषेशत: प्रसूता पड़ी हुई थी। तीनो पुत्रो के पश्चात् कन्या का जन्म हुआ। माता सौर में सूख गयी, पिता बाहर आंगन में सूख गये, और की वृद्ध माता सौर द्वार पर सूख गयी। अनर्थ, महाअनर्थ भगवान् ही कुशल करें तो हो? यह पुत्री नहीं राक्षसी है। इस अभागिनी को इसी घर में जाना था! आना था तो कुछ दिन पहले क्यों न आयी। भगवान् सातवें शत्रु के घर भी तेंतर का जन्म न दें।

पिता का नाम था पंड़ित दामोदरदत्त। शिक्षित आदमी थे। शिक्षा-विभाग ही में नौकर भी थे; मगर इस संस्कार को कैसे मिटा देते, जो परम्परा से हृदय में जमा हुआ था, कि तीसरे बेटे की पीठ पर होने वाली कन्या अभागिनी होती है, या पिता को लेती है या पिता को, या अपने कों। उनकी वृद्धा माता लगी नवजात कन्या को पानी पी-पी कर कोसने, कलमुंही है, कलमुही! न जाने क्या करने आयी हैं यहां। किसी बांझ के घर जाती तो उसके दिन फिर जाते!

दामोदरदत्त दिल में तो घबराये हुए थे, पर माता को समझाने लगे—अम्मा तेंतर-बेंतर कुछ नहीं, भगवान् की इच्छा होती है, वही होता है। ईश्वर चाहेंगे तो सब कुशल ही होगा; गानेवालियों को बुला लो, नहीं लोग कहेंगे, तीन बेटे हुए तो कैसे फूली फिरती थीं, एक बेटी हो गयी तो घर में कुहराम मच गया।

माता—अरे बेटा, तुम क्या जानो इन बातों को, मेरे सिर तो बीत चुकी हैं, प्राण नहीं में समाया हुआ हैं तेंतर ही के जन्म से तुम्हारे दादा का देहांत हुआ। तभी से तेंतर का नाम सुनते ही मेरा कलेजा कांप उठता है।

दामोदर—इस कष्ट के निवारण का भी कोई उपाय होगा?

माता—उपाय बताने को तो बहुत हैं, पंडित जी से पूछो तो कोई-न-कोई उपाय बता देंगे; पर इससे कुछ होता नहीं। मैंने कौन-से अनुष्ठान नहीं किये, पर पंडित जी की तो मुट्ठियां गरम हुईं, यहां जो सिर पर पड़ना था, वह पड़ ही गया। अब टके के पंडित रह गये हैं, जजमान मरे या जिये उनकी बला से, उनकी दक्षिणा मिलनी चाहिए। (धीरे से) लकड़ी दुबली-पतली भी नहीं है। तीनों लकड़ों से हृष्ट-पुष्ट है। बड़ी-बड़ी आंखे है, पतले-पतले लाल-लाल ओंठ हैं, जैसे गुलाब की पत्ती। गोरा-चिट्टा रंग हैं, लम्बी-सी नाक। कलमुही नहलाते समय रोयी भी नहीं, टुकुरटुकुर ताकती रही, यह सब लच्छन कुछ अच्छे थोड़े ही है।

दामोदरदत्त के तीनों लड़के सांवले थे, कुछ विशेष रूपवान भी न थे। लड़की के रूप का बखान सुनकर उनका चित्त कुछ प्रसन्न हुआ। बोले—अम्मा जी, तुम भगवान् का नाम लेकर गानेवालियों को बुला भेजों, गाना-बजाना होने दो। भाग्य में जो कुछ हैं, वह तो होगा ही।

माता-जी तो हुलसता नहीं, करूं क्या?

दामोदर—गाना न होने से कष्ट का निवारण तो होगा नहीं, कि हो जाएगा? अगर इतने सस्ते जान छूटे तो न कराओ गान।

माता—बुलाये लेती हूं बेटा, जो कुछ होना था वह तो हो गया। इतने में दाई ने सौर में से पुकार कर कहा—बहूजी कहती हैं गानावाना कराने का काम नहीं है।

माता—भला उनसे कहो चुप बैठी रहे, बाहर निकलकर मनमानी करेंगी, बारह ही दिन हैं बहुत दिन नहीं है; बहुत इतराती फिरती थी—यह न करूंगी, वह न करूंगी, देवी क्या हैं, मरदों की बातें सुनकर वही रट लगाने लगी थीं, तो अब चुपके से बैठती क्यो नहीं। मैं तो तेंतर को अशुभ नहीं मानतीं, और सब बातों में मेमों की बराबरी करती हैं तो इस बात में भी करे।

यह कहकर माता जी ने नाइन को भेजा कि जाकर गानेवालियों को बुला ला, पड़ोस में भी कहती जाना।

सवेरा होते ही बड़ा लड़का सो कर उठा और आंखे मलता हुआ जाकर दादी से पूछने लगा—बड़ी अम्मा, कल अम्मा को क्या हुआ?

माता—लड़की तो हुई है।

बालक खुशी से उछलकर बोला—ओ-हो-हो पैजनियां पहन-पहन कर छुन-छुन चलेगी, जरा मुझे दिखा दो दादी जी?

माता—अरे क्या सौर में जायगा, पागल हो गया है क्या?

लड़के की उत्सुकता न मानीं। सौर के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया और बोला—अम्मा जरा बच्ची को मुझे दिखा दो।

दाई ने कहा—बच्ची अभी सोती है।

बालक—जरा दिखा दो, गोद में लेकर।

दाई ने कन्या उसे दिखा दी तो वहां से दौड़ता हुआ अपने छोटे भाइयें के पास पहुंचा और उन्हें जगा-जगा कर खुशखबरी सुनायी।

एक बोला—नन्हीं-सी होगी।

बड़ा—बिलकुल नन्हीं सी! जैसी बड़ी गुड़िया! ऐसी गोरी है कि क्या किसी साहब की लड़की होगी। यह लड़की मैं लूंगा।

सबसे छोटा बोला—अमको बी दिका दो।

तीनों मिलकर लड़की को देखने आये और वहां से बगलें बजाते उछलते-कूदते बाहर आये।

बड़ा—देखा कैसी है!

मंझला—कैसे आंखें बंद किये पड़ी थी।

छोटा—हमें हमें तो देना।

बड़ा—खूब द्वार पर बारात आयेगी, हाथी, घोड़े, बाजे आतशबाजी। मंझला और छोटा ऐसे मग्न हो रहे थे मानो वह मनोहर दृश्य आंखो के सामने है, उनके सरल नेत्र मनोल्लास से चमक रहे थे।

मंझला बोला—फुलवारियां भी होंगी।

छोटा—अम बी पूल लेंगे!

२

छठी भी हुई, बरही भी हुई, गाना-बजाना, खाना-पिलाना-देना-दिलाना सब-कुछ हुआ; पर रस्म पूरी करने के लिए, दिल से नहीं, खुशी से नहीं। लड़की दिन-दिन दुर्बल और अस्वस्थ होती जाती थी। मां उसे दोनों वक्त अफीम खिला देती और बालिका दिन और रात को नशे में बेहोश पड़ी रहती। जरा भी नशा उतरता तो भूख से विकल होकर रोने लगती! मां कुछ ऊपरी दूध पिलाकर अफीम खिला देती। आश्चर्य की बात तो यह थी कि अब की उसकी छाती में दूध नहीं उतरा। यों भी उसे दूध दे से उतरता था; पर लड़कों की बेर उसे नाना प्रकार की दूधवर्द्धक औषधियां खिलायी जाती, बार-बार शिशु को छाती से लगाया जाता, यहां तक कि दूध उतर ही आता था; पर अब की यह आयोजनाएं न की गयीं। फूल-सी बच्ची कुम्हलाती जाती थी। मां तो कभी उसकी ओर ताकती भी न थी। हां, नाइन कभी चुटकियां बजाकर चुमकारती तो शिशु के मुख पर ऐसी दयनीय, ऐसी करूण बेदना अंकित दिखायी देती कि वह आंखें पोंछती हुई चली जाती थी। बहु से कुछ कहने-सुनने का साहस न पड़ता। बड़ा लड़का सिद्धु बार-बार कहता—अम्मा, बच्ची को दो तो बाहर से खेला लाऊं। पर मां उसे झिड़क देती थी।

तीन-चार महीने हो गये। दामोदरदत्त रात को पानी पीने उठे तो देखा कि बालिका जाग रही है। सामने ताख पर मीठे तेल का दीपक जल रहा था, लड़की टकटकी बांधे उसी दीपक की ओर देखती थी, और अपना अंगूठा चूसने में मग्न थी। चुभ-चुभ की आवाज आ रही थी। उसका मुख मुरझाया हुआ था, पर वह न रोती थी न हाथ-पैर फेंकती थी, बस अंगूठा पीने में ऐसी मग्न थी मानों उसमें सुधा-रस भरा हुआ है। वह माता के स्तनों की ओर मुंह भी नहीं फेरती थी, मानो उसका उन पर कोई अधिकार है नहीं, उसके लिए वहां कोई आशा नहीं। बाबू साहब को उस पर दया आयी। इस बेचारी का मेरे घर जन्म लेने में क्या दोष है? मुझ पर या इसकी माता पर कुछ भी पड़े, उसमें इसका क्या अपराध है? हम कितनी निर्दयता कर रहे हैं कि कुछ कल्पित अनिष्ट के कारण इसका इतना तिरस्कार कर रहे है। मानों कि कुछ अमंगल हो भी जाय तो क्या उसके भय से इसके प्राण ले लिये जायेंगे। अगर अपराधी है तो मेरा प्रारब्ध है। इस नन्हें-से बच्चे के प्रति हमारी कठोरता क्या ईश्वर को अच्छी लगती होगी? उन्होनें उसे गोद में उठा लिया और उसका मुख चूमने लगे। लड़की को कदाचित् पहली बार सच्चे स्नेह का ज्ञान हुआ। वह हाथ-पैर उछाल कर 'गूं-गूं' करने लगी और दीपक की ओर हाथ फैलाने लगी। उसे जीवन-ज्योति-सी मिल गयी।

प्रात:काल दामोदरदत्त ने लड़की को गोद में उठा लिया और बाहर लाये। स्त्री ने बार-बार कहा—उसे पड़ी रहने दो। ऐसी कौन-सी बड़ी सुन्दर है, अभागिन रात-दिन तो प्राण खाती रहती हैं, मर भी नहीं जाती कि जान छूट जाय; किंतु दामोदरदत्त ने न माना। उसे बाहर लाये और अपने बच्चों के साथ बैठकर खेलाने

लगे। उनके मकान के सामने थोड़ी-सी जमीन पड़ी हुई थी। पड़ोस के किसी आदमी की एकबकरी उसमें आकर चरा करती थी। इस समय भी वह चर रही थी। बाबू साहब ने बड़े लड़के से कहा—सिद्धू जरा उस बकरी को पकड़ो, तो इसे दूध पिलायें, शायद भूखी है बेचारी! देखो, तुम्हारी नन्हीं-सी बहन है न? इसे रोज हवा में खेलाया करो।

सिद्धु को दिल्लगी हाथ आयी। उसका छोटा भाई भी दौड़ा। दोनो ने घेर कर बकरी को पकड़ा और उसका कान पकड़े हुए सामने लाये। पिता ने शिशु का मुंह बकरी थन में लगा दिया। लड़की चुबलाने लगी और एक क्षण में दूध की धार उसके मुंह में जाने लगी, मानो टिमटिमाते दीपक में तेल पड़ जाये। लड़की का मुंह खिल उठा। आज शायद पहली बार उसकी क्षुधा तृप्त हुई थी। वह पिता की गोद में हुमक-हुमक कर खेलने लगी। लड़कों ने भी उसे खूब नचाया-कुदाया।

उस दिन से सिद्धु को मनोंरजन का एक नया विषय मिल गया। बालकों को बच्चों से बहुत प्रेम होता है। अगर किसी घोंसनले में चिड़िया का बच्चा देख पायं तो बार-बार वहां जायेंगे। देखेंगें कि माता बच्चे को कैसे दाना चुगाती है। बच्चा कैसे चोंच खोलता हैं। कैसे दाना लेते समय परों को फड़फड़ाकर कर चें-चें करता है। आपस में बड़े गम्भीर भाव से उसकी चरचा करेंगे, उपने अन्य साथियों को ले जाकर उसे दिखायेंगे। सिद्धू ताक में लगा देता, कभी दिन में दो-दो तीन-तीन बा पिलाता। बकरी को भूसी चोकर खिलाकार ऐसा परचा लिया कि वह स्वयं चोकर के लोभ से चली आती और दूध देकर चली जाती। इस भांति कोई एक महीना गुजर गया, लड़की हृष्ट-पुष्ट हो गयी, मुख पुष्प के समान विकसित हो गया। आंखें जग उठीं, शिशुकाल की सरल आभा मन को हरने लगी।

माता उसको देख-देख कर चकित होती थी। किसी से कुछ कह तो न सकती; पर दिल में आशंका होती थी कि अब वह मरने की नहीं, हमीं लोगों के सिर जायेगी। कदाचित् ईश्वर इसकी रक्षा कर रहे हैं, जभी तो दिन-दिन निखरती आती है, नहीं, अब तक ईश्वर के घर पहुंच गयी होती।

३

मगर दादी माता से कहीं जयादा चिंतित थी। उसे भ्रम होने लगा कि वह बच्चे को खूब दूध पिला रही हैं, सांप को पाल रही है। शिशु की ओर आंख उठाकर भी न देखती। यहां तक कि एक दिन कह बैठी—लड़की का बड़ा छोह करती हो? हां भाई, मां हो कि नहीं, तुम न छोह करोगी, तो करेगा कौन?

‘अम्मा जी, ईश्वर जानते हैं जो मैं इसे दूध पिलाती होऊं?’

‘अरे तो मैं मना थोड़े ही करती हूं, मुझे क्या गरज पड़ी है कि मुफ्त में अपने ऊपर पाप लूं, कुछ मेरे सिर तो जायेगी नहीं।’

‘अब आपको विश्वास ही न आये तो क्या करें?’

‘मुझे पागल समझती हो, वह हवा पी-पी कर ऐसी हो रही है?’

‘भगवान् जाने अम्मा, मुझे तो अचरज होता है।’

बहू ने बहुत निर्दोषिता जतायी; किंतु वृद्धा सास को विश्वास न आया। उसने समझा, वह मेरी शंका को निर्मूल समझती है, मानों मुझे इस बच्ची से कोई बैर है। उसके मन में यह भाव अंकुरित होने लगा कि इसे कुछ हो जोये तब यह समझे कि मैं झूठ नहीं कहती थी। वह जिन प्राणियों को अपने प्राणों से भी अधिक समझती थीं। उन्हीं लोगों की अमंगल कामना करने लगी, केवल इसलिए कि मेरी शंकाएं सत्य हा जायं। वह यह तो नहीं चाहती थी कि कोई मर जाय; पर इतना अवश्य चाहती थी कि किसी के बहाने से मैं चेता दूं कि देखा, तुमने मेरा कहा न माना, यह उसी का फल है। उधर सास की ओर से ज्यो-ज्यों यह द्वेष-भाव प्रकट होता था, बहू का कन्या के प्रति स्नेह बढ़ता था। ईश्वर से मनाती रहती थी कि किसी भांति एक साल कुशल से कट जाता तो इनसे पूछती। कुछ लड़की का भोला-भाला चेहरा, कुछ अपने पति का प्रेम-वात्सल्य देखकर भी उसे प्रोत्साहन मिलता था। विचित्र दशा हो रही थी, न दिल खोलकर प्यार ही कर सकती थी, न सम्पूर्ण रीति से निर्दय होते ही बनता था। न हंसते बनता था न रोते।

इस भांति दो महीने और गुजर गये और कोई अनिष्ट न हुआ। तब तो वृद्धा सासव के पेट में चूहें दौड़ने लगे। बहू को दो-चार दिन ज्वर भी नहीं जाता कि मेरी शंका की मर्यादा रह जाये। पुत्र भी किसी दिन पैरगाड़ी पर से नहीं गिर पड़ता, न बहू के मैके ही से किसी के स्वर्गवास की सुनावनी आती है। एक दिन दामोदरदत्त ने खुले तौर पर कह भी दिया कि अम्मा, यह सब ढकोसला है, तेंतेर लड़कियां क्या दुनिया में होती ही नहीं, तो सब के सब मां-बाप मर ही जाते है? अंत में उसने अपनी शंकाओं को यथार्थ सिद्ध करने

की एक तरकीब सोच निकाली। एक दिन दामोदरदत्त स्कूल से आये तो देखा कि अम्मा जी खाट पर अचेत पड़ी हुई हैं, स्त्री अंगीठी में आग रखे उनकी छाती सेंक रही हैं और कोठरी के द्वार और खिड़कियां बंद है। घबरा कर कहा—अम्मा जी, क्या दशा है?

स्त्री—दोपहर ही से कलेजे में एक शूल उठ रहा है, बेचारी बहुत तड़फ रही है।

दामोदर—मैं जाकर डॉक्टर साहब को बुला लाऊं न.? देर करने से शायद रोग बढ़ जाय। अम्मा जी, अम्मा जी कैसी तबियत है?

माता ने आंखे खोलीं और कराहते हुए बोली—बेटा तुम आ गये?

अब न बचूंगी, हाय भगवान्, अब न बचूंगी। जैसे कोई कलेजे में बरछी चुभा रहा हो। ऐसी पीड़ा कभी न हुई थी। इतनी उम्र बीत गयी, ऐसी पीड़ा कभी न हुई।

स्त्री—वह कलमुही छोकरी न जाने किस मनहूस घड़ी में पैदा हुई।

सास—बेटा, सब भगवान करते है, यह बेचारी क्या जाने! देखो मैं मर जाऊं तो उसे कश्ट मत देना। अच्छा हुआ मेरे सिर आयीं किसी कके सिर तो जाती ही, मेरे ही सिर सही। हाय भगवान, अब न बचूंगी।

दामोदर—जाकर डॉक्टर बुला लाऊं? अभ्भी लौटा आता हूं।

माता जी को केवल अपनी बात की मर्यादा निभानी थी, रूपये न खच्र कराने थे, बोली—नहीं बेटा, डॉक्टर के पास जाकर क्या करोगे? अरे, वह कोई ईश्वर है। डॉक्टर के पास जाकर क्या करोगें? अरे, वह कोई ईश्वर है। डॉक्टर अमृत पिला देगा, दस-बीस वह भी ले जायेगा! डॉक्टर-वैद्य से कुछ न होगा। बेटा, तुम कपड़े उतारो, मेरे पास बैठकर भागवत पढ़ो। अब न बचूंगी। अब न बचूंगी, हाय राम!

दामोदर—तेंतर बुरी चीज है। मैं समझता था कि ढकोसला है।

स्त्री—इसी से मैं उसे कभी नहीं लगाती थी।

माता—बेटा, बच्चों को आराम से रखना, भगवान तुम लोगों को सुखी रखें। अच्छा हुआ मेरे ही सिर गयी, तुम लोगों के सामने मेरा परलोक हो जायेगा। कहीं किसी दूसरे के सिर जाती तो क्या होता राम! भगवान् ने मेरी विनती सुन ली। हाय! हाय!!

दामोदरदत्त को निश्चय हो गया कि अब अम्मा न बचेंगी। बड़ा दु:ख हुआ। उनके मन की बात होती तो वह मां के बदले तेंतर को न स्वीकार करते। जिस जननी ने जन्म दिया, नाना प्रकार के कष्ट झेलकर उनका पालन-पोषण किया, अकाल वैधव्य को प्राप्त होकर भी उनकी शिक्षा का प्रबंध किया, उसके सामने एक दुधमुहीं बच्ची का कया मूल्य था, जिसके हाथ का एक गिलास पानी भी वह न जानते थे। शोकातुर हो कपड़े उतारे और मां के सिरहाने बैठकर भागवत की कथा सुनाने लगे।

रात को बहू भोजन बनाने चली तो सास से बोली—अम्मा जी, तुम्हारे लिए थोड़ा सा साबूदाना छोड़ दूं?

माता ने व्यंग्य करके कहा—बेटी, अन्य बिना न मारो, भला साबूदाना मुझसे खया जायेगा; जाओं, थोड़ी पूरियां छान लो। पड़े-पड़े जो कुछ इच्छा होगी, खा लूंगी, कचौरियां भी बना लेना। मरती हूं तो भोजन को तरस-तरस क्यों मरूं। थोड़ी मलाई भी मंगवा लेना, चौक की हो। फिर थोड़े खाने आऊंगी बेटी। थोड़े-से केले मंगवा लेना, कलेजे के दर्द में केले खाने से आराम होता है।

भोजन के समय पीड़ा शांत हो गयी; लेकिन आध घंटे बाद फिर जोर से होने लगी। आधी रात के समय कहीं जाकर उनकी आंख लगी। एक सप्ताह तक उनकी यही दशा रही, दिन-भर पड़ी कराहा करतीं बस भोजन के समय जरा वेदना कम हो जाती। दामोदरदत्त सिरहाने बैठे पंखा झलते और मातृवियोग के आगत शोक से रोते। घर की महरी ने मुहल्ले-भर में एक खबर फैला दी; पड़ोसिनें देखने आयीं, तो सारा इलजाम बालिका के सिर गया।

एक ने कहा—यह तो कहो बड़ी कुशल हुई कि बुढ़िया के सिर गयी; नहीं तो तेंतर मां-बाप दो में से एक को लेकर तभी शांत होती है। दैव न करे कि किसी के घर तेंतर का जन्म हो।

दूसरी बोली—मेरे तो तेंतर का नाम सुनते ही रोयें खड़े हो जाते है। भगवान् बांझ रखे पर तेंतर का जन्म न दें।

एक सप्ताह के बाद वृद्धा का कष्ट निवारण हुआ, मरने में कोई कसर न थी, वह तो कहों पुरूखाओं का पुण्य-प्रताप था। ब्राह्मणों को गोदान दिया गया। दुर्गा-पाठ हुआ, तब कहीं जाके संकट कटा।

नैराश्य

बाज आदमी अपनी स्त्री से इसलिए नाराज रहते हैं कि उसके लड़कियां ही क्यों होती हैं, लड़के क्यों नहीं होते। जानते हैं कि इनमें स्त्री को दोष नहीं है, या है तो उतना ही जितना मेरा, फिर भी जब देखिए स्त्री से रूठे रहते हैं, उसे अभागिनी कहते हैं और सदैव उसका दिल दुखाया करते हैं। निरुपमा उन्ही अभागिनी स्त्रियों में थी और घमंडीलाल त्रिपाठी उन्हीं अत्याचारी पुरुषों में। निरुपमा के तीन बेटियां लगातार हुई थीं और वह सारे घर की निगाहों से गिर गयी थी। सास-ससुर की अप्रसन्नता की तो उसे विशेष चिंता न थी, वह पुराने जमाने के लोग थे, जब लड़कियां गरदन का बोझ और पूर्वजन्मों का पाप समझी जाती थीं। हां, उसे दु:ख अपने पतिदेव की अप्रसन्नता का था जो पढ़े-लिखे आदमी होकर भी उसे जली-कटी सुनाते रहते थे। प्यार करना तो दूर रहा, निरुपमा से सीधे मुंह बात न करते, कई-कई दिनों तक घर ही में न आते और आते तो कुछ इस तरह खिंचे-तने हुए रहते कि निरुपमा थर-थर कांपती रहती थी, कहीं गरज न उठें। घर में धन का अभाव न था; पर निरुपमा को कभी यह साहस न होता था कि किसी सामान्य वस्तु की इच्छा भी प्रकट कर सके। वह समझती थी, मैं यथार्थ में अभागिनी हूं, नहीं तो भगवान् मेरी कोख में लड़कियां ही रचते। पति की एक मृदु मुस्कान के लिए, एक मीठी बात के लिए उसका हृदय तड़प कर रह जाता था। यहां तक कि वह अपनी लड़कियों को प्यार करते हुए सकुचाती थी कि लोग कहेंगे, पीतल की नथ पर इतना गुमान करती है। जब त्रिपाठी जी के घर में आने का समय होता तो किसी-न-किसी बहाने से वह लड़कियों को उनकी आंखों से दूर कर देती थी। सबसे बड़ी विपत्ति यह थी कि त्रिपाठी जी ने धमकी दी थी कि अब की कन्या हुई तो घर छोड़कर निकल जाऊंगा, इस नरक में क्षण-भर न ठहरूंगा। निरुपमा को यह चिंता और भी खाये जाती थी।

वह मंगल का व्रत रखती थी, रविवार, निर्जला एकादसी और न जाने कितने व्रत करती थी। स्नान-पूजा तो नित्य का नियम था; पर किसी अनुष्ठान से मनोकामना न पूरी होती थी। नित्य अवहेलना, तिरस्कार, उपेक्षा, अपमान सहते-सहते उसका चित्त संसार से विरक्त होता जाता था। जहां कान एक मीठी बात के लिए, आंखें एक प्रेम-दृष्टि के लिए, हृदय एक आलिंगन के लिए तरस कर रह जाये, घर में अपनी कोई बात न पूछे, वहां जीवन से क्यों न अरुचि हो जाय?

एक दिन घोर निराशा की दशा में उसने अपनी बड़ी भावज को एक पत्र लिखा। एक-एक अक्षर से असह्य वेदना टपक रही थी। भावज ने उत्तर दिया—तुम्हारे भैया जल्द तुम्हें विदा कराने जायेंगे। यहां आजकल एक सच्चे महात्मा आये हुए हैं जिनका आर्शीवाद कभी निष्फल नहीं जाता। यहां कई संतानहीन स्त्रियां उनक आर्शीवाद से पुत्रवती हो गयीं। पूर्ण आशा है कि तुम्हें भी उनका आर्शीवाद कल्याणकारी होगा।

निरुपमा ने यह पत्र पति को दिखाया। त्रिपाठी जी उदासीन भाव से बोले—सृष्टि-रचना महात्माओं के हाथ का काम नहीं, ईश्वर का काम है।

निरुपमा—हां, लेकिन महात्माओं में भी तो कुछ सिद्धि होती है।

घमंडीलाल—हां होती है, पर ऐसे महात्माओं के दर्शन दुर्लभ हैं।

निरुपमा—मैं तो इस महात्मा के दर्शन करुंगी।

घमंडीलाल—चली जाना।

निरुपमा—जब बांझिनों के लड़के हुए तो मैं क्या उनसे भी गयी-गुजरी हूं।

घमंडीलाल—कह तो दिया भाई चली जाना। यह करके भी देख लो। मुझे तो ऐसा मालूम होता है, पुत्र का मुख देखना हमारे भाग्य में ही नहीं है।

2

कई दिन बाद निरुपमा अपने भाई के साथ मैके गयी। तीनों पुत्रियां भी साथ थीं। भाभी ने उन्हें प्रेम से गले लगाकर कहा, तुम्हारे घर के आदमी बड़े निर्दयी हैं। ऐसी गुलाब –फूलों की-सी लड़कियां पाकर भी तकदीर को रोते हैं। ये तुम्हें भारी हों तो मुझे दे दो। जब ननद और भावज भोजन करके लेटीं तो निरुपमा ने पूछा—वह महात्मा कहां रहते हैं?

भावज—ऐसी जल्दी क्या है, बता दूंगी।

निरुपमा—है नगीच ही न?

भावज—बहुत नगीच। जब कहोगी, उन्हें बुला दूंगी।

निरुपमा—तो क्या तुम लोगों पर बहुत प्रसन्न हैं?

भावज—दोनों वक्त यहीं भोजन करते हैं। यहीं रहते हैं।

निरुपमा—जब घर ही में वैद्य तो मरिये क्यों? आज मुझे उनके दर्शन करा देना।

भावज—भेंट क्या दोगी?

निरुपमा—मैं किस लायक हूं?

भावज—अपनी सबसे छोटी लड़की दे देना।

निरुपमा—चलो, गाली देती हो।

भावज—अच्छा यह न सही, एक बार उन्हें प्रेमालिंगन करने देना।

निरुपमा—चलो, गाली देती हो।

भावज—अच्छा यह न सही, एक बार उन्हें प्रेमालिंगन करने देना।

निरुपमा—भाभी, मुझसे ऐसी हंसी करोगी तो मैं चली आऊंगी।

भावज—वह महात्मा बड़े रसिया हैं।

निरुपमा—तो चूल्हे में जायं। कोई दुष्ट होगा।

भावज—उनका आर्शीवाद तो इसी शर्त पर मिलेगा। वह और कोई भेंट स्वीकार ही नहीं करते।

निरुपमा—तुम तो यों बातें कर रही हो मानो उनकी प्रतिनिधि हो।

भावज—हां, वह यह सब विषय मेरे ही द्वारा तय किया करते हैं। मैं भेंट लेती हूं। मैं ही आर्शीवाद देती हूं, मैं ही उनके हितार्थ भोजन कर लेती हूं।

निरुपमा—तो यह कहो कि तुमने मुझे बुलाने के लिए यह हीला निकाला है।

भावज—नहीं, उनके साथ ही तुम्हें कुछ ऐसे गुर दूंगी जिससे तुम अपने घर आराम से रहा।

इसके बाद दोनों सखियों में कानाफूसी होने लगी। जब भावज चुप हुई तो निरुपमा बोली—और जो कहीं फिर क्या ही हुई तो?

भावज—तो क्या? कुछ दिन तो शांति और सुख से जीवन कटेगा। यह दिन तो कोई लौटा न लेगा। पुत्र हुआ तो कहना ही क्या, पुत्री हुई तो फिर कोई नयी युक्ति निकाली जायेगी। तुम्हारे घर के जैसे अक्ल के दुश्मनों के साथ ऐसी ही चालें चलने से गुजारा है।

निरुपमा—मुझे तो संकोच मालूम होता है।

भावज—त्रिपाठी जी को दो-चार दिन में पत्र लिख देना कि महात्मा जी के दर्शन हुए और उन्होंने मुझे वरदान दिया है। ईश्वर ने चाहा तो उसी दिन से तुम्हारी मान-प्रतिष्ठा होने लगी। घमंडी दौड़े हुए आयेंगे और तम्हारे ऊपर प्राण निछावर करेंगे। कम-से-कम साल भर तो चैन की वंशी बजाना। इसके बाद देखी जायेगी।

निरुपमा—पति से कपट करूं तो पाप न लगेगा?

भावज—ऐसे स्वार्थियों से कपट करना पुण्य है।

3

तीन चार महीने के बाद निरुपमा अपने घर आयी। घमंडीलाल उसे विदा कराने गये थे। सलहज ने महात्मा जी का रंग और भी चोखा कर दिया। बोली—ऐसा तो किसी को देखा नहीं कि इस महात्मा जी ने वरदान दिया हो और वह पूरा न हो गया हो। हां, जिसका भाग्य फूट जाये उसे कोई क्या कर सकता है।

घमंडीलाल प्रत्यक्ष तो वरदान और आर्शीवाद की उपेक्षा ही करते रहे, इन बातों पर विश्वास करना आजकल संकोचजनक मालूम होता ह; पर उनके दिल पर असर जरूर हुआ।

निरुपमा की खातिरदारियां होनी शुरू हुईं। जब वह गर्भवती हुई तो सबके दिलों में नयी-नयी आशाएं हिलोरें लेने लगी। सास जो उठते गाली और बैठते व्यंग्य से बातें करती थीं अब उसे पान की तरह फेरती—बेटी, तुम रहने दो, मैं ही रसोई बना लूंगी, तुम्हारा सिर दुखने लगेगा। कभी निरुपमा कलसे का पानी या चारपाई उठाने लगती तो सास दौड़ती—बहू,रहने दो, मैं आती हूं, तुम कोई भारी चीज मत उठाया करा। लड़कियों की बात और होती है, उन पर किसी बात का असर नहीं होता, लड़के तो गर्भ ही में मान करने लगते हैं। अब निरुपमा के लिए दूध का उठौना किया गया, जिससे बालक पुष्ट और गोरा हो। घमंडी वस्त्राभूषणों पर उतारू हो गये। हर महीने एक-न-एक नयी चीज लाते। निरुपमा का जीवन इतना सुखमय कभी न था। उस समय भी नहीं जब नवेली वधू थी।

महीने गुजरने लगे। निरूपमा को अनुभूत लक्षणों से विदित होने लगा कि यह कन्या ही है; पर वह इस भेद को गुप्त रखती थी। सोचती, सावन की धूप है, इसका क्या भरोसा जितनी चीज धूप में सुखानी हो सुखा लो, फिर तो घटा छायेगी ही। बात-बात पर बिगड़ती। वह कभी इतनी मानशीला न थी। पर घर में कोई चूं तक न करता कि कहीं बहू का दिल न दुखे, नहीं बालक को कष्ट होगा। कभी-कभी निरुपमा केवल घरवालों को जलाने के लिए अनुष्ठान करती, उसे उन्हें जलाने में मजा आता था। वह सोचती, तुम स्वार्थियों को जितना जलाऊं उतना अच्छा! तुम मेरा आदर इसलिए करते हो न कि मैं बच्च जनूंगी जो तुम्हारे कुल का नाम चलायेगा। मैं कुछ नहीं हूं, बालक ही सब-कुछ है। मेरा अपना कोई महत्व नहीं, जो कुछ है वह बालक के नाते। यह मेरे पति हैं! पहले इन्हें मुझसे कितना प्रेम था, तब इतने संसार-लोलुप न हुए थे। अब इनका प्रेम केवल स्वार्थ का स्वांग है। मैं भी पशु हूं जिसे दूध के लिए चारा-पानी दिया जाता है। खैर, यही सही, इस वक्त तो तुम मेरे काबू में आये हो! जितने गहने बन सकें बनवा लूं, इन्हें तो छीन न लोगे।

इस तरह दस महीने पूरे हो गये। निरुपमा की दोनों ननदें ससुराल से बुलायी गयीं। बच्चे के लिए पहले ही सोने के गहने बनवा लिये गये, दूध के लिए एक सुन्दर दुधार गाय मोल ले ली गयी, घमंडीलाल उसे हवा खिलाने को एक छोटी-सी सेजगाड़ी लाये। जिस दिन निरूपमा को प्रसव-वेदना होने लगी, द्वार पर पंडित जी मुहूर्त देखने के लिए बुलाये गये। एक मीरशिकार बंदूक छोड़ने को बुलाया गया, गायनें मंगल-गान के लिए बटोर ली गयीं। घर से तिल-तिल कर खबर मंगायी जाती थी, क्या हुआ? लेडी डॉक्टर भी बुलायी गयीं। बाजे वाले हुक्म के इंतजार में बैठे थे। पामर भी अपनी सारंगी लिये 'जच्चा मान करे नंदलाल सों' की तान सुनाने को तैयार बैठा था। सारी तैयारियां; सारी आशाएं, सारा उत्साह समारोह एक ही शब्द पर अवलम्बि था। ज्यों-ज्यों देर होती थी लोगों में उत्सुकता बढ़ती जाती थी। घमंडीलाल अपने मनोभावों को छिपाने के लिए एक समाचार –पत्र देख रहे थे, मानो उन्हें लड़का या लड़की दोनों ही बराबर हैं। मगर उनके बूढ़े पिता जी इतने सावधान न थे। उनकी पीछें खिली जाती थीं, हंस-हंस कर सबसे बात कर रहे थे और पैसों की एक थैली को बार-बार उछालते थे।

मीरशिकार ने कहा—मालिक से अबकी पगड़ी दुपट्टा लूंगा।

पिताजी ने खिलकर कहा—अबे कितनी पगड़ियां लेगा? इतनी बेभाव की दूंगा कि सर के बाल गंजे हो जायेंगे।

पामर बोला—सरकार अब की कुछ जीविका लूं।

पिताजी खिलकर बोले—अबे कितनी खायेगा; खिला-खिला कर पेट फाड़ दूंगा।

सहसा महरी घर में से निकली। कुछ घबरायी-सी थी। वह अभी कुछ बोलने भी न पायी थी कि मीरशिकार ने बन्दूक फैर कर ही तो दी। बन्दूक छूटनी थी कि रोशन चौकी की तान भी छिड़ गयी, पामर भी कमर कसकर नाचने को खड़ा हो गया।

महरी—अरे तुम सब के सब भंग खा गये हो गया?

मीरशिकार—क्या हुआ?

महरी—हुआ क्या लड़की ही तो फिर हुई है?

पिता जी—लड़की हुई है?

यह कहते-कहते वह कमर थामकर बैठ गये मानो वज्र गिर पड़ा। घमंडीलाल कमरे से निकल आये और बोले—जाकर लेडी डाक्टर से तो पूछ। अच्छी तरह देख न ले। देखा सुना, चल खड़ी हुई।

महरी—बाबूजी, मैंने तो आंखों देखा है!

घमंडीलाल—कन्या ही है?

पिता—हमारी तकदीर ही ऐसी है बेटा! जाओ रे सब के सब! तुम सभी के भाग्य में कुछ पाना न लिखा था तो कहां से पाते। भाग जाओ। सैंकड़ों रुपये पर पानी फिर गया, सारी तैयारी मिट्टी में मिल गयी।

घमंडीलाल—इस महात्मा से पूछना चाहिए। मैं आज डाक से जरा बचा की खबर लेता हूं।

पिता—धूर्त है, धूर्त!

घमंडीलाल—मैं उनकी सारी धूर्तता निकाल दूंगा। मारे डंडों के खोपड़ी न तोड़ दूं तो कहिएगा। चांडाल कहीं का! उसके कारण मेरे सैंकड़ों रुपये पर पानी फिर गया। यह सेजगाड़ी, यह गाय, यह पलना, यह सोने के गहने किसके सिर पटकूं। ऐसे ही उसने कितनों ही को ठगा होगा। एक दफा बचा ही मरम्मत हो जाती तो ठीक हो जाते।

पिता जी—बेटा, उसका दोष नहीं, अपने भाग्य का दोष है।

घमंडीलाल—उसने क्यों कहा ऐसा नहीं होगा। औरतों से इस पाखंड के लिए कितने ही रुपये ऐंठे होंगे। वह सब उन्हें उगलना पड़ेगा, नहीं तो पुलिस में रपट कर दूंगा। कानून में पाखंड का भी तो दंड है। मैं पहले ही चौंका था कि हो न हो पाखंडी है; लेकिन मेरी सलहज ने धोखा दिया, नहीं तो मैं ऐसे पाजियों के पंजे में कब आने वाला था। एक ही सुअर है।

पिताजी—बेटा सब्र करो। ईश्वर को जो कुछ मंजूर था, वह हुआ। लड़का-लड़की दोनों ही ईश्वर की देन है, जहां तीन हैं वहां एक और सही।

पिता और पुत्र में तो यह बातें होती रहीं। पामर, मीरशिकार आदि ने अपने-अपने डंडे संभाले और अपनी राह चले। घर में मातम-सा छा गया, लेडी डॉक्टर भी विदा कर दी गयी, सौर में जच्चा और दाई के सिवा कोई न रहा। वृद्धा माता तो इतनी हताश हुई कि उसी वक्त अटवास-खटवास लेकर पड़ रहीं।

जब बच्चे की बरही हो गयी तो घमंडीलाल स्त्री के पास गये और सरोष भाव से बोले—फिर लड़की हो गयी!

निरुपमा—क्या करूं, मेरा क्या बस?

घमंडीलाल—उस पापी धूर्त ने बड़ा चकमा दिया।

निरुपमा—अब क्या कहें, मेरे भाग्य ही में न होगा, नहीं तो वहां कितनी ही औरतें बाबाजी को रात-दिन घेरे रहती थीं। वह किसी से कुछ लेते तो कहती कि धूर्त हैं, कसम ले लो जो मैंने एक कौड़ी भी उन्हें दी हो।

घमंडीलाल—उसने लिया या न लिया, यहां तो दिवाला निकल गया। मालूम हो गया तकदीर में पुत्र नहीं लिखा है। कुल का नाम डूबना ही है तो क्या आज डूबा, क्या दस साल बाद डूबा। अब कहीं चला जाऊंगा, गृहस्थी में कौन-सा सुख रखा है।

वह बहुत देर तक खड़े-खड़े अपने भाग्य को रोते रहे; पर निरुपमा ने सिर तक न उठाया।

निरुपमा के सिर फिर वही विपत्ति आ पड़ी, फिर वही ताने, वही अपमान, वही अनादर, वही छीछालेदार, किसी को चिंता न रहती कि खाती-पीती है या नहीं, अच्छी है या बीमार, दुखी है या सुखी। घमंडीलाल यद्यपि कहीं न गये, पर निरूपमा को यही धमकी प्राय: नित्य ही मिलती रहती थी। कई महीने यों ही गुजर गये तो निरूपमा ने फिर भावज को लिखा कि तुमने और भी मुझे विपत्ति में डाल दिया। इससे तो पहले ही भली थी। अब तो काई बात भी नहीं पूछता कि मरती है या जीती है। अगर यही दशा रही तो स्वामी जी चाहे संन्यास लें या न लें, लेकिन मैं संसार को अवश्य त्याग दूंगी।

4

भाभी य पत्र पाकर परिस्थिति समझ गयी। अबकी उसने निरुपमा को बुलाया नहीं, जानती थी कि लोग विदा ही न करेंगे, पति को लेकर स्वयं आ पहुंची। उसका नाम सुकेशी था। बड़ी मिलनसार, चतुर विनोदशील स्त्री थी। आते ही आते निरुपमा की गोद में कन्या देखी तो बोली—अरे यह क्या?

सास—भाग्य है और क्या?

सुकेशी—भाग्य कैसा? इसने महात्मा जी की बातें भुला दी होंगी। ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि वह मुंह से जो कुछ कह दें, वह न हो। क्यों जी, तुमने मंगल का व्रत रखा?

निरुपमा—बराबर, एक व्रत भी न छोड़ा।

सुकेशी—पांच ब्राह्मणों को मंगल के दिन भोजन कराती रही?

निरुपमा—यह तो उन्होंने नहीं कहा था।

सुकेशी—तुम्हारा सिर, मुझे खूब याद है, मेरे सामने उन्होंने बहुत जोर देकर कहा था। तुमने सोचा होगा, ब्राह्मणों को भोजन कराने से क्या होता है। यह न समझा कि कोई अनुष्ठान सफल नहीं होता जब तक विधिवत् उसका पालन न किया जाये।

सास—इसने कभी इसकी चर्चा ही नहीं की;नहीं;पांच क्या दस ब्राह्मणों को जिमा देती। तुम्हारे धर्म से कुछ कमी नहीं है।

सुकेशी—कुछ नहीं, भूल हो गयी और क्या। रानी, बेटे का मुंह यों देखना नसीब नहीं होता। बड़े-बड़े जप-तप करने पड़ते हैं, तुम मंगल के व्रत ही से घबरा गयीं?

सास—अभागिनी है और क्या?

घमंडीलाल—ऐसी कौन-सी बड़ी बातें थीं, जो याद न रहीं? वह हम लोगों को जलाना चाहती है।

सास—वही तो कहूं कि महात्मा की बात कैसे निष्फल हुई। यहां सात बरसों ते 'तुलसी माई' को दिया चढ़ाया, जब जा के बच्चे का जन्म हुआ।

घमंडीलाल—इन्होंने समझा था दाल-भात का कौर है!

सुकेशी—खैर, अब जो हुआ सो हुआ कल मंगल है, फिर व्रत रखो और अब की सात ब्राह्मणों को जिमाओ, देखें, कैसे महात्मा जी की बात नहीं पूरी होती।

घमंडीलाल-व्यर्थ है, इनके किये कुछ न होगा।

सुकेशी—बाबूजी, आप विद्‌वान समझदार होकर इतना दिल छोटा करते हैं। अभी आपककी उम्र क्या है। कितने पुत्र लीजिएगा? नाकों दम न हो जाये तो कहिएगा।

सास—बेटी, दूध-पूत से भी किसी का मन भरा है।

सुकेशी—ईश्वर ने चाहा तो आप लोगों का मन भर जायेगा। मेरा तो भर गया।

घमंडीलाल—सुनती हो महारानी, अबकी कोई गोलमोल मत करना। अपनी भाभी से सब ब्योरा अच्छी तरह पूछ लेना।

सुकेशी—आप निश्चिंत रहें, मैं याद करा दूंगी; क्या भोजन करना होगा, कैसे रहना होगा कैसे स्नान करना होगा, यह सब लिखा दूंगी और अम्मा जी, आज से अठारह मास बाद आपसे कोई भारी इनाम लूंगी।

सुकेशी एक सप्ताह यहां रही और निरुपमा को खूब सिखा-पढ़ा कर चली गयी।

5

निरुपमा का एकबाल फिर चमका, घमंडीलाल अबकी इतने आश्वासित से रानी हुई, सास फिर उसे पान की भांति फेरने लगी, लोग उसका मुंह जोहने लगे।

दिन गुजरने लगे, निरुपमा कभी कहती अम्मां जी, आज मैंने स्वप्न देखा कि वृद्‌ध स्त्री ने आकर मुझे पुकारा और एक नारियल देकर बोली, 'यह तुम्हें दिये जाती हूं; कभी कहती,'अम्मां जी, अबकी न जाने क्यों मेरे दिल में बड़ी-बड़ी उमंगें पैदा हो रही हैं, जी चाहता है खूब गाना सुनूं, नदी में खूब स्नान करूं, हरदम नशा-सा छाया रहता है। सास सुनकर मुस्कराती और कहती—बहू ये शुभ लक्षण हैं।

निरुपमा चुपके-चुपके माजूर मंगाकर खाती और अपने असल नेत्रों से ताकते हुए घमंडीलाल से पूछती-मेरी आंखें लाल हैं क्या?

घमंडीलाल खुश होकर कहते—मालूम होता है, नशा चढ़ा हुआ है। ये शुभ लक्षण हैं।

निरुपमा को सुगंधों से कभी इतना प्रेम न था, फूलों के गजरों पर अब वह जान देती थी।

घमंडीलाल अब नित्य सोते समय उसे महाभारत की वीर कथाएं पढ़कर सुनाते, कभी गुरु गोविंदसिंह कीर्ति का वर्णन करते। अभिमन्यु की कथा से निरुपमा को बड़ा प्रेम था। पिता अपने आने वाले पुत्र को वीर-संस्कारों से परिपूरित कर देना चाहता था।

एक दिन निरुपमा ने पति से कहा—नाम क्या रखोगे?

घमंडीलाल—यह तो तुमने खूब सोचा। मुझे तो इसका ध्यान ही न रहा। ऐसा नाम होना चाहिए जिससे शौर्य और तेज टपके। सोचो कोई नाम।

दोनों प्राणी नामों की व्याख्या करने लगे। जोरावरलाल से लेकर हरिश्चन्द्र तक सभी नाम गिनाये गये, पर उस असामान्य बालक के लिए कोई नाम न मिला। अंत में पति ने कहा तेगबहादुर कैसा नाम है।

निरुपमा—बस-बस, यही नाम मुझे पसन्द है?

घमंडी लाल—नाम ही तो सब कुछ है। दमड़ी, छकौड़ी, घुरहू, कतवारू, जिसके नाम देखे उसे भी 'यथा नाम तथा गुण' ही पाया। हमारे बच्चे का नाम होगा तेगबहादुर।

6

प्रसव-काल आ पहुंचा। निरुपमा को मालूम था कि क्या होने वाली है; लेकिन बाहर मंगलाचरण का पूरा सामान था। अबकी किसी को लेशमात्र भी संदेह न था। नाच, गाने का प्रबंध भी किया गया था। एक शामियाना खड़ा किया गया था और मित्रगण उसमें बैठे खुश-गप्पियां कर रहे थे। हलवाई कड़ाई से पूरियां और मिठाइयां निकाल रहा था। कई बोरे अनाज के रखे हुए थे कि शुभ समाचार पाते ही भिक्षुकों को बांटे जायें। एक क्षण का भी विलम्ब न हो, इसलिए बोरों के मुंह खोल दिये गये थे।

लेकिन निरुपमा का दिल प्रतिक्षण बैठा जाता था। अब क्या होगा? तीन साल किसी तरह कौशल से कट गये और मजे में कट गये, लेकिन अब विपत्ति सिर पर मंडरा रही है। हाय! निरपराध होने पर भी यही दंड! अगर भगवान् की इच्छा है कि मेरे गर्भ से कोई पुत्र न जन्म ले तो मेरा क्या दोष! लेकिन कौन सुनता है। मैं ही अभागिनी हूं मैं ही त्याज्य हूं मैं ही कलमुंही हूं इसीलिए न कि परवश हूं! क्या होगा? अभी एक क्षण में यह सारा आनंदात्सव शोक में डूब जायेगा, मुझ पर बौछारें पड़ने लगेंगी, भीतर से बाहर तक मुझी को कोसेंगे, सास-ससुर का भय नहीं, लेकिन स्वामी जी शायद फिर मेरा मुंह न देखें, शायद निराश होकर घर-बार त्याग दें। चारों तरफ अमंगल ही अमंगल हैं मैं अपने घर की, अपनी संतान की दुर्दशा देखने के लिए क्यों जीवित हूं। कौशल बहुत हो चुका, अब उससे कोई आशा नहीं। मेरे दिल में कैसे-कैसे अरमान थे। अपनी प्यारी बच्चियों का लालन-पालन करती, उन्हें ब्याहती, उनके बच्चों को देखकर सुखी होती। पर आह! यह सब अरमान झाक में मिले जाते हैं। भगवान्! तुम्ही अब इनके पिता हो, तुम्हीं इनके रक्षक हो। मैं तो अब जाती हूं।

लेडी डॉक्टर ने कहा—वेल! फिर लड़की है।

भीतर-बाहर कुहराम मच गया, पिट्टस पड़ गयी। घमंडीलाल ने कहा—जहन्नुम में जाये ऐसी जिंदगी, मौत भी नहीं आ जाती!

उनके पिता भी बोले—अभागिनी है, वज्र अभागिनी!

भिक्षुकों ने कहा—रोओ अपनी तकदीर को हम कोई दूसरा द्वार देखते हैं।

अभी यह शोकादगार शांत न होने पाया था कि डॉक्टर ने कहा मां का हाल अच्छा नहीं है। वह अब नहीं बच सकती। उसका दिल बंद हो गया है।

दण्ड

संध्या का समय था। कचहरी उठ गयी थी। अहलकार चपरासी जेबें खनखनाते घर जा रहे थे। मेहतर कूड़े टटोल रहा था कि शायद कहीं पैसे मिल जायें। कचहरी के बरामदों में सांडों ने वकीलों की जगह ले ली थी। पेड़ों के नीचे मुहर्रिरों की जगह कुत्ते बैठे नजर आते थे। इसी समय एक बूढ़ा आदमी, फटे-पुराने कपड़े पहने, लाठी टेकता हुआ, जंट साहब के बंगले पर पहुंचा और सायबान में खड़ा हो गया। जंट साहब का नाम था मिस्टर जी0 सिनहा। अरदली ने दूर ही से ललकारा—कौन सायबान में खड़ा है? क्या चाहता है।

बूढ़ा—गरीब बाम्हान हूं भैया, साहब से भेंट होगी?

अरदली—साहब तुम जैसों से नहीं मिला करते।

बूढ़े ने लाठी पर अकड़ कर कहा—क्यों भाई, हम खड़े हैं या डाकू-चोर हैं कि हमारे मुंह में कुछ लगा हुआ है?

अरदली—भीख मांग कर मुकदमा लड़ने आये होंगे?

बूढ़ा—तो कोई पाप किया है? अगर घर बेचकर नहीं लड़ते तो कुछ बुरा करते हैं? यहां तो मुकदमा लड़ते-लड़ते उमर बीत गयी; लेकिन घर का पैसा नहीं खरचा। मियां की जूती मियां का सिर करते हैं। दस भलेमानसों से मांग कर एक को दे दिया। चलो छुट्टी हुई। गांव भर नाम से कांपता है। किसी ने जरा भी टिर-पिर की और मैंने अदालत में दावा दायर किया।

अरदली—किसी बड़े आदमी से पाला नहीं पड़ा अभी?

बूढ़ा—अजी, कितने ही बड़ों को बड़े घर भिजवा दिया, तूम हो किस फेर में। हाई-कोर्ट तक जाता हूं सीधा। कोई मेरे मुंह क्या आयेगा बेचारा! गांव से तो कौड़ी जाती नहीं, फिर डरें क्यों? जिसकी चीज पर दांत लगाये, अपना करके छोड़ा। सीधे न दिया तो अदालत में घसीट लाये और रगेद-रगेद कर मारा, अपना क्या बिगड़ता है? तो साहब से उत्तला करते हो कि मैं ही पुकारूं?

अरदली ने देखा; यह आदमी यों टलनेवाला नहीं तो जाकर साहब से उसकी इत्तला की। साहब ने हुलिया पूछा और खुश होकर कहा—फौरन बुला लो।

अरदली—हजूर, बिलकुल फटेहाल है।

साहब—गुदड़ी ही में लाल होते हैं। जाकर भेज दो।

मिस्टर सिनहा अधेड़ आदमी थे, बहुत ही शांत, बहुत ही विचारशील। बातें बहुत कम करते थे। कठोरता और असभ्यता, जो शासन की अंग समझी जाती हैं, उनको छू भी नहीं गयी थी। न्याय और दया के देवता मालूम होते थे। डील-डौल देवों का-सा था और रंग आबनूस का-सा। आराम-कुर्सी पर लेटे हुए पेचवान पी रहे थे। बूढ़े ने जाकर सलाम किया।

सिनहा—तुम हो जगत पांडे! आओ बैठो। तुम्हारा मुकदमा तो बहुत ही कमजोर है। भले आदमी, जाल भी न करते बना?

जगत—ऐसा न कहें हजूर, गरीब आदमी हूं, मर जाऊंगा।

सिनहा—किसी वकील मुख्तार से सलाह भी न ले ली?

जगत—अब तो सरकार की सरन में आया हूं।

सिनहा—सरकार क्या मिसिल बदल देंगे; या नया कानून गढ़ेंगे? तुम गच्चा खा गये। मैं कभी कानून के बाहर नहीं जाता। जानते हो न अपील से कभी मेरी तजवीज रद्द नहीं होती?

जगत—बड़ा धरम होगा सरकार! (सिनहा के पैरों पर गिन्नियों की एक पोटली रखकर) बड़ा दुखी हूं सरकार!

सिनहा—(मुस्करा कर) यहां भी अपनी चालबाजी से नहीं चूकते? निकालो अभी और, ओस से प्यास नहीं बुझती। भला दहाई तो पूरा करो।

जगत—बहुत तंग हूं दीनबंधु!

सिनहा—डालो-डालो कमर में हाथ। भला कुछ मेरे नाम की लाज तो रखो।

जगत—लुट जाऊंगा सरकार!

सिनहा—लुटें तुम्हारे दुश्मन, जो इलाका बेचकर लड़ते हैं। तुम्हारे जजमानों का भगवान भला करे, तुम्हें किस बात की कमी है।

मिस्टर सिनहा इस मामले में जरा भी रियायत न करते थे। जगत ने देखा कि यहां काइयांपन से काम चलेगा तो चुपके से 4 गिन्नियां और निकालीं। लेकिन उन्हें मिस्टर सिनहा के पैरों रखते समय उसकी आंखों से खून निकल आया। यह उसकी बरसों की कमाई थी। बरसों पेट काटकर, तन जलाकर, मन बांधकर, झुठी गवाहियां देकर उसने यह थाती संचय कर पायी थी। उसका हाथों से निकलना प्राण निकलने से कम दुखदायी न था।

जगत पांडे के चले जाने के बाद, कोई 9 बजे रात को, जंट साहब के बंगले पर एक तांगा आकर रुका और उस पर से पंडित सत्यदेव उतरे जो राजा साहब शिवपुर के मुख्तार थे।

मिस्टर सिनहा ने मुस्कराकर कहा—आप शायद अपने इलाके में गरीबों को न रहने देंगे। इतना जुल्म!

सत्यदेव—गरीब परवर, यह कहिए कि गरीबों के मारे अब इलाके में हमारा रहना मुश्किल हो रहा है। आप जानते हैं, साधी उंगली से घी नहीं निकलता। जमींदार को कुछ-न-कुछ सख्ती करनी ही पड़ती है, मगर अब यह हाल है कि हमने जरा चूं भी की तो उन्हीं गरीबों की त्योरियां बदल जाती हैं। सब मुफ्त में जमीन जोतना चाहते हैं। लगान मांगिये तो फौजदारी का दावा करने को तैयार! अब इसी जगत पांडे को देखिए, गंगा कसम है हुजूर सरासर झूठा दावा है। हुजूर से कोई बात छिपी तो रह नहीं सकती। अगर जगत पांडे मुकदमा जीत गया तो हमें बोरियां-बंधना छोड़कर भागना पड़ेगा। अब हुजूर ही बसाएं तो बस सकते हैं। राजा साहब ने हुजूर को सलाम कहा है और अर्ज की है हक इस मामले में जगत पांडे की ऐसी खबर लें कि वह भी याद करे।

मिस्टर सिनहा ने भवें सिकोड़ कर कहा—कानून मेरे घर तो नहीं बनता?

सत्यदेव—आपके हाथ में सब कुछ है।

यह कहकर गिन्नियों की एक गड्डी निकाल कर मेज पर रख दी। मिस्टर सिनहा ने गड्डी को आंखों से गिनकर कहा—इन्हें मेरी तरफ से राजा साहब को नजर कर दीजिएगा। आखिर आप कोई वकील तो करेंगे। उसे क्या दीजिएगा?

सत्यदेव—यह तो हुजूर के हाथ में है। जितनी ही पेशियां होंगी उतना ही खर्च भी बढ़ेगा।

सिनहा—मैं चाहूं तो महीनों लटका सकता हूं।

सत्यदेव—हां, इससे कौन इनकार कर सकता है।

सिनहा—पांच पेशियां भी हुयीं तो आपके कम से कम एक हजार उड़ जायेंगे। आप यहां उसका आधा पूरा कर दीजिए तो एक ही पेशी में वारा-न्यारा हो जाए। आधी रकम बच जाय।

सत्यदेव ने 10 गिन्नियां और निकाल कर मेज पर रख दीं और घमंड के साथ बोले—हुक्म हो तो राजा साहब कह दूं, आप इत्मीनान रखें, साहब की कृपादृष्टि हो गयी है।

मिस्टर सिनहा ने तीव्र स्वर में कहा 'जी नहीं, यह कहने की जरूरत नहीं। मैं किसी शर्त पर यह रकम नहीं ले रहा। मैं करूंगा वही जो कानून की मंशा होगी। कानून के खिलाफ जौ-भर भी नहीं जा सकता। यही मेरा उसूल है। आप लोग मेरी खातिर करते हैं, यह आपकी शरारत है। उसे अपना दुश्मन समझूंगा जो मेरा ईमान खरीदना चाहे। मैं जो कुछ लेता हूं, सच्चाई का इनाम समझ कर लेता हूं।'

2

जगत पांडे को पूरा विश्वास था कि मेरी जीत होगी; लेकिन तजबीज सुनी तो होश उड़ गये! दावा खारिज हो गया! उस पर खर्च की चपत अलग। मेरे साथ यह चाल! अगर लाला साहब को इसका मजा न चखा दिया, तो बाम्हन नहीं। हैं किस फेर में? सारा रोब भुला दूंगा। वहां गाढ़ी कमाई के रुपये हैं। कौन पचा सकता है? हाड़ फोड़-फोड़ कर निकलेंगे। द्वार पर सिर पटक-पटक कर मर जाऊंगा।

उसी दिन संध्या को जगत पांडे ने मिस्टर सिनहा के बंगले के सामने आसन जमा दिया। वहां बरगद का घना वृक्ष था। मुकदमेवाले वहीं सत्तू, चबेना खाते ओर दोपहरी उसी की छांह में काटते थे। जगत पांडे उनसे मिस्टर सिनहा की दिल खोलकर निंदा करता। न कुछ खाता न पीता, बस लोगों को अपनी रामकहानी सुनाया करता। जो सुनता वह जंट साहब को चार खोटी-खरी कहता—आदमी नहीं पिशाच है, इसे तो ऐसी जगह मारे जहां पानी न मिले। रुपये के रुपये लिए, ऊपर से खरचे समेत डिग्री कर दी! यही करना था तो रुपये काहे को निकले थे? यह है हमारे भाई-बंदों का हाल। यह अपने कहलाते हैं! इनसे तो अंग्रेज ही अच्छे। इस तरह की आलोचनाएं दिन-भर हुआ करतीं। जगत पांडे के आस-पास आठों पहर जमघट लगा रहता।

इस तरह चार दिन बीत गये और मिस्टर सिनहा के कानों में भी बात पहुंची। अन्य रिश्वती कर्मचारियों की तरह वह भी हेकड़ आदमी थे। ऐसे निर्द्वंद्व रहते मानो उन्हें यह बीमारी छू तक नहीं गयी है। जब वह कानून से जौ-भर भी न टलते थे तो उन पर रिश्वत का संदेह हो ही क्योंकर सकता था, और कोई करता भी तो उसकी मानता कौन! ऐसे चतुर खिलाड़ी के विरुद्ध कोई जाब्ते की कार्रवाई कैसे होती? मिस्टर सिनहा अपने अफसरों से भी खुशामद का व्यवहार न करते। इससे हुक्काम भी उनका बहुत आदर करते थे। मगर जगत पांडे ने वह मंत्र मारा था जिसका उनके पास कोई उत्तर न था। ऐसे बांगड़ आदमी से आज तक उन्हें साबिका न पड़ा था। अपने नौकरों से पूछते—बुड्ढा क्या कर रहा है। नौकर लोग अपनापन जताने के लिए झूठ के पुल बांध देते—हुजूर, कहता था भूत बन कर लगूंगा, मेरी वेदी बने तो सही, जिस दिन मरूंगा उस दिन के सौ जगत पांडे होंगे। मिस्टर सिनहा पक्के नास्तिक थे; लेकिन ये बातें सुन-सुनकर सशंक हो जाते, और उनकी पत्नी तो थर-थर कांपने लगतीं। वह नौकरों से बार-बार कहती उससे जाकर पूछो, क्या चाहता है। जितना रुपया चाहे ले, हमसे जो मांगे वह देंगे, बस यहां से चला जाय, लेकिन मिस्टर सिनहा आदमियों को इशारे से मना कर देते थे। उन्हें अभी तक आशा थी कि भूख-प्यास से व्याकुल होकर बुड्ढा चला जायगा। इससे अधिक भय यह था कि मैं जरा भी नरम पड़ा और नौकरों ने मुझे उल्लू बनाया।

छठे दिन मालूम हुआ कि जगत पांडे अबोल हो गया है, उससे हिला तक नहीं जाता, चुपचाप पड़ा आकाश की ओर देख रहा है। शायद आज रात दम निकल जाय। मिस्टर सिनहा ने लंबी सांस ली और गहरी चिंता में डूब गये। पत्नी ने आंखों में आंसू भरकर आग्रहपूर्वह कहा—तुम्हें मेरे सिर की कसम, जाकर किसी इस बला को टालो। बुड्ढा मर गया तो हम कहीं के न रहेंगे। अब रुपये का मुंह मत देखो। दो-चार हजार भी देने पड़ें तो देकर उसे मनाओ। तुमको जाते शर्म आती हो तो मैं चली जाऊं।

सिनहा—जाने का इरादा तो मैं कई दिन से कर रहा हूं; लेकिन जब देखता हूं वहां भीड़ लगी रहती है, इससे हिम्मत नहीं पड़ती। सब आदमियों के सामने तो मुझसे न जाया जायगा, चाहे कितनी ही बड़ी आफत क्यों न आ पड़े। तुम दो-चार हजार की कहती हो, मैं दस-पांच हजार देने को तैयार हूं। लेकिन वहां नहीं जा सकता। न जाने किस बुरी साइत से मैंने इसके रुपये लिए। जानता कि यह इतना फिसाद खड़ा करेगा तो फाटक में घुसने ही न देता। देखने में तो ऐसा सीधा मालूम होता था कि गऊ है। मैंने पहली बार आदमी पहचानने में धोखा खाया।

पत्नी—तो मैं ही चली जाऊं? शहर की तरफ से आऊंगी और सब आदमियों को हटाकर अकेले में बात करुंगी। किसी को खबर न होगी कि कौन है। इसमें तो कोई हरज नहीं है?

मिस्टर सिनहा ने संदिग्ध भाव से कहा-ताड़ने वाले ताड़ ही जायेंगे, वाहे तुम कितना ही छिपाओ।

पत्नी—ताड़ जायेंगे ताड़ जायें, अब किससे कहां तक डरुं। बदनामी अभी क्या कम हो रही है,जो और हो जायगी। सारी दुनिया जानती है कि तुमने रुपये लिए। यों ही कोई किसी पर प्राण नहीं देता। फिर अब व्यर्थ ऐंथ क्यों करो?

मिस्टर सिनहा अब मर्मवेदना को न दबा सके। बोले—प्रिये, यह व्यर्थ की ऐंठ नहीं है। चोर को अदालत में बेंत खाने से उतनी लज्जा नहीं आती, जितनी किसी हाकिम को अपनी रिश्वत का परदा खुलने से आती है। वह जहर खा कर मर जायगा; पर संसार के सामने अपना परदा न खोलेगा। अपना सर्वनाश देख सकता है; पर यह अपमान नहीं सह सकता, जिंदा खाल खींचने, या कोल्हू में पेरे जाने के सिवा और कोई स्थिति नहीं है, जो उसे अपना अपराध स्वीकार करा सके। इसका तो मुझे जरा भी भय नहीं है कि ब्राहमण भूत बनकर हमको सतायेगा, या हमें उनकी वेदी बनाकर पूजनी पड़ेगी, यह भी जानता हूं कि पाप का दंड भी बहुधा नहीं मिलता; लेकिन हिंदू होने के कारण संस्कारों की शंका कुछ-कुछ बनी हुई है। ब्रहमहत्या का कलंक सिर पर लेते हुए आत्मा कांपती है। बस इतनी बात है। मैं आज रात को मौका देखकर जाऊंगा और इस संकट को काटने के लिए जो कुछ हो सकेगा, करुंगा। तिर जमा रखो।

3

आधी रात बीत चुकी थी। मिस्टर सिनहा घर से निकले और अकेले जगत पांडे को मनाने चले। बरगद के नीचे बिलकुल सन्नाटा था। अन्धकार ऐसा था मानो निशादेवी यहीं शयन कर रही हों। जगत पांडे की सांस जोर-जोर से चल रही थी मानो मौत जबरदस्ती घसीटे लिए जाती हो। मिस्टर सिनहा के रोएं खड़े हो गये। बुड्ढा कहीं मर तो नहीं रहा है? जेबी लालटेन निकाली और जगत के समीप जाकर बोले—पांडे जी, कहो क्या हाल है?

जगत पांडे ने आंखें खोलकर देखा और उठने की असफल चेष्टा करके बोला—मेरा हाल पूछते हो? देखते नहीं हो, मर रहा हूं?

सिनहा—तो इस तरह क्यों प्राण देते हो?

जगत—तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं क्या करूं?

सिनहा—मेरी तो यही इच्छा नहीं। हां, तुम अलबत्ता मेरा सर्वनाश करने पर तुले हुए हो। आखिर मैंने तुम्हारे डेढ़ सौ रूपये ही तो लिए हैं। इतने ही रुपये के लिए तुम इतना बड़ा अनुष्ठान कर रहे हो!

जगत—डेढ़ सौ रुपये की बात नहीं है। जो तुमने मुझे मिट्टी में मिला दिया। मेरी डिग्री हो गयी होती तो मुझे दस बीघे जमीन मिल जाती और सारे इलाके में नाम हो जाता। तुमने मेरे डेढ़ सौ नहीं लिए, मेरे पांच हजार बिगाड़ दिये। पूरे पांच हजार; लेकिन यह घमंड न रहेगा, याद रखना कहे देता हूं, सत्यानाश हो जायगा। इस अदालत में तुम्हारा राज्य है; लेकिन भगवान के दरवार में विप्रों ही का राज्य है। विप्र का धन लेकर कोई सुखी नहीं रह सकता।

मिस्टर सिनहा ने बहुत खेद और लज्जा प्रकट की, बहुत अनुनय-से काम लिया और अन्त में पूछा—सच बताओ पांडे, कितने रुपये पा जाओ तो यह अनुष्ठान छोड़ दो।

जगत पांडे अबकी जोर लगाकर उठ बैठे और बड़ी उत्सुकता से बोले—पांच हजार से कौड़ी कम न लूंगा।

सिनहा—पांच हजार तो बहुत होते हैं। इतना जुल्म न करो।

जगत—नहीं, इससे कम न लूंगा।

यह कहकर जगत पांडे फिर लेट गया। उसने ये शब्द निश्चयात्मक भाव से कहे थे कि मिस्टर सिनहा को और कुछ कहने का साहस न हुआ। रुपये लाने घर चले; लेकिन घर पहुंचते-पहुंचते नीयत बदल गयी। डेढ़ सौ के बदले पांच हजार देते कलंक हुआ। मन में कहा—मरता है जाने दो, कहां की ब्रहमहत्या और कैसा पाप! यह सब पाखंड है। बदनामी न होगी? सरकारी मुलाजिम तो यों ही बदनाम होते हैं, यह कोई नई बात थोड़े ही है। बचा कैसे उठ बैठे थे। समझा होगा, उल्लू फंसा। अगर 6 दिन के उपवास करने से पांच हजार मिले तो मैं महीने में कम से कम पांच मरतबा यह अनुष्ठान करूं। पांच हजार नहीं, कोई मुझे एक ही हजार दे दे। यहां तो महीने भर नाक रगड़ता हूं तब जाके 600 रुपये के दर्शन होते हैं। नोच-खसोट से भी

शायद ही किसी महीने में इससे ज्यादा मिलता हो। बैठा मेरी राह देख रहा होगा। लेना रुपये, मुंह मीठ हो जायगा।

वह चारपाई पर लेटना चाहते थे कि उनकी पत्नी जी आकर खड़ी हो गयीं। उनक सिर के बाल खुले हुए थे। आंखें सहमी हुई, रह-रहकर कांप उठती थीं। मुंह से शब्द न निकलता था। बड़ी मुश्किल से बोलीं—आधी रात तो हो गई होगी? तुम जगत पांडे के पास चले जाओ। मैंने अभी ऐसा बुरा सपना देखा है कि अभी तक कलेजा धड़क रहा है, जान संकट में पड़ी हुई है। जाके किसी तरह उसे टालो।

मिस्टर सिनहा—वहीं से तो चला आ रहा हूं। मुझे तुमसे ज्यादा फिक्र है। अभी आकर खड़ा ही हुआ था कि तुम आयी।

पत्नी—अच्छा! तो तुम गये थे! क्या बातें हुईं, राजी हुआ।

सिनहा—पांच हजार रुपये मांगता है!

पत्नी—पांच हजार!

सिनहा—कौड़ी कम नहीं कर सकता और मेरे पास इस वक्त एक हजार से ज्यादा न होंगे।

पत्नी ने एक क्षण सोचकर कहा—जितना मांगता है उतना ही दे दो, किसी तरह गला तो छूट। तुम्हारे पास रुपये न हों तो मैं दे दूंगी। अभी से सपने दिखाई देन लगे हैं। मरा तो प्राण कैसे बचेंगे। बोलता-चालता है न?

मिस्टर सिनहा अगर आबनूस थे तो उनकी पत्नी चंदन; सिनहा उनके गुलाम थे, उनके इशारों पर चलते थे। पत्नी जी भी पति-शासन में कुशल थीं। सौंदर्य और अज्ञान में अपवाद है। सुंदरी कभी भोली नहीं होती। वह पुरुष के मर्मस्थल पर आसन जमाना जानती है!

सिनहा—तो लाओ देता आऊं; लेकिन आदमी बड़ा चग्घड़ है, कहीं रुपये लेकर सबको दिखाता फिरे तो?

पत्नी—इसको यहां से इसी वक्त भागना होगा।

सिनहा—तो निकालो दे ही दूं। जिंदगी में यह बात भी याद रहेगी।

पत्नी—ने अविश्वास भाव से कहा—चलो, मैं भी चलती हूं। इस वक्त कौन देखता है?

पत्नी से अधिक पुरुष के चरित्र का ज्ञान और किसी को नहीं होता। मिस्टर सिनहा की मनोवृत्तियों को उनकी पत्नी जी खूब जानती थीं। कौन जान रास्ते में रुपये कहीं छिपा दें, और कह दें दे आए। या कहने लगें, रुपये लेकर भी नहीं टलता तो मैं क्या करूं। जाकर संदूक से नोटों के पुलिंदे निकाले और उन्हें चादर में छिपा कर मिस्टर सिनहा के साथ चलीं। सिनहा के मुंह पर झाड़ू-सी फिरी थी। लालटेन लिए पछताते चले जाते थे। 5000 रु0 निकले जाते हैं। फिर इतने रुपये कब मिलेंगे; कौन जानता है? इससे तो कहीं अच्छा था दुष्ट मर ही जाता। बला से बदनामी होती, कोई मेरी जेब से रुपये तो न छीन लेता। ईश्वर करे मर गया हो!

अभी तक दोनों आदमी फाटक ही तकम आए थे कि देखा, जगत पांडे लाठी टेकता चला आता है। उसका स्वरूप इतना डरावना था मानो श्मशान से कोई मुरदा भागा आता हो।

पत्नी जी बोली—महाराज, हम तो आ ही रहे थे, तुमने क्यों कष्ट किया? रुपये ले कर सीधे घर चले जाओगे न?

जगत—हां-हां, सीधा घर जाऊंगा। कहां हैं रुपये देखूं!

पत्नी जी ने नोटों का पुलिंदा बाहर निकाला और लालटेन दिखा कर बोलीं—गिन लो। 5000 रुपये हैं!

पांडे ने पुलिंदा लिया और बैठ कर उलट-पुलट कर देखने लगा। उसकी आंखें एक नये प्रकाश से चमकने लगी। हाथों में नोटों को तौलता हुआ बोला—पूरे पांच हजार हैं?

पत्नी—पूरे गिन लो?

जगत—पांच हजार में दो टोकरी भर जायगी! (हाथों से बताकर) इतने सारे पांच हजार!

सिनहा—क्या अब भी तुम्हें विश्वास नहीं आता?

जगत—हैं-हैं, पूरे हैं पूरे पांच हजार! तो अब जाऊं, भाग जाऊं?

यह कह कर वह पुलिंदा लिए कई कदम लड़खड़ाता हुआ चला, जैसे कोई शराबी, और तब धम से जमीन पर गिर पड़ा। मिस्टर सिनहा लपट कर उठाने दौड़े तो देखा उसकी आंखें पथरा गयी हैं और मुख पीला पड़ गया है। बोले—पांडे, क्या कहीं चोट आ गयी?

पांडे ने एक बार मुंह खोला जैसे मरी हुई चिड़िया सिर लटका चोंच खोल देती है। जीवन का अंतिम धागा भी टूट गया। ओंठ खुले हुए थे और नोटों का पुलिंदा छाती पर रखा हुआ था। इतने में पत्नी जी भी आ पहुंची और शव को देखकर चौंक पड़ीं!

पत्नी—इसे क्या हो गया?

सिनहा—मर गया और क्या हो गया?

पत्नी—(सिर पीट कर) मर गया! हाय भगवान्! अब कहां जाऊं?

यह कह कर बंगले की ओर बड़ी तेजी से चलीं। मिस्टर सिनहा ने भी नोटो का पुलिंदा शव की छाती पर से उठा लिया और चले।

पत्नी—ये रुपये अब क्या होंगे?

सिनहा—किसी धर्म-कार्य में दे दूंगा।

पत्नी—घर में मत रखना, खबरदार! हाय भगवान!

4

दूसरे दिन सारे शहर में खबर मशहूर हो गयी—जगत पांडे ने जंट साहब पर जान दे दी। उसका शव उठा तो हजारों आदमी साथ थे। मिस्टर सिनहा को खुल्लम-खुल्ला गालियां दी जा रही थीं।

संध्या समय मिस्टर सिनहा कचहरी से आ कर मन मार बैठे थे कि नौकरों ने आ कर कहा—सरकार, हमको छुट्टी दी जाय! हमारा हिसाब कर दीजिए। हमारी बिरादरी के लोग धमकते हैं कि तुम जंट साहब की नौकरी करोगे तो हुक्का-पानी बंद हो जायगा।

सिनहा ने झल्ला कर कहा—कौन धमकाता है?

कहार—किसका नाम बताएं सरकार! सभी तो कह रहे हैं।

रसोइया—हुजूर, मुझे तो लोग धमकाते हैं कि मन्दिर में न घुसने पाओगे।

साईस—हुजूर, बिरादरी से बिगाड़ करक हम लोग कहां जाएंगे? हमारा आज से इस्तीफा है। हिसाब जब चाहे कर दीजिएगा।

मिस्टर सिनहा ने बहुत धमकाया फिर दिलासा देने लगे; लेकिन नौकरों ने एक न सुनी। आध घण्टे के अन्दर सबों ने अपना-अपना रास्ता लिया। मिस्टर सिनहा दांत पीस कर रह गए; लेकिन हाकिमों का काम कब रुकता है? उन्होंने उसी वक्त कोतवाल को खबर कर दी और कई आदमी बेगार में पकड़ आए। काम चल निकला।

उसी दिन से मिस्टर सिनहा और हिंदू समाज में खींचतान शुरु हुई। धोबी ने कपड़े धोन बंद कर दिया। ग्वाले ने दूध लाने में आना-कानी की। नाई ने हजामत बनानी छोड़ी। इन विपत्तियों पर पत्नी जी का रोना-धोना और भी गजब था। इन्हें रोज भयंकर स्वप्न दिखाई देते। रात को एक कमरे से दूसरे में जाते प्राण निकलते थे। किसी को जरा सिर भी दुखता तो नहीं में जान समा जाती। सबसे बड़ी मुसीबत यह थी कि अपने सम्बन्धियों ने भी आना-जाना छोड़ दिया। एक दिन साले आए, मगर बिना पानी पिये चले गए। इसी तरह एक बहनोई का आगमन हुआ। उन्होंने पान तक न खाया। मिस्टर सिनहा बड़े धैर्य से यह सारा तिरस्कार सहते जाते थे। अब तक उनकी आर्थिक हानि न हुई थी। गरज के बावले झक मार कर आते ही थे और नजर-नजराना मिलता ही था। फिर विशेष चिंता का कोई कारण न था।

लेकिन बिरादरी से वैर करना पानी में रह कर मगर से वैर करने जैसे है। कोई-न-कोई ऐसा अवसर ही आ जाता है, जब हमको बिरादरी के सामने सिर झुकाना पड़ता है। मिस्टर सिनहा को भी साल के अन्दर ही ऐसा अवसर आ पड़ा। यह उनकी पुत्री का विवाह था। यही वह समस्या है जो बड़े-बड़े हेकड़ों का घमंड चूर कर देती है। आप किसी के आने-जाने की परवा न करें, हुक्का-पानी, भोज-भात, मेल-जोल किसी बात की परवा न करे; मगर लड़की का विवाह तो न टलने वाली बला है। उससे बचकर आप कहां जाएंगे! मिस्टर सिनहा को इस बात का दगदगा तो पहिले ही था कि त्रिवेणी के विवाह में बाधाएं पड़ेगी; लेकिन उन्हें विश्वास था कि द्रव्य की अपार शक्ति इस मुश्किल को हल कर देगी। कुछ दिनों तक उन्होंने जान-बूझ कर टाला कि शायद इस आंधी का जोर कुछ कम हो जाय; लेकिन जब त्रिवेणी को सोलहवां साल समाप्त हो गया तो टाल-मटोल की गुंजाइश न रही। संदेशे भेजने लगे; लेकिन जहां संदेशिया जाता वहीं जवाब मिलता—हमें मंजूर नही। जिन घरों में साल-भर पहले उनका संदेशा पा कर लोग अपने भाग्य को सराहते, वहां से अब सूखा जवाब मिलता था—हमें मंजूर नहीं। मिस्टर सिनहा धन का लोभ देते, जमीन नजर करने

को कहते, लड़के को विलायत भेज कर ऊंची शिक्षा दिलाने का प्रस्ताव करते किंतु उनकी सारी आयोजनाओं का एक ही जवाब मिलता था—हमें मंजूर नहीं। ऊंचे घरानों का यह हाल देखकर मिस्टर सिनहा उन घरानों में संदेश भेजने लगे, जिनके साथ पहले बैठकर भोजन करने में भी उन्हें संकोच होता था;लेकिन वहां भी वही जवाब मिला—हमें मंजूर नही। यहां तक कि कई जगह वे खुद दौड़-दौड़ कर गये। लोगों की मिन्नतें कीं, पर यही जवाब मिला—साहब, हमें मंजूर नहीं। शायद बहिष्कृत घरानों में उनका संदेश स्वीकार कर लिया जाता; पर मिस्टर सिनहा जान-बूझकर मक्खी न निगलना चाहते थे। ऐसे लोगों से सम्बन्ध न करना चाहते थे जिनका बिरादरी में काई स्थान न था। इस तरह एक वर्ष बीत गया।

मिसेज सिनहा चारपाई पर पड़ी कराह रही थीं, त्रिवेणी भोजन बना रही थी और मिस्टर सिनहा पत्नी के पास चिंता में डूबे बैठे हुए थे। उनके हाथ में एक खत था, बार-बार उसे देखते और कुछ सोचने लगते थे। बड़ी देर के बाद रोगिणी ने आंखें खोलीं और बोलीं—अब न बचूंगी पांडे मेरी जान लेकर छोड़ेगा। हाथ में कैसा कागज है?

सिनहा—यशोदानंदन के पास से खत आया हैं। पाजी को यह खत लिखते हुए शर्म नहीं आती, मैंने इसकी नौकरी लगायी। इसकी शादी करवायी और आज उसका मिजाज इतना बढ़ गया है कि अपने छोटे भाई की शादी मेरी लड़की से करना पसंद नहीं करता। अभागे के भाग्य खुल जाते!

पत्नी—भगवान्, अब ले चलो। यह दुर्दशा नहीं देखी जाती। अंगूर खाने का जी चाहता है, मंगवाये है कि नहीं?

सिनाह—मैं जाकर खुद लेता आया था।

यह कहकर उन्होंने तश्तरी में अंगूर भरकर पत्नी के पास रख दिये। वह उठा-उठा कर खाने लगीं। जब तश्तरी खाली हो गयी तो बोलीं—अब किसके यहां संदेशा भेजोगे?

सिनहा—किसके यहां बताऊं! मेरी समझ में तो अब कोई ऐसा आदमी नहीं रह गया। ऐसी बिरादरी में रहने से तो यह हजार दरजा अच्छा है कि बिरादरी के बाहर रहूं। मैंने एक ब्राह्मण से रिश्वत ली। इससे मुझे इनकार नहीं। लेकिन कौन रिश्वत नहीं लेता? अपने गौं पर कोई नहीं चूकता। ब्राह्मण नहीं खुद ईश्वर ही क्यों न हों, रिश्वत खाने वाले उन्हें भी चूस लेंगे। रिश्वत देने वाला अगर कोई निराश होकर अपने प्राण देता है तो मेरा क्या अपराध! अगर कोई मेरे फैसले से नाराज होकर जहर खा ले तो मैं क्या कर सकता हूं। इस पर भी मैं प्रायश्चित करने को तैयार हूं। बिरादरी जो दंड दे, उसे स्वीकार करने को तैयार हूं। सबसे कह चुका हूं मुझसे जो प्रायश्चित चाहो करा लो पर कोई नहीं सुनता। दंड अपराध के अनुकूल होना चाहिए, नहीं तो यह अन्याय है। अगर किसी मुसलमान का छुआ भोजन खाने के लिए बिरादरी मुझे काले पानी भेजना चाहे तो मैं उसे कभी न मानूंगा। फिर अपराध अगर है तो मेरा है। मेरी लड़की ने क्या अपराध किया है। मेरे अपराध के लिए लड़की को दंड देना सरासर न्याय-विरुद्ध है।

पत्नी—मगर करोगे क्या? और कोई पंचायत क्यों नहीं करते?

सिनहा—पंचायत में भी तो वही बिरादरी के मुखिया लोग ही होंगे, उनसे मुझे न्याय की आशा नहीं। वास्तव में इस तिरस्कार का कारण ईर्ष्या है। मुझे देखकर सब जलते हैं और इसी बहाने वे मुझे नीचा दिखाना चाहते हैं। मैं इन लोगों को खूब समझता हूं।

पत्नी—मन की लालसा मन में रह गयी। यह अरमान लिये संसार से जाना पड़ेगा। भगवान् की जैसी इच्छा। तुम्हारी बातों से मुझे डर लगता है कि मेरी बच्ची की न-जाने क्या दशा होगी। मगर तुमसे मेरी अंतिम विनय यही है कि बिरादरी से बाहर न जाना, नहीं तो परलोक में भी मेरी आत्मा को शांति न मिलेगी। यह शोक मेरी जान ले रहा है। हाय, बच्ची पर न-जाने क्या विपत्ति आने वाली है।

यह कहते मिसेज सिनहा की आंखें में आंसू बहने लगे। मिस्टर सिनहा ने उनको दिलासा देते हुए कहा—इसकी चिंता मत करो प्रिये, मेरा आशय केवल यह था कि ऐसे भाव मन में आया करते हैं। तुमसे सच कहता हूं, बिरादरी के अन्याय से कलेजा छलनी हो गया है।

पत्नी—बिरादरी को बुरा मत कहो। बिरादरी का डर न हो तो आदमी न जाने क्या-क्या उत्पात करे। बिरादरी को बुरा न कहो। (कलेजे पर हाथ रखकर) यहां बड़ा दर्द हो रहा है। यशोदानंद ने भी कोरा जवाब दे दिया। किसी करवट चैन नहीं आता। क्या करुं भगवान्।

सिनहा—डाक्टर को बुलाऊं?

पत्नी—तुम्हारा जी चाहे बुला लो, लेकिन मैं बचूंगी नहीं। जरा तिब्बो को बुला लो, प्यार कर लूं। जी डूबा जाता है। मेरी बच्ची! हाय मेरी बच्ची!!

धिक्कार

ईरान और यूनान में घोर संग्राम हो रहा था। ईरानी दिन-दिन बढ़ते जाते थे और यूनान के लिए संकट का सामना था। देश के सारे व्यवसाय बंद हो गये थे, हल की मुठिया पर हाथ रखने वाले किसान तलवार की मुठिया पकड़ने के लिए मजबूर हो गये, डंडी तौलने वाले भाले तौलते थे। सारा देश आत्म-रक्षा के लिए तैयार हो गया था। फिर भी शत्रु के कदम दिन-दिन आगे ही बढ़ते आते थे। जिस ईरान को यूनान कई बार कूचल चुका था, वही ईरान आज क्रोध के आवेग की भांति सिर पर चढ़ आता था। मर्द तो रणक्षेत्र में सिर कटा रहे थे और स्त्रियां दिन-दिन की निराशाजनक खबरें सुनकर सूखी जाती थीं। क्योंकर लाज की रक्षा होगी? प्राण का भय न था, सम्पत्ति का भय न था, भय था मर्यादा का। विजेता गर्व से मतवाले होकर यूनानी ललनाओं को घूरेंगे, उनके कोमल अंगों को स्पर्श करेंगे, उनको कैद कर ले जायेंगे! उस विपत्ति की कल्पना ही से इन लोगों के रोयें खड़े हो जाते थे।

आखिर जब हालत बहुत नाजुक हो गयी तो कितने ही स्त्री-पुरुष मिलकर डेल्फी के मंदिर में गये और प्रश्न किया—देवी, हमारे ऊपर देवताओं की यह वक्र-दृष्टि क्यों है? हमसे ऐसा कौन-सा अपराध हुआ है? क्या हमने नियमों का पालन नहीं किया, कुरबानियां नहीं कीं, व्रत नहीं रखे? फिर देवताओं ने क्यों हमारे सिरों से अपनी रक्षा का हाथ उठा लिया?

पुजारिन ने कहा—देवताओं की असीम कृपा भी देश को द्रोही के हाथ से नहीं बचा सकती। इस देश में अवश्य कोई-न-कोई द्रोही है। जब तक उसका वध न किया जायेगा, देश के सिर से यह संकट न टलेगा।

‘देवी, वह द्रोही कौन है?

‘जिस घर से रात को गाने की ध्वनि आती हो, जिस घर से दिन को सुगंध की लपटें आती हों, जिस पुरुष की आंखों में मद की लाली झलकती हो, वही देश का द्रोही है।‘

लोगों ने द्रोही का परिचय पाने के लिए और कितने ही प्रश्न किये; पर देवी ने कोई उत्तर न दिया।

2

यूनानियों ने द्रोही की तलाश करनी शुरू की। किसके घर में से रात को गाने की आवाजें आती हैं। सारे शहर में संध्या होते स्यापा-सा छा जाता था। अगर कहीं आवाजें सुनायी देती थीं तो रोने की; हंसी और गाने की आवाज कहीं न सुनायी देती थी।

दिन को सुगंध की लपटें किस घर से आती हैं? लोग जिधर जाते थे, किसे इतनी फुरसत थी कि घर की सफाई करता, घर में सुगंध जलाता; धोबियों का अभाव था अधिकांश लड़ने के लिए चले गये थे, कपड़े तक न धुलते थे; इत्र-फुलेल कौन मलता!

किसकी आंखों में मद की लाली झलकती है? लाल आंखें दिखाई देती थी; लेकिन यह मद की लाली न थी, यह आंसुओं की लाली थी। मदिरा की दुकानों पर खाक उड़ रही थी। इस जीवन ओर मृत्यु के संग्राम में विलास की किसे सूझती! लोगों ने सारा शहर छान मारा लेकिन एक भी आंख ऐसी नजर न आयी जो मद से लाल हो।

कई दिन गुजर गये। शहर में पल-पल पर रणक्षेत्र से भयानक खबरें आती थीं और लोगों के प्राण सूख जाते थे।

आधी रात का समय था। शहर में अंधकार छाया हुआ था, मानो श्मशान हो। किसी की सूरत न दिखाई देती थी। जिन नाट्यशालाओं में तिल रखने की जगह न मिलती थी, वहां सियार बोल रहे थे। जिन बाजारों में मनचले जवान अस्त्र-शस्त्र सजायें ऐंठते फिरते थे, वहां उल्लू बोल रहे थे। मंदिरों में न गाना होता था न बजाना। प्रासादों में अंधकार छाया हुआ था।

एक बूढ़ा यूनानी जिसका इकलौता लड़का लड़ाई के मैदान में था, घर से निकला और न-जाने किन विचारों की तरंग में देवी के मंदिर की ओर चला। रास्ते में कहीं प्रकाश न था, कदम-कदम पर ठोकरें खाता था; पर आगे बढ़ता चला जाता। उसने निश्चय कर लिया कि या तो आज देवी से विजय का वरदान लूंगा या उनके चरणों पर अपने को भेंट कर दूंगा।

3

सहसा वह चौंक पड़ा। देवी का मंदिर आ गया था। और उसके पीछे की ओर किसी घर से मधुर संगीत की ध्वनि आ रही थी। उसको आश्चर्य हुआ। इस निर्जन स्थान में कौन इस वक्त

रंगरेलियां मना रहा है। उसके पैरों में पर लग गये, मंदिर के पिछवाड़े जा पहुंचा।

उसी घर से जिसमें मंदिर की पुजारिन रहती थी, गाने की आवाजें आती थीं! वृद्ध विस्मित होकर खिड़की के सामने खड़ा हो गया। चिराग तले अंधेरा! देवी के मंदिर के पिछवाड़े य अंधेर?

बूढ़े ने द्वार झांका; एक सजे हुए कमरे में मोमबत्तियां झाड़ों में जल रही थीं, साफ-सुथरा फर्श बिछा था और एक आदमी मेज पर बैठा हुआ गा रहा था। मेज पर शराब की बोतल और प्यालियां रखी हुई थीं। दो गुलाम मेज के सामने हाथ में भोजन के थाल खड़े थे, जिसमें से मनोहर सुगंध की लपटें आ रही थीं।

बूढ़े यूनानी ने चिल्लाकर कहा—यही देशद्रोही है, यही देशद्रोही है!

मंदिर की दीवारों ने दुहराया—द्रोही है!

बगीचे की तरफ से आवाज आयी—द्रोही है!

मंदिर की पुजारिन ने घर में से सिर निकालकर कहा—हां, द्रोही है!

यह देशद्रोही उसी पुजारिन का बेटा पासोनियस था। देश में रक्षा के जो उपाय सोचे जाते, शत्रुओं का दमन करने के लिए जो निश्चय किय जाते, उनकी सूचना यह ईरानियों को दे दिया करता था। सेनाओं की प्रत्येक गति की खबर ईरानियों को मिल जाती थी और उन प्रयत्नों को विफल बनाने के लिए वे पहले से तैयार हो जाते थे। यही कारण था कि यूनानियों को जान लड़ा देने पर भी विजय न होती थी। इसी कपट से कमाये हुये धन से वह भोग-विलास करता था। उस समय जब कि देश में घोर संकट पड़ा हुआ था, उसने अपने स्वदेश को अपनी वासनाओं के लिए बेच दिया। अपने विलास के सिवा और किसी बात की चिंता न थी, कोई मरे या जिये, देश रहे या जाये, उसकी बला से। केवल अपने कुटिल स्वार्थ के लिए देश की गरदन में गुलामी की बेड़ियां डलवाने पर तैयार था। पुजारिन अपने बेटे के दुराचरण से अनभिज्ञ थी। वह अपनी अंधेरी कोठरी से बहुत कम निकलती, वहीं बैठी जप-तप किया करती थी। परलोक-चिंतन में उसे इहलोक की खबर न थी, मनेन्द्रियों ने बाहर की चेतना को शून्य-सा कर दिया था। वह इस समय भी कोठरी के द्वार बंद किये, देवी से अपने देश के कल्याण के लिए वन्दना कर रही थी कि सहसा उसके कानों में आवाज आयी—यही द्रोही है, यही द्रोही है!

उसने तुरंत द्वार खोलकर बाहर की ओर झांका, पासोनियम के कमरे से प्रकाश की रेखाएं निकल रही थीं और उन्हीं रेखाओं पर संगीत की लहरें नाच रही थीं। उसके पैर-तले से जमीन-सी निकल गयी, कलेजा धक्-से हो गया। ईश्वर! क्या मेरा बेटा देशद्रोही है?

आप-ही-आप, किसी अंत:प्रेरणा से पराभूत होकर वह चिल्ला उठी—हां, यही देशद्रोही है!

४

यूनानी स्त्री-पुरूषों के झुंड-के-झुंड उमड़ पड़े और पासोनियस के द्वार पर खड़े होकर चिल्लाने लगे-यही देशद्राही है!

पासोनियस के कमरे की रोशनी ठंडी हो गयी, संगीत भी बंद था; लेकिन द्वार पर प्रतिक्षण नगरवासियों का समूह बढ़ता जाता था और रह-रह कर सहस्त्रों कंठो से ध्वनि निकलती थी—यही देशद्रोही है!

लोगों ने मशालें जलायी और अपने लाठी-डंडे संभाल कर मकान में घुस पड़े। कोई कहता था—सिर उतार लो। कोई कहता था—देवी के चरणों पर बलिदान कर दो। कुछ लोग उसे कोठे से नीचे गिरा देने पर आग्रह कर रहे थे।

पासोनियस समझ् गया कि अब मुसीबत की घडी सिर पर आ गयी। तुरंत जीने से उतरकर नीचे की ओर भागा। और कहीं शरण की आशा न देखकर देवी के मंदिर में जा घुसा।

अब क्या किया जाये? देवी की शरण जाने वाले को अभय-दान मिल जाता था। परम्परा से यही प्रथा थी? मंदिर में किसी की हत्या करना महापाप था।

लेकिन देशद्रोही को इसने सस्ते कौन छोडता? भांति-भांति के प्रस्ताव होने लगे—

'सूअर का हाथ पकडकर बाहर खींच लो।'

'ऐसे देशद्रोही का वध करने के लिए देवी हमें क्षमा कर देंगी।'

'देवी, आप उसे क्यों नहीं निगल जाती?'

'पत्थरों से मारों, पत्थरो से; आप निकलकर भागेगा।'

'निकलता क्यों नहीं रे कायर! वहां क्या मुंह में कालिख लगाकर बैठा हुआ है?'

रात भर यही शोर मचा रहा और पासोनियस न निकला। आखिर यह निश्चय हुआ कि मंदिर की छत खोदकर फेंक दी जाये और पासोनियस दोपहर की धूप और रात की कडाके की सरदी में आप ही आप अकड जाये। बस फिर क्या था। आन की आन में लोगों ने मंदिर की छत और कलस ढा दिये।

अभगा पासोनियस दिन-भर तेज धूप में खड़ा रहा। उसे जोर की प्यास लगी; लेकिन पानी कहां? भूख लगी, पर खाना कहां? सारी जमीन तवे की भांति जलने लगी; लेकिन छांह कहां? इतना कष्ट उसे जीवन भर में न हुआ था। मछली की भांति तडपता था ओर चिल्ला-चिल्ला कर लोगों को पुकारता था; मगर वहां कोई उसकी पुकार सुनने वाला न था। बार-बार कसमें खाता था कि अब फिर मुझसे ऐसा अपराध न होगा; लेकिन कोई उसके निकट न आता था। बार-बार चाहता था कि दीवार से टकरा कर प्राण दे दे; लेकिन यह आशा रोक देती थी कि शायद लोगों को मुझ पर दया आ जाये। वह पागलों की तरह जोर-जोर से कहने लगा—मुझे मार डालो, मार डालो, एक क्षण में प्राण ले लो, इस भांति जला-जला कर न मारो। ओ हत्यारों, तुमको जरा भी दया नहीं।

दिन बीता और रात—भयंकर रात—आयी। ऊपर तारागण चमक रहे थे मानो उसकी विपत्ति पर हंस रहे हों। ज्यों-ज्यों रात बीतती थी देवी विकराल रूप धारण करती जाती थी। कभी वह उसकी ओर मुंह खोलकर लपकती, कभी उसे जलती हुई आंखो से देखती। उधर क्षण-क्षण सरदी बढती जाती थी, पासोनियस के हाथ-पांव अकडने लगे, कलेजा कांपने लगा। घुटनों में सिर रखकर बैठ गया और अपनी किस्मत को रोने लगा। कुरते की खींचकर कभी पैरों को छिपाता, कभी हाथों को, यहां तक कि इस खींचातानी में कुरता भी फट गया। आधी रात जाते-जाते बर्फ गिरने लगी। दोपहर को उसने सोचा गरमी ही सबसे कष्टदायक है। ठंड के सामने उसे गरमी की तकलीफ भूल गयी।

आखिर शरीर में गरमी लाने के लिए एक हिमकत सूझी। वह मंदिर में इधर-उधर दौडने लगा। लेकिन विलासी जीव था, जरा देर में हांफ कर गिर पड़ा।

५

प्रातःकाल लोगों ने किवाड खोले तो पासोनिसय को भूमि पर पड़े देखा। मालूम होता था, उसका शरीर अकड गया है। बहुत चीखने-चिल्लाने पर उसने आखें खोली; पर जगह से हिल न सका। कितनी दयनीय दशा थी, किंतु किसी को उस पर दया न आयी। यूनान में देशद्रोह सबसे बडा अपराध था और द्रोही के लिए कहीं क्षमा न थी, कहीं दया न थी।

एक—अभी मरा है?

दूसरा—द्रोहियों को मौत नहीं आती!

तीसरा—पडा रहने दो, मर जायेगा!

चौथा—मक्र किये हुए है?

पांचवा—अपने किये की सजा पा चुका है, अब छोड देना चाहिए!

सहसा पासोनियस उठ बैठा और उद्दण्ड भाव से बोला—कौन कहता है कि इसे छोड देना चाहिए! नहीं, मुझे मत छोडना, वरना पछताओगे! मैं स्वार्थी दूं; विषय-भोगी हूं, मुझ पर भूलकर भी विश्वास न करना। आह! मेरे कारण तुम लोगों को क्या-क्या झेलना पडा, इसे सोचकर मेरा जी चाहता है कि अपनी इंद्रियों को जलाकर भस्म कर दूं। मैं अगर सौ जन्म लेकर इस पाप का प्रायश्चित करूं, तो भी मेरा उद्धार न होगा। तुम भूलकर भी मेरा विश्वास न करो। मुझे स्वयं अपने ऊपर विश्वास नहीं। विलास के प्रेमी सत्य का पालन नहीं कर सकते। मैं अब भी आपकी कुछ सेवा कर सकता हूं, मुझे ऐसे-ऐसे गुप्त रहस्य मालूम हैं, जिन्हें जानकर आप ईरानियों का संहार कर सकते है; लेकिन मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है और आपसे भी यह कहता हूं कि मुझ पर विश्वास न कीजिए। आज रात को देवी की मैंने सच्चे दिल से वंदना की है और उन्होनें मुझे ऐसे यंत्र बताये हैं, जिनसे हम शत्रुओं को परास्त कर सकते हैं, ईरानियों के बढते हुए दल को आज भी आन की आन में उड़ा सकते है। लेकिन मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है। मैं यहां से बाहर निकल कर इन बातों को भूल जाऊंगा। बहुत संशय हैं, कि फिर ईरानियों की गुप्त सहायता करने लगूं। इसलिए मुझ पर विश्वास न कीजिए।

एक यूनानी—देखो-देखो क्या कहता है?

दूसरा—सच्चा आदमी मालूम होता है।

तीसरा—अपने अपराधों को आप स्वीकार कर रहा है।

चौथा—इसे क्षमा कर देना चाहिए और यह सब बातें पूछ लेनी चाहिए।

पांचवा—देखो, यह नहीं कहता कि मुझे छोड़ दो। हमको बार-बार याद दिलाता जाता है कि मुझ पर विश्वास न करो!

छठा—रात भर के कष्ट ने होश ठंडे कर दिये, अब आंखे खुली है।

पासोनियस—क्या तुम लोग मुझे छोड़ने की बातचीत कर रहे हो? मैं फिर कहता हूं, मैं विश्वास के योग्य नहीं हूं। मैं द्रोही हूं। मुझे ईरानियों के बहुत-से भेद मालूम हैं, एक बार उनकी सेना में पहुंच जाऊं तो उनका मित्र बनकर सर्वनाश कर दूं, पर मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है।

एक यूनानी—धोखेबाज इतनी सच्ची बात नहीं कह सकता!

दूसरा—पहले स्वार्थांध हो गया था; पर अब आंखे खुली हैं!

तीसरा—देखद्रोही से भी अपने मतलब की बातें मालूम कर लेने में कोई हानि नहीं है। अगर वह अपने वचन पूरे करे तो हमें इसे छोड़ देना चाहिए।

चौथा—देवी की प्रेरणा से इसकी कायापलट हुई है।

पांचवां—पापियों में भी आत्मा का प्रकाश रहता है और कष्ट पाकर जाग्रत हो जाता है। यह समझना कि जिसने एक बार पाप किया, वह फिर कभी पुण्य कर ही नहीं सकता, मान-चरित्र के एक प्रधान तत्व का अपवाद करना है।

छठा—हम इसको यहां से गाते-बजाते ले चलेंगे। जन-समूह को चकमा देना कितना आसान है। जनसत्तावाद का सबसे निर्बल अंग यही है। जनता तो नेक और बद की तमीज नहीं रखती। उस पर धूर्तों, रंगे-सियारों का जादू आसानी से चल जाता है। अभी एक दिन पहले जिस पासोनियस की गरदन पर तलवार चलायी जा रही थी, उसी को जलूस के साथ मंदिर से निकालने की तैयारियां होने लगीं, क्योंकि वह धूर्त था और जानता था कि जनता की कील क्योंकर घुमायी जा सकती है।

एक स्त्री—गाने-बजाने वालों को बुलाओ, पासोनियस शरीफ है।

दूसरी—हां-हां, पहले चलकर उससे क्षमा मांगो, हमने उसके साथ जरूरत से ज्यादा सख्ती की।

पासोनियस—आप लोगों ने पूछा होता तो मैं कल ही कल ही सारी बातें आपको बता देता, तब आपको मालूम होता कि मुझे मार डालना उचित है या जीता रखना।

कई स्त्री-पुरूष—हाय-हाय हमसे बडी भूल हुई। हमारे सच्चे पासोनियस!

सहसा एक वृद्धा स्त्री किसी तरफ से दौडती हुई आयी और मंदिर के सबसे ऊंचे जीने पर खडी होकर बोली—तुम लोगों को क्या हो गया है? यूनान के बेटे आज इतने ज्ञानशून्य हो गये हैं कि झूठे और सच्चे में विवेक नहीं कर सकते? तुम पासोनियस पर विश्वास करते हो? जिस पासोनियस ने सैकड़ों स्त्रियों और बालकों को अनाथ कर दिया, सैकडों घरों में कोई दिया जलाने वाला न छोड़ा, हमारे देवताओं का, हमारे पुरूषों का, घोर अपमान किया, उसकी दो-चार चिकनी-चुपड़ी बातों पर तुम इतने फूल उठे। याद रखो, अब की पासोनियस बाहर निकला तो फिर तुम्हारी कुशल नही। यूनान पर ईरान का राज्य होगा और यूननी ललनाएं ईरानियों की कुदृष्टि का शिकार बनेंगी। देवी की आज्ञा है कि पासोनियस फिर बाहर न निकलने पाये। अगर तुम्हें अपना देश प्यारा है, अपनी माताओं और बहनों की आबरू प्यारी है तो मंदिर के द्वार को चिन दों। जिससे देशद्रोही को फिर बाहर न निकलने और तुम लोगों को बहकाने का मौका न मिले। यह देखो, पहला पत्थर मैं अपने हाथों से रखती हूं।

लोगों ने विस्मित होकर देखा—यह मंदिर की पुजारिन और पासोनियस की माता थी।

दम के दम में पत्थरों के ढेर लग गये और मंदिर का द्वार चुन दिया गया। पासोनियस भीतर दांत पीसता रह गया।

वीर माता, तुम्हें धन्य है! ऐसी ही माता से देश का मुख उज्ज्वल होता है, जो देश-हित के सामने मातृ-स्नेह की धूल-बराबर परवाह नहीं करतीं! उनके पुत्र देश के लिए होते हैं, देश पुत्र के लिए नहीं होता।

लैला

यह कोई न जानता था कि लैला कौन है, कहां है, कहां से आयी है और क्या करती है। एक दिन लोगों ने एक अनुपम सुंदरी को तेहरान के चौक में अपने डफ पर हाफिज की एक गजल झूम-झूम कर गाते सुना –

रसीद मुजरा कि ऐयामें गम न ख्वाहद मांद,

चुनां न मांद, चुनीं नीज हम न ख्वाहद मांद।

और सारा तेहरान उस पर फिदा हो गया। यही लैला थी।

लैला के रुप-लालित्य की कल्पना करनी हो तो ऊषा की प्रफुल्ल लालिमा की कल्पना कीजिए, जब नील गगन, स्वर्ण-प्रकाश से संजित हो जाता है, बहार की कल्पना कीजिए, जब बाग में रंग-रंग के फूल खिलते हैं और बुलबुलें गाती हैं।

लैला के स्वर-लालित्य की कल्पना करनी हो, तो उस घंटी की अनवरत ध्वनि की कल्पना कीजिए जो निशा की निस्तब्धता में ऊंटों की गरदनों में बजती हुई सुनायी देती हैं, या उस बांसुरी की ध्वनि की जो मध्यान्ह की आलस्यमयी शांति में किसी वृक्ष की छाया में लेटे हुए चरवाहे के मुख से निकलती है।
जिस वक्त लैला मस्त होकर गाती थी, उसके मुख पर एक स्वर्गीय आभा झलकने लगती थी। वह काव्य, संगीत सौरभ और सुषमा की एक मनोहर प्रतिमा थी, जिसके सामने छोटे और बड़े, अमीर और गरीब सभी के सिर झुक जाते थे। सभी मंत्रमुग्ध हो जाते थे, सभी सिर धुनते थे। वह उस आनेवाले समय का संदेश सुनाती थी, जब देश में संतोष और प्रेम का साम्राज्य होगा, जब द्वंद्व और संग्राम का अन्त हो जायगा। वह राजा को जगाती और कहती, यह विलासिता कब तक, ऐश्वर्य-भोग कब तक? वह प्रजा की सोयी हुई अभिलाषाओं को जगाती, उनकी हृत्तत्रियों को अपने स्वर से कम्पित कर देती। वह उन अमर वीरों की कीर्ति सुनाती जो दीनों की पुकार सुनकर विकल हो जाते थे, उन विदुषियों की महिमा गाती जो कुल-मर्यादा पर मर मिटी थीं। उसकी अनुरक्त ध्वनि सुन कर लोग दिलों को थाम लेते थे, तड़प जाते थे।

सारा तेहरान लैला पर फिदा था। दलितों के लिए वह आशा की दीपक थी, रसिकों के लिए जन्नत की हूर, धनियों के लिए आत्मा की जाग्रति और सत्ताधारियों के लिए दया और धर्म का संदेश। उसकी भौंहों के इशारे पर जनता आग में कूद सकती थी। जैसे चैतन्य जड़ को आकर्षित कर लेता है, उसी भांति लैला ने जनता को आकर्षित कर लिया था।

और यह अनुपम सौंदर्य सुविधा की भांति पवित्र, हिम के समान निष्कलंक और नव कु सुम की भांति अनिंद्य था। उसके लिए प्रेम कटाक्ष, एक भेदभरी मुस्कान, एक रसीली अदा पर क्या न हो जाता–कंचन के पर्वत खड़े हो जाते, ऐश्वर्य उपासना करता, रियासतें पैर की धूल चाटतीं, कवि कट जाते, विद्वान घुटने टेकते; लेकिन लैला किसी की ओर आंख उठाकर भी न देखती थी। वह एक वृक्ष की छांह में रहती भिक्षा मांग कर खाती और अपनी हृदयवीणा के राग अलापती थी। वह कवि की सूक्ति की भांति केवल आनंद और प्रकाश की वस्तु थी, भोग की नहीं। वह ऋषियों के आशीर्वाद की प्रतिमा थी, कल्याण में डूबी हुई, शांति में रंगी हुई, कोई उसे स्पर्श न कर सकता था, उसे मोल न ले सकता था।

२

एक दिन संध्या समय तेहरान का शहजादा नादिर घोड़े पर सवार उधर से निकला। लैला गा रही थी। नादिर ने घोड़े की बाग रोक ली और देर तक आत्म–विस्मृत की दशा में खड़ा सुनता रहा। गजल का पहला शेर यह था–

मरा दर्देस्त अंदर दिल, गोयम जवां सोजद,

बगैर दम दरकशम, तरसन कि मगजी ईस्तख्वां सोजद।

फिर वह घोड़े से उतर कर वहीं जमीन पर बैठ गया और सिर झुकाये रोता रहा। तब वह उठा और लैला के पास जाकर उसके कदमों पर सिर रख दिया। लोग अदब से इधर-उधर हट गये।

लैला ने पूछा -तुम कौन हो?

नादिर—तुम्हारा गुलाम।

लैला—मुझसे क्या चाहते हो?

नादिर –आपकी खिदमत करने का हुक्म। मेरे झोपड़े को अपने कदमों से रोशन कीजिए।

लैला—यह मेरी आदत नहीं

शहजादा फिर वहीं बैठ गया और लैला फिर गाने लगी। लेकिन गला थर्राने लगा, मानो वीणा का कोई तार टूट गया हो। उसने नादिर की ओर करुण नेत्रों से देख कर कहा- तुम यहां मत बैठो।

कई आदमियों ने कहा- लैला, हमारे हुजूर शहजादा नादिर हैं।

लैला बेपरवाही से बोली–बड़ी खुशी की बात है। लेकिन यहां शहजादों का क्या काम? उनके लिए महल है, महफिलें हैं और शराब के दौर हैं। मैं उनके लिए गाती हूँ, जिनके दिल में दर्द है, उनके लिए नहीं जिनके दिल में शौक है।

शहजादा न उन्मत्त भाव से कहा–लैला, तुम्हारी एक तान पर अपना सब-कुछ निसार कर सकता हूं। मैं शौक का गुलाम था, लेकिन तुमने दर्द का मजा चखा दिया।

लैला फिर गाने लगी, लेकिन आवाज काबू में न थी, मानो वह उसका गला ही न था।

लैला ने डफ कंधे पर रख लिया और अपने डेरे की ओर चली। श्रोता अपने-अपने घर चले। कुछ लोग उसके पीछे-पीछे उस वृक्ष तक आये, जहां वह विश्राम करती थी। जब वह अपनी झोंपड़ी के द्वार पर पहुंची, तब सभी आदमी विदा हो चुके थे। केवल एक आदमी झोपड़ी से कई हाथ पर चुपचाप खड़ा था।

लैला ने पूछा–तुम कौन हो?

नादिर ने कहा–तुम्हारा गुलाम नादिर।

लैला–तुम्हें मालूम नहीं कि मैं अपने अमन के गोशे में किसी को नहीं आने देती?

नादिर—यह तो देख ही रहा हूं।

लैला –फिर क्यों बैठे हो?

नादिर–उम्मीद दामन पकड़े हुए हैं।

लैला ने कुछ देर के बाद फिर पूछा- कुछ खाकर आये हो?

नादिर–अब तो न भूख है ना प्यास

लैला–आओ, आज तुम्हें गरीबों का खाना खिलाऊं, इसका मजा भी चखा लो।

नादिर इनकार न कर सका। बाज उसे बाजरे की रोटियों में अभूत-पूर्व स्वाद मिला। वह सोच रहा था कि विश्व के इस विशाल भवन में कितना आनंद है। उसे अपनी आत्मा में विकास का अनुभव हो रहा था।

जब वह खा चुका तब लैला ने कहा–अब जाओ। आधी रात से ज्यादा गुजर गयी।

नादिर ने आंखो में आंसू भर कर कहा- नहीं लैला, अब मेरा आसन भी यही जमेगा।

नादिर दिन–भर लैला के नगमे सुनता गलियों में, सड़को पर जहां वह जाती उसके पीछे पीछे घूमता रहाता। रात को उसी पेड़ के नीचे जा कर पड़ा रहता। बादशाह ने समझाया मलका ने समझाया उमर ने मिन्नतें की, लेकिन नादिर के सिर से लैला का सौदा न गया जिन हालो लैला रहती थी उन हालो वह भी रहता था। मलका उसके लिए अच्छे से अच्छे खाने बनाकर भेजती, लेकिन नादिर उनकी ओर देखता भी न था--

लेकिन लैला के संगीत में जब वह क्षुधा न थी। वह टूटे हुए तारों का राग,था जिसमें न वह लोच थ न वह जादू न वह असर। वह अब भी गाती थीर सुननेवाले अब भी आते थे। लेकिन अब वह अपना दिल खुश करने को गाती थी और सुननेवाले विह्वल होकर नही, उसको खुशकरने के लिए आते थे।

इस तरह छ महीने गुजर गये।

एक दिन लैला गाने न गयी। नादिर ने कहा–क्यों लैला आज गाने न चलोगी?

लैला ने कहा-अब कभी न जाउंगा। सच कहना, तुम्हें अब भी मेरे गाने में पहले ही का-सा मजा आता है?

नादिर बोला–पहले से कहीं ज्यादा।

लैला- लेकिन और लोग तो अब पंसद नहीं करते।

नादिर–हां मुझे इसका ताज्जुब है।

लैला–ताज्जुब की बात नहीं। पहले मेरा दिल खुला हुआ था उसमें सबके लिए जगह थी। वह सबको खुश कर सकता था। उसमें से जो आवाज निकलती थी, वह सबके दिलो में पहुचती थी। अब तुमने उसका दरवाजा बंद कर दिया। अब वहां तुम्हारे सिवा और किसी के

काम का नहीं रहा। चलो मै तुम्हारे पीछे पीछे चलुगी। आज से तुम मेरे मालिक हो होती हूं चलो मै तुम्हारे पीछे पीछे चलूगा। आज से तूम मेरे मालिक हो। थोडी सी आग ले कर इस झोपड़ी में लगा दो। इस डफ को उसी में जला दुंगी।

3

तेहरान में घर-घर आनंदोत्सव हो रहा था। आज शहजादा नादिर लैला को ब्याह कर लाया था। बहुत दिनों के बाद उसके दिल की मुराद पुरी हुई थी सारा तेहरान शहजादे पर जान देता था। और उसकी खुशी में शरीक था। बादशाह ने तो अपनी तरफ से मुनादी करवा दी थी कि इस शुभ अवसर पर धन और समय का अपव्यय न किया जाय, केवल लोग मसजिदो में जमा होकर खुदा से दुआ मांगे कि वह और बधू चिरंजीवी हो और सुख से रहें। लेकिन अपने प्यारे शहजादे की शदी में धन और धन से अधिक मूल्यवान समय का मुंह देखना किसी को गवारा न था।
रईसो ने महफिलें सजायी। चिराग। जलो बाजे बजवाये गरीबों ने अपनी डफलियां संभाली और सड़कों पर घूम घूम कर उछलते कूदते। फिरे।

संध्या के समय शहर के सारे अमीर और रईस शहजादे को बधाई से चमकता और मनोल्लास से खिलता हुआ आ कर खड़ा हो गया।

काजी ने अर्ज की–हुजुर पर खुड़स की बरकत हो।

हजारों आदमियों ने कहा- आमीन!

शहर की ललनाएं भी लैला को मुबारकवाद देने आयी। लैला बिल्कुल सादे कपड़े पहने थी। आभूषणों का कहीं नाम न था।

एक महिला ने कहा–आपका सोहाग सदा सलामत रहे।

हजारों कंठों से ध्वनि निकली–आमीन!’

४

कई साल गुजर गये। नादिर अब बादशाह था। और लैला। उसकी मलका। ईरान का शासन इतने सुचारु रूप से कभी न हुआ था। दोनों ही प्रजा के हितैषी थे, दोनों ही उसे सुखी और सम्पन्न देखना चाहते थे। प्रेम ने वे सभी कठिनाइयां दूर कर दी जो लैला को पहले शंकित करती रहती थी। नादिर राजसता का वकील था, लैला प्रजा–सत्ता की लेकिन व्यावारिक रुप से उनमें कोई भेद न पड़ता था। कभी यह दब जाता, कभी वह हट जाती। उनका दाम्पत्य जीवन आर्दश था। नादिर लैला का रुख देखता था, लैला नादिर का। काम से अवकाश मिलता तो दोनो बैठ कर गाते बजाते, कभी नादियों को सैर करते कभी किसी वृक्ष की छांव में बैठे हुए हाफिज की गजले पढते और झुमते। न लैला में अब उतनी सादगी थी न नादिर में अब उतना तकल्लुफ था। नादिर का लैला पर एकाधिपत्य थ जो साधारण बात न थी। जहां बादशाहो की महलसरा में बेगमों के मुहल्ले बसते,थे, दरजनो और कैडियो से उनकी गणना होती थीवहा लैला अकेली थी। उन महलो में अब शफखाने, मदरसे और पुस्तकालय थे। जहां महलसरो का वार्षिक व्यय करोडों तक पहुंचता था, यहां अब हजारों से आगे न बढता था। शेष रुपये प्रजा हित के कामों में खर्च कर दिये जाते,थे। यह सारी कतर व्योत लैला ने की थी। बादशाह नादिर था, पर अख्तियार लैला के हाथों में था।

सब कुंछ था, किंतु प्रजा संतुष्ट न थी उसका असंतोष दिन दिन बढता जाता था। राजसत्तावादियों को भय था। कि अगर यही हाल रहा तो बादशाहत के मिट जाने में संदेह नहीं। जमशेद का लगाया हुआ वृक्ष जिसने हजारों सदियें से आधी और तुफान का मुकाबिला किया। अब एक हसीना के नाजुक पर कातिल हाथों जड़ से उखाड़ा जा रहा है। उधर प्रजा सत्तावादियों कोलैला से जितनी आशाएं,थी सभी दुराशांएं सिद्ध हो रही थीं वे कहते अगर ईरान इस चाल से तरक्की केरास्ते पर चलेगा तो इससे पहलेकि वह मंजिले मकसूद पर पहुंचे, कयामत आ जायगी। दुनिया हवाई जहाजपर बैठी उड़ी जा रही है। और हम अभी ठेलो पर बैठते भी डरते है कि कहीं इसकी हरकत से

दुनिया में भूचाल न आ जाय। दोनो दलो में आये दिन लडाइयों होती रहती थी। न नादिर के समझाने का असर अमीरो पर होता था, न लैला के समझाने का गरीबों पर। सामंत नादिर के खून के प्यासे हो गये, प्रज़ा लैला की जानी दुश्मन।

5

राज्य में तो यह अशांति फैली हुईथी, विद्रोह की आग दिलों में सुलग रही थीा। और राजभवन में प्रेम का शांतिमय राज्य था, बादशाह और मलका दोनो प्रजा -संतोष की कल्पना में मग्न थे।

रात का समय था। नादिर और लैला आरामगाह में बैठे हुए, शतरंज की बाजी खेल रहे थे। कमरे में कोाई सजावट न थी, केवल एक जाजिम विछी हुई थी।

नादिर ने लैला का हाथ पकड़कर कहा- बस अब यह ज्यादती नहीं,उ तुम्हारी चाल हो चुंकी। यह देखों, तुम्हारा एक प्यादा पिट गया।

लैला ' अच्छा यह शह। आपके सारे पैदल रखे रह गये और बादशाह को शह पड गयी। इसी पर दावा था।

नादिर –तुम्हारे हाथ हारने मे जो मजा है, वह जीतने में नहीं।

लैला-अच्छा, तो गोया आप दिल खुश कर रहे है।' शह बचाइए, नहीं दूसरी चाल में मात होती।

नादिर–(अर्दब देकर) अच्छा अब संभल जाना, तुमने मेरे बादशाह की तौहीन की है। एक बार मेरा फर्जी उठा तो तुम्हारे प्यादों का सफाया कर देगा।

लैला-बसंत की भी खबर है। आपको दो बार छोड़ दिया, अबकी हर्गिज न छोड़ूंगी।

नादिर-अब तक मेरे पास दिलराम (घोड़ा) है, बादशाह को कोई गम नहीं

लैला – अच्छा यह शह? लाइए अपने दिलराम को।' कहिए अब तो मात हुई?

नादिर-हां जानेमन अब मात हो गयी। जब मैही तुम्हारी आदाओं पर निसार हो गया तब मेरा बादशाह कब बच सकता था।

लैला–बातें न बनाइए, चुपके से इस फरमान पर दस्तखत कर दीजिए जैसा आपने वाद किया था।

यह कह कर लैला ने फरमान निकाला जिसे उसने खुद अपने मोती के से अक्षरो से लिखा था। इसमे अन्न का आयात कर घटाकर आधा कर दिया गया, था। लैला प्रजा को भूली न थी, वह अब भी उनकी हित कामना में संलग्न रहती थी। नादिर ने इस शर्त पर फरमान पर दस्तखत करने का वचन दिया था कि लैला उसे शतरंज में तीन बार मात करे। वह सिद्धहस्त खिलाड़ी था इसे लैला जानती थी, पर यह शतरंज की बाजी न थी, केवल विनोद था। नादिर ने मुस्कारते हुए फरमान पर हस्ताक्षर कर दिये कलम के एक एक चिन्ह से प्रजा की पांच करोड़ वार्षिक दर से मुक्ति हो गयी। लैला का मुख गर्व से आरक्त हो गया। जो काम बरसों के आन्दोलन से न हो सकता था, वह प्रेम कटाक्षों से कुछ ही दिनों में पुरा होगया।

यह सोचकर वह फूली न समाती थी कि जिस वक्त वह फरमान सरकारी पत्रे मं प्रकाशित हो जायेगा। और व्यवस्थापिका सभा के लोगो को इसके दर्शन होंगें, उस वक्त प्रजावादियों को कितना आनंद होगा। लोग मेरा यश गायेगें और मुझे आशीवार्द देगे।

नादिर प्रेम मुग्ध होकर उसके चंद्रमुख की ओर देख रहा था, मानो उसका वश होता तो सौंदर्य की इस प्रतिमा को ह्रदय में विठा लेता।

६

सहसा राज्य–भवन के द्वार पर शोर मचने लगा। एक क्षण में मालूम हुआ कि जनता का टीडी दल; अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित राजद्वार पर खड़ा दीवरो को तोडने की चेष्टा कर रहा हे। प्रतिक्षण शारे बढता जाता था और ऐसी आशंका होती थी कि क्रोधोन्मत्त जनता द्वारों को तोडकर भीतर घूस आयेगी। फिर ऐसा मालूम हुआ कि कुछ लोग सीढिया लगाकर दीवार पर चढ़ रहे है। लैला लज्जा और ग्लानि से सिर झुकाय खड़ी थी उसके मुख से एक शब्द भी न निकलता था। क्या यही वह जनता है, जिनके कष्टों की कथा कहते हुए उसकी वाणी उन्मत्त हो जाती थी? यही वह अशक्त, दलित क्षुधा पीड़ित अत्याचार की वेदा से तड़पती हुई जनता है जिस पर वह अपने को अर्पण कर चुकी थी।

नादिर भी मौन खड़ा था; लेकिन लज्जा से नही, क्रोध स उसका मुख तमतमा उठा था, आंखो से चिरगारियां निकल रही थी बार बार ओठ चबाता और तलवार के कब्जे पर हाथ रखकर रह जाता था वह बार बार लैला की ओर संतप्त नेत्रो से देखता था। जरा इशारे की देर थी। उसका हुक्म पाते ही उसकी सेना इस विद्रोही दल को यो भगा देगी जैसे आंधी। पतों को उड़ा देती है पर लैला से आंखे न मिलती थी।

आखिर वह अधीर होकर बोला-लैला, मै राज सेना को बुलाना चाहता हूं क्या कहती हो?

लैला ने दीनतापूर्ण नेत्रो से देखकर कहा–जरा ठहर जाइए पहले इन लोगो से पूछिए कि चाहते क्या है।

आदेश पाते ही नादिर छत पर चढ़ गया, लैला भी उसक पीछे पीछे ऊपर आ पहुंची। दोनों अब जनता के सम्मुख आकर खड़े हो गये। मशलों के प्रकाश में लोगों न इन दोनो को छत पर खड़े देखा मानो आकाश से देवता उतर आयें हों, सहस्त्रो से ध्वनि निकली–वह खड़ी है लैला वह खड़ी।' यह वह जनता थी जो लैला के मधुर संगीत पर मस्त हो जाया करती थी।

नादिर ने उच्च स्वर से विद्रोहियों को सम्बोधित किया–ऐ ईरान की बदनसीब रिआया। तुमने शाही महल को क्यो घेर रखा है? क्यों बगावत का झंडा खडा किया है? क्या तुमको मेरा और अपने खुदा का बिल्कुल खौफ किया। है? क्या तुम नहीं जानतें कि मै अपनी आंखों के एक इशारे से तुम्हारी हस्ती खाक में मिला सकता हूं? मै तुम्हे हुक्म देता हुं कि एक लम्हे के अन्दर यहां से चलो जाओं वरना कलामे-पाक की कसम, मै तुम्हारे खून की नदी बहा दूंगा।

एक आदमी ने, जो विद्रोहियों का नेता मालूम होता था, सामने आकर कहा–हम उस वक्त तक न जायेगे, जब तक शाही महल लैला से खाली न हो जायेगा।

नादिर ने बिगड़कर कहा-ओ नाशुक्रो, खुदा से डरो!' तूम्हे अपनी मलका की शान में ऐसी बेअदबी करते हुए शर्म नही आती!' जब से लैला तुम्हारी मलका हुई है, उसने तुम्हारे साथ किनती रियायते की है।' क्या उन्हें तुम बिलकुल भूल गये? जालिमो वह मलका है, पर वही खना खाती है जो तूम कुत्तों को खिला देते हो, वही कपड़े पहनती है, जो तुम फकीरो को दे देते हो। आकर महलसरा में देखो तुम इसे अपने झोपड़ो ही की तरह तकल्लफु और सजावट से खाली पाओगे। लैला तुम्हारी मलका होकर भी फकीरो की जिंदगी बसर करती है, तुम्हारी खिदमत में हमेशा मस्त रहती है। तुम्हें उसके कदमो की खाक माथे पर लगानी चाहिए आखो का सुरमा बनाना चाहिए। ईरान के तख्त पर कभी ऐसी गरीबो पर जान देने वाली उनके दर्द में शरीक होनेवाली गरीबो पर अपने को निसार करने वाली मलकाने कदम नही रखे और उसकी शान में तुम ऐसी बेहूदा बातें करते हो।' अफसोस मुझे मालूम हो गया कि तुम जाहिल इन्सानियत से खाली और कमीने हो।' तुम इसी काबिल हो कि तुम्हारी गरदेन कुन्द छुरी से काटी जायें तुम्हें पैरो तले रौदां जाये…

नादिर बात भी पूरी न कर पाया था कि विद्रोहियों ने एक स्वर से चिल्लाकर कहा-लैला हमारी दुश्मन है, हम उसे अपनी मलका की सुरत में नही देख सकते।

नादिर नेजोर से चिल्लाकर कहा-जालिमो, जरा खामोश हो जाओं, यह देखो वह फरमान है जिस पर लैला ने अभी अभी मुझसे जबरदस्तीर दस्तखत कराये है। आज से गल्ले का महसूल घटाकर आधा कर दिया गया है और तुम्हारे सिर से महसूल का बोझ पांच करोड़ कम हो गया है।

हजारो आदमियों ने शोर मचाया–यह महसूल बहुत पहले बिलकुल माफ हो जाना चाहिए था। हम एक कौड़ी नही दे सकते। लैला, लैला हम उसे अपनी मलका की सुरत में नही देख सकते।

अब बादशाह क्रोध से कापंने लगा। लैला ने सजल नेत्र होकर कहा-अगर रिआया की यही मरजी है कि मैं फिर डफ बजा-बजा कर गाती फिरुं तो मुझे उज्र नहीं, मुझे यकीन है कि मै अपने गाने से एक बार फिर इनके दिल पर हुकूमत कर सकती हूं।

नादिर ने उत्तेजित होकर कहा- लैला, मैं रिआया की तुनुक मिजाजियों का गूलाम नहीं। इससे पहले कि मै तुम्हे अपने पहलू से जूदा करुं तेहरान की गलियां खून से लाल हो जायेगी। मै इन बदमाशो को इनकी शरारत का मजा चखाता हूं।

नादिर ने मीनार पर चढकर खतरे का घंटा बजाया। सारे तेहरान मे उसकी आवाज गूंज उठी, शाही फौज का एक आदमी नजर न आया।

नादिर ने दोबारा घंटा बजाया, आकाश मंडल उसकी झंकार से कम्पित हो गया। तारागण कापं उठे; पर एक भी सैनिक न निकला।

नादिर ने तीससी बार घंटा बजाया पर उसका भी उत्तर केवल एक क्षीण प्रतिध्वनि ने दिया मानो किसी मरने वाले की अतिंम प्रार्थना के शब्द हों।

नादिर ने माथा पीट लिया। समझ गया कि बुरे दिन आ गये। अब भी लैला को जनता के दुराग्रह पर बलिदान करके वह अपनी राजसत्ता की रक्षा कर सकता था, पर लैला उसे प्राणों से प्रिय थी उसने

छत पर आकर लैला का हाथ पकड लिया और उसे लिये हुए सदर फाटक से निकला विद्रोहियों ने एक विजय ध्वनि क साथ उनका स्वागत किया, पर सब के सब किसी गुप्त प्ररेणा के वश रास्ते से हट गये।

दोनो चुपचाप तेहरान की गलियों में होते हुए चले जाते, थे। चारों ओर अंधकार था। दुकाने बंदथी बाजारों में सन्नाटा छाया हुआ था। कोई घर से बाहर न निकलता था। फकीरों ने भी मसजिदो में पनाह ले ली थी पर इन दोनो प्राणियो के लिए कोई आश्रय न था। नादिर की कमर में तलवार थी, लैला के हाथ में डफ था उनके विशाल ऐश्वर्य का विलुप्त चिह्न था।

7

पूरा साल गुजर गया। लैला और नादिर देश-विदेश की खाक छानते फिरते थे। समरकंद और बुखारा, बगदाद और हलब, काहिरा और अदन ये सारे देश उन्होंने छान डाले। लैला की डफ फिर जादू करने मेला लगी उसकी आवाज सुनते ही शहर में हलचल मच जाती, आदमीयों का मेला लग जाता आवभगत होने लगती; लेकिन ये दोनो यात्री कहीं एक दिन से अधिक न ठहरते थे। न किसी से कुछ मागंते न किसी के द्वार पर जाते। केवल रुखा-सुखा भोजन कर लेते और कभी किसी वृक्ष के नीचे कभी पर्वत की गुफा में और कभी सड़क के किनारे रात काट देते थे। संसार के कठोर व्यवहार ने उन्हें विरक्त हर दिया था, उसके प्रलोभन से कोसों दूर भागते थे। उन्हे अनुभव हो गया था कि यहां जिसके लिए प्राण अर्पण कर दो वहीं, अपना शत्रु हो जाता है, जिसके साथ भलाई करो, वही बुराई की कमर बांधता है, यहा किसी से दिल न लगाना चाहिए। उसके पास बड़े-बड़े रईसो के निमंत्रण आते उन्हे एक दिन अपना मेहमान बनाने केलिए हजारो मिन्नतें करते; पर लैला किसी की न सुनती। नादिर को अब तक कभी कभी बादशाहत की सनक सवार हो जाती थी। वह चाहता था कि गुप्त रुप से शक्ति संग्रह करके तेहरान पर चढ़ जाऊं और बागियों को परास्त करके अखंड राज्य करुं; पर लैला की उदासीनता देखकर उसे किसी से मिलने जुलने का साहस न होता था। लैला उसकी प्राणेश्वरी थी वह उसी के इशारों पर चलता था।

उधर ईरान में भी अराजकता फैली हुई थी। जनसत्ता से तंग आकर रईसो ने भी फौजे जमा कर ली थी और दोनो दलो मे आये दिन संग्राम होता रहता था। पूरा साल गूजर गया और खेत न जुते देश में भीषण अकाल पड़ा हुआ था,व्यापार शिथिल था, खजाना खाली। दिन–दिन जनता की शक्ति घटती जाती थी और रईसो को जोर बढता जाता था। आखिर यहां तक नौबत पहुंची कि जनता ने हथियार डाल दिये और रईसो ने राजभवन पर अपना अधिकार जमा लिया। । प्रजा के नेताओ को फांसी दे दी गयी, कितने ही कैद कर दिये गये और जनसत्ता का अंत हो गया। शक्तिवादियों को अब नादिर की याद आयी। यह बात अनुभव से सिद्ध हो गयी थी कि देश में प्रजातंत्र स्थापित करने की क्षमता का अभाव है। प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण की जरुरत न थी। इस अवसर पर राजसत्ता ही देश का उद्धार कर सकती थी। वह भी मानी हुई बात थी कि लैला और नादिर को जनमत से विशेष प्रेम न होगा। वे सिंहासन पर बैठकर भी रईसो ही के हाथ में कठपुतली बने रहेगें और रईसों को प्रजा पर मनमाने अत्याचार करने का अवसर मिलेगा। अतएव आपस में लोगों ने सलाह की और प्रतिनिधि नादिर को मना लाने के लिये रवाना हुंए।

८

संध्या का समय था। लैला और नादिर दमिश्क में एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे। आकाशा पर लालिमा छायी हुई थी। और उससे मिली हुई पर्वत मालाओं की श्याम रेखा ऐसी मालूम हो रही थी मानो कमल-दल मुरझा गया हो। लैला उल्लसित नेत्रो से प्रकृति की यह शोभा देख रही थी। नादिर मलिन और चिंतित भाव से लेटा हुआ सामने के सुदुर प्रांत की ओर तृषित नेत्रों से देख रहा था, मानो इस जीवन से तंग आ गया है।

सहसा बहुत दूर गर्द उड़ती हुई दिखाई दी और एक क्षण में ऐसा मालूम हुआ कि कुछ आदमी घोड़ो पर सवार चले आ रहे है। नादिर उठ बैठा और गौर से देखने लगा कि ये कौन आदमी है। अकस्मात वह उठकर खड़ा हो गया। उसका मुख मंडल दीपक की भाति चमक उठा जर्जर शरीर में एक विचित्र स्फुर्ति दौड़ गयी। वह उत्सुकता से बोला–लैला, ये तो ईरान के आदमी, कलामे–पाक की कसम, ये ईरान के आदमी है। इनके लिबास से साफ जाहिए हो रहा है।

लैला–पहले मै, भी उन यात्रियों की ओर देखा और सचेत होकर बोली–अपनी तलवार संभाल लो, शायद उसकी जरुरत पड़े,।

नादिर–नहीं लैला, ईरान केलोग इतने कमीने नहीं है कि अपने बादशाह पर तलवार उठायें।

लैला- पहले मै भी यही समझती थी।

सवारों ने समीप आकर घोड़े रोक लिये। उतकर बड़े अदब से नादिर को सलाम किया। नादिर बहुत जब्त करने पर भी अपने मनोवेग को न रोक सका, दौड़कर उनके गले लिपट गया। वह अब बादशाह न था, ईरान का एक मुसाफिर था। बादशहत मिट गयी थी, पर ईरानियत रोम रोम में भरी हुई थ्री। वे तीनों आदमी इस समय ईरान के विधाता थे। इन्हे वह खूब पहचानता था। उनकी स्वामिभक्ति की वह कई बार परीक्षा ले चुका था। उन्हे लाकर अपने बोरिये पर बैठाना चाहा, लेकिन वे जमीन पर ही बैठे। उनकी दृष्टि से वह बोरिया उस समय सिंहासन था, जिस पर अपने स्वामी के सम्मुख वे कदम न रख सकते थे। बातें होने लगीं, ईरान की दशा अत्यंत शोचनीय थी। लूट मार का बाजार गर्म था, न कोई व्यवस्था थी न व्यवस्थापक थे। अगर यही दशा रही तो शायद बहुत जल्द उसकी गरदन में पराधीनता का जुआ पड़ जाये। देश अब नादिर को ढूंढ रहा था। उसके सिवा कोई दूसरा उस डुबते हुए बेडे को पार नहीं लगा सकता था। इसी आशा से ये लोग उसके पास आये थे।

नादिर ने विरक्त भाव से कहा- एक बार इज्जत ली, क्या अबकी जान लेने की सोची है? मै बड़े आराम से हूं।' आप मुझे दिक न करें।

सरदारों ने आग्रह करना शुरु किया–हम हुजूर का दामन न छोड़ेगे, यहां अपनी गरदनों पर छुरी फेर कर हुजूर के कदमो पर जान दे देगे। जिन बदमाशों ने आपकी परेशान किया। अब उनका कहीं निशान भी नहीं रहा हम लोगो उन्हें फिर कभी सिर न उठाने देगें ,सिर्फ़ हुजूर की आड़ चाहिए।

नादिर नेबात काटकर कहा-साहबो अगर आप मुझे इस इरादे से ईरान का बादशाह बनाना चाहते है, तो माफ कीजिए। मैने इस सफर मे रिआया की हालत का गौर से मुलाहजा किया है और इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि सभी मुल्को में उनकी हालत खराब है। वे रहम के कबिल है ईरान में मुझे कभी ऐसे मौके ने मिले थे। मैं रिआया को अपने दरवारियों की आखों से देखता था। मुझसे आप लोग यह उम्मीद न रखे कि रिआया को लूटकर आपकी जेबें भरुगां। यह अजाब अपनी गरदन पर नही ने सकता। मैं इन्साफ का मीजान बराबर रखूंगा और इसी शर्त पर ईरान चल सकता हूं।

लैला ने मुस्कराते कहा-तुम रिआया का कसूर माफ कर सकते हो, क्योकि उसकी तुमसे कोई दुश्मनी न थी। उसके दांत तो मुझे पर थे। मै उसे कैसे माफ कर सकती हूं।

नादिर ने गम्भीर भाव से कहा-लैला, मुझं यकीन नहीं आता कि तुम्हारे मुंह से ऐसी बातें सुन रहा हूं।

लोगो ने समझा अभी उन्हें भड़काने की जरुरत ही क्या है। ईरान में चलकर देखा जायेगा। दो चार मुखबिरो से रिआया के नाम पर ऐसे उपद्रव खड़े करा देंगे कि इनके सारे ख्याल पलट जायेगें। एक सरदार ने अर्ज की- माजल्लाह; हुजूर यह क्या फरमाते है? क्या हम इतने नादान है कि हुजूरं को इन्साफ के रास्ते से हटाना चाहेगें? इन्साफ हीबादशाह का जौहर है और हमारी दिली आरजू है कि आपका इन्साफ ही नौशेरवां को भी शर्मिदां कर दे,। हमारी मंशा सिर्फ यह थी कि आइंदा से हम रिआया को कभी ऐसा मौका न देगें कि वह हुजूर की शान में बेअदबी कर सके। हम अपनी जानें हुजूर पर निसार करने के लिए हाजिर रहेंगे।

सहसा ऐसा मालूम हुआ कि सारी प्रकृति संगीतमय हो गयी है । पर्वत और वृक्ष, तारे, और चॉद वायु और जल सभी एक स्वर से गाने लगे। चॉदनी की निर्मल छटा में वायु के नीरव प्रहार में संगीत की तरंगें उठने लगी। लैला अपना डफ बजा बजा कर गा रही थी। आज मालूम हुआ, ध्वनि ही सृष्टि का मूल है।द पर्वतों पर देवियां निकल निकल कर नाचने लगीं अकाशा पर देवता नृत्य करने लगे। संगीत ने एक नया संसार रच डाला।

उसी दिन से जब कि प्रजा ने राजभवन के द्वार पर उपद्रव मचाया था और लैला के निर्वासन पर आग्रह किया था, लैला के विचारों में क्रांति हो रही थी जन्म से ही उसने जनता के साथ साहनुभूति करना सीखा था। वह राजकर्मचारियें को प्रजा पर अत्याचार करते देखती थी और उसका कोमल ह्रदय तड़प उठता था। तब धन ऐश्वर्य और विलास से उसे घृणा होने लगती थी। जिसके कारण प्रजा को इतने

कष्ट भोगने पड़ते है। वह अपने में किसी ऐशी शक्ति का आह्वाहन करना चाहती थी कि जो आतताइयों के हृदय में दया और प्रजा के हृदय में अभय का संचार करे। उसकी बाल कल्पना उसे एक सिंहासन पर बिठा देती, जहां वह अपनी न्याय नीति से संसार में युगातर उपस्थित कर देती। कितनी रातें उसने यही स्वप्न देखने में काटी थी। कितनी बार वह अन्याय पीड़ियों के सिरहाने बैठकर रोयीथी लेकिन जब एक दिन ऐसा आया कि उसके स्वर्ण स्वप्न आंशिक रीति से पूरे होने लगे तब उसे एक नया और कठोर अनुभव हुआ! उसने देखा प्रजा इतनी सहनशील इतनी दीन और दुर्बल नहीं है, जितना वह समझती थी इसकी अपेक्षा उसमें ओछेपन, अविचार और अशिष्टता की मात्रा कहीं अधिक थी। वह सद्व्यहार की कद्र करना नही जानती, शाक्ति पाकर उसका सदुपयोग नहीं कर सकती। उसी दिन से उसका दिल जनता से फिर गया था।

जिस दिन नादिर और लैला ने फिर तेहरान में पदार्पण किया, सारा नगर उनका अभिवादन करने के लिए निकल पड़ा शहर पर आतंक छाया हुआ था।, चारो ओर करुण रुदन की ध्वनि सुनाई देती थी। अमीरों के मुहल्ले में श्री लोटती फिरती थी गरीबो के मुहल्ले उजड़े हुएथे, उन्हे देखकर कलेजा फटा जाता था। नादिर रो पड़ा, लेकिन लैला के होठों पर निष्ठुर निर्दय हास्य छटा दिखा रहा था।

नादिर के सामने अब एक विकट समय्या थी। वह नित्य देखता कि मै जो करना चाहता हूं वह नही होता और जो नहीं करना चाहता वह होता है और इसका कारण लैला है, पर कुछ कह न सकता था। लैला उसके हर एक काम में हस्तक्षेप करती रहती, थी। वह जनता के उपकार और उद्धार के लिए विधान करता, लैला उसमे कोई न कोई विध्न अवश्य डाल देती और उसे चुप रह जाने के सिवा और कुछ न सुझता लैला के लिए उसने एक बार राज्य का त्याग कर दिया था तब आपति-काल ने लैला की परीक्षा की थी इतने दिनों की विपति में उसे लैला के चरित्र का जो अनुभव प्राप्त हुआ था, वह इतना मनोहर इतना सरस था कि वह लैला मय हो गया था। लैला ही उसका स्वर्ग थी, उसके प्रेम में रत रहना ही उसकी परम अधिलाषा थी। इस लैला के लिए वह अब क्या कुछ न कर सकता था? प्रजा की ओर साम्राज्य की उसके सामने क्या हस्ती थी।

इसी भांति तीन साल बीत गये प्रजा की दशा दिन दिन बिगड़ती ही गयी।

९

एक दिन नादिर शिकर खेलने गया। और साथियों से अलग होकर जंगल में भटकता फिरा यहां तक कि रात हो गयी और साथियों का पता न चला। घर लौटने का भी रास्ता न जानता था। आखिर खुदा का नाम लेकर वह एक तरफ चला कि कहीं तो कोई गांव या बस्ती का नाम निशान मिलेगा! वहां रात, भर पड़ रहुंगा सबेरे लौट जाउंगा। चलते चलते जंगल के दूसरे सिरे पर उसे एक गांव नजर आया। जिसमें मुश्किल से तीन चार घर होगें हा, एक मसजिद अलबत्ता बनी हुई थी। मसजिद मे एक दीपक टिमटिमा रहा था पर किसी आदमी या आदमजात का निशान न था। आधी रात से ज्यादा बीत चुकी थी, इसलिए किसी को कष्ट देना भी उचित न था। नादिर ने घोड़े का एक पेड़ स बाध दिया और उसी मसजिद में रात काटने की ठानी। वहां एक फटी सी चटाई पड़ी हुई थी। उसी पर लेट गया। दिन भर तक सोता रहा; पर किसी की आहट पाकर चौका तो क्या देखता है कि एक बूढा आदमी बैठा नमाज पढ़ रहा है। उसे यह खबर न थी किरात गुजर गयी और यह फजर की नमाज है। वह पड़ा–पड़ा देखता रहा। वृद्ध पुरुष ने नमाज अदा कही फिर वह छाती के सामने अजिल फैलकर दुआ मांगने लगा। दुआ के शब्द सुनकर नादिर का खून सर्द हो गया। वह दुआ उसके राज्यकाल की ऐसी तीव्र, ऐसी वास्तिवक ऐसी शिक्षाप्रद आलोचना थी जो आज तक किसी ने न की थी उसे अपने जीवन में अपना अपयश सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। वह यह तो जानता था कि मेरा शासन आदर्श नहीं है, लेकिन उसने कभी यह कल्पना न की थी कि प्रजा की विपति इतनी असत्य हो गयी है। दुआ यह थी-

''ए खुदा! तू ही गरीबो का मददगार और बेकसों का सहारा है।
तू इस जालिम बादशह के जुल्म देखता है और तेरा वहर उस पर नहीं गिरता। यह बेदीन काफिर एक हसीन औरत की मुहब्बत में अपने को इतना भूल गया है कि न आखों से, देखता है, न कानो से सुनता है। अगर देखता है तो उसी औरत की आंखें से सुनता है तो उसी औरत के कानो से अब यह मुसीबत नहीं सही जाती। या तो तू उस जालिम को जहन्नुम पहुंचा दे; या हम बेकसों को दुनिया से उठा ले। ईरान उसके जुल्म से तंग आ गया है। और तू ही उसके सिर से इस बाला को टाल सकता है।'

बूढें ने तो अपनी छड़ी संभाली और चलता हुआ, लेकिन नादिर मृतक की भातिं वहीं पड़ा रहा मानों उसे पर बिजली गिर पड़ी हों।

१०

एक सप्ताह तक नादिर दरबार में न आया, न किसी कर्मचारी को अपने पास आने की आज्ञा दी। दिन केदिन अन्दर पड़ा सोचा करता कि क्या करुं। नाम मात्र को कुछ खा लेता। लैला बार बार उसके पास जाती और कभी उसका सिर अपनी जांघ पर रखकर कभी उसके गले में बाहें डालकर पूछती–तुम क्यों इतने उदास और मलिन हो। नादिरा उसे देखकर रोने लगता; पर मुंह से कुछ न कहता। यश या लैला, यही उसके सामने कठिन समस्या थी। उसक हृदय में भीषण द्वन्द्व रहाता और वह कुद निश्चय न कर सकता था। यश प्यारा था; पर लैला उससे भी प्यारी थी वह बदनाम होकर जिंदा रह सकता था। लैला उसके रोम रोम में व्याप्त थी।

अंत को उसने निश्चय कर लिया–लैला मेरी है मै लैला का हूं। न मै उससे अलग न वह मुझेस जुदा। जो कुछ वह करती है मेरा है, जो मै करता हू। उसका है यहां मेरा और तेरा का भेद ही कहां? बादशाहत नश्वार है प्रेम अमर । हम अनंत काल तक एक दूसरे के पहलू में बैठे हुए स्वर्ग के सुख भोगेगें। हमारा प्रेम अनंत काल तक आकाश में तारे की भाति चमकेगा।

नादिर प्रसन्न होकर उठा। उसका मुख मंडल विजय की लालिमा से रंजित हो रहा था। आंखों में शौर्य टपका पड़ता था। वह लैला के प्रेमका प्याला पीने जा रहा था। जिसे एक सप्ताह से उसने मुंह नहीं लगाया था। उसका हृदय उसी उमंग से उछता पड़ताथा। जो आज से पांच साल पहले उठा करती थी। प्रेम का फूल कभी नही मुरझाता प्रेम की नीदं कभी नहीं उतरती।

लेकिन लैला की आरामगाह के द्वार बंद थे और उसका उफ जो द्वार पर नित्य एक खूंटी से लटका रहता था, गायब था। नादिर का कलेजा सन्न-सा हो गया। द्वार बदं रहने का आशय तो यह हो सकता हे कि लैला बाग में होगी; लेकिन उफ कहां गया? सम्भव है, वह उफ लेकर बाग में गयी हो, लेकिन यह उदासी क्यो छायी है? यह हसरत क्यो बरस रही है।'

नादिर ने कांपते हुए हाथो से द्वार खोल दिया। लैला अंदर न थी पंगल बिछा हुआ था, शमा जल रही थी, वजू का पानी रखा हुआथा। नादिर के पावं थर्राने लगे। क्या लैला रात को भी नहीं सोती? कमरे की एक एक बस्तु में लैला की याद थी, उसकी तस्वीर थी ज्योति-हीन नेत्र।

नादिर का दिल भर आया। उसकी हिम्मत न पड़ी कि किसी से कुछ पूछे। हृदय इतना कातर हो गया कि हतबुद्धि की भांति फर्श पर बैठकर बिलख-बिलख कर रोने लगा। जब जरा आंसू थमे तब उसने विस्तर को सूघां कि शायद लैला के स्पर्श की कुछ गंध आये; लेकिन खस और गुलाब की महक क सिवा और कोई सुगंध न थी।

साहसा उसे तकिये के नीचे से बाहर निकला हुआ एक कागज का पुर्जा दिखायी दिया। उसने एक हाथ से कलेजे को सभालकर पुर्जा निकाल लिया और सहमी हुई आंखो से उसे देखा। एक निगाह में सब कुछ मालूम हो गया। वह नादिर की किस्मत का फैसला था। नादिर के मुंह से निकला, हाय लैला; और वह मुर्छित होकर जमीन पर गिर पड़ा। लैला ने पुर्जे में लिखा था-मेरे प्यारे नादिर तुम्हारी लैला तुमसे जुदा होती है। हमेशा के लिए । मेरी तलाश मत करना तुम मेरा सुराग न पाओगे । मै तुम्हारी मुहब्बत की लौंड़ी थी, तुम्हारी बादशाहत की भूखी नहीं। आज एक हफते से देख रही हूं तुम्हारी निगाह फिरी हुई है। तुम मुझसे नहीं बोलते, मेरी तरफ आंख उठाकर नहीं देखते। मुझेसे बेजार रहते हो। मै किन किन अरमानों से तुम्हारे पास जाती हूं और कितनी मायूस होकर लौटती हूं इसका तुम अंदाज नहीं कर सकते। मैने इस सजा के लायक कोई काम नहीं किया। मैने जो कुछ है, तुम्हारी ही भलाई केखयाल से। एक हफता मुझे रोते गुजर गया। मुझे मालूम हो रहा है कि अब मै तुम्हारी नजरों से गिर गयी, तुम्हारे दिल से निकाल दी गयी। आह! ये पांच साल हमेशा याद रहेगें, हमेशा तड़पाते रहेंगें! यही डफ ले कर आयी थी, वही लेकर जाती हूं पांच साल मुहब्बत के मजे उठाकर जिंदगी भर केलिए हसरत का दाग लिये जाती हूं। लैला मुहब्बत की लौंडी थी, जब मुहब्बत न रही, तब लैला क्योंकर रहती? रूखसत!'

नेउर

आकाश में चांदी के पहाड़ भाग रहे थे, टकरा रहे थे गले मिल रहें थे, जैसे सूर्य मेघ संग्राम छिड़ा हुआ हो। कभी छाया हो जाती थी कभी तेज धूप चमक उठती थी। बरसात के दिन थे। उमस हो रही थी । हवा बदं हो गयी थी।

गावं के बाहर कई मजूर एक खेत की मेड़ बांध रहे, थे। नंगे बदन पसीने में तर कछनी कसे हुए, सब के सब फावड़े से मिटटी खोदकर मेड़ पर रखते जाते थे। पानी से मिट्टी नरम हो गयी थी।

गोबर ने अपनी कानी आंख मटकाकर कहां-अब तो हाथ नहीं चलता भाई गोल भी छूट गया होगा, चबेना कर ले।

नेउर ने हंसकर कहा-यह मेड़ तो पूरी कर लो फिर चबेना कर लेना मै तो तुमसे पहले आया।

दोनो ने सिर पर झौवा उठाते हुए कहा-तुमने अपनी जवानी में जितनी घी खाया होगा नेउर दादा उतना तो अब हमें पानी भी नहीं मिलता। नेउर छोटे डील का गठीला काला, फुर्तीला आदमी,था। उम्र पचास से ऊपर थी, मगर अच्छे अच्छे नौजवान उसके बराबर मेहनत न कर सकते थे अभी दो तीन साल पहले तक कुश्ती लड़ना छोड दिया था।

गोबर–तुमने तमखू पिये बिना कैसे रहा जाता है नेउर दादा? यहां तो चाहे रोटी ने मिले लेकिन तमाखू के बिना नहीं रहा जाता। दीना–तो यहां से आकर रोटी बनाओगे दादा? बुछिया कुछ नहीं करती? हमसे तो दादा ऐसी मेहरिय से एक दिन न पटे।

नेउर के पिचक खिचड़ी मूंछो से ढके मुख परहास्य की स्मित-रेखा चमक उठी जिसने उसकी कुरुपता को भी सुन्दर बनार दिया। बोला-जवानी तो उसी के साथ कटी है बेटा, अब उससे कोई काम नही होता। तो क्या करुं।

गोबर–तुमने उसे सिर चढा रखा है, नहीं तो काम क्यो न करती? मजे से खाट पर बैठी चिलम पीती रहती है और सारे गांव से लड़ा करती है तूम बूढे हो गये, लेकिन वह तो अब भी जवान बनी है।

दीना–जवान औरत उसकी क्या बराबरी करेगी? सेंदुर, टिकुली, काजल, मेहदी में तो उसका मन बसाता है। बिना किनारदार रंगीन धोती के उसे कभी उदेखा ही नहीं उस पर गहानों से भी जी नहीं भरता। तुम गऊ हो इससे निबाह हो जाता है, नहीं तो अब तक गली गली ठोकरें खाती होती।

गोबर – मुझे तो उसके बनाव सिंगार पर गुस्सा आताहै । कात कुछन करेगी; पर खाने पहनने को अच्छा ही चाहिए।

नेउर-तुम क्या जानो बेटा जब वह आयी थी तो मेरे घर सात हल की खेती होती थी। रानी बनी बैठी रहती थी। जमाना बदल गया, तो क्या हुआ। उसका मन तो वही है। घड़ी भर चूल्हे के सामने बैठ जाती है तो क्या हुआ! उसका मन तो वही है। घड़ी भर चूल्हे के सामने बैठ जाती है तो आंखे लाल हो जाती है और मूड़ थामकर पड़ जाती है। मझसे तो यह नही देखा जाता। इसी दिन रात के लिए तो आदमी शादी ब्याह करता है और इसमे क्या रखा है। यहां से जाकर रोटी बनाउंगा पानी, लाऊगां, तब दो कौर खायेगी। नहीं तो मुझे क्या था तुम्हारी तरह चार फंकी मारकर एक लोटा पानी पी लेता। जब से बिटिया मर गयी। तब से तो वह और भी लस्त हो गयी। यह बड़ा भारी धक्का लगा। मां की ममता हम–तुम क्या समझेगें बेटा! पहले तो कभी कभी डांट भी देता था। अबकिस मुंह से डांटूं?

दीना-तुम कल पेड़ काहे को चढे थे, अभी गूलर कौन पकी है?

नेउर-उस बकरी के लिए थोड़ी पत्ती तोड़ रहा था। बिटिया को दूध पिलाने को बकरी ली थी। अब बुढिया हो गयी है। लेकिन थोड़ा दूध दे देती है। उसी का दूध और रोटी बुढिया का आधार है।

घर पहुंचकर नेउर ने लोटा और डोर उठाया और नहाने चला कि स्त्री ने खाट पर लेटे–लेटे कहा-इतनी देर क्यों कर दिया करते हो? आदमी काम के पीछे परान थोड़े ही देता है? जब मजूरी सब के बराबर मिलती है तो क्यो काम काम केपीछे मरते हो?

नेउर का अन्त:करण एक माधुर्य से सराबोर हो गया। उसके आत्मसमर्पण से भरे हुए प्रेम में मैं की गन्ध भी तो नहीं थी। कितनी स्नेह! और किसे उसके आराम की, उसके मरने जीने की चिन्ता है? फिर यह क्यों न अपनी बुढिया के लिए मरे? बोला–तू उन जनम में कोई देवी रही होगी बुढिया,सच।

''अच्छा रहने दो यह चापलूसी । हमारे आगे अब कौन बैठा हुआ है, जिसके लिए इतनी हाय–हाय करते हो?''

नेउर गज भर की छाती किये स्नान करने चला गया। लौटकर उसने मोटी मोटी रोटियां बनायी। आलू चूल्हे में डाल दिये। उनका भुरता बनाया, फिर बुढिया और वह दोनो साथ खाने बैठे।

बुढिया–मेरी जात से तुम्हे कोई सुख न मिला। पड़े-पड़े खाती हूं और तुम्हे तंग करती हूं और इससे तो कहीं अच्छा था कि भगवान मुझे उठा लेते।'

'भगवान आयेंगे तो मै कहूंगा पहले मुझे ले चलों। तब इस सूनी झोपड़ी में कौन रहेगा।'

'तुम न रहोगे, तो मेरी क्या दशा होगी। यह सोचकर मेरी आंखो में अंधेरा आ जाता है। मैने कोई बड़ा पुन किया था। कि तुम्हें पाया था। किसी और के साथ मेरा भला क्या निबाह होता?'

ऐसे मीठे संन्तोष के लिए नेउर क्या नहीं कर डालना चाहता था।

आलसिन लोभिन, स्वार्थिन बुढियांअपनी जीभ पर केवल मिठास रखकर नेउर को नचाती थी जैसे कोई शिकारी कंटिये में चारा लगाकर मछली को खिलाता है।

पहले कौन मरे, इस विषय पर आज यह पहली ही बार बातचीत न हुई थी। इसके पहले भी कितनी ही बार यह प्रश्न उठा था और या ही छोड़ दिया गया था;! लेकिन न जाने क्यों नेउर ने अपनी डिग्री कर ली थी और उसे निश्चय था कि पहले मैं जाऊंगा। उसके पीछे भी बुढिया जब तक रह आराम से रहे, किसी के सामने हाथ न फैलाये, इसीलिए वह मरता रहता था, जिसमे हाथ में चार पैसे जमाहो जाये।' कठिन से कठिन काम जिसे कोई न कर सके नेउर करता दिन भर फावड़े कुदाल का काम करने के बाद रात को वह ऊख के दिनों में किसी की ऊख पेरता या खेतों की रखवाली करता, लेकिन दिन निकलते जाते थे और जो कुछ कमाता था वह भी निकला जाता था। बुढिया के बगैर वह जीवन नहीं, इसकी वह कल्पना ही न कर सकता था।

लेकिन आज की बाते ने नेउर को सशंक कर दिया। जल में एक बूंद रंग की भाति यह शका उसके मन मे समा कर अतिरजितं होने लगी।

२

गांव में नेउर को काम की कमी न थी, पर मजूरी तो वही मिलती थी, जो अब तक मिलती आयी थी; इस मन्दी में वह मजूरी भी नही रह गयी थी। एकाएक गांव में एक साधु कहीं से घूमते–फिरते आ निकले और नेउर के घर के सामने ही पीपल की छांह मे उनकी धुनी जल गई गांव वालो ने अपना धन्य भाग्य समझा। बाबाजी का सेवा स्त्कार करने के लिए सभी जमा हो गये। कहीं से लकड़ी आ गयी से कहीं से बिछाने को कम्बल कहीं से आटा–दाल। नेउर के पास क्या था।? बाबाजी के लिए भेजन बनाने की सेवा उसने ली। चरस आ गयी , दम लगने लगा।

दो तीन दिन में ही बाबाजी की कीर्ति फैलने लगी। वह आत्मदर्शी है भूत भविष्य ब बात देते है। लोभ तो छू नहीं गया। पैसा हाथ से नहीं छूते और भोजन भी क्या करते है। आठ पहर में एक दो बाटियां खा ली; लेकिन मुख दीपक की तरह दमक रहा है। कितनी मीठी बानी है।! सरल हृदय नेउर बाबाजी का सबसे बड़ा भक्त था। उस पर कहीं बाबाजी की दया हो गयी। तो पारस ही हो जायगा। सारा दुख दलिद्दर मिट जायगा।

भक्तजन एक-एक करके चले गये थे। खूब कड़ाके की ठंड़ पड़ रही थी केवल नेउर बैठा बाबाजी के पांव दबा रहा था।

बाबा जी ने कहा- बच्चा! संसार माया है इसमें क्यों फंसे हो?

नेउर ने नत मस्तक होकर कहा-अज्ञानी हुं महाराज, क्या करूं?

स्त्री है उसे किस पर छोड़ूं!

'तू समझता है तू स्त्री का पालन करता है?'

'और कौन सहारा है उसे बाबाजी?'

'ईश्वर कुद नही है तू ही सब कुछ है?'

नेउर के मन में जैसे ज्ञान-उदय हो गया। तु इतना अभिमानी हो गया है। तेरा इतना दिमाग! मजदूरी करते करते जान जाती है और तू समझता है मै ही बुढिया का सब कुछ हूं। प्रभु जो संसार का

पालन करते है, तु उनके काम में दखल देने का दावा करता है। उसके सरल करते है। आस्था की ध्वनि सी उठकर उसे धिक्कारने लगी बोला–अज्ञानी हूं महाराज!

इससे ज्यादा वह और कुछ न कह सका। आखों से दीन विषाद के आंसु गिरने लगे।

बाबाजी ने तेजस्विता से कहा –'देखना चाहता है ईश्वर का चमत्कार! वह चाहे तो क्षण भर मे तुझे लखपति कर दे। क्षण भर में तेरी सारी चिन्ताएं। हर ले! मै उसका एक तुच्छ भक्त हूं काकविष्टा; लेकिन मुझेमें भी इतनी शक्ति है कि तुझे पारस बना दूँ। तू साफ दिल का, सच्चा ईमानदार आदमी है। मूझे तुझपर दया आती है। मैने इस गांव में सबको ध्यान से देखा। किसी में शक्ति नहीं विश्वास नहीं । तुझमे मैने भक्त का हृदय पाया तेरे पास कुछ चांदी है?''

नेउर को जान पड रहा था कि सामने स्वर्ग का द्वार है।

'दस पाँच रुपये होगे महाराज?'

'कुछ चांदी के टूटे फूटे गहने नहीं है?'

'घरवाली के पास कुछ गहने है।'

'कल रात को जितनी चांद मिल सके यहां ला और ईश्वर की प्रभुता देख। तेरे सामने मै चांदी की हांड़ी में रखकर इसी धुनी में रख दूंगा प्रात:काल आकर हांडी निकला लेना; मगर इतना याद रखना कि उन अशर्फियो को अगर शराब पीने में जुआ खेलने में या किसी दूसरे बुरे काम में खर्च किया तो कोढी हो जाएगा। अब जा सो रह। हां इतना और सुन ले इसकी चर्चा किसी से मत करना घरवालों से भी नहीं।'

नेउर घर चला, तो ऐसा प्रसन्न था मानो ईश्वर का हाथ उसके सिर पर है। रात-भर उसे नींद नही आयी। सबेरे उसने कई आदमियों से दो-दो चार चार रुपये उधार लेकर पचास रुपये जोडे! लोग उसका विश्वास करते थे। कभी किसी का पैसा भी न दबाता था। वादे का पक्का नीयत का साफ। रुपये मिलने में दिक्कत न हुई। पचीस रुपये उसके पास थे। बुढिया से गहने कैसे ले। चाल चली। तेरे गहने बहुत मैले हो गये है। खटाई से साफ कर ले । रात भर खटाई में रहने से नए हो जायेगे। बुढिया चकमे में आ गयी। हांड़ी में खटाई डालकर गहने भिगो दिए और जब रात को वह सो गयी तो नेउर ने रुपये भी उसी हांडी मे डाला दिए और बाबाजी के पास पहुंचा। बाबाजी ने कुछ मन्त्र पढ़ा। हांड़ी को छूनी की राख में रखा और नेउर को आशीर्वाद देकर विदा किया।

रात भर करबटें बदलने के बाद नेउर मुंह अंधेरे बाबा के दर्शन करने गया। मगर बाबाजी का वहां पता न था। अधीर होकर उसने धूनी की जलती हुई राख टटोली । हांड़ी गायब थी। छाती धक-धक करने लगी। बदहवास होकर बाबा को खोजने लगा। हाट की तरफ गया। तालाब की ओर पहुंचा। दस मिनट, बीस मिनट, आधा घंटा! बाबा का कहीं निशान नहीं। भक्त आने लगे। बाबा कहां गए? कम्बल भी नही बरतन भी नहीं!

भक्त ने कहा–रमते साधुओं का क्या ठिकाना! आज यहां कल वहां, एक जगह रहे तो साधु कैसे? लोगो से हेल-मेल हो जाए, बन्धन में पड़ जायें।

'सिद्ध थे।'

'लोभ तो छू नहीं गया था।'

नेउर कहा है? उस पर बड़ी दया करते थे। उससे कह गये होगे।'

नेउर की तलाश होने लगी, कहीं पता नहीं। इतने में बुढिया नेउर को पुकारती हुई घर में से निकली। फिर कोलाहल मच गया। बुढिया रोती थी और नेउर को गालियां देती थी।

नेउर खेतो की मेड़ो से बेतहाशा भागता चला जाता था। मानो उस पापी संसार इस निकल जाएगा।

एक आदमी ने कहा- नेउर ने कल मुझसे पांच रुपये लिये थे। आज सांझ को देने को कहा था।

दूसरा–हमसे भी दो रूपये आज ही के वादे पर लिये थे।

बुढ़िया रोयी–दाढीजार मेरे सारे गहने लेगया। पचीस रुपये रखे थे
वह भी उठा ले गया।

लोग समझ गये, बाबा कोई धूर्त था। नेउर को साझा दे गया। ऐसे-ऐसे ठग पड़े है संसार में। नेउर के बारे में बारे में किसी को ऐसा संदेह नहीं थी। बेचारा सीधा आदमी आ गया पट्टी में। मारे लाज के कहीं छिपा बैठा होगा

३

तीन महीने गुजर गये।

झांसी जिले में धसान नदी के किनारे एक छोटा सा गांव है- काशीपुर नदी के किनारे एक पहाड़ी टीला है। उसी पर कई दिन से एक साधु ने अपना आसन जमाया है। नाटे कद का आदमी है, काले तवे का-सा रंग देह गठी हुई। यह नेउर है जो साधु बेश में दुनिया को धोखा दे रहा है। वही सरल निष्कपट नेउर है जिसने कभी पराये माल की ओर आंख नहीं उठायो जो पसीना की रोटी खाकर मग्न था। घर की गावं की और बुढिया की याद एक क्षण भी उसे नहीं भूलती इस जीवन में फिर कोई दिन आयेगा। कि वह अपने घर पहुंचेगा और फिर उस संसार मे हंसता- खेलता अपनी छोटी–छोटी चिन्ताओ और छोटी–छोटी आशाओ के बीच आनन्द से रहेगा। वह जीवन कितना सुखमय था। जितने थे। सब अपने थे सभी आदर करते थे। सहानुभूति रखते थे। दिन भर की मजूरी, थोड़ा-सा अनाज या थोड़े से पैसे लेकार घर आता था, तो बुधिया कितने मीठे स्नेह से उसका स्वागत करती थी। वह सारी मेहनत, सारी थकावट जैसे उसे मिठास में सनकर और मीठी हो जाती थी। हाय वे दिन फिर कब आयेगे? न जाने बुधिया कैसे रहती होगी। कौन उसे पान की तरह फेरेगा? कौन उसे पकाकर खिलायेगा? घर में पैसा भी तो नहीं छोड़ा गहने तक ड़बा दिये। तब उसे क्रोध आता। कि उस बाबा को पा जाय, तो कच्च हीखा जाए। हाय लोभ! लोभ!

उनके अनन्य भक्तो में एक सुन्दरी युवती भी थी जिसके पति ने उसे त्याग दिया था। उसका बाप फौजी-पेंशनर था, एक पढे लिखे आदमी से लड़की का विवाह किया: लेकिन लड़का माँ के कहने में था और युवती की अपनी सांस से न पटती। वह चा हती थी शौहर के साथ सास से अलग रहे शौहर अपनी मां से अलग होने पर न राजी हुआ। वह रुठकर मैके चली आयी। तब से तीन साल हो गये थे और ससुराल से एक बार भी बुलावा न आया न पतिदेव ही आये। युवती किसी तरह पति को अपने वश में कर लेना चाहती थी। महात्माओं के लिए तरह पति को अपने वश में कर लेना चाहती थी महात्माओ के लिए किसी का दिल फेर देना ऐसा क्या मुशिकल है! हां, उनकी दया चाहिए।

एक दिन उसने एकान्त में बाबाजी से अपनी विपति कह सुनायी। नेउर को जिस शिकार की टोह थी वह आज मिलता हूआ जान पड़ा गंभीर भाव से बोला-बेटी मै न सिद्ध हूं न महात्मा न मै संसार के झमेलो में पड़ता हूं पर तेरी सरधा और परेम देखकर तुझ पर दया आती हौ। भगवान ने चाहा तो तेरा मनोरध पूरा हो जायेगा।

‘आप समर्थ है और मुझे आपके ऊपर विश्वास है।’

‘भगवान की जो इच्छा होगी वही होगा।’

‘इस अभागिनी की डोगी आप वही होगा।’

‘मेरे भगवान आप ही हो।’

नेउर ने मानो धर्म-सकटं में पड़कर कहा-लेकिन बेटी, उस काम में बड़ा अनुष्ठान करना पडेगा। और अनुष्ठान में सैकड़ो हजारों का खर्च है। उस पर भी तेरा काज सिद्ध होगा या नही, यह मै नहीं कह सकता। हां मुझसे जो कुछ हो सकेगा, वह मै कर दूंगा। पर सब कुछ भगवान के हाथ में है। मै माया को हाथ से नहीं छूता; लेकिन तेरा दुख नही देखा जाता।

उसी रात को युवती ने अपने सोने के गहनों की पेटारी लाकर बाबाजी के चरणों पर रख दी बाबाजी ने कांपते हुए हाथों से पेटारी खोली और चन्द्रमा के उज्जवल प्रकाश में आभूषणो को देखा। उनकी बाधे झपक गयीं यह सारी माया उनकी है वह उनके सामने हाथ बाधे खड़ी कह रही है मुझे अंगीकार कीजिए कुछ भी तो करना नही है केवल पेटारी लेकर अपने सिरहाने रख लेना है और युवती को आशीर्वाद देकर विदा कर देना है। प्रात काल वह आयेगी उस वक्त वह उतना दूर होगें जहां उनकी टागे ले जायेगी। ऐसा आशातीत सौभाग्य! जब वह रुपये से भरी थैलियां लिए गांव में पहुंचेगे और बुधिया के सामने रख देगे! ओह! इससे बडे आनन्द की तो वह कल्पना भी नहीं कर सकते।

लेकिन न जाने क्यों इतना जरा सा काम भी उससे नहीं हो सकता था। वह पेटारी को उठाकर अपने सिरहाने कंबल के नीचे दबाकर नहीं रख सकता। है। कुछ नहीं; पर उसके लिए असूझ है, असाध्य है वह उस पेटारी की ओर हाथ भी नही बढा सकता है इतना कहने मे कौन सी दुनिया उलटी जाती है। कि बेटी इसे उठाकर इस कम्बल के नीचे रख दे। जबान कट तो न जायगी, ;मगर अब उसे

मालूम होता कि जबान पर भी उसका काबू नही है। आंखो के इशारे से भी यह काम हो सकता है। लेकिन इस समय आंखे भीड़ बगावत कर रही है। मन का राजा इतने मत्रियों और सामन्तो के होते हुए भी अशक्त है निरीह है लाख रुपये की थैली सामने रखी हो नंगी तलवार हाथ में हो गाय मजबूत रस्सी के सामने बंधी हो, क्या उस गाय की गरदन पर उसके हाथ उठेगें। कभी नहीं कोई उसकी गरदन भले ही काट ले। वह गऊ की हत्या नही कर सकता। वह परित्याक्ता उसे उसी गउ की हत्या नही कर सकता वह पपित्याक्ता उसे उसी गऊ की तरह लगर ही थी। जिस अवसर को वह तीन महीने खोज रहा है उसे पाकर आज उसकी आत्मा कांप रही है। तृष्णा किसी वन्य जन्तु की भांति अपने संस्कारे से आखेटप्रिय है लेकिन जंजीरो से बधे–बधे उसके नख गिर गये है और दातं कमजोर हो गये हैं।

उसने रोते हुंए कहा–बेटी पेटारी उठा ले जाओ। मै तुम्हारी परीक्षा कर रहा था। मनोरथ पूरा हो जायेगा।

चॉद नदी के पार वृक्षो की गोद में विश्राम कर चुका था। नेउर धीरे से उठा और धसान मे स्नान करके एक ओर चल दिया। भभूत और तिलक से उसे घृणा हो रही थी उसे आश्चर्य हो रहा था कि वह घर से निकला ही कैसे? थोड़े उपहास के भय से! उसे अपने अन्दर एक विचित्र उल्लास का अनुभव हो रहा था मानो वह बेड़ियो से मुक्त हो गया हो कोई बहुत बड़ी चिजय प्राप्त की हो।

4

आठवे दिन नेउर गांव पहुंच गया। लड़को ने दौठकर उछल कुछकर, उसकी लकड़ी उसके हाथ उसका स्वागत किया।

एक लड़के ने कहा काकी तो मरगयी दादा।

नेउर के पांव जैसे बंध गये मुंह के दोनो कोने नीचे झुके गये। दीनविषाद आखों में चमक उठा कुछ बोला नहीं, कुछ पूछा भी नहीं। पल्भर जैसे निस्संज्ञ खड़ा रहा फिर बडी तेजी से अपनी झोपड़ी की ओर चला। बालकवृनद भी उसके पीछे दौडे मगर उनकी शरारत और चंचलता भागचली थी। झोपड़ी खुली पड़ी थी बुधिया की चारपाई जहा की तहां थी। उसकी चिलम और नारियल ज्यो के ज्यो धरे हुए थे। एक कोने में दो चार मिटटी और पीतल के बरतन पडे हुंए थे लडेक बाहर ही खडे रह गये झेपडी के अन्दर कैसे जाय वहां बुधिया बैठी है।

गांव मे भगदड मच गयी। नेउर दादा आ गये। झोपड़ी के द्वार पर भीड़ लग गयी प्रशनो कातांता बध गया।–तूम इतने दिनोकहां थे। दादा? तुम्हारे जाने के बाद तीसरे ही दिन काकी चल बसीं रात दिन तुम्हें गालियां देती थी। मरते मरते तुम्हे गरियाती ही रही। तीसरे दिन आये तो मेरी पड़ी क्थी। तुम इतने दिन कहा रहे?

नेउर ने कोई जवाब न दिया। केवल शुन्य निराश करुण आहत नेत्रो से लोगो की ओर देखता रहा मानो उसकी वाणी हर लीगयी है। उस दिन से किसी ने उसे बोलते या रोते-हंसते नहीं देखा।

गांव से आध मील पर पक्की सड़क है। अच्छी आमदरफत है। नेउर बेड सबेरे जाकर सड़क के किनारे एक पेड के नीचे बैठ जाता है। किसी से कुछ मांगता नही पर राहगीर कूछ न कुछ दे ही देते है।– चेबना अनाज पैसे। सध्यां सयम वह अपनी झोपड़ी मे आ जाता है, चिराग जलाता है भोजन बनाता है, खाना है और उसी खाट पर पड़ा रहता है। उसके जीवन, मै जो एक संचालक शक्ति थी,वह लुप्त हो गयी है ै वह अब केवल जीवधारी है। कितनी गहरी मनोव्यधा है। गांव में प्लेग आया। लोग घर छोड़ छोड़कर भागने लगे नेउर को अब किसी की परवाह न थी। न किसी को उससे भय था न प्रेम। सारा गांव भाग गया। नेउर अपनी झोपड़ी से न निकला और आज भी वह उसी पेड़ के नीचे सड़क के किनारे उसी तरह मौन बैठा हुआ नजर आता है- निश्चेष्ट, निर्जीव।‘

शूद्रा

मां और बेटी एक झोंपड़ी में गांव के उसे सिरे पर रहती थीं। बेटी बाग से पत्तियां बटोर लाती, मां भाड़-झोंकती। यही उनकी जीविका थी। सेर-दो सेर अनाज मिल जाता था, खाकर पड़ रहती थीं। माता विधवा था, बेटी क्वांरी, घर में और कोई आदमी न था। मां का नाम गंगा था, बेटी का गौरा!

गंगा को कई साल से यह चिन्ता लगी हुई थी कि कहीं गौरा की सगाई हो जाय, लेकिन कहीं बात पक्की न होती थी। अपने पति के मर जाने के बाद गंगा ने कोई दूसरा घर न किया था, न कोई दूसरा धन्धा ही करती थी। इससे लोगों को संदेह हो गया था कि आखिर इसका गुजर कैसे होता है! और लोग तो छाती फाड़-फाड़कर काम करते हैं, फिर भी पेट-भर अन्न मयस्सर नहीं होता। यह स्त्री कोई धंधा नहीं करती, फिर भी मां-बेटी आराम से रहती हैं, किसी के सामने हाथ नहीं फैलातीं। इसमें कुछ-न-कुछ रहस्य अवश्य है। धीरे-धीरे यह संदेह और भी दृढ़ हो गया और अब तक जीवित था। बिरादरी में कोई गौरा से सगाई करने पर राजी न होता था। शूद्रों की बिरादरी बहुत छोटी होती है। दस-पांच कोस से अधिक उसका क्षेत्र नहीं होता, इसीलिए एक दूसरे के गुण-दोष किसी से छिपे नहीं रहते, उन पर परदा ही डाला जा सकता है।

इस भ्रांति को शान्त करने के लिए मां ने बेटी के साथ कई तीर्थ-यात्राएं कीं। उड़ीसा तक हो आयी, लेकिन संदेह न मिटा। गौरा युवती थी, सुन्दरी थी, पर उसे किसी ने कुएं पर या खेतों में हंसते-बोलते नहीं देखा। उसकी निगाह कभी ऊपर उठती ही न थी। लेकिन ये बातें भी संदेह को और पुष्ट करती थीं। अवश्य कोई- न- कोई रहस्य है। कोई युवती इतनी सती नहीं हो सकती। कुछ गुप-चुप की बात अवश्य है।

यों ही दिन गुजरते जाते थे। बुढ़िया दिनोंदिन चिन्ता से घुल रही थी। उधर सुन्दरी की मुख-छवि दिनोंदिन निहरती जाती थी। कली खिल कर फूल हो रही थी।

२

एक दिन एक परदेशी गांव से होकर निकला। दस-बारह कोस से आ रहा था। नौकरी की खोज में कलकत्ता जा रहा था। रात हो गयी। किसी कहार का घर पूछता हुआ गंगा के घर आया। गंगा ने उसका खूब आदर-सत्कार किया, उसके लिए गेहूं का आटा लायी, घर से बरतन निकालकर दिये। कहार ने पकाया, खाया, लेटा, बातें होने लगीं। सगाई की चर्चा छिड़ गयी। कहार जवान था, गौरा पर निगाह पड़ी, उसका रंग-ढंग देखा, उसकी सजल छवि ऑंखों में खुब गयी। सगाई करने पर राजी हो गया। लौटकर घर चला गया। दो-चार गहने अपनी बहन के यहां से लाया; गांव के बजाज ने कपड़े उधार दे दिये। दो-चार भाईबंदों के साथ सगाई करने आ पहुंचा। सगाई हो गयी, यही रहने लगा। गंगा बेटी और दामाद को आंखों से दूर न कर सकती थी।

परन्तु दस ही पांच दिनों में मंगरु के कानों में इधर-उधर की बातें पड़ने लगीं। सिर्फ बिरादरी ही के नहीं, अन्य जाति वाले भी उनके कान भरने लगे। ये बातें सुन-सुन कर मंगरु पछताता था कि नाहक यहां फंसा। पर गौरा को छोड़ने का ख्याल कर उसका दिल कांप उठता था।

एक महीने के बाद मं गरु अपनी बहन के गहने लौटाने गया। खाने के समय उसका बहनोई उसके साथ भोजन करने न बैठा। मंगरु को कुछ संदेह हुआ, बहनोई से बोला- तुम क्यों नहीं आते?

बहनोई ने कहा-तुम खा लो, मैं फिर खा लूंगा।

मंगरु – बात क्या है? तु खाने क्यों नहीं उठते?

बहनोई –जब तक पंचायत न होगी, मैं तुम्हारे साथ कैसे खा सकता हूं? तुम्हारे लिए बिरादरी भी नहीं छोड़ दूंगा। किसी से पूछा न गाछा, जाकर एक हरजाई से सगाई कर ली।

मंगरु चौके पर उठ आया, मिरजई पहनी और ससुराल चला आया। बहन खड़ी रोती रह गयी।

उसी रात को वह किसी वह किसी से कुछ कहे-सुने बगैर, गौरा को छोड़कर कहीं चला गया। गौरा नींद में मग्न थी। उसे क्या खबर थी कि वह रत्न, जो मैंने इतनी तपस्या के बाद पाया है, मुझे सदा के लिए छोड़े चला जा रहा है।

३

कई साल बीत गये। मंगरु का कुछ पता न चला। कोई पत्र तक न आया, पर गौरा बहुत प्रसन्न थी। वह मांग में सेंदुर डालती, रंग बिरंग के कपड़े पहनती और अधरों पर मिस्सी के

धड़े जमाती। मंगरु भजनों की एक पुरानी किताब छोड़ गया था। उसे कभी-कभी पढ़ती और गाती। मंगरु ने उसे हिन्दी सिखा दी थी। टटोल-टटोल कर भजन पढ़ लेती थी।

पहले वह अकेली बैठली रहती। गांव की और स्त्रियों के साथ बोलते-चालते उसे शर्म आती थी। उसके पास वह वस्तु न थी, जिस पर दूसरी स्त्रियां गर्व करती थीं। सभी अपने-अपने पति की चर्चा करतीं। गौरा के पति कहां था? वह किसकी बातें करती! अब उसके भी पति था। अब वह अन्य स्त्रियों के साथ इस विषय पर बातचीत करने की अधिकारिणी थी। वह भी मंगरु की चर्चा करती, मंगरु कितना स्नेहशील है, कितना सज्जन, कितना वीर। पति चर्चा से उसे कभी तृप्ति ही न होती थी।

स्त्रियां- मंगरु तुम्हें छोड़कर क्यों चले गये?

गौरी कहती – क्या करते? मर्द कभी ससुराल में पड़ा रहता है। देश –परदेश में निकलकर चार पैसे कमाना ही तो मर्दों का काम है, नहीं तो मान-मरजादा का निर्वाह कैसे हो?

जब कोई पूछता, चिट्ठ-पत्री क्यों नहीं भेजते? तो हंसकर कहती- अपना पता-ठिकाना बताने में डरते हैं। जानते हैं न, गौरा आकर सिर पर सवार हो जायेगी। सच कहती हूं उनका पता-ठिकाना मालूम हो जाये, तो यहां मुझसे एक दिन भी न रहा जाये। वह बहुत अच्छा करते हैं कि मेरे पास चिट्ठी-पत्री नहीं भेजते। बेचारे परदेश में कहां घर गिरस्ती संभालते फिरेंगे?

एक दिन किसी सहेली ने कहा- हम न मानेंगे, तुझसे जरुर मंगरु से झगड़ा हो गया है, नहीं तो बिना कुछ कहे-सुने क्यों चले जाते ?

गौरा ने हंसकर कहा- बहन, अपने देवता से भी कोई झगड़ा करता है? वह मेरे मालिक हैं, भला मैं उनसे झगड़ा करुंगी? जिस दिन झगड़े की नौबत आयेगी, कहीं डूब मरुंगी। मुझसे कहकर जाने पाते? मैं उनके पैरों से लिपट न जाती।

४

एक दिन कलकत्ता से एक आदमी आकर गंगा के घर ठहरा। पास ही के किसी गांव में अपना घर बताया। कलकत्ता में वह मंगरु के पड़ोस ही में रहता था। मंगरु ने उससे गौरा को अपने साथ लाने को कहा था। दो साड़ियां और राह-खर्च के लिये रुपये भी भेजे थे। गौरा फूली न समायी। बूढ़े ब्राह्मण के साथ चलने को तैयार हो गयी। चलते वक्त वह गांव की सब औरतों से गले मिली। गंगा उसे स्टेशन तक पहुंचाने गयी। सब कहते थे, बेचारी लड़की के भाग जग गये, नहीं तो यहाँ कुढ़-कुढ़ कर मर जाती।

रास्ते-भर गौरा सोचती – न जाने वह कैसे हो गये होंगे ? अब तो मूछें अच्छी तरह निकल आयी होंगी। परदेश में आदमी सुख से रहता है। देह भर आयी होगी। बाबू साहब हो गये होंगे। मैं पहले दो-तीन दिन उनसे बोलूंगी नहीं। फिर पूछूंगी-तुम मुझे छोड़कर क्यों चले गये? अगर किसी ने मेरे बारें में कुछ बुरा-भला कहा ही था, तो तुमने उसका विश्वास क्यों कर लिया? तुम अपनी आंखों से न देखकर दूसरों के कहने पर क्यों गये? मैं भली हूं या बूरी हूं, हूं तो तुम्हारी, तुमने मुझे इतने दिनों रुलाया क्यो? तुम्हारे बारे में अगर इसी तरह कोई मुझसे कहता, तो क्या मैं तुमको छोड़ देती? जब तुमने मेरी बांह पकड़ ली, तो तुम मेरे हो गये। फिर तुममें लाख एब हों, मेरी बला से। चाहे तुम तुर्क ही क्यों न हो जाओ, मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकती। तुम क्यों मुझे छोड़कर भागे? क्या समझते थे, भागना सहज है? आखिर झख मारकर बुलाया कि नहीं? कैसे न बुलाते? मैंने तो तुम्हारे ऊपर दया की, कि चली आयी, नहीं तो कह देती कि मैं ऐसे निर्दयी के पास नहीं जाती, तो तुम आप दौड़े आते। तप करने से देवता भी मिल जाते हैं, आकर सामने खड़े हो जाते हैं, तुम कैसे न आते? वह धरती बार-बार उद्विग्न हो-होकर बूढ़े ब्राह्मण से पूछती, अब कितनी दूर है? धरती के छोर पर रहते हैं क्या? और भी कितनी ही बातें वह पूछना चाहती थी, लेकिन संकोच-वश न पूछ सकती थी। मन-ही-मन अनुमान करके अपने को सन्तुष्ट कर लेती थी। उनका मकान बड़ा-सा होगा, शहर में लोग पक्के घरों में रहते हैं। जब उनका साहब इतना मानता है, तो नौकर भी होगा। मैं नौकर को भगा दूंगी। मैं दिन-भर पड़े–पड़े क्या किया करूंगी?

बीच-बीच में उसे घर की याद भी आ जाती थी। बेचारी अम्मा रोती होंगी। अब उन्हें घर का सारा काम आप ही करना पड़ेगा। न जाने बकरियों को चराने ले जाती है। या नहीं। बेचारी दिन-भर में-में करती होंगी। मैं अपनी बकरियों के लिए महीने-महीने रुपये भेजूंगी। जब कलकत्ता से लौटूंगी तब सबके लिए साड़ियां लाऊंगी।

तब मैं इस तरह थोड़े लौटूंगी। मेरे साथ बहुत-सा असबाब होगा। सबके लिए कोई-न-कोई सौगात लाऊंगी। तब तक तो बहुत-सी बकरियां हो जायेंगी।

यही सुख स्वप्न देखते-देखते गौरा ने सारा रास्ता काट दिया। पगली क्या जानती थी कि मेरे मान कुछ और कर्त्ता के मन कुछ और। क्या जानती थी कि बूढ़े ब्राह्मणों के भेष में पिशाच होते हैं। मन की मिठाई खाने में मग्न थी।

५

तीसरे दिन गाड़ी कलकत्ता पहुंची। गौरा की छाती धड़-धड़ करने लगी। वह यहीं-कहीं खड़े होंगें। अब आते हीं होंगे। यह सोचकर उसने घूंघट निकाल लिया और संभल बैठी। मगर मगरु वहां न दिखाई दिया। बूढ़ा ब्राह्मण बोला-मंगरु तो यहां नहीं दिखाई देता, मैं चारों ओर छान आया। शायद किसी काम में लग गया होगा, आने की छुट्टी न मिली होगी, मालूम भी तो न था कि हम लोग किसी गाड़ी से आ रहे हैं। उनकी राह क्यों देखें, चलो, डेरे पर चलें।

दोनों गाड़ी पर बैठकर चले। गौरा कभी तांगे पर सवार न हुई थी। उसे गर्व हो रहा था कि कितने ही बाबू लोग पैदल जा रहे हैं, मैं तांगे पर बैठी हूं।

एक क्षण में गाड़ी मंगरु के डेरे पर पहुंच गयी। एक विशाल भवन था, आहाता साफ-सुथरा, सायबान में फूलों के गमले रखे हुए थे। ऊपर चढ़ने लगी, विस्मय, आनन्द और आशा से। उसे अपनी सुधि ही न थी। सीढ़ियों पर चढ़ते–चढ़ते पैर दुखने लगे। यह सारा महल उनका है। किराया बहुत देना पड़ता होगा। रुपये को तो वह कुछ समझते ही नहीं। उसका हृदय धड़क रहा था कि कहीं मंगरु ऊपर से उतरते आ न रहें हों सीढ़ी पर भेंट हो गयी, तो मैं क्या करुंगी? भगवान करे वह पड़े सोते रहे हों, तब मैं जगाऊं और वह मुझे देखते ही हड़बड़ा कर उठ बैठें। आखिर सीढ़ियों का अन्त हुआ। ऊपर एक कमरें में गौरा को ले जाकर ब्राह्मण देवता ने बैठा दिया। यही मंगरु का डेरा था। मगर मंगरु यहां भी नदारद! कोठरी में केवल एक खाट पड़ी हुई थी। एक किनारे दो-चार बरतन रखे हुए थे। यही उनकी कोठरी है। तो मकान किसी दूसरे का है, उन्होंने यह कोठरी किराये पर ली होगी। मालूम होता है, रात को बाजार में पूरियां खाकर सो रहे होंगे। यही उनके सोने की खाट है। एक किनारे घड़ा रखा हुआ था। गौरा को मारे प्यास के तालू सूख रहा था। घड़े से पानी उड़ेल कर पिया। एक किनारे पर एक झाडू रखा था। गौरा रास्ते की थकी थी, पर प्रेम्मोल्लास में थकन कहां? उसने कोठरी में झाडू लगाया, बरतनों को धो-धोकर एक जगह रखा। कोठरी की एक-एक वस्तु यहां तक कि उसकी फर्श और दीवारों में उसे आत्मीयता की झलक दिखायी देती थी। उस घर में भी, जहां उसे अपने जीवन के २५ वर्ष काटे थे, उसे अधिकार का ऐसा गौरव-युक्त आनन्द न प्राप्त हुआ था।

मगर उस कोठरी में बैठे-बैठे उसे संध्या हो गयी और मंगरु का कहीं पता नहीं। अब छुट्टी मिली होगी। सांझ को सब जगह छुट्टी होती है। अब वह आ रहे होंगे। मगर बूढ़े बाबा ने उनसे कह तो दिया ही होगा, वह क्या अपने साहब से थोड़ी देर की छुट्टी न ले सकते थे? कोई बात होगी, तभी तो नहीं आये।

अंधेरा हो गया। कोठरी में दीपक न था। गौरा द्वार पर खड़ी पति की बाट देख रहीं थी। जाने पर बहुत-से आदमियों के चढ़ते-उतरने की आहट मिलती थी, बार-बार गौरा को मालूम होता था कि वह आ रहे हैं, पर इधर कोई नहीं आता था।

नौ बजे बूढ़े बाबा आये। गौरी ने समझा, मंगरु है। झटपट कोठरी के बाहर निकल आयी। देखा तो ब्राह्मण! बोली-वह कहां रह गये?

बूढ़ा–उनकी तो यहां से बदली हो गयी। दफ्तर में गया था तो मालूम हुआ कि वह अपने साहब के साथ यहां से कोई आठ दिन की राह पर चले गये। उन्होंने साहब से बहुत हाथ-पैर जोड़े कि मुझे दस दिन की मुहलत दे दीजिए, लेकिन साहब ने एक न मानी। मंगरु यहां लोगों से कह गये हैं कि घर के लोग आयें तो मेरे पास भेज देना। अपना पता दे गये हैं। कल मैं तुम्हें यहां से जहाज पर बैठा दूंगा। उस जहाज पर हमारे देश के और भी बहुत से होंगे, इसलिए मार्ग में कोई कष्ट न होगा।

गौरा ने पूछा- कै दिन में जहाज पहुंचेगा?

बूढ़ा- आठ-दस दिन से कम न लगेंगे, मगर घबराने की कोई बात नहीं। तुम्हें किसी बात की तकलीफ न होगी।

अब तक गौरा को अपने गांव लौटने की आशा थी। कभी-न-कभी वह अपने पति को वहां अवश्य खींच ले जायेगी। लेकिन जहाज पर बैठाकर उसे ऐसा मालूम हुआ कि अब फिर माता को न देखूंगी, फिर गांव के दर्शन न होंगे, देश से सदा के लिए नाता टूट रहा है। देर तक घाट पर खड़ी रोती रही, जहाज और समुद्र देखकर उसे भय हो रहा था। हृदय दहल जाता था।

शाम को जहाज खुला। उस समय गौरा का हृदय एक अक्षय भय से चंचल हो उठा। थोड़ी देर के लिए नैराश्य न उस पर अपना आतंक जमा लिया। न-जाने किस देश जा रही हूं, उनसे भेंट भी होगी या नहीं। उन्हें कहां खोजती फिरुंगी, कोई पता-ठिकाना भी तो नहीं मालूम। बार-बार पछताती थी कि एक दिन पहिले क्यों न चली आयी। कलकत्ता में भेंट हो जाती तो मैं उन्हें वहां कभी न जाने देती।

जहाज पर और कितने ही मुसाफिर थे, कुछ स्त्रियां भी थीं। उनमें बराबर गाली-गलौज होती रहती थी। इसलिए गौरा को उनसें बातें करने की इच्छा न होती थी। केवल एक स्त्री उदास दिखाई देती थी। गौरा ने उससे पूछा-तुम कहां जाती हो बहन?

उस स्त्री की बड़ी-बड़ी आंखे सजल हो गयीं। बोलीं, कहां बताऊं बहन कहां जा रहीं हूं? जहां भाग्य लिये जाता है, वहीं जा रहीं हूं। तुम कहां जाती हो?

गौरा- मैं तो अपने मालिक के पास जा रही हूं। जहां यह जहाज रुकेगा। वह वहीं नौकर हैं। मैं कल आ जाती तो उनसे कलकत्ता में ही भेंट हो जाती। आने में देर हो गयी। क्या जानती थी कि वह इतनी दूर चले जायेंगे, नहीं तो क्यों देर करती!

स्त्री – अरे बहन, कहीं तुम्हें भी तो कोई बहकाकर नहीं लाया है? तुम घर से किसके साथ आयी हो?

गौरा – मेरे आदमी ने कलकत्ता से आदमी भेजकार मुझे बुलाया था।

स्त्री – वह आदमी तुम्हारा जान–पहचान का था?

गौरा- नहीं, उस तरफ का एक बूढ़ा ब्राह्मण था।

स्त्री – वही लम्बा-सा, दुबला-पतला लकलक बूढ़ा, जिसकी एक ऑंख में फूली पड़ी हुई है।

गौरा – हां, हां, वही। क्या तुम उसे जानती हो?

स्त्री – उसी दुष्ट ने तो मेरा भी सर्वनाश किया। ईश्वर करे, उसकी सातों पुश्तें नरक भोगें, उसका निर्वंश हो जाये, कोई पानी देनेवाला भी न रहे, कोढ़ी होकर मरे। मैं अपना वृतान्त सुनाऊं तो तुम समझेगी कि झूठ है। किसी को विश्वास न आयगा। क्या कहूं, बस सही समझ लो कि इसके कारण मैं न घर की रह गयी, न घाट की। किसी को मुंह नहीं दिखा सकती। मगर जान तो बड़ी प्यार होती है। मिरिच के देश जा रही हूं कि वहीं मेहनत-मजदूरी करके जीवन के दिन काटूं।

गौरा के प्राण नहीं में समा गये। मालूम हुआ जहाज अथाह जल में डूबा जा रहा है। समझ गयी बूढ़े ब्राह्मण ने दगा की। अपने गांव में सुना करती थी कि गरीब लोग मिरिच में भरती होने के लिए जाया करते हैं। मगर जो वहां जाता है, वह फिर नहीं लौटता। हे, भगवान् तुमने मुझे किस पाप का यह दण्ड दिया? बोली- यह सब क्यों लोगों को इस तरह छलकर मिरिच भेजते हैं?

स्त्री- रुपये के लोभ से और किसलिए? सुनती हूं, आदमी पीछे इन सभी को कुछ रुपये मिलते हैं।

गौरा – मजूरी

गौरा सोचने लगी – अब क्या करुं? यह आशा –नौका जिस पर बैठी हुई वह चली जा रही थी, टुट गयी थी और अब समुद्र की लहरों के सिवा उसकी रक्षा करने वाला कोई न था। जिस आधार पर उसने अपना जीवन-भवन बनाया था, वह जलमग्न हो गया। अब उसके लिए जल के सिवा और कहां आश्रय है? उसकी अपनी माता की, अपने घर की अपने गांव की, सहेलियों की याद आती और ऐसी घोर मर्म वेदना होने लगी, मानो कोई सर्प अन्तस्तल में बैठा हुआ, बार-बार डस रहा हो। भगवान! अगर मुझे यही यातना देनी थी तो तुमने जन्म ही क्यों दिया था? तुम्हें दुखिया पर दया नहीं आती? जो पिसे हुए हैं उन्हीं को पीसते हो! करुण स्वर से बोली – तो अब क्या करना होगा बहन?

स्त्री – यह तो वहां पहुंच कर मालूम होगा। अगर मजूरी ही करनी पड़ी तो कोई बात नहीं, लेकिन अगर किसी ने कुदृष्टि से देखा तो मैंने निश्चय कर लिया है कि या तो उसी के प्राण ले लूंगी या अपने प्राण दे दूंगी।

यह कहते-कहते उसे अपना वृतान्त सुनाने की वह उत्कट इच्छा हुई, जो दुखियों को हुआ करती है। बोली – मैं बड़े घर की बेटी और उससे भी बड़े घर की बहूं हूं, पर अभागिनी ! विवाह के तीसरे ही साल

पतिदेव का देहान्त हो गया। चित्त की कुछ ऐसी दशा हो गयी कि नित्य मालूम होता कि वह मुझे बुला रहे हैं। पहले तो ऑंख झपकते ही उनकी मूर्ति सामने आ जाती थी, लेकिन फिर तो यह दशा हो गयी कि जाग्रत दशा में भी रह-रह कर उनके दर्शन होने लगे। बस यही जान पड़ता था कि वह साक्षात् खड़े बुला रहे हैं। किसी से शर्म के मारे कहती न थी, पर मन में यह शंका होती थी कि जब उनका देहावसान हो गया है तो वह मुझे दिखाई कैसे देते हैं? मैं इसे भ्रान्ति समझकर चित्त को शान्त न कर सकती। मन कहता था, जो वस्तु प्रत्यक्ष दिखायी देती है, वह मिल क्यों नहीं सकती? केवल वह ज्ञान चाहिए। साधु-महात्माओं को सिवा ज्ञान और कौन दे सकता है? मेरा तो अब भी विश्वास है कि अभी ऐसी क्रियाएं हैं, जिनसे हम मरे हुए प्राणियों से बातचीत कर सकते हैं, उनको स्थूल रुप में देख सकते हैं। महात्माओं की खोज में रहने लगी। मेरे यहां अक्सर साधु-सन्त आते थे, उनसे एकान्त में इस विषय में बातें किया करती थी, पर वे लोग सदुपदेश देकर मुझे टाल देते थे। मुझे सदुपदेशों की जरुरत न थी। मैं वैधव्य-धर्म खूब जानती थी। मैं तो वह ज्ञान चाहती थी जो जीवन और मरण के बीच का परदा उठा दे। तीन साल तक मैं इसी खेल में लगी रही। दो महीने होते हैं, वही बूढ़ा ब्राहमण संन्यासी बना हुआ मेरे यहां जा पहुंचा। मैंने इससे वही भिक्षा मांगी। इस धूर्त ने कुछ ऐसा मायाजाल फैलाया कि मैं आंखे रहते हुए भी फंस गयी। अब सोचती हूं तो अपने ऊपर आश्चर्य होता है कि मुझे उसकी बातों पर इतना विश्वास क्यों हुआ? मैं पति-दर्शन के लिए सब कुछ झेलने को, सब कुछ करने को तैयार थी। इसने रात को अपने पास बुलाया। मैं घरवालों से पड़ोसिन के घर जाने का बहाना करके इसके पास गयी। एक पीपल से इसकी धूईं जल रही थी। उस विमल चांदनी में यह जटाधारी ज्ञान और योग का देवता-सा मालूम होता था। मैं आकर धूईं के पास खड़ी हो गयी। उस समय यदि बाबाजी मुझे आग में कुद पड़ने की आज्ञा देते, तो मैं तुरन्त कूद पड़ती। इसने मुझे बड़े प्रेम से बैठाया और मेरे सिर पर हाथ रखकर न जाने क्या कर दिया कि मैं बेसुध हो गयी। फिर मुझे कुछ नहीं मालूम कि मैं कहां गयी, क्या हुआ? जब मुझे होश आया तो मैं रेल पर सवार थी। जी में आया कि चिल्लाऊं, पर यह सोचकर कि अब गाड़ी रुक भी गयी और मैं उतर भी पड़ी तो घर में घुसने न पाऊंगी, मैं चुपचाप बैठी रह गई। मैं परमात्मा की दृष्टि से निर्दोष थी, पर संसार की दृष्टि में कलंकित हो चुकी थी। रात को किसी युवती का घर से निकल जाना कलंकित करने के लिए काफी था। जब मुझे मालूम हो गया कि सब मुझे टापू में भेज रहें हैं तो मैंने जरा भी आपत्ति नहीं की। मेरे लिए अब सारा संसार एक-सा है। जिसका संसार में कोई न हो, उसके लिए देश-परदेश दोनों बराबर है। हां, यह पक्का निश्चय कर चूकी हूं कि मरते दम तक अपने सत की रक्षा करुंगी। विधि के हाथ में मृत्यु से बढ़ कर कोई यातना नहीं। विधवा के लिए मृत्यु का क्या भय। उसका तो जीना और मरना दोनों बराबर हैं। बल्कि मर जाने से जीवन की विपत्तियों का तो अन्त हो जाएगा।

गौरा ने सोचा – इस स्त्री में कितना धैर्य और साहस है। फिर मैं क्यों इतनी कातर और निराश हो रही हूं? जब जीवन की अभिलाषाओं का अन्त हो गया तो जीवन के अन्त का क्या डर? बोली- बहन, हम और तुम एक जगह रहेंगी। मुझे तो अब तुम्हारा ही भरोसा है।

स्त्री ने कहा- भगवान का भरोसा रखो और मरने से मत डरो।

सघन अन्धकार छाया हुआ था। ऊपर काला आकाश था, नीचे काला जल। गौरा आकाश की ओर ताक रही थी। उसकी संगिनी जल की ओर। उसके सामने आकाश के कुसुम थे, इसके चारों ओर अनन्त, अखण्ड, अपार अन्धकार था।

जहाज से उतरते ही एक आदमी ने यात्रियों के नाम लिखने शुरु किये। इसका पहनावा तो अंग्रेजी था, पर बातचीत से हिन्दुस्तानी मालूम होता था। गौरा सिर झुकाये अपनी संगिनी के पीछे खड़ी थी। उस आदमी की आवाज सुनकर वह चौंक पड़ी। उसने दबी आंखों से उसको ओर देखा। उसके समस्त शरीर में सनसनी दौड़ गयी। क्या स्वप्न तो नहीं देख रही हूं। आंखों पर विश्वास न आया, फिर उस पर निगाह डाली। उसकी छाती वेग से धड़कने लगी। पैर थर-थर कांपने लगे। ऐसा मालूम होने लगा, मानो चारों ओर जल-ही-जल है और उसमें और उसमें बही जा रही हूं। उसने अपनी संगिनी का हाथ पकड़ लिया, नहीं तो जमीन में गिर पड़ती। उसके सम्मुख वहीं पुरुष खड़ा था, जो उसका प्राणधार था और जिससे इस जीवन में भेंट होने की उसे लेशमात्र भी आशा न थी। यह मंगरु था, इसमें जरा भी सन्देह न था। हां उसकी सूरत बदल गयी थी। यौवन-काल का वह कान्तिमय साहस, सदय छवि, नाम को भी न थी। बाल खिचड़ी हो गये थे, गाल पिचके हुए, लाल आंखों से कुवासना और कठोरता झलक रही थी। पर था वह मंगरु। गौरा के जी में प्रबल इच्छा

हुई कि स्वामी के पैरों से लिपट जाऊं। चिल्लाने का जी चाहा, पर संकोच ने मन को रोका। बूढ़े ब्राह्मण ने बहुत ठीक कहा था। स्वामी ने अवश्य मुझे बुलाया था और आने से पहले यहां चले आये। उसने अपनी संगिनी के कान में कहा – बहन, तुम उस ब्राह्मण को व्यर्थ ही बुरा कह रहीं थीं। यही तो वह हैं जो यात्रियों के नाम लिख रहे हैं।

स्त्री – सच, खूब पहचानी हो?

गौरा – बहन, क्या इसमें भी हो सकता है?

स्त्री – तब तो तुम्हारे भाग जग गये, मेरी भी सुधि लेना।

गौरा – भला, बहन ऐसा भी हो सकता है कि यहां तुम्हें छोड़ दूं?

मंगरु यात्रियों से बात-बात पर बिगड़ता था, बात-बात पर गालियां देता था, कई आदमियों को ठोकर मारे और कई को केवल गांव का जिला न बता सकने के कारण धक्का देकर गिरा दिया। गौरा मन-ही-मन गड़ी जाती थी। साथ ही अपने स्वामी के अधिकार पर उसे गर्व भी हो रहा था। आखिर मंगरु उसके सामने आकर खड़ा हो गया और कुचेष्टा-पूर्ण नेत्रों से देखकर बोला –तुम्हारा क्या नाम है?

गौरा ने कहा—गौरा।

मगरू चौंक पड़ा, फिर बोला – घर कहां है?

मदनपुर, जिला बनारस।

यह कहते-कहते हंसी आ गयी। मंगरु ने अबकी उसकी ओर ध्यान से देखा, तब लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और बोला –गौरा! तुम यहां कहां? मुझे पहचानती हो?

गौरा रो रही थी, मुहसे बात न निकलती।

मंगरु फिर बोला—तुम यहां कैसे आयीं?

गौरा खड़ी हो गयी, आंसू पोंछ डाले और मंगरु की ओर देखकर बोली – तुम्हीं ने तो बुला भेजा था।

मंगरु –मैंने ! मैं तो सात साल से यहां हूं।

गौरा –तुमने उसे बूढ़े ब्राह्मण से मुझे लाने को नहीं कहा था?

मंगरु – कह तो रहा हूं, मैं सात साल से यहां हूं। मरने पर ही यहां से जाऊंगा। भला, तुम्हें क्यों बुलाता?

गौरा को मंगरु से इस निष्ठुरता का आशा न थी। उसने सोचा, अगर यह सत्य भी हो कि इन्होंने मुझे नहीं बुलाया, तो भी इन्हें मेरा यों अपमान न करना चाहिए था। क्या वह समझते हैं कि मैं इनकी रोटियों पर आयी हूं? यह तो इतने ओछे स्वभाव के न थे। शायद दरजा पाकर इन्हें मद हो गया है। नारीसुलभ अभिमान से गरदन उठाकर उसने कहा- तुम्हारी इच्छा हो, तो अब यहां से लौट जाऊं, तुम्हारे ऊपर भार बनना नहीं चाहती?

मंगरु कुछ लज्जित होकर बोला – अब तुम यहां से लौट नहीं सकतीं गौरा ! यहां आकर बिरला ही कोई लौटता है।

यह कहकर वह कुछ देर चिन्ता में मग्न खड़ा रहा, मानो संकट में पड़ा हुआ हो कि क्या करना चाहिए। उसकी कठोर मुखाकृति पर दीनता का रंग झलक पड़ा। तब कातर स्वर से बोला –जब आ ही गयी हो तो रहो। जैसी कुछ पड़ेगी, देखी जायेगी।

गौरा – जहाज फिर कब लौटेगा।

मंगरु – तुम यहां से पांच बरस के पहले नहीं जा सकती।

गौरा –क्यों, क्या कुछ जबरदस्ती है?

मंगरु – हां, यहां का यही हुक्म है।

गौरा – तो फिर मैं अलग मजूरी करके अपना पेट पालूंगी।

मंगरु ने सजल-नेत्र होकर कहा—जब तक मैं जीता हूं, तुम मुझसे अलग नहीं रह सकतीं।

गौरा- तुम्हारे ऊपर भार बनकर न रहूंगी।

मंगरु – मैं तुम्हें भार नहीं समझता गौरा, लेकिन यह जगह तुम-जैसी देवियों के रहने लायक नहीं है, नहीं तो अब तक मैंने तुम्हें कब का बुला लिया होता। वहीं बूढ़ा आदमी जिसने तुम्हें बहकाया, मुझे घर से आते समय पटने में मिल गया और झांसे देकर मुझे यहां भरती कर दिया। तब से यहीं पड़ा हुआ हूं। चलो, मेरे घर में रहो, वहां बातें होंगी। यह दूसरी औरत कौन है?

गौरा – यह मेरी सखी है। इन्हें भी बूढ़ा बहका लाया।

मंगरु -यह तो किसी कोठी में जायेंगी? इन सब आदमियों की बांट होगी। जिसके हिस्से में जितने आदमी आयेंगे, उतने हर एक कोठी में भेजे जायेंगे।

गौरा – यह तो मेरे साथ रहना चाहती हैं।

मंगरु – अच्छी बात है इन्हें भी लेती चलो।

यत्रियों रके नाम तो लिखे ही जा चुके थे, मंगरु ने उन्हें एक चपरासी को सौंपकर दोंनों औरतों के साथ घर की राह ली। दोनों ओर सघन वृक्षों की कतारें थी। जहां तक निगाह जाती थी, ऊख-ही-ऊख दिखायी देती थी। समुद्र की ओर से शीतल, निर्मल वायु के झोंके आ रहे थे। अत्यन्त सुरम्य दृश्य था। पर मंगरु की निगाह उस ओर न थी। वह भूमि की ओर ताकता, सिर झुकाये, सन्दिग्ध चवाल से चला जा रहा था, मानो मन-ही-मन कोई समस्या हल कर रहा था।

थोड़ी ही दूर गये थे कि सामने से दो आदमी आते हुए दिखाई दिये। समीप आकर दानों रुक गये और एक ने हंसकर कहा –मंगरु, इनमें से एक हमारी है।

दूसरा बोला- और दूसरा मेरी।

मंगरु का चेहरा तमतमा उठा था। भीषण क्रोध से कांपता हुआ बोला- यह दोनों मेरे घर की औरतें है। समझ गये?

इन दोनों ने जोर से कहकहा मारा और एक ने गौरा के समीप आकर उसका हाथ पकड़ने की चेष्टा करके कहा- यह मेरी हैं चाहे तुम्हारे घर की हो, चाहे बाहर की। बचा, हमें चकमा देते हो।

मंगरु – कासिम, इन्हें मत छेड़ो, नहीं तो अच्छा न होगा। मैंने कह दिया, मेरे घर की औरतें हैं।

मंगरी की आंखों से अग्नि की ज्वाला-सी निकल रही थी। वह दानों के उसके मुख का भाव देखकर कुछ सहम गये और समझ लेने की धमकी देकर आगे बढ़े। किन्तु मंगरु के अधिकार-क्षेत्र से बाहर पहुंचते ही एक ने पीछे से ललकार कर कहा- देखें कहां ले के जाते हो?

मंगरू ने उधर ध्यान नहीं दिया। जरा कदम बढ़ाकर चलने लगा, जेसे सन्ध्या के एकान्त में हम कब्रिस्तान के पास से गुजरते हैं, हमें पग-पग पर यह शंका होती है कि कोई शब्द कान में न पड़ जाय, कोई सामने आकर खड़ा न हो जाय, कोई जमीन के नीचे से कफन ओढ़े उठ न खड़ा हो।

गौरा ने कहा—ये दानों बड़े शोहदे थे।

मंगरु – और मैं किसलिए कह रहा था कि यह जगह तुम-जैसी स्त्रियों के रहने लायक नहीं है।

सहसा दाहिनी तरफ से एक अंग्रेज घोड़ा दौड़ाता आ पहुंचा और मंगरु से बोला- वेल जमादार, ये दोनों औरतें हमारी कोठी में रहेगा। हमारे कोठी में कोई औरत नहीं है।

मंगरु ने दोनों औरतों को अपने पीछे कर लिया और सामने खड़ा होकर बोला--साहब, ये दोनों हमारे घर की औरतें हैं।

साहब- ओ हो ! तुम झूठा आदमी। हमारे कोठी में कोई औरत नहीं और तुम दो ले जाएगा। ऐसा नहीं हो सकता। (गौरा की ओर इशारा करके) इसको हमारी कोठी पर पहुंचा दो।

मंगरु ने सिर से पैर तक कांपते हुए कहा- ऐसा नहीं हो सकता।

मगर साहब आगे बढ़ गया था, उसके कान में बात न पहुंची। उसने हुक्म दे दिया था और उसकी तामील करना जमादार का काम था।

शेष मार्ग निर्विघ्न समाप्त हुआ। आगे मजूरों के रहने के मिट्ठी के घर थे। द्वारों पर स्त्री-पुरुष जहां-तहां बैठे हुए थे। सभी इन दोनों स्त्रियों की ओर घूरते थे और आपस में इशारे करते हंसते थे। गौरा ने देखा, उनमें छोटे-बड़े का लिहाज नहीं है, न किसी के आंखों में शर्म है।

एक भदैसले और ने हाथ पर चिलम पीते हुए अपनी पडोसिन से कहा- चार दिन की चांदनी, फिर अंधेरी पाख !

दूसरी अपनी चोटी गूंथती हुई बोली – कलोर हैं न।

८

मंगरु दिन-भर द्वार पर बैठा रहा, मानो कोई किसान अपने मटर के खेत की रखवाली कर रहा हो। कोठरी में दोनों स्त्रियां बैठी अपने नसीबों को रही थी। इतनी देर में दोनों को यहां की दशा का परिचय कराया गया था। दोनों भूखी-प्यासी बैठी थीं। यहां का रंग देखकर भूख प्यास सब भाग गई थी।

रात के दस बजे होंगे कि एक सिपाही ने आकर मंगरु से कहा- चलो, तुम्हें जण्ट साहब बुला रहे हैं।

मंगरु ने बैठे-बैठे कहा – देखो नब्बी, तुम भी हमारे देश के आदमी हो। कोई मौका पड़े, तो हमारी मदद करोगे न? जाकर साहब से कह दो, मंगरु कहीं गया है, बहुत होगा जुरमाना कर देंगे।

नब्बी – न भैया, गुस्से में भरा बैठा है, पिये हुए हैं, कहीं मार चले, तो बस, चमड़ा इतना मजबूत नहीं है।

मंगरु – अच्छा तो जाकर कह दो, नहीं आता।

नब्बी- मुझे क्या, जाकर कह दूंगा। पर तुम्हारी खैरियत नहीं है के बंगले पर चला। यही वही साहब थे, जिनसे आज मंगरु की भेंट हुई थी। मंगरु जानता था कि साहब से बिगाड़ करके यहां एक क्षण भी निर्वाह नहीं हो सकता। जाकर साहब के सामने खड़ा हो गया। साहब ने दूर से ही डांटा, वह औरत कहां है? तुमने उसे अपने घर में क्यों रखा है?

मंगरु – हजूर, वह मेरी ब्याहता औरत है।

साहब – अच्छा, वह दूसरा कौन है?

मंगरु – वह मेरी सगी बहन है हजूर !

साहब – हम कुछ नहीं जानता। तुमको लाना पड़ेगा। दो में से कोई, दो में से कोई।

मंगरु पैरों पर गिर पड़ा और रो-रोकर अपनी सारी राम कहानी सुना गया। पर साहब जरा भी न पसीजे! अन्त में वह बोला – हुजूर, वह दूसरी औरतों की तरह नहीं है। अगर यहां आ भी गयी, तो प्राण दे देंगी।

साहब ने हंसकर कहा – ओ ! जान देना इतना आसान नहीं है !

नब्बी – मंगरु अपनी दांव रोते क्यों हो? तुम हमारे घर नहीं घुसते थे! अब भी जब घात पाते हो, जा पहुंचते हो। अब क्यों रोते हो?

एजेण्ट – ओ, यह बदमाश है। अभी जाकर लाओ, नहीं तो हम तुमको हण्टरों से पीटेगा।

मंगरु – हुजूर जितना चाहे पीट लें, मगर मुझसे यह काम करने को न कहें, जो मैं जीते –जी नहीं कर सकता !

एजेण्ट- हम एक सौ हण्टर मारेगा।

मंगरु – हुजूर एक हजार हण्टर मार लें, लेकिन मेरे घर की औरतों से न बोंले।

एजेण्ट नशे में चूर था। हण्टर लेकर मंगरु पर पिल पड़ा और लगा सड़ासड़ जमाने। दस बाहर कोड़े मंगरु ने धैर्य के साथ सहे, फिर हाय-हाय करने लगा। देह की खाल फट गई थी और मांस पर चाबुक पड़ता था, तो बहुत जब्त करने पर भी कण्ठ से आर्त-ध्वनि निकल आती थी टौर अभी एक सौं में कुछ पन्द्रह चाबुक पड़े थें।

रात के दस बज गये थे। चारों ओर सन्नाटा छाया था और उस नीरव अंधकार में मंगरु का करुण-विलाप किसी पक्ष की भांति आकाश में मुंडला रहा था। वृक्षों के समूह भी हतबुद्धि से खड़े मौन रोन की मूर्ति बने हुए थे। यह पाषाणहृदय लम्पट, विवेक शून्य जमादार इस समय एक अपरिचित स्त्री के सतीत्व की रक्षा करने के लिए अपने प्राण तक देने को तैयार था, केवल इस नाते कि यह उसकी पत्नी की संगिनी थी। वह समस्त संसार की नजरों में गिरना गंवारा कर सकता था, पर अपनी पत्नी की भक्ति पर अखंड राज्य करना चाहता था। इसमें अणुमात्र की कमी भी उसके लिए असह्य थी। उस अलौकिक भक्ति के सामने उसके जीवन का क्या मूल्य था?

ब्राह्मणी तो जमीन पर ही सो गयी थी, पर गौरा बैठी पति की बाट जोह रही थी। अभी तक वह उससे कोई बात नहीं कर सकी थी। सात वर्षों की विपत्ति–कथा कहने और सुनने के लिए बहुत समय की जरुरत थी और रात के सिवा वह समय फिर कब मिल सकता था। उसे ब्राह्मणी पर कुछ क्रोध-सा आ रहा था कि यह क्यों मेरे गले का हार हुई? इसी के कारण तो वह घर में नहीं आ रहे हैं।

यकायक वह किसी का रोना सुनकर चौंक पड़ी। भगवान्, इतनी रात गये कौन दु:ख का मारा रो रहा है। अवश्य कोई कहीं मर गया है। वह उठकर द्वार पर आयी और यह अनुमान करके कि मंगरु यहां बैठा हुआ है, बोली – वह कौन रो रहा है ! जरा देखो तो।

लेकिन जब कोई जवाब न मिला, तो वह स्वयं कान लगाकर सुनने लगी। सहसा उसका कलेजा धक् से हो गया। तो यह उन्हीं की आवाज है। अब आवाज साफ सुनायी दे रही थी। मंगरु की आवाज थी। वह

द्वार के बाहर निकल आयी। उसके सामने एक गोली के अम्पें पर एजेंट का बंगला था। उसी तरफ से आवाज आ रही थी। कोई उन्हें मार रहा है। आदमी मार पड़ने पर ही इस तरह रोता है। मालूम होता है, वही साहब उन्हें मार रहा है। वह वहां खड़ी न रह सकी, पूरी शक्ति से उस बंगले की ओर दौड़ी, रास्ता साफ था। एक क्षण में वह फाटक पर पहुंच गयी। फाटक बंद था। उसने जोर से फाटक पर धक्का दिया, लेकिन वह फाटक न खुला और कई बार जोर-जोर से पुकारने पर भी कोई बाहर न निकला, तो वह फाटक के जंगलों पर पैर रखकर भीतर कूद पड़ी और उस पार जाते हीं उसने एक रोमांचकारी दृश्य देखा। मंगरु नंगे बदन बरामदे में खड़ा था और एक अंग्रेज उसे हण्टरों से मार रहा था। गौरा की आंखों के सामने अंधेरा छा गया। वह एक छलांग में साहब के सामने जाकर खड़ी हो गई और मंगरु को अपने अक्षय- प्रेम-सबल हाथों से ढांककर बोली –सरकार, दया करो, इनके बदले मुझे जितना मार लो, पर इनको छोड़ दो।

एजेंट ने हाथ रोक लिया और उन्मत्त की भांति गौरा की ओर कई कदम आकर बोला- हम इसको छोड़ दें, तो तुम मेरे पास रहेगा।

मंगरु के नथने फड़कने लगे। यह पामर, नीच, अंग्रेज मेरी पत्नी से इस तरह की बातें कर रहा है। अब तक वह जिस अमूल्य रत्न की रक्षा के लिए इतनी यातनांए सह रहा था, वही वस्तु साहब के हाथ में चली जा रही है, यह असह्य था। उसने चाहा कि लपककर साहब की गर्दन

अमृत

मेरी उठती जवानी थी जब मेरा दिल दर्द के मजे से परिचित हुआ। कुछ दिनों तक शायरी का अभ्यास करता रहा और धीर-धीरे इस शौक ने तल्लीनता का रुप ले लिया। सांसारिक संबंधो से मुंह मोड़कर अपनी शायरी की दुनिया में आ बैठा और तीन ही साल की मश्क़ ने मेरी कल्पना के जौहर खोल दिये। कभी-कभी मेरी शायरी उस्तादों के मशहूर कलाम से टक्कर खा जाती थी। मेरे क़लम ने किसी उस्ताद के सामने सर नहीं झुकाया। मेरी कल्पना एक अपने-आप बढ़ने वाले पौधे की तरह छंद और पिंगल की क़ैदो से आजाद बढ़ती रही और ऐसे कलाम का ढंग निराला था। मैंने अपनी शायरी को फारस से बाहर निकाल कर योरोप तक पहुँचा दिया। यह मेरा अपना रंग था। इस मैदान में न मेरा कोई प्रतिद्वंद्वी था, न बराबरी करने वाला बावजूद इस शायरों जैसी तल्लीनता के मुझे मुशायरों की वाह-वाह और सुभानअल्लाह से नफ़रत थी। हां, काव्य-रसिकों से बिना अपना नाम बताये हुए अक्सर अपनी शायरी की अच्छाइयों और बुराइयों पर बहस किया करता। तो मुझे शायरी का दावा न था मगर धीरे-धीरे मेरी शोहरत होने लगी और जब मेरी

मसनवी 'दुनियाए हुस्न' प्रकाशित हुई तो साहित्य की दुनिया में हल-चल-सी मच गयी। पुराने शायरों ने काव्य-मर्मज्ञों की प्रशंसा-कृपणता में पोथे के पोथे रंग दिये हैं मगर मेरा अनुभव इसके बिलकुल विपरीत था । मुझे कभी-कभी यह ख़याल सताया करता कि मेरे कद्रदानों की यह उदारता दूसरे कवियों की लेखनी की दरिद्रता का प्रमाण है। यह ख़याल हौसला तोड़ने वाला था। बहरहाल, जो कुछ हुआ, 'दुनियाए हुस्न' ने मुझे शायरी का बादशाह बना दिया। मेरा नाम हरेक ज़बान पर था। मेरी चर्चा हर एक अखबार में थी। शोहरत अपने साथ दौलत भी लायी। मुझे दिन-रात शेरो-शायरी के अलावा और कोई काम न था। अक्सर बैठे-बैठे रातें गुज़र जातीं और जब कोई चुभता हुआ शेर कलम से निकल जाता तो मैं खुशी के मारे उछल पड़ता। मैं अब तक शादी-ब्याह की कैंदों से आजाद था या यों कहिए कि मैं उसके उन मजों से अपरिचित था जिनमें रंज की तल्खी भी है और खुशी की नमकीनी भी। अक्सर पश्चिमी साहित्यकारों की तरह मेरा भी ख्याल था कि साहित्य के उन्माद और सौन्दर्य के उन्माद में पुराना बैर है। मुझे अपनी जबान से कहते हुए शर्मिन्दा होना पड़ता है कि मुझे अपनी तबियत पर भरोसा न था। जब कभी मेरी आँखों में कोई मोहिनी सूरत घूम जाती तो मेरे दिल-दिमाग पर एक पागलपन-सा छा जाता। हफ्तों तक अपने को भूला हुआ-सा रहता। लिखने की तरफ तबियत किसी तरह न झुकती। ऐसे कमजोर दिल में सिर्फ एक इश्क की जगह थी। इसी डर से मैं अपनी रंगीन ततिबयत के खिलाफ आचरण शुद्ध रखने पर मजबूर था। कमल की एक पंखुड़ी, श्यामा के एक गीत, लहलहाते हुए एक मैदान में मेरे लिए जादू का-सा आकर्षण था मगर किसी औरत के दिलफ़रेब हुस्न को मैं चित्रकार या मूर्तिकार की बैलौस आँखों से नहीं देख सकता था। सुंदर स्त्री मेरे लिए एक रंगीन, क़ातिल नागिन थी जिसे देखकर आँखें खुश होती हैं मगर दिल डर से सिमट जाता है।

खैर, 'दुनियाए हुस्न' को प्रकाशित हुए दो साल गुजर चुके थे। मेरी ख्याति बरसात की उमड़ी हुई नदी की तरह बढ़ती चली जाती थी। ऐसा मालूम होता था जैसे मैंने साहित्य की दुनिया पर कोई वशीकरण कर दिया है। इसी दौरान मैंने फुटकर शेर तो बहुत कहे मगर दावतों और अभिनंदनपत्रों की भीड़ ने मार्मिक भावों को उभरने न दिया। प्रदर्शन और ख्याति एक राजनीतिज्ञ के लिए कोड़े का काम दे सकते हैं, मगर शायर की तबियत अकेले शांति से एक कोने के बैठकर ही अपना जौहर दिखालाती है। चुनांचे मैं इन रोज-ब-रोज बढ़ती हुई बेहूदा बातों से गला छुड़ा कर भागा और पहाड़ के एक कोने में जा छिपा। 'नैरंग' ने वहीं जन्म लिया।

२

नैरंग' के शुरु करते हुए ही मुझे एक आश्चर्यजनक और दिल तोड़ने वाला अनुभव हुआ। ईश्वर जाने क्यों मेरी अक्ल और मेरे चिंतन पर पर्दा पड़ गया। घंटों तबियत पर जोर डालता मगर एक शेर भी ऐसा न निकलता कि दिल फड़के उठे। सूझते भी तो दरिद्र, पिटे हुए विषय, जिनसे मेरी आत्मा भागती थी। मैं अक्सर झुझलाकर उठ बैठता, कागज फाड़ डालता और बड़ी बेदिली की हालत में सोचने लगता कि क्या मेरी काव्यशक्ति का अंत हो गया, क्या मैंने वह खजाना जो प्रकृति ने मुझे सारी उम्र के लिए दिया था, इतनी जल्दी मिटा दिया। कहां वह हालत थी कि विषयों की बहुतायत और नाज़ुक खयालों की रवानी क़लम को दम नहीं लेने देती थी। कल्पना का पंछी उड़ता तो आसमान का तारा बन जाता था और कहां अब यह पस्ती! यह करुण दरिद्रता! मगर इसका कारण क्या है? यह किस क़सूर की सज़ा है। कारण और कार्य का दूसरा नाम दुनिया है। जब तक हमको क्यों का जवाब न मिले, दिल को किसी तरह सब्र नहीं होता, यहां तक कि मौत को भी इस क्यों का जवाब देना पड़ता है। आखिर मैंने एक डाक्टर से सलाह ली। उसने आम डाक्टरों की तरह आब-हवा बदलने की सलाह दी। मेरी अक्ल में भी यह बात आयी कि मुमकिन है नैनीताल की ठंडी आब-हवा से शायरी की आग ठंडी पड़ गई हो। छः महीने तक लगातार घूमता-फिरता रहा। अनेक आकर्षक दृश्य देखे, मगर उनसे आत्मा पर वह शायराना कैफियत न छाती थी कि प्याला छलक पड़े और खामोश कल्पना खुद ब खुद चहकने लगे। मुझे अपना खोया हुआ लाल न मिला। अब मैं जिंदगी से तंग था। जिंदगी अब मुझे सूखे रेगिस्तान जैसी मालूम होती जहां कोई जान नहीं, ताज़गी नहीं, दिलचस्पी नहीं। हरदम दिल पर एक मायूसी-सी छायी रहती और दिल खोया-खोया रहता। दिल में यह सवाल पैदा होता कि क्या वह चार दिन की चांदनी खत्म हो गयी और अंधेरा पाख आ गया? आदमी की संगत से बेजार, हमजिंस की सूरत से नफरत, मैं एक गुमनाम कोने में पड़ा हुआ जिंदगी के दिन पूरे कर रहा था। पेड़ों की चोटियों पर बैठने वाली, मीठे राग गाने वाली चिड़िया क्या पिंजरे में ज़िंदा रह सकती हैं? मुमकिन है कि वह दाना खाये, पानी पिये मगर उसकी इस जिंदगी और मौत में कोई फर्क नहीं है।

आखिर जब मुझे अपनी शायरी के लौटने की कोई उम्मीद नहीं रही, तो मेरे दिल में यह इरादा पक्का हो गया कि अब मेरे लिए शायरी की दुनिया से मर जाना ही बेहतर होगा। मुर्दा तो हूँ ही, इस हालत में अपने को जिंदा समझना बेवकूफी है। आखिर मैने एक रोज कुछ दैनिक पत्रों का अपने मरने की खबर दे दी। उसके छपते ही मुल्क में कोहराम मच गया, एक तहलका पड़ गया। उस वक्त मुझे अपनी लोकप्रियता का कुछ अंदाजा हुआ। यह आम पुकार थी, कि शायरी की दुनिया की किस्ती मंझधार में डूब गयी। शायरी की महफिल उखड़ गयी। पत्र-पत्रिकाओं में मेरे जीवन-चरित्र प्रकाशित हुए जिनको पढ़ कर मुझे उनके एडीटरों की आविष्कार-बुद्धि का क़ायल होना पड़ा। न तो मैं किसी रईस का बेटा था और न मैंने रईसी की मसनद छोड़कर फकीरी अख्तियार की थी। उनकी कल्पना वास्तविकता पर छा गयी थी। मेरे मित्रों में एक साहब ने, जिन्हे मुझसे आत्मीयता का दावा था, मुझे पीने-पिलाने का प्रेमी बना दिया था। वह जब कभी मुझसे मिलते, उन्हें मेरी आखें नशे से लाल नजर आतीं। अगरचे इसी लेख में आगे चलकर उन्होनें मेरी इस बुरी आदत की बहुत हृदयता से सफाई दी थी क्योंकि रुखा-सूखा आदमी ऐसी मस्ती के शेर नहीं कह सकता था। ताहम हैरत है कि उन्हें यह सरीहन गलत बात कहने की हिम्मत कैसे हुई।

खैर, इन गलत-बयानियों की तो मुझे परवाह न थी। अलबत्ता यह बड़ी फिक्र थी, फिक्र नहीं एक प्रबल जिज्ञासा थी, कि मेरी शायरी पर लोगों की जबान से क्या फतवा निकलता है। हमारी जिंदगी के कारनामे की सच्ची दाद मरने के बाद ही मिलती है क्योंकि उस वक्त वह खुशामद और बुराइयों से पाक-साफ होती हैं। मरने वाले की खुशी या रंज की कौन परवाह करता है। इसीलिए मेरी कविता पर जितनी आलोचनाएँ निकली हैं उसको मैंने बहुत ही ठंडे दिल से पढ़ना शुरु किया। मगर कविता को समझने वाली दृष्टि की व्यापकता और उसके मर्म को समझने वाली रुचि का चारों तरफ अकाल-सा मालूम होता था। अधिकांश जौहरियों ने एक-एक शेर को लेकर उनसे बहस की थी, और इसमें शक नहीं कि वे पाठक की हैसियत से उस शेर के पहलुओं को खूब समझते थे। मगर आलोचक का कहीं पता न था। नजर की गहराई गायब थी। समग्र कविता पर निगाह डालने वाला कवि, गहरे भावों तक पहुँचने वाला कोई आलोचक दिखाई न दिया।

३

एक रोज़ मैं प्रेतों की दुनिया से निकलकर घूमता हुआ अजमेर की पब्लिक लाइब्रेरी में जा पहुँचा। दोपहर का वक्त था। मैंने मेज पर झुककर देखा कि कोई नयी रचना हाथ आ जाये तो दिल बहलाऊँ। यकायक मेरी निगाह एक सुंदर पत्र की तरफ गयी जिसका नाम था 'कलामें अख्तर'। जैसे भोला बच्चा खिलौने कि तरफ लपकता है उसी तरह झपटकर मैंने उस किताब को उठा लिया। उसकी लेखिका मिस आयशा आरिफ़ थीं। दिलचस्पी और भी ज्यादा हुई। मैं इत्मीनान से बैठकर उस किताब को पढ़ने लगा। एक ही पन्ना पढ़ने के बाद दिलचस्पी ने बेताबी की सूरत अख्तियार की। फिर तो मैं बेसुधी की दुनिया में पहुँच गया। मेरे सामने गोया सूक्ष्म अर्थों की एक नदी लहरें मार रही थी। कल्पना की उठान, रुचि की स्वच्छता, भाषा की नर्मी। काव्य-दृष्टि ऐसी थी कि हृदय धन्य-धन्य हो उठता था। मैं एक पैराग्राफ पढ़ता, फिर विचार की ताज़गी से प्रभावित होकर एक लंबी साँस लेता और तब सोचने लगता, इस किताब को सरसरी तौर पर पढ़ना असम्भव था। यह औरत थी या सुरुचि की देवी। उसके इशारों से मेरा कलाम बहुत कम बचा था मगर जहां उसने मुझे दाद दी थी वहां सच्चाई के मोती बरसा दिये थे। उसके एतराजों में हमदर्दी और प्रशंसा में भक्ति था। शायर के कलाम को दोषों की दृष्टियों से नहीं देखना चाहिये। उसने क्या नहीं किया, यह ठीक कसौटी नहीं। बस यही जी चाहता था कि लेखिका के हाथ और कलम चूम लूँ। 'सफ़ीर' भोपाल के दफ्तर से एक पत्रिका प्रकाशित हुई थी। मेरा पक्का इरादा हो गया, तीसरे दिन शाम के वक्त मैं मिस आयशा के खूबसूरत बंगले के सामने हरी-हरी घास पर टहल रहा था। मैं नौकरानी के साथ एक कमरे में दाखिल हुआ। उसकी सजावट बहुत सादी थी। पहली चीज़ पर निगाहें पड़ीं वह मेरी तस्वीर थी जो दीवार पर लटक रही थी। सामने एक आइना रखा हुआ था। मैंने खुदा जाने क्यों उसमें अपनी सूरत देखी। मेरा चेहरा पीला और कुम्हलाया हुआ था, बाल उलझे हुए, कपड़ों पर गर्द की एक मोटी तह जमी हुई, परेशानी की जिंदा तस्वीर थी।

उस वक्त मुझे अपनी बुरी शक्ल पर सख्त शर्मिंदगी हुई। मैं सुंदर न सही मगर इस वक्त तो सचमुच चेहरे पर फटकार बरस रही थी। अपने लिबास के ठीक होने का यकीन हमें खुशी देता है। अपने फुहड़पन का जिस्म पर इतना असर नहीं होता जितना दिल पर। हम बुजदिल और बेहौसला हो जाते हैं।

मुझे मुश्किल से पांच मिनट गुजरे होंगे कि मिस आयशा तशरीफ़ लायीं। सांवला रंग था, चेहरा एक गंभीर घुलावट से चमक रहा था। बड़ी-बड़ी नरगिसी आंखों से सदाचार की, संस्कृति की रोशनी झलकती थी। क़द मझोले से कुछ कम। अंग-प्रत्यंग छरहरे, सुथरे, ऐसे हल्की-फुल्की कि जैसे प्रकृति ने उसे इस भौतिक संसार के लिए नहीं, किसी काल्पनिक संसार के लिए सिरजा है। कोई चित्रकार कला की उससे अच्छी तस्वीर नही खींच सकता था।

मिस आयशा ने मेरी तरफ दबी निगाहों से देखा मगर देखते-देखते उसकी गर्दन झुक गयी और उसके गालों पर लाज की एक हल्की-परछाईं नाचती हुई मालूम हुई। जमीन से उठकर उसकी आँखें मेरी तस्वीर की तरफ गयीं और फिर सामने पर्दे की तरफ जा पहुँचीं। शायद उसकी आड़ में छिपना चाहती थीं।

मिस आयशा ने मेरी तरफ दबी निगाहों से देखकर पूछा—आप स्वर्गीय अख्तर के दोस्तों में से हैं?

मैंने सिर नीचा किये हुए जवाब दिया--मैं ही बदनसीब अख्तर हूँ।

आयशा एक बेखुदी के आलम में कुर्सी पर से खड़ी हुई और मेरी तरफ हैरत से देखकर बोलीं—‘दुनियाए हुस्न’ के लिखने वाले?

अंधविश्वास के सिवा और किसने इस दुनिया से चले जानेवाले को देखा है? आयशा ने मेरी तरफ कई बार शक से भरी निगाहों से देखा। उनमें अब शर्म और हया की जगह के बजाय हैरत समायी हुई थी। मेरे कब्र से निकलकर भागने का तो उसे यकीन आ ही नहीं सकता था, शायद वह मुझे दीवाना समझ रही थी। उसने दिल में फैसला किया कि इस आदमी मरहूम शायर का कोई क़रीबी अजीज है। शकल जिस तरह मिल रही थी वह दोनों के एक खानदान के होने का सबूत थी। मुमकिन है कि भाई हो। वह अचानक सदमे से पागल हो गया है। शायद उसने मेरी किताब देखी होगी ओर हाल पूछने के लिए चला आया। अचानक उसे ख़याल गुजरा कि किसी ने अखबारों को मेरे मरने की झूठी खबर दे दी हो और मुझे उस खबर को काटने का मौका न मिला हो। इस ख़याल से उसकी उलझन दूर हुई, बोली—अखबारों में आपके बारे में एक निहायत मनहूस खबर छप गयी थी? मैंने जवाब दिया—वह खबर सही थी।

अगर पहले आयशा को मेरे दिवानेपन में कुछ था तो वह दूर हो गया। आखिर मैने थोड़े लफ़्जो में अपनी दास्तान सुनायी और जब उसको यकीन हो गया कि ‘दुनियाए हुस्न’ का लिखनेवाला अख्तर अपने इन्सानी चोले में है तो उसके चेहरे पर खुशी की एक हल्की सुर्खी दिखायी दी और यह हल्का रंग बहुत जल्द खुददारी और रुप-गर्व के शोख रंग से मिलकर कुछ का कुछ हो गया। ग़ालिबन वह शर्मिंदा थी कि क्यों उसने अपनी क़द्रदानी को हद से बाहर जाने दिया। कुछ देर की शर्मीली खामोशी के बाद उसने कहा—मुझे अफसोस है कि आपको ऐसी मनहूस खबर निकालने की जरुरत हुई।

मैंने जोश में भरकर जवाब दिया—आपके क़लम की जबान से दाद पाने की कोई सूरत न थी। इस तनक़ीद के लिए मैं ऐसी-ऐसी कई मौते मर सकता था।

मेरे इस बेधड़क अंदाज ने आयशा की जबान को भी शिष्टाचार और संकोच की क़ैद से आज़ाद किया, मुस्कराकर बोली—मुझे बनावट पसंद नहीं है। डाक्टरों ने कुछ बतलाया नहीं? उसकी इस मुस्कराहट ने मुझे दिल्लगी करने पर आमादा किया, बोला—अब मसीहा के सिवा इस मर्ज का इलाज और किसी के हाथ नहीं हो सकता।

आयशा इशारा समझ गई, हँसकर बोली—मसीहा चौथे आसमान पर रहते हैं।

मेरी हिम्मत ने अब और कदम बढ़ाये---रुहों की दुनिया से चौथा आसमान बहुत दूर नहीं है।

आयशा के खिले हुए चेहरे से संजीदगी और अजनबियत का हल्का रंग उड़ गया। ताहम, मेरे इन बेधड़क इशारों को हद से बढ़ते देखकर उसे मेरी जबान पर रोक लगाने के लिए किसी क़दर खुददारी बरतनी पड़ी। जब मैं कोई घंटे-भर के बाद उस कमरे से निकला तो बजाय इसके कि वह मेरी तरफ अपनी अंग्रेजी तहज़ीब के मुताबिक हाथ बढ़ाये उसने चोरी-चोरी मेरी तरफ देखा। फैला हुआ पानी जब सिमटकर किसी जगह से निकलता है तो उसका बहाव तेज़ और ताक़त कई गुना ज्यादा हो जाती है आयशा की उन निगाहों में अस्मत की तासीर थी। उनमें दिल मुस्कराता था और जज्बा नाजता था। आह, उनमें मेरे लिए दावत का एक पुरजोर पैग़ाम भरा हुआ था। जब मैं मुस्लिम होटल में पहुँचकर इन वाक़यात पर गौर करने लगा तो मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि गो मैं ऊपर से देखने पर यहां अब तक अपरिचित था लेकिन भीतरी तौर पर शायद मैं उसके दिल के कोने तक पहुँच चुका था।

जब मैं खाना खाकर पलंग पर लेटा तो बावजूद दो दिन रात-रात-भर जागने के नींद आंखों से कोसों दूर थी। जज्बात की कशमकश में नींद कहाँ। आयशा की सूरत, उसकी खातिरदारियाँ और उसकी वह छिपी-छिपी निगाह दिल में एकसासों का तूफान-सा बरपा रही थी उस आखिरी निगाह ने दिल में तमन्नाओं की रुम-धूम मचा दी। वह आरजुएं जो, बहुत अरसा हुआ, मर मिटी थीं फिर जाग उठीं और आरजुओं के साथ कल्पना ने भी मुंदी हुई आंखे खोल दीं।

दिल में जज्ब़ात और कैफ़ियात का एक बेचैन करनेवाला जोश महसूस हुआ। यही आरजुएं, यही बेचैनिया और यही कोशिशें कल्पना के दीपक के लिए तेल हैं। जज्बात की हरारत ने कल्पना को गरमाया। मैं क़लम लेकर बैठ गया और एक ऐसी नज़म लिखी जिसे मैं अपनी सबसे शानदार दौलत समझता हूँ।

मैं एक होटल मे रह रहा था, मगर किसी-न-किसी हीले से दिन में कम-से-कम एक बार जरुर उसके दर्शन का आनंद उठाता । गो आयशा ने कभी मेरे यहाँ तक आने की तकलीफ नहीं की तो भी मुझे यह यकीन करने के लिए शहादतों की जरुरत न थीकि वहाँ किस क़दर सरगर्मी से मेरा इंतजार किया जाता था, मेरे क़दमो की पहचानी हुई आहटे पाते ही उसका चेहरा कैसे कमल की तरह खिल जाता था और आंखों से कामना की किरणें निकलने लगती थीं।

यहां छः महीने गुजर गये। इस जमाने को मेरी जिंदगी की बहार समझना चाहिये। मुझे वह दिन भी याद है जब मैं आरजुओं और हसरतों के ग़म से आजाद था। मगर दरिया की शांतिपूर्ण रवानी में थिरकती हुई लहरों की बहार कहां, अब अगर मुहब्बत का दर्द था तो उसका प्राणदायी मज़ा भी था। अगर आरजुओं की घुलावट थी तो उनकी उमंग भी थी। आह, मेरी यह प्यासी आंखें उस रुप के स्रोत से किसी तरह तप्त न होंती। जब मैं अपनी नशें में डूबी हुई आंखो से उसे देखता तो मुझे एक आत्मिक तरावट-सी महसूस होती। मैं उसके दीदार के नशे से बेसुध-सा हो जाता और मेरी रचना-शक्ति का तो कुछ हद-हिसाब न था। ऐसा मालूम होता था कि जैसे दिल में मीठे भावों का सोता खुल गया था। अपनी कवित्व शक्ति पर खुद अचम्भा होता था। क़लम हाथ में ली और रचना का सोता-सा बह निकला। 'नैरंग' में ऊँची कल्पनाएँ न हो, बड़ी गूढ़ बातें न हों, मगर उसका एक-एक शेर प्रवाह और रस, गर्मी और घुलावट की दाद दे रहा है। यह उस दीपक का वरदान है, जो अब मेरे दिल में जल गया था और रोशनी दे रहा था। यह उस फुल की महक थी जो मेरे दिल में खिला हुआ था। मुहब्बत रुह की खुराक है। यह अमृत की बूंद है जो मरे हुए भावों को जिंदा कर देती है। मुहब्बत आत्मिक वरदान है। यह जिंदगी की सबसे पाक, सबसे ऊँची, मुबारक बरक़त है। यही अक्सीर थी जिसकी अनजाने ही मुझे तलाश थी। वह रात कभी नहीं भूलेगी जब आयशा दुल्हन बनी हुई मेरे घर में आयी। 'नैरंग' उसकी मुबारक जिंदगी की यादगार है। 'दुनियाए हुस्न' एक कली थी, 'नैरंग' खिला हुआ फूल है और उस कली को खिलाने वाली कौन-सी चीज है? वही जिसकी मुझे अनजाने ही तलाश थी और जिसे मैं अब पा गया था।

....उर्दू 'प्रेम पचीसी' से

अपनी करनी

आह, अभागा मैं! मेरे कर्मो के फल ने आज यह दिन दिखाये कि अपमान भी मेरे ऊपर हंसता है। और यह सब मैंने अपने हाथों किया। शैतान के सिर इलजाम क्यों दूं, किस्मत को खरी-खोटी क्यों सुनाऊँ, होनी का क्यों रोऊं? जों कुछ किया मैंने जानते और बूझते हुए किया। अभी एक साल गुजरा जब मैं भाग्यशाली था, प्रतिष्ठित था और समृद्धि मेरी चेरी थी। दुनिया की नेमतें मेरे सामने हाथ बांधे खड़ी थीं लेकिन आज बदनामी और कंगाली और शर्मिंदगी मेरी दुर्दशा पर आंसू बहाती है। मैं ऊंचे खानदान का, बहुत पढ़ा-लिखा आदमी था, फारसी का मुल्ला, संस्कृत का पंण्डित, अंगेजी का ग्रेजुएट। अपने मुंह मियां मिट्ठू क्यों बनूं लेकिन रुप भी मुझको मिला था, इतना कि दूसरे मुझसे ईर्ष्या कर सकते थे। ग़रज एक इंसान को खुशी के साथ जिंदगी बसर करने के लिए जितनी अच्छी चीजों की जरुरत हो सकती है वह सब मुझे हासिल थीं। सेहत का यह हाल कि मुझे कभी सरदर्द की भी शिकायत नहीं हुई। फ़िटन की सैर, दरिया की दिलफ़रेबियां, पहाड़ के सुंदर दृश्य –उन खुशियों का जिक्र ही तकलीफ़देह है। क्या मजे की जिंदगी थी!

आह, यहाँ तक तो अपना दर्देदिल सुना सकता हूँ लेकिन इसके आगे फिर होंठों पर खामोशी की मुहर लगी हुई है। एक सती-साध्वी, प्रतिप्राणा स्त्री और दो गुलाब के फूल-से बच्चे इंसान के लिए जिन खुशियों, आरजुओं, हौसलों और दिलफ़रेबियों का खजाना हो सकते हैं वह सब मुझे प्राप्त था। मैं इस योग्य नहीं कि उस पतित्र स्त्री का नाम जबान पर लाऊँ। मैं इस योग्य नहीं कि अपने को उन लड़कों का बाप कह सकूं। मगर नसीब का कुछ ऐसा खेल था कि मैंने उन बिहिश्ती नेमतों की कद्र न की। जिस औरत ने मेरे हुक्म और अपनी इच्छा में कभी कोई भेद नहीं किया, जो मेरी सारी बुराइयों के बावजूद कभी शिकायत का एक हर्फ़ ज़बान पर नहीं लायी, जिसका गुस्सा कभी आंखो से आगे नहीं बढ़ने पाया-गुस्सा क्या था कुआर की बरखा थी, दो-चार हलकी-हलकी बूंदें पड़ी और फिर आसमान साफ़ हो गया—अपनी दीवानगी के नशे में मैंने उस देवी की कद्र न की। मैने उसे जलाया, रुलाया, तड़पाया। मैंने उसके साथ दग़ा की। आह! जब मैं दो-दो बजे रात को घर लौटता था तो मुझे कैसे-कैसे बहाने सूझते थे, नित नये हीले गढ़ता था, शायद विद्यार्थी जीवन में जब बैण्ड के मजे से मदरसे जाने की इजाज़त न देते थे, उस वक्त भी बुद्धि इतनी प्रखर न थी। और क्या उस क्षमा की देवी को मेरी बातों पर यक़ीन आता था? वह भोली थी मगर ऐसी नादान न थी। मेरी खुमार-भरी आंखे और मेरे उथले भाव और मेरे झूठे प्रेम-प्रदर्शन का रहस्य क्या उससे छिपा रह सकता था? लेकिन उसकी रग-रग में शराफत भरी हुई थी, कोई कमीना ख़याल उसकी जबान पर नहीं आ सकता था। वह उन बातों का जिक्र करके या अपने संदेहों को खुले आम दिखलाकर हमारे पवित्र संबंध में खिचाव या बदमज़गी पैदा करना बहुत अनुचित समझती थी। मुझे उसके विचार, उसके माथे पर लिखे मालूम होते थे। उन बदमज़गियों के मुकाबले में उसे जलना और रोना ज्यादा पसंद था, शायद वह समझती थी कि मेरा नशा खुद-ब-खुद उतर जाएगा। काश, इस शराफत के बदले उसके स्वभाव में कुछ ओछापन और अनुदारता भी होती। काश, वह अपने अधिकारों को अपने हाथ में रखना जानती। काश, वह इतनी सीधी न होती। काश, अव अपने मन के भावों को छिपाने में इतनी कुशल न होती। काश, वह इतनी मक्कार न होती। लेकिन मेरी मक्कारी और उसकी मक्कारी में कितना अंतर था, मेरी मक्कारी हरामकारी थी, उसकी मक्कारी आत्मबलिदानी।

एक रोज मैं अपने काम से फ़ुसरत पाकर शाम के वक्त़ मनोरंजन के लिए आनंदवाटिका मे पहुँचा और संगमरमर के हौज पर बैठकर मछलियों का तमाशा देखने लगा। एकाएक निगाह ऊपर उठी तो मैंने एक औरत का बेले की झाड़ियों में फूल चुनते देखा। उसके कपड़े मैले थे और जवानी की ताजगी और गर्व को छोड़कर उसके चेहरे में कोई ऐसी खास बात न थीं उसने मेरी तरफ आंखे उठायीं और फिर फूल चुनने में लग गयी गोया उसने कुछ देखा ही नहीं। उसके इस अंदाज ने, चाहे वह उसकी सरलता ही क्यों न रही हो, मेरी वासना को और भी उद्दीप्त कर दिया। मेरे लिए यह एक नयी बात थी कि कोई औरत इस तरह देखे कि जैसे उसने नहीं देखा। मैं उठा और धीरे-धीरे, कभी जमीन और कभी आसमान की तरफ ताकते हुए बेले की झाड़ियों के पास जाकर खुद भी फूल चुनने लगा। इस ढिठाई का नतीजा यह हुआ कि वह मालिन की लड़की वहां से तेजी के साथ बाग के दूसरे हिस्से में चली गयी।

उस दिन से मालूम नहीं वह कौन-सा आकर्षण था जो मुझे रोज शाम के वक्त आनंदवाटिका की तरफ खींच ले जाता। उसे मुहब्बत हरगिज नहीं कह सकते। अगर मुझे उस वक्त भगवान् न करें, उस लड़की के

बारे में कोई, शोक-समाचार मिलता तो शायद मेरी आंखों से आंसू भी न निकले, जोगिया धारण करने की तो चर्चा ही व्यर्थ है। मैं रोज जाता और नये-नये रुप धरकर जाता लेकिन जिस प्रकृति ने मुझे अच्छा रुप-रंग दिया था उसी ने मुझे वाचालता से वंचित भी कर रखा था। मैं रोज जाता और रोज लौट जाता, प्रेम की मंजिल में एक क़दम भी आगे न बढ़ पाता था। हां, इतना अलबत्ता हो गया कि उसे वह पहली-सी झिझक न रही।

आखिर इस शांतिपूर्ण नीति को सफल बनाने न होते देख मैंने एक नयी युक्ति सोची। एक रोज मैं अपने साथ अपने शैतान बुलडाग टामी को भी लेता गया। जब शाम हो गयी और वह मेरे धैर्य का नाश करने वाली फूलों से आंचल भरकर अपने घर की ओर चली तो मैंने अपने बुलडाग को धीरे से इशारा कर दिया। बुलडाग उसकी तरफ़ बाज की तरफ झपटा, फूलमती ने एक चीख मारी, दो-चार कदम दौड़ी और जमीन पर गिर पड़ी। अब मैं छड़ी हिलाता, बुलडाग की तरफ गुस्से-भरी आंखों से देखता और हांय-हांय चिल्लाता हुआ दौड़ा और उसे जोर से दो-तीन डंडे लगाये। फिर मैंने बिखरे हुए फूलों को समेटा, सहमी हुई औरत का हाथ पकड़कर बिठा दिया और बहुत लज्जित और दुखी भाव से बोला—यह कितना बड़ा बदमाश है, अब इसे अपने साथ कभी नहीं लाऊंगा। तुम्हें इसने काट तो नहीं लिया?

फूलमती ने चादर से सर को ढ़ांकते हुए कहा—तुम न आ जाते तो वह मुझे नोच डालता। मेरे तो जैसे मन-मन-भर में पैर हो गये थे। मेरा कलेजा तो अभी तक धड़क रहा है।

यह तीर लक्ष्य पर बैठा, खामोशी की मुहर टूट गयी, बातचीत का सिलसिला क़ायम हुआ। बांध में एक दरार हो जाने की देर थी, फिर तो मन की उमंगो ने खुद-ब-खुद काम करना शुरु किया। मैने जैसे-जैसे जाल फैलाये, जैसे-जैसे स्वांग रचे, वह रंगीन तबियत के लोग खूब जानते हैं। और यह सब क्यों? मुहब्बत से नहीं, सिर्फ जरा देर दिल को खुश करने के लिए, सिर्फ उसके भरे-पूरे शरीर और भोलेपन पर रीझकर। यों मैं बहुत नीच प्रकृति का आदमी नहीं हूँ। रूप-रंग में फूलमती का इंदु से मुकाबला न था। वह सुंदरता के सांचे में ढली हुई थी। कवियों ने सौंदर्य की जो कसौटियां बनायी हैं वह सब वहां दिखायी देती थीं लेकिन पता नहीं क्यों मैंने फूलमती की धंसी हुई आंखों और फूले हुए गालों और मोटे-मोटे होठों की तरफ अपने दिल का ज्यादा खिंचाव देखा। आना-जाना बढ़ा और महीना-भर भी गुजरने न पाया कि मैं उसकी मुहब्बत के जाल में पूरी तरह फंस गया। मुझे अब घर की सादा जिंदगी में कोई आनंद न आता था। लेकिन दिल ज्यों-ज्यों घर से उचटता जाता था त्यों-त्यों मैं पत्नी के प्रति प्रेम का प्रदर्शन और भी अधिक करता था। मैं उसकी फ़रमाइशों का इंतजार करता रहता और कभी उसका दिल दुखानेवाली कोई बात मेरी जबान पर न आती। शायद मैं अपनी आंतरिक उदासीनता को शिष्टाचार के पर्दे के पीछे छिपाना चाहता था।

धीरे-धीरे दिल की यह कैफ़ियत भी बदल गयी और बीवी की तरफ से उदासीनता दिखायी देने लगी। घर में कपड़े नहीं है लेकिन मुझसे इतना न होता कि पूछ लूं। सच यह है कि मुझे अब उसकी खातिरदारी करते हुए एक डर-सा मालूम होता था कि कहीं उसकीं खामोशी की दीवार टूट न जाय और उसके मन के भाव जबान पर न आ जायं। यहां तक कि मैंने गिरस्ती की जरुरतों की तरफ से भी आंखे बंद कर लीं। अब मेरा दिल और जान और रुपया-पैसा सब फूलमती के लिए था। मैं खुद कभी सुनार की दुकान पर न गया था लेकिन आजकल कोई मुझे रात गए एक मशहूर सुनार के मकान पर बैठा हुआ देख सकता था। बजाज की दुकान में भी मुझे रुचि हो गयी।

२

एक रोज शाम के वक्त रोज की तरह मैं आनंदवाटिका में सैर कर रहा था और फूलमती सोहलों सिंगार किए, मेरी सुनहरी-रुपहली भेंटो से लदी हुई, एक रेशमी साड़ी पहने बाग की क्यारियों में फूल तोड़ रही थी, बल्कि यों कहो कि अपनी चुटकियो मे मेरे दिल को मसल रही थी। उसकी छोटी-छोटी आंखे उस वक्त नशे के हुस्न में फैल गयी ,थीं और उनमें शोखी और मुस्कराहट की झलक नज़र आती थी।

अचानक महाराजा साहब भी अपने कुछ दोस्तों के साथ मोटर पर सवार आ पहुँचे। मैं उन्हें देखते ही अगवानी के लिए दौड़ा और आदाब बजा लाया। बेचारी फूलमती महाराजा साहब को पहचानती थी लेकिन उसे एक घने कुंज के अलावा और कोई छिपने की जगह न मिल सकी। महाराजा साहब चले तो हौज की तरफ़ लेकिन मेरा दुर्भाग्य उन्हें क्यारी पर ले चला जिधर फूलमती छिपी हुई थर-थर कांप रही थी।

महाराजा साहब ने उसकी तरफ़ आश्चर्य से देखा और बोले—यह कौन औरत है? सब लोग मेरी ओर प्रश्न-भरी आंखों से देखने लगे और मुझे भी उस वक्त यही ठीक मालूम हुआ कि इसका जवाब मैं ही दूं

वर्ना फूलमती न जाने क्या आफत ढ़ा दे। लापरवाही के अंदाज से बोला—इसी बाग के माली की लड़की है, यहां फूल तोड़ने आयी होगी।

फूलमती लज्जा और भय के मारे जमीन में धंसी जाती थी। महाराजा साहब ने उसे सर से पांव तक गौर से देखा और तब संदेहशील भाव से मेरी तरफ देखकर बोले—यह माली की लड़की है?

मैं इसका क्या जवाब देता। इसी बीच कम्बख्त दुर्जन माली भी अपनी फटी हुई पाग संभालता, हाथ मे कुदाल लिए हुए दौड़ता हुआ आया और सर को घुटनों से मिलाकर महाराज को प्रणाम किया महाराजा ने जरा तेज लहजे में पूछा—यह तेरी लड़की हैं?

माली के होश उड़ गए, कांपता हुआ बोला--हुजूर।

महाराज—तेरी तनख्वाह क्या है?

दुर्जन—हुजूर, पांच रुपये।

महाराज—यह लड़की कुंवारी है या ब्याही?

दुर्जन—हुजूर, अभी कुंवारी है

महाराज ने गुस्से में कहा—या तो तू चोरी करता है या डाका मारता है वर्ना यह कभी नहीं हो सकता कि तेरी लड़की अमीरजादी बनकर रह सके। मुझे इसी वक्त इसका जवाब देना होगा वर्ना मैं तुझे पुलिस के सुपुर्द कर दूँगा। ऐसे चाल-चलन के आदमी को मैं अपने यहां नहीं रख सकता।

माली की तो घिग्घी बंध गयी और मेरी यह हालत थी कि काटो तो बदन में लहू नहीं। दुनिया अंधेरी मालूम होती थी। मैं समझ गया कि आज मेरी शामत सर पर सवार है। वह मुझे जड़ से उखाड़कर दम लेगी। महाराजा साहब ने माली को जोर से डांटकर पूछा—तू खामोश क्यों है, बोलता क्यों नहीं?

दुर्जन फूट-फटकर रोने लगा। जब ज़रा आवाज सुधरी तो बोला—हुजूर, बाप-दादे से सरकार का नमक खाता हूँ, अब मेरे बुढ़ापे पर दया कीजिए, यह सब मेरे फूटे नसीबों का फेर है धर्मावतार। इस छोकरी ने मेरी नाक कटा दी, कुल का नाम मिटा दिया। अब मैं कहीं मुंह दिखाने लायक नहीं हूँ, इसको सब तरह से समझा-बुझाकर हार गए हुजूर, लेकिन मेरी बात सुनती ही नहीं तो क्या करूं। हुजूर माई-बाप हैं, आपसे क्या पर्दा करूं, उसे अब अमीरों के साथ रहना अच्छा लगता है और आजकल के रईसों और अमीरों को क्या कहूँ, दीनबंधु सब जानते हैं।

महाराजा साहब ने जरा देर गौर करके पूछा—क्या उसका किसी सरकारी नौकर से संबंध है?

दुर्जन ने सर झुकाकर कहा—हुजूर।

महाराज साहब—वह कौन आदमी है, तुम्हे उसे बतलाना होगा।

दुर्जन—महाराज जब पूछेंगे बता दूंगा, सांच को आंच क्या।

मैंने तो समझा था कि इसी वक्त सारा पर्दाफास हुआ जाता है लेकिन महाराजा साहब ने अपने दरबार के किसी मुलाजिम की इज्जत को इस तरह मिट्टी में मिलाना ठीक नहीं समझा। वे वहां से टहलते हुए मोटर पर बैठकर महल की तरफ चले।

३

इस मनहूस वाक़ये के एक हफ्ते बाद एक रोज मैं दरबार से लौटा तो मुझे अपने घर में से एक बूढ़ी औरत बाहर निकलती हुई दिखाई दी। उसे देखकर मैं ठिठका। उसे चेहरे पर बनावटी भोलापन था जो कुटनियों के चेहरे की खास बात है। मैंने उसे डांटकर पूछा-तू कौन है, यहां क्यों आयी है?

बुढ़िया ने दोनों हाथ उठाकर मेरी बलाये लीं और बोली—बेटा, नाराज न हो, गरीब भिखारी हूँ, मालिकिन का सुहाग भरपुर रहे, उसे जैसा सुनती थी वैसा ही पाया। यह कह कर उसने जल्दी से क़दम उठाए और बाहर चली गई। मेरे गुस्से का पारा चढ़ा मैंने घर जाकर पूछा—यह कौन औरत थी?

मेरी बीवी ने सर झुकाये धीरे से जवाब दिया—क्या जानूं, कोई भिखरिन थी।

मैंने कहा, भिखारिनों की सूरत ऐसी नहीं हुआ करती, यह तो मुझे कुटनी-सी नजर आती है। साफ़-साफ़ बताओं उसके यहां आने का क्या मतलब था।

लेकिन बजाय कि इन संदेह-भरी बातों को सुनकर मेरी बीवी गर्व से सिर उठाये और मेरी तरफ़ उपेक्षा-भरी आंखों से देखकर अपनी साफ़दिली का सबूत दे, उसने सर झुकाए हुए जवाब दिया—मैं उसके पेट में थोड़े ही बैठी थी। भीख मांगने आयी थी भींख दे दी, किसी के दिल का हाल कोई क्या जाने!

उसके लहजे और अंदाज से पता चलता था कि वह जितना जबान से कहती है, उससे ज्यादा उसके दिल में है। झूठा आरोप लगाने की कला में वह अभी बिलकुल कच्ची थी वर्ना तिरिया चरित्तर की थाह किसे मिलती है। मैं देख रहा था कि उसके हाथ-पांव थरथरा रहे है। मैंने झपटकर उसका हाथ पकड़ा और उसके सिर को ऊपर उठाकर बड़े गंभीर क्रोध से बोला—इंदु, तुम जानती हो कि मुझे तुम्हारा कितना एतबार है लेकिन अगर तुमने इसी वक्त सारी घटना सच-सच न बता दी तो मैं नहीं कह सकता कि इसका नतीजा क्या होगा। तुम्हारा ढंग बतलाता है कि कुछ-न-कुछ दाल में काला जरुर है। यह खूब समझ रखो कि मैं अपनी इज्जत को तुम्हारी और अपनी जानों से ज्यादा अज़ीज़ समझता हूँ। मेरे लिए यह डूब मरने की जगह है कि मैं अपनी बीवी से इस तरह की बातें करूं, उसकी ओर से मेरे दिल मे संदेह पैदा हो। मुझे अब ज्यादा सब्र की गुंजाइश नहीं हैं बोलो क्या बात है?

इंदुमती मेरे पैरो पर गिर पड़ी और रोकर बोली—मेरा कसूर माफ कर दो।

मैंने गरजकर कहा—वह कौन सा कसूर है?

इंदूमति ने संभलकर जवाब दिया—तुम अपने दिल में इस वक्त जो ख्याल कर रहे हो उसे एक पल के लिए भी वहां न रहने दो , वर्ना समझ लो कि आज ही इस जिंदगी का खात्मा है। मुझे नहीं मालूम था कि तुम मेरे ऊपर जो जुल्म किए हैं उन्हें मैंने किस तरह झेला है और अब भी सब-कुछ झेलने के लिए तैयार हूँ। मेरा सर तुम्हारे पैंरो पर है, जिस तरह रखोगे, रहूँगी। लेकिन आज मुझे मालूम हुआ कि तुम खुद हो वैसा ही दूसरों को समझते हो। मुझसे भूल अवश्य हुई है लेकिन उस भूल की यह सजा नहीं कि तुम मुझ पर ऐसे संदेह न करो। मैंने उस औरत की बातों में आकर अपने सारे घर का चिट्ठा बयान कर दिया। मैं समझती थी कि मुझे ऐसा नहीं करना चाहिये लेकिन कुछ तो उस औरत की हमदर्दी और कुछ मेरे अंदर सुलगती हुई आग ने मुझसे यह भूल करवाई और इसके लिए तुम जो सजा दो वह मेरे सर-आंखों पर।

मेरा गुस्सा जरा धीमा हुआ। बोला-तुमने उससे क्या कहा?

इंदुमति ने दिया—घर का जो कुछ हाल है, तुम्हारी बेवफाई , तुम्हारी लापरवाही, तुम्हारा घर की जरुरतों की फ़िक्र न रखना। अपनी बेवकूफी का क्या कहूँ, मैने उसे यहां तक कह दिया कि इधर तीन महीने से उन्होंने घर के लिए कुछ खर्च भी नहीं दिया और इसकी चोट मेरे गहनो पर पड़ी। तुम्हे शायद मालूम नहीं कि इन तीन महीनों में मेरे साढ़े चार सौ रुपये के जेवर बिक गये। न मालूम क्यों मैं उससे यह सब कुछ कह गयी। जब इंसान का दिल जलता है तो जबान तक उसी आंच आ ही जाती है। मगर मुझसे जो कुछ खता हुई उससे कई गुनी सख्त सजा तुमने मुझे दी है; मेरा बयान लेने का भी सब्र न हुआ। खैर, तुम्हारे दिल की कैफियत मुझे मालूम हो गई, तुम्हारा दिल मेरी तरफ़ से साफ़ नहीं है, तुम्हें मुझपर विश्वास नहीं रहा वर्ना एक भिखारिन औरत के घर से निकलने पर तुम्हें ऐसे शुबहे क्यों होते।

मैं सर पर हाथ रखकर बैठ गया। मालूम हो गया कि तबाही के सामान पूरे हुए जाते हैं।

४

दूसरे दिन मैं ज्यों ही दफ्तर में पहुंचा चोबदार ने आकर कहा-महाराज साहब ने आपको याद किया है। मैं तो अपनी किस्मत का फैसला पहले से ही किये बैठा था। मैं खूब समझ गया था कि वह बुढ़िया खुफ़िया पुलिस की कोई मुख़बिर है जो मेरे घरेलू मामलों की जांच के लिए तैनात हुई होगी। कल उसकी रिर्पोट आयी होगी और आज मेरी तलबी है। खौफ़ से सहमा हुआ लेकिन दिल को किसी तरह संभाले हुए कि जो कुछ सर पर पड़ेंगी देखा जाएगा, अभी से क्यों जान दूं, मैं महाराजा की खिदमत में पहुँचा। वह इस वक्त अपने पूजा के कमरे में अकेले बैठे हुए थे, क़ागजों का एक ढेर इधर-उधर फैला हुआ था ओर वह खुद किसी ख्याल में डूबे हुए थे। मुझे देखते ही वह मेरी तरफ मुखातिब हुए, उनके चेहरे पर नाराज़गी के लक्षण दिखाई दिये, बोले कुंअर श्यामसिंह, मुझे बहुत अफसोस है कि तुम्हारी बावत मुझे जो बातें मालूम हुईं वह मुझे इस बात के लिए मजबूर करती हैं कि तुम्हारे साथ सख्ती का बर्ताव किया जाए। तुम मेरे पुराने वसीक़ादार हो और तुम्हें यह गौरव कई पीढ़ियों से प्राप्त है। तुम्हारे बुजुर्गों ने हमारे खानदान की जान लगाकार सेवाएं की हैं और उन्हीं के सिलें में यह वसीक़ा दिया गया था लेकिन तुमने अपनी हरकतों से अपने को इस कृपा के योग्य नहीं रक्खा। तुम्हें इसलिए वसीक़ा मिलता था कि तुम अपने खानदान की परवरिश करों, अपने लड़कों को इस योग्य बनाओ कि वह राज्य की कुछ खिदमत कर सकें, उन्हें शारीरिक और नैतिक शिक्षा दो ताकि तुम्हारी जात से रियासत की भलाई हो, न कि इसलिए कि तुम इस रुपये को बेहूदा ऐशपस्ती और हरामकारी में खर्च करो। मुझे इस बात से बहुत तकलीफ़ होती है कि तुमने अब अपने

बाल-बच्चों की परवरिश की जिम्मेदारी से भी अपने को मुक्त समझ लिया है। अगर तुम्हारा यही ढंग रहा तो यकीनन वसीक़ादारों का एक पुराना खानदान मिट जाएगा। इसलिए हाज से हमने तुम्हारा नाम वसीक़ादारों की फ़ेहरिस्त से खारिज कर दिया और तुम्हारी जगह तुम्हारी बीवी का नाम दर्ज किया गया। वह अपने लड़कों को पालने-पोसने की जिम्मेदार है। तुम्हारा नाम रियासत के मालियों की फ़ेहरिस्त मे लिया जाएगा, तुमने अपने को इसी के योग्य सिद्ध किया है और मुझे उम्मीद है कि यह तबादला तुम्हें नागवार न होगा। बस, जाओ और मुमकिन हो तो अपने किये पर पछताओ।

५

मुझे कुछ कहने का साहस न हुआ। मैंने बहुत धैर्यपूर्वक अपने क़िस्मत का यह फ़ैसला सुना और घर की तरफ़ चला। लेकिन दो ही चार क़दम चला था कि अचानक ख़याल आया किसके घर जा रहे हो, तुम्हारा घर अब कहां है ! मैं उलटे क़दम लौटा। जिस घर का मैं राजा था वहां दूसरों का आश्रित बनकर मुझसे नहीं रहा जाएगा और रहा भी जाये तो मुझे रहना चाहिए। मेरा आचरण निश्चय ही अनुचित था लकिन मेरी नैतिक संवदेना अभी इतनी थोथी न हुई थी। मैंने पक्का इरादा कर लिया कि इसी वक्त इस शहर से भाग जाना मुनासिब है वर्ना बात फैलते ही हमदर्दों और बुरा चेतनेवालों का एक जमघट हालचाल पूछने के लिए आ जाएगा, दूसरों की सूखी हमदर्दियां सुननी पडेंगी जिनके पर्दे में ख़ुशी झलकती होगीं एक बारख् सिर्फ एक बार, मुझे फूलमती का खयाल आया। उसके कारण यह सब दुर्गत हो रही है, उससे तो मिल ही लूं। मगर दिल ने रोका, क्या एक वैभवशाली आदमी की जो इज्जत होती थी वह अब मुझे हासिल हो सकती है? हरगिज़ नहीं। रूप की मण्डी में वफ़ा और मुहब्बत के मुक़ाबिले में रुपया-पैसा ज्यादा क़ीमती चींज है। मुमकिन है इस वक्त मुझ पर तरस खाकर या क्षणिक आवेश में आकर फूलमती मेरे साथ चलने पर आमादा हो जाये लेकिन या क्षणिक आवेश में आकर फूलमती मेरे साथ चलने पर आमादा हो जाये लेकिन उसे लेकर कहां जाऊँगा, पांवों में बेड़ियां डालकर चलना तो ओर भी मुश्किल है। इस तरह सोच-विचार कर मैंने बम्बई की राह ली और अब दो साल से एक मिल में नौकर हूँ, तनख्वाह सिर्फ़ इतनी है कि ज्यों-त्यों जिन्दगी का सिलसिला चलता रहे लेकिन ईश्चर को धन्यवाद देता हूँ और इसी को यथेष्ट समझता हूँ। मैं एक बार गुप्त रूप से अपने घर गया था। फूलमती ने एक दूसरे रईस से रूप का सौदा कर लिया है, लेकिन मेरी पत्नी ने अपने प्रबन्ध-कौशल से घर की हालत खूब संभाल ली है। मैंने अपने मकान को रात के समय लालसा-भरी आंखों से देखा-दरवाज़े पर पर दो लालटेनें जल रही थीं और बच्चे इधर-उधर खेल रहे थे, हर सफ़ाई और सुथरापन दिखायी देता था। मुझे कुछ अखबारों के देखने से मालूम हुआ कि महीनों तक मेरे पते-निशान के बारे में अखबरों में इश्तहार छपते रहे। लेकिन अब यह सूरत लेकर मैं वहां क्या जाऊंगा ओर यह कालिख-लगा मुंह किसको दिखाऊंगा। अब तो मुझे इसी गिरी-पड़ी हालत में जिन्दगी के दिन काटने हैं, चाहे रोकर काटूं या हंसकर। मैं अपनी हरकतों पर अब बहुत शर्मिंदा हूँ। अफसोस मैंने उन नेमतों की कद्र न की, उन्हें लात से ठोकर मारी, यह उसी की सजा है कि आज मुझें यह दिन देखना पड़ रहा है। मैं वह परवाना हूँ। मैं वह परवाना हूँ जिसकी खाक भी हवा के झोंकों से नहीं बची।

-'जमाना', सितंबर-अक्तूबर, १९१४

गौरत की कटारे

कितनी अफ़सोसनाक, कितनी दर्दभरी बात है कि वही औरत जो कभी हमारे पहलू में बसती थी उसी के पहलू में चुभने के लिए हमारा तेज खंजर बेचैन हो रहा है। जिसकी आंखें हमारे लिए अमृत के छलकते हुए प्याले थीं वही आंखें हमारे दिल में आग और तूफान पैदा करें! रूप उसी वक्त तक राहत और खुशी देता है जब तक उसके भीतर एक रूहानी नेमत होती हैं और जब तक उसके अन्दर औरत की वफ़ा की रूह.हरकत कर रही हो वर्ना वह एक तकलीफ़ देने चाली चीज़ है, ज़हर और बदबू से भरी हुई, इसी क़ाबिल कि वह हमारी निगाहों से दूर रहे और पंजे और नाखून का शिकार बने। एक जमाना वह था कि नईमा हैदर की आरजुओं की देवी थी, यह समझना मुश्किल था कि कौन तलबगार है और कौन उस तलब को पूरा करने वाला। एक तरफ पूरी-पूरी दिलजोई थी, दूसरी तरफ पूरी-पूरी रजा। तब तक़दीर ने पांसा पलटा। गुलो-बुलबुल में सुबह की हवा की शरारतें शुरू हुई। शाम का वक्त था। आसमान पर लाली छायी हुई थी। नईमा उमंग और ताजुगी और शौक से उमड़ी हुई कोठे पर आयी। शफ़क़ की तरह उसका चेहरा भी उस वक्त खिला हुआ था। ऐन उसी वक्त वहां का सूबेदार नासिर अपने हवा की तरह तेज घोड़े पर सवार उधर से निकला, ऊपर निगाह उठी तो हुस्न का करिश्मा नजर आया कि जैसे चांद शफ़क़ के हौज में नहाकर निकला है। तेज़ निगाह जिगर के पार हुई। कलेजा थामकर रह गया। अपने महल को लौटा, अधमरा, टूटा हुआ। मुसाहबों ने हकीम की तलाश की और तब राह-रास्म पैदा हुई। फिर इश्क की दुश्वार मंज़िलों तय हुई। वफ़ा ओर हया ने बहुत बेरुखी दिखायी। मगर मुहब्बत के शिकवे और इश्क़ की कुफ्र तोड़नेवाली धमकियां आखिर जीतीं। अस्मत का खलाना लुट गया। उसके बाद वही हुआ जो हो सकता था। एक तरफ से बदगुमानी, दूसरी तरफ से बनावट और मक्कारी। मनमुटाव की नौबत आयी, फिर एक-दूसरे के दिल को चोट पहुँचाना शुरू हुआ। यहां तक कि दिलों में मैल पड़ गयी। एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गये। नईमा ने नासिर की मुहब्बत की गोद में पनाह ली और आज एक महीने की बेचैन इन्तजारी के बाद हैदर अपने जज्बात के साथ नंगी तलवार पहलू में छिपाये अपने जिगर के भड़कते हूए शोलों को नईमा के खून से बुझाने के लिए आया हुआ है।

२

आधी रात का वक्त था और अंधेरी रात थी। जिस तरह आसमान के हरमसरा में हुसन के सितारे जगमगा रहे थे, उसी तरह नासिर का हरम भी हुस्न के दीपों से रोशन था। नासिर एक हफ्ते से किसी मोर्चे पर गया हुआ है इसलिए दरबान गाफ़िल हैं। उन्होंने हैदर को देखा मगर उनके मुंह सोने-चांदी से बन्द थे। ख्वाजासराओं की निगाह पड़ी लेकिन वह पहले ही एहसान के बोझ से दब चुके थे। खवासों और कनीजों ने भी मतलब-भरी निगाहों से उसका स्वागत किया और हैदर बदला लेने के नशे में गुनहगार नईमा के सोने के कमरे में जा पहुँचा, जहां की हवा संदल और गुलाब से बसी हुई थी।

कमरे में एक मोमी चिराग़ जल रहा था और उसी की भेद-भरी रोशनी में आराम और तकल्लुफ़ की सजावटें नज़र आती थीं जो सतीत्व जैसी अनमोल चीज़ के बदले में खरीदी गयी थीं। वहीं वैभव और ऐश्वर्य की गोद में लेटी हुई नईमा सो रही थी।

हैदर ने एक बार नईया को ऑख भर देखा। वही मोहिनी सूरत थी, वही आकर्षक जावण्य और वही इच्छाओं को जगानेवाली ताजगी। वही युवती जिसे एक बार देखकर भूलना असम्भव था।

हॉ, वही नईमा थी, वही गोरी बॉहें जो कभी उसके गले का हार बनती थीं, वही कस्तूरी में बसे हुए बाल जो कभी कन्धों पर लहराते थे, वही फूल जैसे गाल जो उसकी प्रेम-भरी आंखों के सामने लाल हो जाते थे। इन्हीं गोरी-गोरी कलाइयों में उसने अभी-अभी खिली हुई कलियों के कंगन पहनाये थे और जिन्हें वह वफा के कंगन समझ था। इसकी गले में उसने फूलों के हार सजाये थे और उन्हें प्रेम का हार खयाल किया था। लेकिन उसे क्या मालूम था कि फूलों के हार और कलियों के कंगन के साथ वफा के कंगन और प्रेम के हार भी मुरझा जायेंगे।

हां, यह वही गुलाब के-से होंठ हैं जो कभी उसकी मुहब्बत में फूल की तरह खिल जाते थे जिनसे मुहब्बत की सुहानी महक उड़ती थी और यह वही सीना है जिसमें कभी उसकी मुहब्बत और वफ़ा का जलवा था, जो कभी उसके मुहब्बत का घर था।

मगर जिस फूल में दिल की महक थी, उसमें दग़ा के कांटे हैं।

३

हैदर ने तेज कटार पहलू से निकाली और दबे पांव नईमा की तरफ़ आया लेकिन उसके हाथ न उठ सके। जिसके साथ उम्र-भर जिन्दगी की सैर की उसकी गर्दन पर छुरी चलाते हुए उसका हृदय द्रवित हो गया। उसकी आंखें भीग गयीं, दिल में हसरत-भरी यादगारों का एक तूफान-सा तक़दीर की क्या खूबी है कि जिस प्रेम का आरम्भ ऐसा खुशी से भरपूर हो उसका अन्त इतना पीड़ाजनक हो। उसके पैर थरथराने लगे। लेकिन स्वाभिमान ने ललकारा, दीवार पर लटकी हुई तस्वीरें उसकी इस कमज़ोरी पर मुस्करायीं।

मगर कमजोर इरादा हमेशा सवाल और अलील की आड़ लिया करता है। हैदर के दिल में खयाल पैदा हुआ, क्या इस मुहब्बत के बाग़ को उजाड़ने का अल्ज़ाम मेरे ऊपर नहीं है? जिस वक्त बदगुमानियों के अंखुए निकले, अगर मैंने तानों और धिक्कारों के बजाय मुहब्बत से काम लिया होता तो आज यह दिन न आता। मेरे जुल्मों ने मुहब्बत और वफ़ा की जड़ काटी। औरत कमजोर होती है, किसी सहारे के बग़ैर नहीं रह सकती। जिस औरत ने मुहब्बत के मज़े उठाये हों, और उल्फ़ात की नाजबरदारियां देखी हों वह तानों और जिल्लतों की आंच क्या सह सकती है? लेकिन फिर ग़ैरत ने उकसाया, कि जैसे वह धुंधला चिराग़ भी उसकी कमजोरियों पर हंसने लगा।

स्वाभिमान और तर्क में सवाल-जवाब हो रहा था कि अचानक नईमा ने करवट बदली ओर अंगड़ाई ली। हैदर ने फौरन तलवार उठायी, जान के खतरे में आगा-पीछा कहां? दिल ने फैसला कर लिया, तलवार अपना काम करनेवाली ही थी कि नईमा ने आंखें खोल दीं। मौत की कटार सिर पर नजर आयी। वह घबराकर उठ बैठी। हैदर को देखा, परिस्थिति समझ में आ गयी। बोली-हैदर!

४

हैदर ने अपनी झेंप को गुस्से के पर्दे में छिपाकर कहा- हां, मैं हूँ हैदर!

नईमा सिर झुकाकर हसरत-भरे ढंग से बोली—तुम्हारे हाथों में यह चमकती हुई तलवार देखकर मेरा कलेजा थरथरा रहा है। तुम्हीं ने मुझे नाज़बरदारियों का आदी बना दिया है। ज़रा देर के लिए इस कटार को मेरी आँखें से छिपा लो। मैं जानती हूँ कि तुम मेरे खून के प्यासे हो, लेकिन मुझे न मालूम था कि तुम इतने बेरहम और संगदिल हो। मैंने तुमसे दग़ा की है, तुम्हारी खतावार हूं लेकिन हैदर, यक़ीन मानो, अगर मुझे चन्द आखिरी बातें कहने का मौक़ा न मिलता तो शायद मेरी रूह को दोज़ख में भी यही आरजू रहती। मौत की सज़ा से पहले आपने घरवालों से आखिरी मुलाक़ात की इजाज़त होती है। क्या तुम मेरे लिए इतनी रियायत के भी रवादार न थे? माना कि अब तुम मेरे लिए कोई नहीं हो मगर किसी वक्त थे और तुम चाहे अपने दिल में समझते हो कि मैं सब कुछ भूल गयी लेकिन मैं मुहब्बत को इतनी जल्दी भूल जाने वाली नहीं हूँ। अपने ही दिल से फैसला करो। तुम मेरी बेवफ़ाइयां चाहे भून जाओ लेकिन मेरी मुहब्बत की दिल तोड़नेवाली यादगारें नहीं मिटा सकते। मेरी आखिरी बातें सुन लो और इस नापाक जिन्दगी का हिस्सा पाक करो। मैं साफ़-साफ़ कहती हूँ इस आखिरी वक्त में क्यों डरूं। मेरी कुछ दुर्गत हुई है उसके जिम्मेदार तुम हो। नाराज न होना। अगर तुम्हारा ख्याल है कि मैं यहां फूलों की सेज पर सोती हूँ तो वह ग़लत है। मैंने औरत की शर्म खोकर उसकी क़द्र जानी है। मैं हसीन हूं, नाजुक हूं; दुनिया की नेमतें मेरे लिए हाज़िर हैं, नासिर मेरी इच्छा का गुलाम है लेकिन मेरे दिल से यह खयाल कभी दूर नहीं होता कि वह सिर्फ़ मेरे हुस्न और अदा का बन्दा है। मेरी इज्जत उसके दिल में कभी हो भी नहीं सकती। क्या तुम जानते हो कि यहां खवासों और दूसरी बीवियों के मतलब-भरे इशारे मेरे खून और जिगर को नहीं लजाते? ओफ्, मैंने अस्मत खोकर अस्मत की क़द्र जानी है लकिन मैं कह चुकी हूं और फिर कहती हूं, कि इसके तुम जिम्मेदार हो।

हैदर ने पहलू बदलकर पूछा—क्योंकर?

नईमा ने उसी अन्दाज से जवाब दिया-तुमने बीवी बनाकर नहीं, माशूक बनाकर रक्खा। तुमने मुझे नाजुबरदारियों का आदी बनाया लेकिन फ़र्ज का सबक नहीं पढ़ाया। तुमने कभी न अपनी बातों से, न कामों से मुझे यह खयाल करने का मौक़ा दिया कि इस मुहब्बत की बुनियाद फ़र्ज पर है, तुमने मुझे हमेशा हुसन और मस्तियों के तिलिस्म में फंसाए रक्खा और मुझे ख्वाहिशों का गुलाम बना दिया। किसी किश्ती पर अगर फ़र्ज का मल्लाह न हो तो फिर उसे दरिया में डूब जाने के सिवा और कोई चारा नहीं। लेकिन अब

बातों से क्या हासिल, अब तो तुम्हारी गैरत की कटार मेरे खून की प्यासी है ओर यह लो मेरा सिर उसके सामने झुका हुआ है। हाॅ, मेरी एक आखिरी तमन्ना है, अगर तुम्हारी इजाजत पाऊँ तो कहूँ।

यह कहते-कहते नईमा की आंखों में आंसुओं की बाढ़ आ गई और हैदर की ग़ैरत उसके सामने ठहर न सकी। उदास स्वर में बोला—क्या कहती हो?

नईमा ने कहा-अच्छा इजाज़त दी है तो इनकार न करना। मुझें एक बार फिर उन अच्छे दिनों की याद ताज़ा कर लेने दो जब मौत की कटार नहीं, मुहब्बत के तीर जिगर को छेदा करते थे, एक बार फिर मुझे अपनी मुहब्बत की बांहों में ले लो। मेरी आख़िरी बिनती है, एक बार फ़िर अपने हाथों को मेरी गर्दन का हार बना दो। भूल जाओ कि मैंने तुम्हारे साथ दगा की है, भूल जाओ कि यह जिस्म गन्दा और नापाक है, मुझे मुहब्बत से गले लगा लो और यह मुझे दे दो। तुम्हारे हाथों में यह अच्छी नहीं मालूम होती। तुम्हारे हाथ मेरे ऊपर न उठेंगे। देखो कि एक कमजोर औरत किस तरह ग़ैरत की कटार को अपने जिगर में रख लेती है।

यह कहकर नईमा ने हैदर के कमजोर हाथों से वह चमकती हुई तलवार छीन ली और उसके सीने से लिपट गयी। हैदर झिझका लेकिन वह सिर्फ़ ऊपरी झिझक थी। अभिमान और प्रतिशोध-भावना की दीवार टूट गयी। दोनों आलिंगन पाश में बंध गए और दोनों की आंखें उमड़ आयीं।

नईमा के चेहरे पर एक सुहानी, प्राणदायिनी मुस्कराहट दिखायी दी और मतवाली आंखों में खुशी की लाली झलकने लगी। बोली-आज कैसा मुबारक दिन है कि दिल की सब आरजुएं पूरीद होती हैं लेकिन यह कम्बख्त आरजुएं कभी पूरी नहीं होतीं। इस सीने से लिपटकर मुहब्बत की शराब के बगैर नहीं रहा जाता। तुमने मुझे कितनी बार प्रेम के प्याले हैं। उस सुराही और उस प्याले की याद नहीं भूलती। आज एक बार फिर उल्फत की शराब के दौर चलने दो, मौत की शराब से पहले उल्फ़त की शराब पिला दो। एक बार फिर मेरे हाथों से प्याला ले लो। मेरी तरफ़ उन्हीं प्यार की निगाहों से दंखकर, जो कभी आंखों से न उतरती थीं, पी जाओ। मरती हूं तो खुशी से मरूं।

नईमा ने अगर सतीत्व खोकर सतीत्व का मूल्य जाना था, तो हैदर ने भी प्रेम खोकर प्रेम का मूल्य जाना था। उस पर इस समय एक मदहोशी छायी हुई थी। लज्जा और याचना और झुका हुआ सिर, यह गुस्से और प्रतिशोध के जानी दुश्मन हैं और एक गौरत के नाजुक हाथों में तो उनकी काट तेज तलवार को मात कर देती है। अंगूरी शराब के दौर चले और हैदर ने मस्त होकर प्याले पर प्याले खाली करने शुरू किये। उसके जी में बार-बार आता था कि नईमा के पैरों पर सिर रख दूं और उस उजड़े हुए आशियाने को आदाब कर दूं। फिर मस्ती की कैफ़ियत पैदा हुई और अपनी बातों पर और अपने कामों पर उसे अख्ति़यार न रहा। वह रोया, गिड़गिड़ाया, मिन्नतें कीं, यहां तक कि उन दग़ा के प्यालों ने उसका सिर झुका दिया।

३

हैदर कई घण्टे तक बेसुध पड़ा रहा। वह चौंका तो रात बहुत कम बाक़ी रह गयी थी। उसने उठना चाहा लेकिन उसके हाथ-पैर रेशम की डोरियों से मजबूत बंधे हुए थे। उसने भौचक होकर इधर-उधर देखा। नईमा उसके सामने वही तेज़ कटार लिये खड़ी थी। उसके चेहरे पर एक क़ातिलों जैसी मुसकराहट की लाली थी। फ़र्जी माशूक के ख़ूनीपन और खंजरबाजी के तराने वह बहुत बार गा चुका था मगर इस वक्त उसे इस नज्जारे से शायराना लुत्फ़ उठाने का जीवट न था। जान का खतरा, नशे के लिए तुर्शी से ज्यादा क़ातिल है। घबराकर बोला-नईम!

नईमा ने लहजे में कहा-हां, मैं हूं नईमा।

हैदर गुस्से से बोला-क्या फिर दग़ा का वार किया?

नईमा ने जवाब दिया-जब वह मर्द जिसे खुदा ने बहादुरी और क़ूवत का हौसला दिया है, दग़ा का वार करता है तो उसे मुझसे यह सवाल करने का कोई हक़ नहीं। दग़ा और फ़रेब औरतों के हथियार हैं क्योंकि औरत कमजोर होती है। लेकिन तुमको मालूम हो गया कि औरत के नाज़ुक हाथों में ये हथियार कैसी काट करते हैं। यह देखो-यह आबदार शमशीर है, जिसे तुम ग़ैरत की कटार कहते थे। अब वह ग़ैरत की कटार मेरे जिगर में नहीं, तुम्हारे जिगर में चुभेगी। हैंदर, इन्सान थोड़ा खोकर बहुत कुछ सीखता है। तुमने इज्जत और आबरू सब कुछ खोकर भी कुछ न सीखा। तुम मर्द थे। नासिर से तुम्हारी होड़ थी। तुम्हें उसके मुक़ाबिले में अपनी तलवार के जौहर दिखाना था लेकिन तुमने निराला ढंग अख्तियार किया और एक बेकस और पर दग़ा का वार करना चाहा और अब तुम उसी औरत के समाने बिना हाथ-पैर के पड़े हुए हो। तुम्हारी जान

बिलकुल मेरी मुट्ठी में है। मैं एक लहमे में उसे मसल सकती हूं और अगर मैं ऐसा करूं तो तुम्हें मेरा शुक्रगुज़ार होना चाहिये क्योंकि एक मर्द के लिए ग़ैरत की मौत बेग़ैरती की जिन्दगी से अच्छी है। लेकिन मैं तुम्हारे ऊपर रहम करूंगी: मैं तुम्हारे साथ फ़ैयाजी का बर्ताव करूंगी क्योंकि तुम ग़ैरत की मौत पाने के हक़दार नहीं हो। जो ग़ैरत चन्द मीठी बातों और एक प्याला शराब के हाथों बिक जाय वह असली ग़ैरत नहीं है। हैदर, तुम कितने बेवकूफ़ हो, क्या तुम इतना भी नहीं समझते कि जिस औरत ने अपनी अस्मत जैसी अनमोल चीज देकर यह ऐश ओर तकल्लुफ़ पाया वह जिन्दा रहकर इन नेमतों का सुख जूटना चाहती है। जब तुम सब कुछ खोकर जिन्दगी से तंग नहीं हो तो मैं कुछ पाकर क्यों मौत की ख्वाहिश करूं? अब रात बहुत कम रह गयी है। यहां से जान लेकर भागो वर्ना मेरी सिफ़ारिश भी तुम्हें नासिर के गुस्से की आग से रन बचा सकेगी। तुम्हारी यह ग़ैरत की कटार मेरे क़ब्जे में रहेगी और तुम्हें याद दिलाती रहेगी कि तुमने इज्जत के साथ ग़ैरत भी खो दी।

-'जमाना', जुलाई, १९९५

घमण्ड का पुतला

शाम हो गयी थी। मैं सरयू नदी के किनारे अपने कैम्प में बैठा हुआ नदी के मजे ले रहा था कि मेरे फुटबाल ने दबे पांव पास आकर मुझे सलाम किया कि जैसे वह मुझसे कुछ कहना चाहता है।

फुटबाल के नाम से जिस प्राणी का जिक्र किया गया वह मेरा अर्दली था। उसे सिर्फ एक नजर देखने से यक़ीन हो जाता था कि यह नाम उसके लिए पूरी तरह उचित है। वह सिर से पैर तक आदमी की शकल में एक गेंद था। लम्बाई-चौड़ाई बराबर। उसका भारी-भरकम पेट, जिसने उस दायरे के बनाने में खास हिस्सा लिया था, एक लम्बे कमरबन्द में लिपटा रहता था, शायद इसलिए कि वह इन्तहा से आगे न बढ़ जाए। जिस वक्त वह तेजी से चलता था बल्कि यों कहिए जुढ़कता था तो साफ़ मालूम होता था कि कोई फुटबाल ठोकर खाकर लुढ़कता चला आता है। मैंने उसकी तरफ देखकर पूछा- क्या कहते हो?

इस पर फुटबाल ने ऐसी रोनी सूरत बनायी कि जैसे कहीं से पिटकर आया है और बोला-हुजूर, अभी तक यहां रसद का कोई इन्तजाम नहीं हुआ। जमींदार साहब कहते हैं कि मैं किसी का नौकर नहीं हूँ।

मेंने इस निगाह से देखा कि जैसे मैं और ज्यादा नहीं सुनना चाहता। यह असम्भव था कि मलिस्ट्रेट की शान में जमींदार से ऐसी गुस्ताखी होती। यह मेरे हाकिमाना गुस्से को भड़काने की एक बदतमीज़ कोशिश थी। मैंने पूछा, ज़मीदार कौन है?

फुटबाल की बाँछें खिल गयीं, बोला-क्या कहूँ, कुंअर सज्जनसिंह। हुजूर, बड़ा ढीठ आदमी है। रात आयी है और अभी तक हुजूर के सलाम को भी नहीं आया। घोड़ों के सामने न घास है न दाना। लश्कर के सब आदमी भूखे बैठे हुए हैं। मिट्टी का एक बर्तन भी नहीं भेजा।

मुझे जमींदारों से रात-दिन साबक़ा रहता था मगर यह शिकायत कभी सुनने में नहीं आयी थी। इसके विपरीत वह मेरी ख़ातिर-तवाजों में ऐसी जाँफ़िशानी से काम लेते थे जो उनके स्वाभिमान के लिए ठीक न थी। उसमें दिल खोलकर आतिथ्य-सत्कार करने का भाव तनिक भी न होता था। न उसमें शिष्टाचार था, न वैभव का प्रदर्शन जो ऐब है। इसके बजाय वहाँ बेजा रसूख की फ़िक्र और स्वार्थ की हवस साफ़ दिखायी देती थी और इस रसूख बनाने की कीमत काव्योचित अतिशयोक्ति के साथ गरीबों से वसूल की जाती थी, जिनका बेकसी के सिवा और कोई हाथ पकड़ने वाला नहीं। उनके बात करने के ढंग में वह मुलामियत और आजिजी बरती जाती थी जिसका स्वाभिमान से बैर है और अक्सर ऐसे मौके आते थे, जब इन खातिरदारियों से तंग होकर दिल चाहता था कि काश इन खुशामदी आदमियों की सूरत न देखनी पड़ती।

मगर आज फुटबाल की ज़बान से यह कैफियत सुनकर मेरी जो हालत हुई उसने साबित कर दिया कि रोज-रोज की खातिरदारियों और मीठी-मीठी बातों ने मुझ पर असर किये बिना नहीं छोड़ा था। मैं यह हुक्म देनेवाला ही था कि कुंअर सज्जनसिंह को हाजिर करो कि एकाएक मुझे खयाल आया कि इन मुफ़्तखोर चपरासियों के कहने पर एक प्रतिष्ठित आदमी को अपमानित करना न्याय नहीं है। मैंने अर्दली से कहा-बनियों के पास जाओ, नक़द दाम देकर चीजें लाओ और याद रखो कि मेरे पास कोई शिकायत न आये।

अर्दली दिल में मुझे कोसता हुआ चला गया।

मगर मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही, जब वहां एक हफ्ते तक रहने पर भी कुंअर साहब से मेरी भेंट न हुई। अपने आदमियों और लश्करवालों की ज़बान से कुंअर साहब की ढिठाई, घमण्ड और हेकड़ी की कहानियाँ रोलु सुना करता। और मेरे दुनिया देखे हुए पेशकार ने ऐसे अतिथि-सत्कार-शून्य गांव में पड़ाव डालने के लिए मुझे कई बार इशारों से समझाने-बुझाने की कोशिश की। ग़ालिबन मैं पहला आदमी था जिससे यह भूल हुई थी और अगर मैंने जिले के नक्शे के बदले लश्करवालों से अपने दौरे का प्रोग्राम बनाने में मदद ली होती तो शायद इस अप्रिय अनुभव की नौबत न आती। लेकिन कुछ अजब बात थी कि कुंअर साहब को बुरा-भला कहना मुझ पर उल्टा असर डालता था। यहाँ तक कि मुझे उस अदमी से मुलामात करने की इच्छा पैदा हुई जो सर्वशक्तिमान् आफ़सरों से इतना ज्यादा अलग-थलग रह सकता है।

२

सुबह का वक्त था, मैं गढ़ी में गढ़ी में गया। नीचे सरयू नदी लहरें मार रही थी। उस पार साखू का जंगल था। मीलों तक बादामी रेत, उस पर खरबूज़ और तरबूज़ की क्यारियाँ थीं। पीले-पीले फूलों-से लहराती हुई बगुलों और मुर्गाबियों के गोल-के-गोल बैठे हुए थे! सूर्य देवता ने जंगलों से सिर निकाला, लहरें जगमगायीं, पानी में तारे निकले। बड़ा सुहाना, आत्मिक उल्लास देनेवाला दृश्य था।

मैंने खबर करवायी और कुंअर साहब के दीवानखाने में दाखिल हुआ लम्बा-चौड़ा कमरा था। फर्श बिछा हुआ था। सामने मसनद पर एक बहुत लम्बा-तड़ंगा आदमी बैठा था। सर के बाल मुड़े हुए, गले में रुद्राक्ष की माला, लाल-लाल, ऊंचा माथा-पुरुषोचित अभिमान की इससे अच्छी तस्वीर नहीं हो सकती। चेहरे से रोबदाब बरसता था।

कुअंर साहब ने मेरे सलाम को इस अन्दाज से लिया कि जैसे वह इसके आदी हैं। मसनद से उठकर उन्होंने बहुत बड़प्पन के ढंग से मेरी अगवानी की, खैरियत पूछी, और इस तकलीफ़ के लिए मेरा शुक्रिया अदा रिने के बाद इतर और पान से मेरी तवाजो की। तब वह मुझे अपनी उस गढ़ी की सैर कराने चले जिसने किसी ज़माने में ज़रूरर आसफुद्‌दौला को ज़िच किया होगा मगर इस वक्त बहुत टूटी-फीटी हालत में थी। यहां के एक-एक रोड़े पर कुंअर साहब को नाज़ था। उनके खानदानी बड़प्पन ओर रोबदाब का जिक्र उनकी ज़बान से सुनकर विश्‍वास न करना असम्भव था। बयान करने का ढंग यक़ीन को मजबूर करता था और वे उन कहानियों के सिर्फ पासबान ही न थे बल्कि वह उनके ईमान का हिस्सा थीं। और जहां तक उनकी शक्ति में था, उन्होंने अपनी आन निभाने में कभी कसर नहीं की।

कुंअर सज्जनसिंह खानदानी रईस थे। उनकी वंश-परंपरा यहां-वहां टूटती हुई अन्त में किसी महात्मा ऋषि से जाकर मिल जाती थी। उन्हें तपस्या और भक्ति और योग का कोई दावा न था लेकिन इसका गर्व उन्हें अवश्य था कि वे एक ऋषि की सन्तान हैं। पुरखों के जंगली कारनामे भी उनके लिए गर्व का कुछ कम कारण न थे। इतिहास में उनका कहीं जिक्र न हो मगकर खानदानी भाट ने उन्हें अमर बनाने में कोई कसर न रखी थी और अगर शब्दों में कुछ ताकत है तो यह गढ़ी रोहतास या कालिंजर के किलों से आगे बढ़ी हुई थी। कम-से-कम प्राचीनता और बर्बादी के बाहम लक्षणों में तो उसकी मिसाल मुश्किल से मिल सकती थी, क्योंकि पुराने जमाने में चाहे उसने मुहासरों और सुरंगों को हेच समझा हो लेकिन वक्त वह चीटियों और दीमकों के हमलों का भी सामना न कर सकती थी।

कुंअर सज्जनसिंह से मेरी भेंट बहुत संक्षिप्त थी लेकिन इस दिलचस्प आदमी ने मुझे हमेशा के लिए अपना भक्त बना लिया। बड़ा समझदार, मामले को समझनेवाला, दूरदर्शी आदमी था। आखिर मुझे उसका बिन पैसों का गुलाम बनना था।

३

बरसात में सरयू नदी इस जोर-शोर से चढ़ी कि हज़ारों गांव बरबाद हो गए, बड़े-बड़े तनावर दरख्त तिनकों की तरह बहते चले जाते थे। चारपाइयों पर सोते हुए बच्चे-औरतें, खूंटों पर बंधे हुए गाय और बैल उसकी गरजती हुई लहरों में समा गए। खेतों में नाच चलती थी।

शहर में उड़ती हुई खबरें पहुंचीं। सहायता के प्रस्ताव पास हुए। सैकड़ों ने सहानुभूति और शौक के अरजेण्ट तार जिल के बड़े साहब की सेवा में भेजे। टाउनहाल में क़ौमी हमदर्दी की पुरशोर सदाएं उठीं और उस हंगामे में बाढ़-पीड़ितों की दर्दभरी पुकारें दब गयीं।

सरकार के कानों में फरियाद पहुँची। एक जांच कमीशन तेयार किया गया। जमींदारों को हुक्म हुआ कि वे कमीशन के सामने अपने नुकसानों को विस्तार से बतायें और उसके सबूत दें। शिवरामपुर के महाराजा साहब को इस कमीशन का सभापति बनाया गया। जमींदारों में रेल-पेल शरू हुई। नसीब जागे। नुकसान के तखमीन का फैलला करने में काव्य-बुद्‌धि से काम लेना पड़ा। सुबह से शाम तक कमीशन के सामने एक जमघट रहता। आनरेबुल महाराजा सहब को सांस लेने की फुरसत न थी दलील और शाहदत का काम बात बनाने और खुशामद से लिया जाता था। महीनों यही कैफ़ियत रही। नदी किनारे के सभी जमींदार अपने नुकसान की फरियादें पेश कर गए, अगर कमीशन से किसी को कोई फायदा नहीं पहुँचा तो वह कुंअर सज्जनसिहं थे। उनके सारे मौजे सरयू के किनारे पर थे और सब तबाह हो गए थे, गढ़ी की दीवारें भी उसके हमलों से न बच सकी थीं, मगर उनकी जबान ने खुशामद करना सीखा ही न था और यहां उसके बगैर रसाई मुश्किल थी। चुनांचे वह कमीशन के सामने न आ सके। मियाद खतम होने पर कमीशन ने रिपोर्ट पेश की, बाढ़ में डूबे हुए इलाकों में लगान की आम माफी हो गयी। रिपोर्ट के मुताबिक सिर्फ सज्जनसिंह वह भाग्यशाली जमींदार थे। जिनका कोई नुकसान नहीं हुआ था। कुंअर साहब ने रिपोर्ट सुनी, मगर माथे पर बल न आया। उनके आसामी गढ़ी के सहन में जमा थे, यह हुक्म सुना तो रोने-धोने लगे। तब कुंअर साहब उठे और बुलन्द आवाज़ में बोले-मेरे इलाके में भी माफी है। एक कौड़ी लगान न लिया जाए। मैंने यह

वाकया सुना और खुद ब खुद मेरी आंखों से आंसू टपक पड़े बेशक यह वह आदमी है जो हुकूमत और अख्तियार के तूफान में जड़ से उखड़ जाय मगर झुकेगा नहीं।

४

वह दिन भी याद रहेगा जब अयोध्या में हमारे जादू-सा करनेवाले कवि शंकर को राष्ट्र की ओर से बधाई देने के लिए शानदार जलसा हुआ। हमारा गौरव, हमारा जोशीला शंकर योरोप और अमरीका पर अपने काव्य का जादू करके वापस आया थां अपने कमालों पर घमण्ड करनेवाले योरोप ने उसकी पूजा की थी। उसकी भावनाओं ने ब्राउनिंग और शेली के प्रेमियों को भी अपनी वफ़ा का पाबन्द न रहने दिया। उसकी जीवन-सुधा से योरोप के प्यासे जी उठे। सारे सभ्य संसार ने उसकी कल्पना की उड़ान के आगे सिर झुका दिये। उसने भारत को योरोप की निगाहों में अगर ज्यादा नहीं तो यूनान और रोम के पहलू में बिठा दिया था।

जब तक वह योरोप में रहा, दैनिक अखबारों के पत्रे उसकी चर्चा से भरे रहते थे। यूनिवर्सिटियों और विद्वानों की सभाओं ने उस पर उपाधियों की मूसलाधार वर्षा कर दी। सम्मान का वह पदक जो योरोपवालों का प्यारा सपना और जिन्दा आरजू है, वह पदक हमारे जिन्दादिल शंकर के सीने पर शोभा दे रहा था और उसकी वापसी के बाद उन्हीं राष्ट्रीय भावनाओं के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए हिन्दोस्तान के दिल और दिमाग आयोध्या में जमा थे।

इसी अयोध्या की गोद में श्री रामचंद्र खेलते थे और यहीं उन्होंने वाल्मीकि की जादू-भरी लेखनी की प्रशंसा की थी। उसी अयोध्या में हम अपने मीठे कवि शंकर पर अपनी मुहब्बत के फूल चढ़ाने आये थे।

इस राष्ट्रीय कतैव्य में सरकारी हुक्काम भी बड़ी उदारतापूर्वक हमारे साथ सम्मिलित थे। शंकर ने शिमला और दार्जिलिंग के फरिश्तों को भी अयोध्या में खींच लिया था। अयोध्या को बहुत अन्तजार के बाद यह दिन देखना नसीब हुआ।

जिस वक्त शंकर ने उस विराट पण्डाल में पैर रखा, हमारे हृदय राष्ट्रीय गौरव और नशे से मतवाले हो गये। ऐसा महसूस होता था कि हम उस वक्त किसी अधिक पवित्र, अधिक प्रकाशवान् दुनिया के बसनेवाले हैं। एक क्षण के लिए-अफसोस है कि सिर्फ एक क्षण के लिए-अपनी गिरावट और बर्बादी का खयाल हमारे दिलों से दूर हो गया। जय-जय की आवाजों ने हमें इस तरह मस्त कर दिया जैसे महुअर नाग को मस्त कर देता है।

एड्रेस पढ़ने का गौरव मुझको प्राप्त हुआ था। सारे पण्डाल में खामोशी छायी हुई थी। जिस वक्त मेरी जबान से यह शब्द निकले-ऐ राष्ट्र के नेता! ऐ हमारे आत्मिक गुरू! हम सच्ची मुहब्बत से तुम्हें बधाई देते हैं और सच्ची श्रद्धा से तुम्हारे पैरों पर सिर झुकाते हैं...यकायक मेरी निगाह उठी और मैंने एक हृष्ट-पुष्ट हैकल आदमी को ताल्लुकेदारों की कतार से उठकर बाहर जाते देखा। यह कुंअर सज्जन सिंह थे।

मुझे कुंअर साहब की यह बेमौक़ा हरकत, जिसे अशिष्टता समझने में कोई बाधा नहीं है, बुरी मालूम हुई। हजारों आंखें उनकी तरफ हैरत से उठीं।

जलसे के खत्म होते ही मैंने पहला काम जो किया वह कुंअर साहब से इस चीज के बारे में जवाब तलब करना था।

मैंने पूछा-क्यों साहब आपके पास इस बेमौका हरकत का क्या जवाब है?

सज्जनसिंह ने गम्भीरता से जवाब दिया-आप सुनना चाहें तो जवाब हूँ।

''शौक से फरमाइये।''

''अच्छा तो सुनिये। मैं शंकर की कविता का प्रेमी हूँ। शंकर की इज्जत करता हूँ, शंकर पर गर्व करता हूँ, शंकर को अपने और अपनी कौम के ऊपर एहसान करनेवाला समझता हूँ मगर उसके साथ ही उन्हें अपना आध्यात्मिक गुरु मानने या उनके चरणों में सिर झुकाने के लिए तैयार नहीं हूँ।''

मैं आश्चर्य से उसका मुंह ताकता रह गया। यह आदमी नहीं, घमण्ड का पुतला हैं देखें यह सिर कभी झुकता या नहीं।

५

पूरनमासी का पूरा चांद सरयू के सुनहरे फर्श पर नाचता था और लहरें खुशी से गलु मिल-मिलकर गाती थीं। फागुन का महीना था, पेड़ों में कोपलें निकली थीं और कोयल कूकने लगी थी।

मैं अपना दौरा करके सदर लौटता था। रास्ते में कुंअर सज्जनसिंह से मिलने का चाव मुझे उनके घर तक ले गया, जहां अब मैं बड़ी बेतकल्लुफी से जाता-आता था।

मैं शाम के वक्त नदी की सैर को चला। वह प्राणदायिनी हवा, वह उड़ती हुई लहरें, वह गहरी निस्तबधता-सारा दृश्य एक आकर्षक सुहाना सपना था। चांद के चमकते हुए गीत से जिस तरह लहरें झूम रही थीं, उसी तरह मीठी चिन्ताओं से दिल उमड़ा आता था।

मुझे ऊंचे कगार पर एक पेड़ के नीचे कुछ रोशनी दिखायी दी। मैं ऊपर चढ़ा। वहां बरगद की घनी छाया में धूनी जल रही थी। उसके सामने एक साधू पैर फैलाये बरगद की एक मोटी जटा के सहारे लेटे हुए थे। उनका चमकता हुआ चेहरा आग की चमक को लजाता था। नीले तालाब में कमल खिला हुआ था।

उनके पैरों के पास एक दूसरा आदमी बैठा हुआ था। उसकी पीठ मेरी तरफ थी। वह उस साधू के पेरों पर अपना सिर रखे हुए था। पैरों को चूमता था और आंखों से लगता था। साधू अपने दोनों हाथ उसके सिर पर रखे हुए थे कि जैसे वासना धैर्य और संतोष के आंचल में आश्रय ढूंढ़ रही हो। भोला लड़का मां-बाप की गोद में आ बैठा था।

एकाएक वह झुका हुआ सर उठा और मेरी निगाह उसके चेहरे पर पड़ी। मुझे सकता-सा हो गया। यह कुंअर सज्जनसिंह थे। वह सर जो झुकना न जानता था, इस वक्त जमीन छू रहा था।

वह माथा जो एक ऊंचे मंसबदार के सामने न झुका, जो एक प्रतानी वैभवशाली महाराज के सामने न झुका, जो एक बड़े देशप्रेमी कवि और दार्शनिक के सामने न झूका, इस वक्त एक साधु के क़दमों पर गिरा हुआ था। घमण्ड, वैराग्य के सामने सिर झुकाये खड़ा था।

मेरे दिल में इस दृश्य से भक्ति का एक आवेग पैदा हुआ। आंखों के सामने से एक परदा-सा हटा और कुंअर सज्जन सिंह का आत्मिक स्तर दिखायी दिया। मैं कुंअर साहब की तरफ से लिपट गया और बोला-मेरे दोस्त, मैं आज तक तुम्हारी आत्मा के बड़प्पन से बिल्कुल बेखबर था। आज तुमने मेरे हृदय पर उसको अंकित कर दिया कि वैभव और प्रताप, कमाल और शोहरत यह सब घटिया चीजें हैं, भौतिक चीजें हैं। वासनाओ में लिपटे हुए लोग इस योग्य नहीं कि हम उनके सामने भक्ति से सिर झुकायें, वैराग्य और परमात्मा से दिल लगाना ही वे महान् गुण हैं जिनकी ड्यौढ़ी पर बड़े-बड़े वैभवशाली और प्रतापी लोगों के सिर भी झुक जाते हैं। यही वह ताक़त है जो वैभव और प्रताप को, घमण्ड की शराब के मतवालों को और जड़ाऊ मुकुट को अपने पैरों पर गिरा सकती है। ऐ तपस्या के एकान्त में बैठनेवाली आत्माओ! तुम धन्य हो कि घमण्ड के पुतले भी पैरों की धूल को माथे पर चढ़ाते हैं।

कुंअर सज्जनसिंह ने मुझे छाती से लगाकर कहा-मिस्टर वागले, आज आपने मुझे सच्चे गर्व का रूप दिखा दिया और में कह सकता हूँ कि सच्चा गर्व सच्ची प्रार्थना से कम नहीं। विश्वास मानिये मुझे इस वक्त ऐसा मालूम होता है कि गर्व में भी आत्मिकता को पाया जा सकता है। आज मेरे सिर में गर्व का जो नशा है, वह कभी नहीं था।

-'ज़माना', अगस्त, १९९६

विजय

शहज़ादा मसरूर की शादी मलका मख़मूर से हुई और दोनों आराम से ज़िन्दगी बसर करने लगे। मसरूर ढोर चराता, खेत जोतता, मख़मूर खाना पकाती और चरखा चलाती। दोनों तालाब के किनारे बैठे हुए मछलियों का तैरना देखते, लहरों से खेलते, बगीचे में जाकर चिड़ियों के चहचहे सुनते और फूलों के हार बनाते। न कोई फिक्र थी, न कोई चिन्ता थी।

लेकिन बहुत दिन न गुज़रने पाये थे उनके जीवन में एक परिवर्तन आया। दरबार के सदस्यों में बुलहवस ख़ाँ नाम का एक फ़सादी आदमी था। शाह मसरूर ने उसे नज़र बन्द कर रखा था। वह धीरे-धीरे मलका मख़मूर के मिज़ाज में इतना दाखिल हो गया कि मलका उसके मशविरे के बग़ैर कोई काम न करती। उसने मलका के लिए एक हवाई जहाज बनाया जो महज़ इशारे से चलता था। एक सेकेण्ड में हज़ारों मील रोज जाता और देखते-देखते ऊपर की दूनिया की खबर लाता। मलका उस जहाज़ पर बैठकर योरोप और अमरीका की सैर करती। बुलहवस उससे कहता, साम्राज्य को फैलाना बादशाहों का पहला कर्तव्य है। इस लम्बी-चौड़ी दुनिया पर कब्ज़ा कीजिए, व्यापार के साधन बढ़ाइये, छिपी हुई दौलत निकालिये, फौजें खड़ी कीजिए, उनके लिए अस्त्र-शस्त्र जुटाइये। दुनिया हौसलामन्दों के लिए है। उन्हीं के कारनामे, उन्हीं की जीतें याद की जाती हैं। मलका उसकी बातों को खूब कान लगाकर सुनती। उसके दिल में हौसले का जोश उमड़ने लगता। यहां तक कि अपना सरल-सन्तोषी जीवन उसे रूखा-फीका मालूम होने लगा।

मगर शाह मसरूर सन्तोष का पुतला था। उसकी जिन्दी के वह मुबारक लमहे होते थे जब वह एकान्त के कुंज में चुपचाप बैठकर जीवन और उसके कारणों पर विचार करता और उसकी विराटता और आश्चर्यों को देखकर श्रद्धा के भाव से चीख उठता-आह! मेरी हस्ती कितनी नाचीज हैं, उसे मलका के मंसूबों और हौसलों से ज़रा भी दिलचस्पी न थी। नतीजा यह हूआ कि आपस के प्यार और सच्चाई की जगह सन्देह पैदा हो गये। दरबारियों में गिरोह बनने लगे। जीवन का सन्तोष विदा हो गया। मसरूर को इन सब परेशानियों के लिए जो उसकी सभ्यता के रास्ते में बाधक होती थीं, धीरज न था। वह एक दिन उठा और सल्तनत मलका के सुपुर्द करके एक पहाड़ी इलाके में जा छिपा। सारा दरबार नयी उमंगों से मतवाला हो रहा था। किसी ने बादशाह को रोकने की कोशिश न की। महीनों, वर्षों हो गये, किसी को उनकी खबर न मिली।

२

मलका मख़मूर ने एक बड़ी फ्रौज खड़ी की और बुलहवस खां को चढ़ाइयों पर रवाना किया। उसने इलाके पर इलाके और मुल्क पर मुल्क जीतने शुरू किये। सोने-चांदी और हीरे-जवाहरात के अम्बार हवाई जहाजों पर लदकर राजधानी को आगे लगे।

लेकिन आश्चर्य की बात यह थी कि इन रोज-ब-रोज बढ़ती हुई तरक्कियों से मुल्क के अन्दरूनी मामलों में उपद्रव खड़े होने लगे। वह सूबे जो अब हुक्म के ताबेदार थे, बग़ावत के झण्डे करने लगे। कर्णसिंह बुन्देला एक फ्रौज लेकर चढ़ आया। मगर अजब फ़ौज थी, न कोई हरबे-हथियार, न तोपें, सिपाहियां, के हाथों में बंदूक और तीर-तुपुक के बजाय बरबर-तम्बूरे और सारंगियां, बेले, सितार और ताऊस थे। तोपों की धनगरज सदाओं के दले तबले और मृदंग की कुमक थी। बम गोलों की जगह जलतरंग, आर्गन और आर्केस्ट्रा था। मलका मख़मूर ने समझा आन की आन में इस फ़ौज को तितर-बितर करती हूँ। लेकिन ज्यों ही उस की फ़ौज कर्णसिंह के मुकाबिले में रवना हुई, लुभावने, आत्मा को शान्ति पहुँचाने वाले स्वरों की वह बाढ़ आयी, मीठे और सुहाने गानों की वह बौछार हुई कि मलका की सेना पत्थर की मरतों की तरह आत्मविस्मृत होकर खड़ी रह गयी। एक क्षण में सिपाहियों की आंखें नशे में डूबने लगीं और वह हथेलियां बजा-बजा कर नाचने लगे, सर हिला-हिलाकर उछलने लगे, फिर सबके सब बेजान लाश की ताह गिर पड़े। और सिर्फ सिपाही ही नहीं, राजधानी में भी जिसके कानों में यह आवाजें गयीं वह बेहोश हो गया। सारे शहर में कोई जिन्दा आदमी नज़र न आता था। ऐसा मालूम होता था कि पत्थर की मूरतों का तिलस्म है। मलका अपने जहाज पर बैठी यह करिश्मा देख रही थी। उसने जहाज़ नीचे उतारा कि देखूं क्या माजरा है? पर उन

आवाजों के कान में पहुँचते ही उसकी भी वही दशा हो गयी। वह हवाई जहाज पर नाचने लगी और बेहोश होकर गिर पड़ी। जब कर्णसिंह शाही महल के करीब जा पहुँचा और गाने बन्द हो गये तो मलका की आंखें खुजीं जैसे किसी का नशा टूट जाये। उसने कहा-मैं वही गाने सुनूंगी, वही राग, वही अलाप, वही लुभाने वाले गीत। हाय, वह आवाज़ें कहो गयीं। कुछ परवाह नहीं, मेरा राज जाये, पाट जाये, मैं वही राग सुनूंगी।

सिपाहियों का नशा भी टूटा। उन्होंने उसके स्वर मिलाकर कहा-हम वही गीत सुनेंगे, वही प्यारे-प्यारे मोहक राग। बला से हम गिरफ्तार होंगे, गुलामी की बेड़ियां पहनेंगे, आजादी से हाथ धोयेंगे पर वही राग, वही तराने वही तानें, वही धुनें।

३

सूबेदार लोचनदास को जब कर्णसिंह की विजय का हाल मालूम हुआ तो उसने भी विद्रोह करने की ठानी। अपनी फौज लेकर राजधानी पर चढ़ दौड़ा। मलका ने अबकी जान-तोड़ मुकाबला करने की ठानी। सिपाहियों को खूब ललकारा ओर उन्हें लोचदास के मुकाबले में खड़ा किया मगर वाह री हमलावन फौज! न कहीं सवार, न कहीं प्यादे, न तोप, न बन्दूक, न हरबे, न हथियार, सिपाहियों की जगह सुन्दर नर्तकियों के गोल थे और थियेटर के एक्टर। सवारों की जगह भांडों और बहुरूपियों के गोल। मोर्चो की जगह तीतर और बटेरों के जोड़ छूटे हुए थे तो बन्दूक की जगह सर्कस ओर बाइसकोप के खेमे पढ़े थे। कहीं हीरे-जवाहरात अपनी आब-ताब दिखा रहे थे, कहीं तरह-तरह के चरिन्दों-परिन्दों की नुमाइश खुली हुई थी। मैदान के एक हिस्से में धरती की अजीब-अजीब चीजें, झने और बर्फिस्तानी चोटियां और बर्फ के पहाढ़, पेरिस का बाजार, लन्दन का एक्स्चेंज या स्टन की मंडियां, अफ्रीका के जंगल, सहारा के रेगिस्तान, जापान की गुलकारियां, चीन के दरियाई शहर, दक्षिण अमरीका के आदमखोर, क़ाफ़ की परियां, लैपलैण्ड के सुमूरपोश इन्सान और ऐसे सेकड़ों विचित्र आकर्षक दृश्य चलते-फिरते दिखायी पड़ते थे। मलका की फौज यह नज्ज़ारा देखते ही बेसुध होगर उसकी तरफ दौड़ी। किसी को सर-पैर का खयाल न रहा। लोगों ने बन्दुकें फेंक दीं, तलवारें और किरचें उतार फेंकीं और बेतहाशा इन दृश्यों के चारों तरफ जमा हो गये। कोई नाचने वालियों की मीठी अदाओं ओर नाज़ुक चलन पर दिल दे बैठा, कोई थियेटर के तमाशों पर रीझा। कुछ लोग तीतरों और बटेरों के जोड़ देखने लगे और सब के सब चित्र-लिखित-से मन्त्रमुग्ध खड़े रह गये। मलका अपने हवाई जहाज पर बैठी कभी थियेटर की तरफ जाती कभी सर्कस की तरफ दौड़ती, यहां तक कि वह भी बेहोश हो गयी।

लोचनदास जब विजय करता हुआ शाही महल में दाखिल हो गया तो मलका की आंखें खुलीं। उसने कहा-हाय, वह तमाशे कहां गये, वह सुन्दर-सुन्दर दृश्य, वह लुभावने दृश्य कहां गायब हो गये, मेरा राज जाये, पाट जाये लेकिन मैं यह सैर जरूर देखूँगी। मुझे आज मालूम हुआ कि ज़िन्दगी में क्या-क्या मज़े हैं!

सिपाही भी जागे। उन्होने एक स्वर से कहा-हम वही सैर और तमाशे देखेंगे, हमें लड़ाई-भिड़ाई से कुछ मतलब नहीं, हमको आज़ादी की परवाह नहीं, हम गुलाम होकर रहेंगे, पैरों में बेड़ियां पहनेंगे पर इन दिलफरेबियों के बगैर नहीं रह सकेंगे।

४

मलका मख़मूर को अपनी सल्तनत का यह हाल देखकर बहुत दु:ख होता। वह सोचती, क्या इसी तरह सारा देश मेरे हाथ से निकल जाएगा? अगर शाह मसरूर ने यों किनारा न कर लिया होता तो सल्तनत की यह हालत कभी न होती। क्या उन्हें यह कैफियतें मालूम न होंगी। यहां से दम-दम की खबरें उनके पास आ जाती हैं मगर जरा भी जुम्बिश नहीं करते। कितने बेरहम हैं। खैर, जो कुछ सर पर आयेगी सह लूँगी पर उनकी मिन्नत न करूँगी।

लेकिन जब वह उन आकर्षक गानों को सुनती और दृश्यों को देखती तो यह दुखदायी विचार भूल जाते, उसे अपनी जिन्दगी बहुत आनन्द की मालूम होती।

बुलहवस खां ने लिखा-मैं देश्मनों से घिर गया हूँ, नफरत अली और कीन खां और ज्वालासिंह ने चारों तरफ से हमला शुरू कर दिया है। तब तक ओर कुमक न आये, में मजबूर हूँ। पर मलका की फौज यह सैर और गाने छोड़कर जाने पर राजी न होती थी।

इतने में दो सूबेदसरों ने फिर बग़ावत की। मिर्जा शमीम और रसराजसिंह दोनों एक होकर राजधानी पर चढ़े। मलका की फौज में अब न लज्जा थी न वीरता, गाने-बजाने और सैरै-तमाशे ने उन्हें आरामतलब बना दिया था। बड़ी-बड़ी मुश्किलों से सज-सजा कर मैदान में निकले। दुश्मन की फौज इन्तजार करती खड़ी थी लेकिन न किसी के पास तलवार थी, न बन्दुक, सिपाहियों के हाथों में फूलों के खुलदस्ते थे, किसी के

हाथ में इतर की शीशियां, किसी के हाथ में गुलाब के फ़व्वाहर, कहीं लवेण्डर की बोतलें, कहीं मुश्क वगैरह की बहार-सारा मैदान अत्तार की दूकान बना हुआ था। दूसरी तरफ रसराज की सेना थी। उन सिपाहियों के हाथों में सोने के तश्त थे, जरबफ्त के खनपेशों से ढके हुए, किसी में बर्फी और मलाई थी, किसी में कोरमे और कबाब, किसी में खुबानी और अंगूर, कहीं कश्मीर की नेमतें सजी हुई थीं, कहीं इटली की चटनियों की बहार थी और कहीं पुर्तगाल और फ्रांस की शराबें शीशियों में महक रही थीं।

मलका की फौज यह संजीवनी सुगन्ध सूंघते ही मतवाली हो गयी। लोगों ने हथियार फेंक दिये और इन स्वादिष्ट पदार्थें की ओर दौड़े, कोई हलुवे पर गिरा, और कोई मलाई पर टूटा, किसी ने कोरमे और कबाब पर हाथ बढ़ाये, कोई खुबानी और अंगूर चखने लगा, कोई कश्मीरी मुरब्बों पर लपका, सारी फौज भिखमंगों की तरह हाथ फैलाये यह नेमतें मांगती थी और बेहद चाव से खाती थी। एक-एक कौर के लिए, एक चमचा फीरनी के लिए, शराब के एक प्याले के लिए खुशामदें करते थे, नाकें रगड़ते थे, सिजदे करते थे। यहां तक कि सारी फौज पर एक नशा छा गया, बेदम होकर गिर पड़ी। मलका भी इटली के मरब्बों के सामने दामन फैला-फैलाकर मिन्नतें करती और कहती थी कि सिर्फ-एक लुकमा और एक प्याला दो और मेरा राज लो, पाट लो, मेरा सब कुछ ले लो लेकिन मुझे जी-भर खा-पी लेने दो। यहां तक कि वह भी बेहोश होकर गिर पड़ी।

५

मलका की हालत बेहद दर्दनाक थी। उसकी सल्तनत का एक छोटा-सा हिस्सा दुश्मनों के हाथ से बचा था। उसे एक दम के लिए भी इस गुलामी से नजात न मिलती। की कर्णसिंह के दरबार में हाजिर होती, कभी मिर्जा शमीम की खुशामद करती, इसके बगैर उसे चैन न आता। हां, जब कभी इस मुसाहिबी और जिल्लत से उसकी तबियत थक जाती तो वह अकेले बैठकर घंटों रोती और चाहती कि जाकर शाह मसरूर को मना लाऊं। उसे यकीन था कि उनके आते ही बागी काफूर हो जायेंगे पर एक ही क्षण में उसकी तबियत बदल जाती। उसे अब किसी हालत पर चैन आता था।

अभी तक बुलहवस खां स्वामिभक्ति में फर्क न आया था। लेकिन जब उसने सल्तनत की यह कमजोरी देखी तो वह भी बगावत कर बैठा। उसकी आजमाई हुई फौज के मुकाबले में मलका की फौज क्या ठहरती, पहले ही हमले में क़दम उखड़ गये। मलका खुद गिरफ्तार हो गयी। बुलहवस खां ने उसे एक तिलस्माती कैदखाने में बंद कर दिया। सेवक वे स्वामी बनद बैठा।

यह कैदखाना इतना लम्बा-चौड़ा था कि कैदी कितना ही भागने की कोशिश करे, उसकी चहारदीवारी से बाहर नहीं निकल सकता था। वहां सन्तरी और पहरेदार न थे लेकिन वहां की हवा में एक खिंचाव था। मलका के पैरों में न बेड़ियां थी न हाथों में हथकड़ियां लेकिन शरीर का अंग-प्रत्यंग तारों से बंधा हुआ था। वह अपनी इच्छा से हिल भी न सकती थी। वह अब दिन के दिन बैठी हुई जमीन पर मिट्टी के घरौंदे बनाया करती और समझती यह महल है। तरह-तरह के स्वांग भरती और समझती दुनिया मुझे देखकर लट्टू हो जाती है। पत्थर टुकड़ों से अपना शरीर गूंध लेती ओर समझती कि अब हूरें भी मेरे सामने मात हैं। वह दरख्तों से पूछती, मैं कितनी खूबसूरत हूँ। शाखों पर बैठी चिड़ियों से पूछती, हीरे-जवाहरात का ऐसा गुलबन्द तुमने देखा है? मिट्टी की ठीकरों का अम्बार लगाती और आसमान से पूछती, इतनी दौलत तुमने देखी है?

मालूम नहीं, इस हालत में कितने दिन गुजर गये। मिर्जा शमीम, लाचनदास वगैरह हरदम उसे घेरे रहते थे। शायद वह उससे डरते थे। ऐसा न हो, यह शाह मासरूर को कोई संदेशा भेज दे। क़ैद में भी उस पर भरोसा न था। यहां तक कि मलका की तबियत इस क़ैद से बेज़ार हो गयी, वह निकल भागने की तदबीरें सोचने लगी।

इसी हालत में एक दिन मलका बैठी सोच रही थी, मैं क्या हो गई ? जो मेरे इशारों के गुलाम थे वह अब मेरे मालिक हैं, मुझे जिस कल चाहते हैं बिठाते हैं, जहां चाहते हैं घुमाते हैं। अफसोस, मैंने शाह मसरूर का कहना न माना, यह उसी की सजा है। काश, एक बार मुझे किसी तरह अस क़ैद से छुकारा मिल जाता तो मैं चलकर उनके पैरों पर सिर रख देती और कहती, लौंडी की खता माफ कीजिए। मैं खून के आंसु रोती और उन्हें मना लाती और फिर कभी उनके हुक्म से इनकार न करती। मैंने इस नमकहराम बुलहवस खां की बातों में पड़कर उन्हें निर्वासित कर दिया, मेरी अक्ल कहॉं चली गयी थी। यह सोचते-सोचते मलका रोने लगी कि यकायक उसने देखा, सामने एक खिले हुए मुखड़े वाला गम्भीर पुरूष सादा कपड़े खड़ा है। मलका ने आश्चर्यचकित होकर पूछा-आप कौन हैं? यहां मैंने आपको कभी नहीं देखा।

पुरूष-हां, इस कैदखाने में मैं बहुत कम आता हूँ। मेरा काम है कि जब कैदियों की तबियत यहां से बेजार हो तो उन्हें यहां से निकलने में मदद दूं।

मलका-आपका नाम?

पुरूष-संतोखसिंह।

मलमा-आप मुझे इस कैद से छुटकारा दिला सकते हैं?

संतोख-हां, मेरा तो काम ही यह है, लेकिन मेरी हिदायतों पर चलना पड़ेगा।

मलका-मैं आपके हुक्म से जौ-भर भी इधर-उधर न करूंगी, खुदा के लिए मुझे यहां से जल्द से जल्द ले चलिए, मैं मरते दम तक आपकी शुक्रगुजार रहूंगी।

संतोख- आप कहां चलना चाहती हैं?

मलका-मैं शाह मसरूर के पास जाना चाहती हूँ। आपको मालूम है वह आलकल कहां हैं?

संतोख-हाँ, मालूम है, मैं उनका नौकर हूँ। उन्हीं की तरफ से मैं इस काम पर तैनात हूँ?

मलका-तो खुदा के वास्ते मुझे जल्द ले चलिए, मुझे अब यहां एक घड़ी रहना जी पर भारी हो रहा है।

संतोख-अच्छा तो यह रेशमी कपड़े और यह जवाहरात और सोने के जेवन उतारकर फेंक दो। बुलहवस ने इन्हीं जंजीरों से तुम्हें जाकड़ दिया है। मोटे से मोटा कपड़ा जो मिल सके पहन लो, इन मिट्टी के घरौंदों को गिरा दो। इतर और गुलाब की शीशियां, साबुन की बट्टियां, और यह पाउडर के डब्बे सब फेंक दो।

मलका ने शीशियों और पाउडर के तड़ाक-तड़ाक पटक दिये, सोने के जेवरों को उतारकर फेंक दिया कि इतने में बुलहवस खां धाड़ें मार कर रोता हुआ आकर खड़ा हुआ और हाथ बांधकर कहने लगा-दोनों जहानों की मलका, मैं आपका नाचीज़ गुलाम हूँ, आप मुझसे नाराज हैं?

मलका ने बदला लेने के अपने जोश में मिट्टी के घरौंदों को पैरों से ठुकरा दिया, ठीकरों के अम्बार को ठोकरें मारकर बिखेर दिया। बुलहवस के शरीर का एक-एक अंग कट-कटकर गिरने लगा। वह बेदम होकर जमीन पर गिर पड़ा और दम के दम में जहन्नुम रसीद हुआ। संतोखसिंह ने मलका से कहा-देखा तुमन? इस दुश्मन को तुम कितना डरावना समझती थीं, आन की आन में खाक में मिल गया।

मलका-काश, मुझे यह हिकमत मालूम होती तो मैं कभी की आजाद हो जाती। लेकिन अभी और भी तो दुश्मन हैं।

संतोख-उनको मारना इससे भी आसान है। चलो कर्णसिंह के पास, ज्यों ही वह अपना सुर अलापने लगे और मीठी-मीठी बातें करने लगे, कानों पर हाथ रख लो, देखो, अदृश्य के पर्दे से फिर चीज सामने आती है।

मलका कर्णसिंह के दरबार में पहुँची। उसे देखते ही चारों तरफ से धुपद और तिल्लाने के वार होने लगे। पियानो बजने लगे। मलका ने दोनों कान बन्द कर लिये। कर्णसिंह के दरबार में आग का शोला उठने लगा। सारे दरबारी जलने लगे, कर्णसिंह दौड़ा हुआ आया और बड़े विनय-पूर्वक मलका के पैरों पर गिरकर बोला-हुजूर, अपने इस हमेशा के गुलाम पर रहम करें। कानों पर से हाथ हटा कर वर्ा इस गरीब की जान पर बन आयेगी। अब कभी हुजूर की शान में यह गुस्ताखी न होगी।

मलका ने कहा-अच्छा, जा तेरी जां-बख्शी की। अब कभी बग़ावत न करना वर्ना जान से हाथ धोएगा।

कर्णसिंह ने संतोखसिंह की तरफ प्रलय की आंखों से देखकर सिर्फ इतना कहा-'जालिम, तुझे मौत भी नहीं आयी' और बेतहाशा गिरता-पड़ता भागा। सेतोखसिंह ने मलका से कहा-देखा तुमने, इनको मारना कितना आसान था? अब चलो लोचनदान के पास। ज्योंही वह अपने करिश्मे दिखाने लगे, दोनों आंखें बन्द कर लेना।

मलका लोचनदास के दरबार में पहुँची। उसे देखते ही लोचन ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना शुरू किया। ड्रामे होने लगे, नर्तकों ने थिरकना शुरू किया। लालो-जमुर्रद की कश्तियां सामने आने लगीं लेकिन मलका ने दोनों आंखें बन्द कर लीं।

आन की आन में वह ड्रामे और सर्कस और नाचनेवालों के गिरोह खाक में मिल गये। लोचनदास के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं, निराशापूर्ण धैर्य के साथ चिल्ला-चिल्लकर कहने लगा, यह तमाशा देखो, यह पेरिस के क़हवेखाने, यह मिस एलिन का नाच है। देखो, अंग्रेज रईस उस पर कितनी उदारता से सोने और हीरे-जवाहरात निछावर कर रहे हैं। जिसने यह सैर-तमाशे ने देखे उसकी जिन्दगी मौत से बदतर। लेकिन मलका ने आंखें न खोलीं।

तब लोचनदास बदहवास और घबराया हुआ, बेद के दरख्त की तरह कांपता हुआ मलका के सामने आ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर बोला-हुजूर, आंखें खोलें। अपने इस गुलाम पर रहम करें, नहीं तो मेरी जान पर बन जाएगी। गुलाम की गुस्ताखियां माफ़ फीरमायें। अब यह बेअदबी न होगी।

मलका ने कहा-अच्छा जा, तेरी जांबख्शी की लेकिन खबरदार, अब सर न उठाना नहीं तो जहन्नुम रसीद कर दूंगी।

लोचनदास यह सुनते ही गिरता-पड़ता जान लेकर भागा। पीछे फिरकर भी न देखा। संतोखसिंह ने मलका से कहा-अब चलो मिर्जा शमीम और रसराज के पास। वहाँ एक हाथ से नाक बन्द कर लेना और दूसरे हाथ से खानों के तश्त को जमीन पर गिरा देना।

मलका रसराज और शमीम के दरबार में पहुँचीं उन्होंने जो संतोख को मलका के साथ देखा तो होश उड़ गये। मिर्जा शमीम ने कस्तूरी और केसर की लपटें उड़ाना हुरू कीं। रसराज स्वादिष्ट खानों के तश्त सजा-सजाकर मलका के सामने लाने लगा, और उनकी तारीफ करने लगा-यह पुर्तगात की तीन आंच दी हुई शराब है, इसे पिये तो बुड्डा भी जवान हो जाये। यह फ्रांस का शैम्पेन है, इसे पिये तो मुर्दा जिन्दा हो जाय। यह मथुरा के पेड़े हैं, उन्हें खाये तो स्वर्ग की नेमतों को भूल जाय।

लेकिन मलका ने एक साथ से नाक बन्द कर ली और दूसरे हाथ से उन तश्तों को लमीन पर गिरा दिया और बोतलों को ठोकरें मार-मारकर चूर कर दिया। ज्यों-ज्यों उसकी ठोकरें पड़ती थीं, दरबार के दरबारी चीख-चीख कर भागते थे। आखिर मिर्जा शमीम और रसराज दोनों परेशान और बेहाल, सर से खून जारी, अंग-अंग टूटा हुआ, आकर मलका के सामने खड़े हो गये और गिड़गिड़ाकर बोले-हुजूर, गुलामों पर रहम करें। हुजूर की शान में जो गुस्ताखियां हुई हैं उन्हें मुआफ फरमायें, अब फिर ऐसी बेअदबी न होगी।

मनका ने कहा-रसराज को मैं जान से माना चाहती हूँ। उसके कारण मुझे जलील होना पड़ा।

लेकिन संतोखसिंह ने मना किया-नहीं, इसे जान से न मारिये। इस तरह का सेवक मिलना कठिन है। यह आपके सब सूबेदार अपने काम में यकता हैं सिर्फ इन्हें काबू में रखने की जरूरत है।

मलका ने कहा-अच्छा जाओ, तुम दोनों की भी जां-बख्शी की लेकिन खबरदार, अब कभी उपद्रव मत खड़ा करना वर्ना तुम जानोगे।

दोनों गिरत-पड़ते भागे, दम के दम में नजरों से ओझल हो गये।

मलका की रिआया और फौज ने भेंटे दीं, घर-घर शादियाने बजने लगे। चारों बागी सूबेदार शहरपनाह के पास छापा मारने की घात में बैठ गये लेकिन संतोखसिंह जब रिआया और फौज को मसजिद में शुक्रिए की नमाज अदा करने के लिए ले गया तो बागियों को कोई उम्मीद न रही, वह निराश होकर चले गये।

जब इन कामों से फुर्सत हुई तो मलका ने संतोखसिंह से कहा-मेरे पास अलफ़ाज नहीं में इतनी ताकत है कि मैं आपके एहसानों का शुक्रिया अदा कर सकूँ। आपने मुझे गुलामी ताकत से छुटकारा दिया। में आखिरी दम तक आपका जस गाऊंगी। अब शाह मसरूर के पास मुझे ले चलि, मैं उनकी सेवा करके अपनी उम्र बसर करना चाहती हूँ। उनसे मुंह मोड़कर मैंने बहुत जिल्लत और मसीबत झेली। अब अभी उनके कदमों से जुदा न हूँगी।

संतोखसिंह-हां, हां, चलिए मैं तैयार हूँ लेकिन मंजिल सख्त है, घबराना मत।

मलका ने हवाई जहाज मंगाया। पर संतोखसिंह ने कहा-वहां हवाई जहाज का गुजर नहीं है, पेदल पड़ेगां मलका ने मजबूर होकर जहाज वापस कर दिया और अकेले अपने स्वाती को मनाने चली।

वह दिन-भर भूखी-प्यासी पैदल चलती रही। आंखों के सामने अंधेरा छाने लगा, प्यास से गले में कांटे पड़ने लगे। कांटों से पैर छलनी हो गये। उसने अपने मार्ग-दर्शक से पूछा-अभी कितनी दूर है?

संतोख-अभी बहुत दूर है। चुपचाप चली आओ। यहां बातें करने से मंजिल खोटी हो जाती है।

रात हुई, आसमान पर बादल छा गये। सामने एक नदी पड़ी, किश्ती का पता न था। मलका ने पूछा-किश्ती कहां है?

संतोष ने कहा-नदी में चलना पेड़गा, यहां किश्ती कहां है।

मलका को डर मालूम हुआ लेकिन वह जान पर खेलकर दरिया में चल पड़ी। मालूम हुआ कि सिर्फ आंख का धोखा था। वह रेतीली जमीन थी। सारी रात संतोखसिंह ने एक क्षण के लिए भी दम न लिया। जब भोर का तारा निकल आया तो मलका ने रोकर कहा-अभी कितनी दूर है, मैं तो मरी जाती हूँ। संतोखसिंह ने जवाब दिया-चूपचान चली आओ।

मलका ने हिम्मत करके फिर कदम बढ़ाये। उसने पक्का इरादा कर लिया था कि रास्ते में मर ही क्यों न जाऊँ पर नाकाम न लौटूँगी। उस कैद से बचने के लिए वह कड़ी मुसीबतें झेलने को तैयार थी।

सूरज निकला, सामने एक पहाड़ नजर आया जिसकी चोटियां आसमान में घुसी हुई थीं। संतोखसिंह ने पूछा-इसी पहाड़ी की सबसे ऊंची चोटी पर शाह मसरूर मिलेंगे, चढ़ सकोगी?

मलका ने धीरज से कहा-हां, चढ़ने की कोशिश करूंगी।

बादशाह से भेंट होने की उम्मीद ने उसके बेजान पैरों में पर लगा दिए। वह तेजी से कदम उठाकर पहाड़ों पर चढ़ने लगी। पहाड़ के बीचों बीच आत-आते वह थककर बैठ गयी, उसे ग़श आ गया। मालूम हुआ कि दम निकल रहा है। उसने निराश आंखों से अपने मित्र को देखा। संतोखसिंह ने कहा-एक दफा और हिम्मत करो, दिल में खुदा की याद करो मलका ने खुदा की याद की। उसकी आंखें खुल गयीं। वह फुर्ती से उठी और एक ही हल्ले में चोटी पर जा पहुँची। उसने एक ठंडी सांस ली। वहां शुद्ध हवा में सांस लेते ही मलका के शरीर में एक नयी ज़िंदगी का अनुभव हुआ। उसका चेहरा दमकने लगा। ऐसा मालूम होने लगा कि मैं चाहूँ तो हवा में उड़ सकती हूँ। उसने खुश होकर संतोखसिंह तरफ देखा और आश्चर्य के सागर में डूब गयी। शरीर वही था, पर चेहरा शाह मसरूर का था। मलका ने फिर उसकी तरफ अचरज की आंखों से देखा। संतोखसिंह के शरीर पर से एक बादल का पर्दा हट गया और मलका को वहां शाह मशरूर बड़े नजर आए-वही हल्का नीला कुर्ता, वही गेरुए रंग की तरह। उनके मुखमण्डल से तेज की कांति बरस रही थी, माथा तारों की तरह चमक रहा था। मलका उनके पैरों पर गिर पड़ी। शाह मसरूर ने उसे सीने से लगा लिया।

-'जमाना', अप्रैल,१९१८

वफ़ा का खंजर

जयगढ़ और विजयगढ़ दो बहुत ही हरे-भरे, सुसंस्कृत, दूर-दूर तक फैले हुए, मजबूत राज्य थे। दोनों ही में विद्या और कलाद खूब उन्नत थी। दोनों का धर्म एक, रस्म-रिवाज एक, दर्शन एक, तरक्की का उसूल एक, जीवन मानदण्ड एक, और जबान में भी नाम मात्र का ही अन्तर था। जयगढ़ के कवियों की कविताओं पर विजयगढ़ वाले सर धुनते और विजयगढ़ी दार्शनिकों के विचार जयगढ़ के लिए धर्म की तरह थे। जयगढ़ी सुन्दरियों से विजयगढ़ के घर-बार रोशन होते थे और विजयगढ़ की देवियां जयगढ़ में पुजती थीं। तब भी दोनों राज्यों में ठनी ही नहीं रहती थी बल्कि आपसी फूट और ईर्ष्या-द्वेष का बाजार बुरी तरह गर्म रहता और दोनों ही हमेशा एक-दूसरे के खिलाफ़ खंजर उठाए थे। जयगढ़ में अगर कोई देश को सुधार किया जाता तो विजयगढ़ में शोर मच जाता कि हमारी जिंदगी खतरे में है। इसी तरह तो विजयगढ़ में कोई व्यापारिक उन्नति दिखायी देती तो जयगढ़ में शोर मच जाता था। जयगढ़ अगर रेलवे की कोई नई शाख निकालता तो विजयगढ़ उसे अपने लिए काला सांप समझता और विजयगढ़ में कोई नया जहाज तैयार होता तो जयगढ़ को वह खून पीने वाला घडियाल नजर आता था। अगर यह बदुगमानियाँ अनपढ़ या साधारण लोगों में पैदा होतीं तो एक बात थी, मजे की बात यह थी कि यह राग-द्वेष, विद्या और जागृति, वैभव और प्रताप की धरती में पैदा होता था। अशिक्षा और जड़ता की जमीन उनके लिए ठीक न थी। खास सोच-विचार और नियम-व्यवस्था के उपजाऊ क्षेत्र में तो इस बीज का बढ़ना कल्पना की शक्ति को भी मात कर देता था। नन्हा-सा बीज पलक मारते-भर में ऊंचा-पूरा दख्त हो जाता था। कूचे और बाजारों में रोने-पीटने की सदाएं गूंजने लगतीं, देश की समस्याओं में एक भूचाल-सा आता, अख़बारों के दिल जलाने वाले शब्द राज्य में हलचल मचा देते, कहीं से आवाज आ जाती—जयगढ़, प्यारे जयगढ़, पवित्र के लिए यह कठिन परीक्षा का अवसर है। दुश्मन ने जो शिक्षा की व्यवस्था तैयार की है, वह हमारे लिए मृत्यु का संदेश है। अब जरूरत और बहुत सख्त जरूरत है कि हम हिम्मत बांधें और साबित कर दें कि जयगढ़, अमर जयगढ़ इन हमलों से अपनी प्राण-रक्षा कर सकता है। नहीं, उनका मुंह-तोड़ जवाब दे सकता है। अगर हम इस वक्त न जागें तो जयगढ़, प्यारा जयगढ़, हस्ती के परदे से हमेशा के लिए मिट जाएगा और इतिहास भी उसे भुला देगा।

दूसरी तरफ़ से आवाज आती—विजयगढ़ के बेखबर सोने वालो, हमारे मेहरबान पड़ोसियों ने अपने अखबारों की जबान बन्द करने के लिए जो नये क़ायदे लागू किये हैं, उन पर नाराज़गी का इजहार करना हमारा फ़र्ज है। उनकी मंशा इसके सिवा और कुछ नहीं है कि वहां के मुआमलों से हमको बेखबर रक्खा जाए और इस अंधेरे के परदे में हमारे ऊपर धावे किये जाएं, हमारे गलों पर फेरने के लिए नये-नये हथियार तैयार किए जाएं, और आख़िरकार हमारा नाम-निशान मिटा दिया जाए। लेकिन हम अपने दोस्तों को जता देना अपना फ़र्ज समझते हैं कि अगर उन्हें शरारत के हथियारों की ईजाद के कमाल हैं तो हमें भी उनकी काट करने में कमाल है। अगर शैतान उनका मददगार है तो हमको भी ईश्वर की सहायता प्राप्त है और अगर अब तक हमारे दोस्तों को मालूम नहीं है तो अब होना चाहिए कि ईश्वर की सहायता हमेशा शैतान को दबा देती है।

२

जयगढ़ बाकमाल कलावन्तों का अखाड़ा था। शीरीं बाई इस अखाड़े की सब्ज परी थी, उसकी कला की दूर-दूर तक ख्याति थी। वह संगीत की राती थी जिसकी ड्योढ़ी पर बड़े-बड़े नामवर आकर सिर झुकाते थे। चारों तरफ़ विजय का डंका बजाकर उसने विजयगढ़ की ओर प्रस्थान किया, जिससे अब तक उसे अपनी प्रशंसा का कर न मिला था। उसके आते ही विजयगढ़ में एक इंक़लाब-सा हो गया। राग-द्वेष और अनुचित गर्व हवा से उड़ने वाली सूखी पत्तियों की तरह तितर-बितर हो गए। सौंदर्य और राग के बाजार में धूल उड़ने लगी, थिएटरों और नृत्यशालाओं में वीरानी छा गयी। ऐसा मालूम होता था कि जैसे सारी सृष्टि पर जादू छा गया है। शाम होते ही विजयगढ़ के धनी-धोरी, जवान-बूढ़े शीरीं बाई की मजालिस की तरफ़ दौड़ते थे। सारा देश शीरीं की भक्ति के नशे में डूब गया।

विजयगढ़ के सचेत क्षेत्रों में देशवासियों के इस पागलपन से एक बेचैनी की हालत पैदा हुई, सिर्फ यही नहीं कि उनके देश की दौलत बर्बाद हो रही थी बल्कि उनका राष्ट्रीय अभिमान और तेज भी धूल में मिल जाता था। जयगढ़ की एक मामूली नाचनेवाली, चाहे वह कितनी ही मीठी अदाओं वाली क्यों न हो, विजयगढ़ के मनोरंजन का केंद्र बन जाय, यह बहुत बड़ा अन्याय था। आपस में मशविरे हुए और देश के

पुरोहितों की तरफ़ से देश के मन्त्रियों की सेवा में इस खास उद्देश्य से एक शिष्टमण्डल उपस्थित हुआ। विजयगढ़ के आमोद-प्रमोद के कर्त्ताओं की ओर से भी आवेदनमत्र पेश होने लगे। अखबारों ने राष्ट्रीय अपमान और दुर्भाग्य के तराने छेड़े। साधारण लोगों के हल्क़ों में सवालों की बौछार होने लगी, यहां तक कि वजीर मजबूर हो गए, शीरीं बाई के नाम शाही फ़रमान पहुँचा—चूंकि तुम्हारे रहने से देश में उपद्रव होने की आशंका है इसलिए तुम फौरन विजयगढ़ से चली जाओ। मगर यह हुक्म अंतर्राष्ट्रीय संबंधों, आपसी इक़रारनामे और सभ्यता के नियमों के सरासर ख़िलाफ़ था। जयगढ़ के राजदूत ने, जो विजयगढ़ में नियुक्त था, इस आदेश पर आपत्ति की और शीरीं बाई ने आखिरकार उसको मानने से इनकार किया क्योंकि इससे उसकी आजादी और खुद्दारी और उसके देश के अधिकारों और अभिमान पर चोट लगती थी।

३

जयगढ़ के कूचे और बाजार खामोश थे। सैर की जगहें खाली। तफ़रीह और तमाशे बन्द। शाही महल के लम्बे-चौड़े सहने और जनता के हरे-भरे मैदानों में आदमियों की भीड़ थी, मगर उनकी जबानें बन्द थीं और आंखें लाल। चेहरे का भाव कठोर और क्षुब्ध, त्योरियां हुई, माथे पर शिकन, उमड़ी हुई काली घटा थी, ड़रावनी, ख़समोश, और बाढ़ को अपने दामन में छिपाए हुए।

मगर आम लोगों में एक बड़ा हंगामा मचा हुआ था, कोई सुलह का हामी था, कोई लड़ाई की मांग करता था, कोई समझौते की सलाह देता था, कोई कहता था कि छानबीने करने के लिए कमीशन बैठाओ। मामला नाजुक थ, मौका तंग, तो भी आपसी बहस-मुबाहसों, बदगुमानियों, और एक-दूसरे पर हमलों का बाजार गर्म था। आधी रात गुज़र गयी मगर कोई फैसला न हो सका। पूंजी की संगठित शक्ति, उसकी पहुँच और रोबदाब फ़ैसले की ज़बान बन्द किये हुए था।

तीन पहर रात जा चुकी थी, हवा नींद से मतवाली होकर अंगड़ाइयां ले रही थी और दरख्तों की आंख झपकती थीं। आकाश के दीपक भी झलमलाने लगे थे, दरबारी कभी दीवारों की तरफ़ ताकते थे, कभी छत की तरफ़। लेकिन कोई उपाय न सूझता था।

अचानक बाहर से आवाज आयी—युद्ध! युद्ध! सारा शहर इस बुलंद नारे से गंज उठा। दीवारों ने अपनी ख़ामोश जबान से जवाब दिया—युद्ध! यद्ध!

यह अदृष्ट से आने वाली एक पुकार थी जिसने उस ठहराव में हरक़त पैदा कर दी थी। अब ठहरी हुई चीजों में ख़लबली-सी मच गयी। दरबारी गोया गलफ़त की नींद से चौंक पड़े। जैसे कोई भूली हुई बात याद आते ही उछल पड़े। युद्ध मंत्री सैयद असकरी ने फ़रमाया—क्या अब भी लोगों को लड़ाई का ऐलाल करने में हिचकिचाहट है? आम लोगों की जबान खुदा का हुक्म और उसकी पुकार अभी आपके कानों में आयी, उसको पूरा करना हमारा फ़र्ज है। हमने आज इस लम्बी बैठक में यह साबित किया है कि हम ज़बान के धनी हैं, पर जबान तलवार है, ढाल नहीं। हमें इस वक्त ढाल की जरूरत है, आइये हम अपने सीनों को ढाल बना लें और साबित कर दें कि हममें अभी वह जौहर बाकी है जिसने हमारे बुजुर्गों का नाम रोशन किया। कौमी ग़ैरत जिन्दगी की रूह है। वह नफे और नुकसान से ऊपर है। वह हुण्डी और रोकड़, वसूल और बाकी, तेजी और मन्दी की पाबन्दियों से आजाद है। सारी खानों की छिपी हुई दौलत, सारी दुनिया की मण्डियां, सारी दुनिया के उद्योग-धंधे उसके पासंग हैं। उसे बचाइये वर्ना आपका यह सारा निजाम तितर-बितर हो जाएगा, शीरजा बिखर जाएगा, आप मिट जाएंगे। पैसे वालों से हमारा सवाल है—क्या अब भी आपको जंग के मामले में हिचकिचाहट है?

बाहर से सैकडों की आवाजें आयीं—जंग! जंग!

एक सेठ साहब ने फ़रमाया—आप जंग के लिए तैयार हैं?

असकरी—हमेशा से ज्यादा।

ख्वाजा साहब—आपको फ़तेह का यक़ीन है?

असकरी—पूरा यक़ीन है।

दूर-पास 'जंग'जंग' की गरजती हुई आवाजों का तांता बंध गया कि जैसे हिमालय के किसी अथाह खड्ड से हथौड़ों की झनकार आ रही हो। शहर कांप उठा, जमीन थर्राने लगी, हथियार बंटने लगे। दरबारियों ने एक मत लड़ाई का फ़ैसला किया। ग़ैरत जो कुछ ने कर सकती थीं, वह अवाम के बारे ने कर दिखाया।

४

आज से तीस साल पहले एक जबर्दस्त इन्कलाब ने जयगढ़ को हिला ड़ाला था। वर्षों तक आपसी लड़ाइयों का दौर रहा, हजारों ख़ानदान मिट गये। सैकड़ों कस्बे बीरान हो गये। बाप, बेटे के खून का प्यासा था। भाई, भाई की जान का ग्राहक। जब आख़िरकार आज़ादी की फ़तेह हुई तो उसने ताज के फ़िदाइयों को चुन-चुन कर मारा । मुल्क के क़ैदखाने देश-भक्तों से भर उठे। उन्हीं जाँबाजों में एक मिर्जा मंसूर भी था। उसे कन्नौज के किले में क़ैद किया गया जिसके तीन तरफ़ ऊंची दीवारें थीं। और एक तरफ़ गंगा नदी। मंसूर को सारे दिन हथौड़े चलान पड़ते। सिर्फ शाम को आध घंटे के लिए नमाज की छुट्टी मिलती थी। उस वक्त मंसूर गंगा के किनारे आ बैठता और देशभाइयों की हालत पर रोता। वह सारी राष्ट्रीय और सामाजिक व्यवस्था जो उसके विचार में राष्ट्रीयता का आवश्यक अंग थी, इस हंगामे की बाढ़ में नष्ट हो रही थी। वह एक ठण्डी आह भ्ररकर कहता—जयगढ़, अब तेरा खुदा ही रखवाला है, तूने खाक को अक्सीर बनाया और अक्सीर को खाक। तूने ख़ानदान की इज्जत को, अदब और इख़लाग का, इल्मो—कमाल को मिटा दिया।, बर्बाद कर दिया। अब तेरी बाग़डोर तेर हाथ में नहीं है, चरवाहे तेरे रखवाले और बनिये तेरे दरबारी हैं। मगर देख लेना यह हवा है, और चरवाहे और साहूकार एक दिन तुझे खून के आंसू रूलायेंगे। धन और वैभव अपना ढंग न छोड़ेगा, हुकूमत अपना रंग न बदलेगी, लोग चाहे ल जाएं, लेकिन निज़ाम वही रहेगा। यह तेरे नए शुभ चिन्तक जो इस वक्त विनय और सत्य और न्याय की मूर्तियाँ बने हूए हैं, एक दिन वैभव के नशे में मतवाले होंगे, उनकी शक्तियां ताज की शक्तियों से कहीं ज्यादा सख्त होंगी और उनके जुल्म कहीं इससे ज्यादा तेज़।

इन्हीं ख़यालों में डूबे हुए मंसूर को अपने वतन की याद आ जाती। घर का नक्शा आंखों के सामने खिंच जाता, मासूम बच्चे असकरी की प्यारी-प्यारी सूरत आंखों में फिर जाती, जिसे तक़दीर ने मां के लाड़-प्यार से वंचित कर दिया था। तब मंसूर एक ठण्डी आह खींचकर खड़ा होता और अपने बेटे से मिलने की पागल इच्छा में उसका जी चाहता कि गंगा में कूदकर पार निकल जाऊँ।

धीरे-धीरे इस इच्छा ने इरादे की सूरत अख्तियार की। गंगा उमड़ी हुई थी, ओर-छोर का कहीं पता नथ । तेज और गरजती हुई लहरें दौड़ते हुए पहाड़ों के समान थीं। पाट देखकर सनर में चक्कर-सा आ जाता था। मंसूर ने सोचा, नहीं उतरने दूं। लेकिन नदी उतरने के बदले भयानक रोग की तरह बढ़ती जाती थी, यहां तक कि मंसूर को फिर धीरज न रहा, एक दिन वह रात को उठा और उस पुरशोर लहरों से भरे हुए अंधेरे में कुछ पड़ा।

मंसूर सारी रात लहरों के साथ लड़ता-भिड़ता रहा, जैसे कोई नन्ही-सी चिड़िया तूफ़ान में थपेड़े खा रही हो, कभी उनकी गोद में छिपा हुआ, कभी एक रेले में दस क़दम आगे, कभी एक धक्के में दस क़दम पीछे। ज़िन्दगी की लिखावट की ज़िन्दा मिसाल। जब वह नदी के पार हुआ तो एक बेजान लाश था, सिर्फ सांस बाक़ी थी और सांस के साथ मिलने की इच्छा।

इसके तीसरे दिन मंसूर विजयगढ़ जा पहुँचा। एक गोद में असकरी था और दूसरे हाथ में ग़रीबी का छोटा-साउ एक बुकचा। वहां उसने अपना नाम मिर्जा जलाल बताया। हुलिया भी बदल लिया था, हट्टा-कट्टा सजीला जवान था, चेहरे पर शराफ़त और कुशीलनता की कान्ति झलकती थी; नौकरी के लिए किसी और सिफ़ारिश की जरूरत न थी। सिपाहियों में दाख़िल हो गया और पांच ही साल में अपनी ख़िदमतों और भरोसे की बदौलत मन्दौर के सरहदी पहाड़ी किले का सूबेदार बना दिया गया।

लेकिन मिर्जा जलाल को वतन की याद हमेशा सताया करती। वह असकरी को गोद में ले लेता और कोट पर चढ़कर उसे जयगढ़ की वह मुस्कराती हुई चरागाहें और मतवाले झरने और सुथरी बस्तियां दिखाता जिनके कंगूरे क़िले से नज़र आते। उस वक्त बेअख्तियार उसके जिगर से सर्द आह निकल जाती और ऑंखें ड़बड़बा आतीं। वह असकरी को गले लगा लेता और कहता—बेटा, वह तुम्हार देश है। वहीं तुम्हारा और तुम्हारे बुजुर्गों का घोंसला है। तुमसे हो सके तो उसके एक कोने में बैठे हुए अपनी उम्र ख़त्म कर देना, मगर उसकी आन में कभी बट्टा न लगाना। कभी उससे दया मत करना क्योंकि तुम उसी कि मिट्टी और पानी से पैदा हुए हो और तुम्हारे बुजुर्गों की पाक रूहें अब भी वहां मंड़ला रही है। इस तरह बचपने से ही असकरी के दिल पर देश की सेवा और प्रेम अंकित हो गया था। वह जवान हुआ, तो जयगढ़ पर जान देता था। उसकी शान-शौकत पर निसार, उसके रोबदाब की माला जपने वाला। उसकी बेहतरी को आगे बढाने के लिए हर वक्त तैयार। उसके झण्डे को नयी अछूती धरती में गाड़ने का इच्छुक। बीस साल का सजीला

जवान था, इरादा मज़बूत, हौसले बुलन्द, हिम्मत बड़ी, फ़ौलादी जिस्म, आकर जयगढ़ की फ़ौज में दाखिल हो गया और इस वक्त जयगढ़ की फ़ौज का चमकजा सूरज बन हुआ था।

५

जयगढ़ ने अल्टीमेटम दे दिया—अगर चौबिस घण्टों के अन्दर शीरीं बाईं जयगढ़ न पहुँची तो उसकी अगवानी के लिए जयगढ़ की फ़ौज रवाना होगी।

विजयगढ़ ने जवाब दिया—जयगढ़ की फ़ौज आये, हम उसकी अगवानी के लिए हाजिर हैं। शीरीं बाई जब तक यहां की अदालत से हुक्म-उदूली की सजा न पा ले, वह रिहा नहीं हो सकती और जयगढ़ को हमारे अंदरूनी मामलों में दख़ल देने का कोई हक नहीं।

असकरी ने मुंहमांगी मुराद पायी। खुफ़िया तौर पर एक दूत मिर्जा जलाल के पास रवाना किया और खत में लिखा—

‘आज विजयगढ़ से हमारी जंग छिड़ गयी, अब खुदा ने चाहा तो दुनिया जयगढ़ की तलवार का लोहा मान जाएगी। मंसूर का बेटा असकरी फ़तेह के दरबार का एक अदना दरबारी बन सकेगा और शायद मेंरी वह दिली तमन्ना भी पूरी हो जो हमेशा मेरी रूह को तड़पाया करती है। शायद मैं मिर्जा मंसूर को फिर जयगढ़ की रियासत में एक ऊंची जगह पर बैठे देख सकूं। हम मन्दौर में न बोलेंगे और आप भी हमें न छेडिएगा लेकिन अगर खुदा न ख्वास्ता कोई मुसीबत आ ही पड़े तो आप मेरी यह मुहर जिस सिपाही या अफ़सर को दिखा देंगे वह आपकी इज्ज्त करेगा। और आपको मेरे कैम्प में पहुँचा देगा। मुझे यकीन है कि अगर जरूरत पड़े तो उस जयगढ़ के लिए जो आपके लिए इतना प्यारा है और उस असकरी के ख़ातिर जो आपके जिगर का टुकड़ा है, आप थोड़ी-सी तकलीफ़ से (मुमकिन है वह रूहानी तकलीफ़ हो) दरेग न फ़रमायेंगे।’

इसके तीसरे दिन जयगढ़ की फ़ौज ने विजयगढ़ पर हमला किया और मन्दौर से पांच मील के फ़ासले पर दोनों फौजों का मुकाबला हुआ। विजयगढ़ को अपने हवाई जहाजों, जहरीले गड्ढों और दूर तक मार करने वाली तोपों का घमण्ड था। जयगढ़ को अपनी फ़ौज की बहादुरी, जीवट, समझदारी और बुद्धि का था। विजयगढ़ की फ़ौज नियम और अनुशासन की गुलाम थी, जयगढ़ वाले जिम्मेदारी और तमीज के क़ायल।

एक महीने तक दिन-रात, मार-काट के मार्के होता रहे। हमेशा आग और गोलों और जहरीली हवाओं का तूफ़ान उठा रहता। इन्सान थक जाता था, पर कले अथक थीं। जयगढ़ियों के हौसले पस्त हो गये, बार-बार हार पर हार खायी। असकरी को मालूम हुआ कि जिम्मेदारी फ़तेह में चाहे करिश्मे कर दिखाये, पर शिकस्त में मैदान हुक्म की पाबन्दी ही के साथ रहता है।

जयगढ़ के अखबारों ने हमले शुरू किये। असकरी सारी क़ौम की लानत-मलामत का निशाना बन गया। वही असकरी जिस पर जयगढ़ फ़िदा होता था सबकी नज़रों का कांटा हो गया। अनाथ बच्चों के आंसू, विधवाओं की आहें, घायलों की चीख-पुकार, व्यापरियों की तबाही, राष्ट्र का अपमान—इन सबका कारण वही एक व्यक्ति असकरी था। कौम की अगुवाई सोने की राजसिंहासन भले ही हो पर फूलों की मेज वह हरगिज नहीं।

जब जयगढ़ की जान बचने की इसके सिवा और कोई सूरत न थी कि किसी तरह विरोधी सेना का सम्बन्ध मन्दौर के क़िले से काट दिया जाय, जो लड़ाई और रसद के सामान और यातायात के साधनों का केंद्र था। लड़ाई कठिन थी, बहुत खतरनाक, सफ़लता की आशा बहुत कम, असफ़लता की आशंका जी पर भारी। कामयाबी अगर सूखें धान का पानी थी तो नाकामी उसकी आग। मगर छुटकारे की और कोई दूसरी तस्वीर न थी। असकरी ने मिर्जा जलाल को लिखा—

‘प्यारे अब्बाजान, अपने पिछले खत में मैंने जिस जरूरत का इशारा किया था, बदक़िस्मती से वह जरूरत आ पड़ी। आपका प्यारा जयगढ़ भेडियों के पंजे में फंसा हुआ है और आपका प्यारा असकरी नाउम्मीदों के भंवर में, दोनों आपकी तरफ़ आस लगाये ताक रहे हैं। आज हमारी आखिरी कोशिश, हम मुखालिफ़ फ़ौज को मन्दौर के किले से अलग करना चाहते हैं। आधी रात के बाद यह मार्का शुरू होगा। आपसे सिर्फ इतनी दरख्वास्त है कि अगर हम सर हथेली पर लेकर किले के सामने तक पहुँच सकें, तो हमें लोहे के दरवाज़े से सर टकराकर वापस न होना पड़े। वर्ना आप अपनी क़ौम की इज्जत और अपने बेटे की लाश को उसी जगह पर तड़पते देखेंगे और जयगढ़ आपको कभी मुआफ़ न करेगा। उससे कितनी ही तकलीफ़ क्यों न पहुँची हो मगर आप उसके हक़ों से सुबुकदोश नहीं हो सकते।’

शाम हो चुकी थी, मैदाने जंग ऐसा नज़र आता था कि जैसे जंगल जल गया हो। विजयगढ़ी फ़ौज एक खूंरेज मार्के के बाद ख़न्दकों में आ रहीं थी, घायल मन्दौर के क़िले के अस्पताल में पहुँचाये जा रहे थे, तोपें थककर चुप हो गयी थीं और बन्दूकें जरा दम ले रही थीं। उसी वक्त जयगढ़ी फ़ौज का एक अफ़सर विजयगढ़ी वर्दी पहने हुए असकरी के खेमे से निकला, थकी हुई तोपें, सर झुकाये हवाई जहाज, घोडो की लाशें, औंधी पड़ी हुई हवागाडिया, और सजीव मगर टूटे-फूटे किले, उसके लिए पर्दे का काम करने लगे। उनकी आड़ में छिपता हुआ वह विजयगढ़ी घायलों की क़तार में जा पहुँचा और चुपचाप जमीन पर लेट गया।

६

आधी रात गुजर चुकी थी। मन्दौर या क़िलेदार मिर्जा जलाल किले की दीवार पर बैठा हुआ मैदाने जंग का तमाशा देख रहा था और सोचता था कि 'असकरी को मुझे ऐसा ख़त लिखने की हिम्मत क्योंकर हुई। उसे समझना चाहिए था कि जिस शख्स़ ने अपने उसूलों पर अपनी जिन्दगी न्यौछावर कर दी, देश से निकाला गया, और गुलामी का तौक़ गर्दन में ड़ाला वह अब अपनी जिन्दगी के आख़िरी दौर में ऐसा कोई काम न करेगा, जिससे उसको बट्टा लगे। अपने उसूलों को न तोड़ेगा। ख़ुदा के दरबार में वतन और वतनवाले और बेटा एक भी साथ न देगा। अपने बुरे-भले की सजा या इनाम आप ही भुगतना पड़ेगा। हिसाब के रोज उसे कोई न बचा सकेगा।

'तौबा! जयगढियों से फिर वही बेवकूफ़ी हुई। ख़ामख़ाह गोलेबारी से दुश्मनों को खबर देने की क्या ज़रूरत थी? अब इधर से भी जवाब दिया जायेगा और हज़ारों जानें जाया होंगी। रात के अचानक हमले के माने तो यह है कि दुश्मन सर पर आ जाए और कान खबर न हो, चौतरफ़ा खलबली पड़ जाय। माना कि मौज़ूदा हालत में अपनी हरकतों को पोशीदा रखना शायद मुश्किल है। इसका इलाज अंधेरे के ख़न्दक से करना चाहिये था। मगर आज शायद उनकी गोलेबारी मामूल से ज्या तेज है। विजयगढ़ की क़तारों और तमाम मोर्चेबन्दियों को चीरकर बज़ाहिर उनका यहां तक आना तो मुहाल मालूम होता था, लेकिन अगर मान लो आ ही जाएं तो मुझे क्या करना चाहिये। इस मामले को तय क्यों न कर लूँ? खूब, इसमें तय करने की बात ही क्या हैं? मेरा रास्ता साफ़ है। मैं विजयगढ़ का नमक खाता हूँ। मैं जब बेघरबार, परेशान और अपने देश से निकला हुआ था तो विजयगढ़ ने मुझे अपने दामन में पनाह दी और मेरी ख़िदमतों का मुनासिब लिहाज़ किय। उसकी बदौलत तीस साल तक मेरी जिन्दगी नेकनामी और इज्जत से गुजरी। उसके दगा करना हद दर्जे की नमक-हरामी है। ऐसा गुनाह जिसकी कोई सज़ा नहीं! वह ऊपर शोर हो रहा है। हवाई जहाज़ होंगे, वह गोला गिरा, मगर खैरियत हुई, नीचे कोई नहीं था।

'मगर क्या दगा हर एक हालत में गुनाह है? ऐसी हालतें भी तो हैं, जब दगा वफ़ा से भी ज्यादा अच्छी हो जाती है। अपने दुश्मन से दग़ा करना क्या गुनाह है? अपनी कौम के दुश्मन से दगा करना क्या गुनाह है? कितने ही काम जो जाती हैसियत से ऐसे होते हैं कि उन्हें माफ़ नहीं किया जा सकता, कौमी हैसियत से नेक काम हो जाते हैं। वही बेगुनाह का खून जो जाती हैसियत से सख्त़ सज़ा के क़ाबिल है, मज़हबी हैसियत से शहादत का दर्जा पाता है, और कौमी हैसियत से देश-प्रेम का। कितनी बेरहमियां और जुल्म, कितनी दगाएं और चालबाजियां, कौमी और मज़हबी नुक्ते-निगाह से सिर्फ़ ठीक ही नहीं, फ़र्जों में दाखिल हो जाती है। हाल की यूरोप की बड़ी लड़ाई में इसकी कितनी ही मिसालें मिल सकती हैं। दुनिया का इतिहास ऐसी दग़ाओं से भरा पड़ा है। इस नये दौर में भले और बुरे का जाती एहसास क़ौमी मसलहत के सामने कोई हकीकत नहीं रखता। क़ौमियत ने ज़ात को मिटा दिया है। मुमकिन है यही खुदा की मंशा हो। और उसके दरबार में भी हमारे कारनामें क़ौम की कसौटी ही पर परखे जायं। यह मसला इतना आसान नहीं है जितना मैं समझता था।

'फिर आसमान में शोर हुआ इतना मगर शायद यह इधर की के हवाई जहाज़ हैं। जयगढ़ वाले बड़े दमख़म से लड़ रहे हैं। इधर वाले दबते नजर आते हैं। आज यकीनन मैदान उन्हीं के हाथ में रहेगा। जान पर खेले हुए हैं। जयगढ़ी वीरों की बहादुरी मायूसी ही मे खूब खुलती है। उनकी हार जीत से भी ज्यादा शानदार होती है। बेशक, असकरी दाँव-पेंच का उस्ताद है, किस खूबसूरती से अपनी फ़ौज का रूख क़िले के दरवाजे की तरफ़ फेर दिया। मगर सख्त गलती कर रहे हैं। अपने हाथों अपनी क़ब्र खोद रहे हैं। सामने का मैदान दुश्मन के लिए खाली किये देते हैं। वह चाहे तो बिना रोक-टोक आगे बढ़ सकता है और सुबह तक किये देते हैं। वह चाहे तो बिना रोक-टोक आगे बढ़ सकता है। और सुबह तक जयगढ़ की सरज़मीन में

दाखिल हो सकता है। जयगढियों के लिए वापसी या तो ग़ैरमुमकिन है या निहायत ख़तरनाक। क़िले का दरवाज़ा बहुत मजबूत है। दीवारों की संधियों से उन पर बेशुमार बन्दूकों के निशाने पड़ेंगे। उनका इस आग में एक घण्टा भी ठहरना मुमकिन नहीं है। क्या इतने देशवासियों की जानें सिर्फ एक उसूल पर, सिर्फ हिसाब के दिन के ड़र पर, सिर्फ़ अपने इख़लाक़ी एहसास पर कुर्बान कर दूँ? और महज जानें ही क्यों? इस फ़ौज की तबाही जयगढ़ की तबाही है। कल जयगढ़ की पाक सरज़मीन दुश्मन की जीत के नक्क़ारों से गूंज उठेगी। मेरी माएं, बहनें और बेटियां हया को जलाकर खाक कर देने वाली हरकतों का शिकार होंगी। सारे मुल्क में क़त्ल और तबाही के हंगामे बरपा होंगे। पुरानी अदावत और झगड़ों के शोले भड़केंगे। कब्रिस्तान में सोयी हुई रूहें दुश्मन के क़दमों से पामाल होंगी। वह इमारतें जो हमारे पिछले बड़प्पन की जिन्द निशानियाँ हैं, वह यादगारें जो हमारे बुजुर्गों की देन हैं, जो हमारे कारनामों के इतिहास, हमारे कमालों का ख़जाना और हमारी मेहनतों की रोशन गवाहियां हैं, जिनकी सजावट और ख़ूबी को दुनिया की क़ौमें स्पर्द्धा की आंखों से देखती हैं वह अर्द्ध-बर्बर, असभ्य लश्करियों का पड़ाव बनेंगी और उनके तबाही के जोश का शिकार। क्या अपनी क़ौम को उन तबाहियों का निशाना बनने दूं? महज इसलिए कि वफ़ा का मेरा उसूल न टूटे?

‘उफ्, यह क़िले में ज़हरीले गैस कहां से आ गये। किसी जयगढ़ी जहाज की हरकत होगी। सर में चक्कर-सा आ रहा है। यहां से कुमक भेजी जा रही है। किले की दीवार के सूराखों में भी तोपें चढाई जा रही है। जयगढ़वाले क़िले के सामने आ गये। एक धावे में वह हुंमायूं दरवाजे तक आ पहुँचेंगे। विजयगढ़ वाले इस बाढ़ को अब नहीं रोक सकते। जयगढ़ वालों के सामने कौन ठहर सकता है? या अल्लाह, किसी तरह दरवाजा खुद-ब-खुद खुल जाता, कोई जयगढ़ी हवाबाज़ मुझसे जबर्दस्ती कुंजी छीन लेता। मुझे मार ड़ालता। आह, मेरे इतने अज़ीज हम-वतन प्यारे भाई आन की आन में ख़ाक में मिल जायेंगे और मैं बेबस हूँ! हाथों में जंजीर है, पैरों में बेड़ियां। एक-एक रोआं रस्सियों से जक़ड़ा हुआ है। क्यों न इस जंजीर को तोड़ दूँ, इन बेड़ियों के टुकड़े-टुकड़े कर दूं, और दरवाज़े के दोनों बाजू अपने अज़ीज़ फ़तेह करने वालों की अगवानी के लिए खोल दूं! माना कि यह गुनाह है पर यह मौक़ा गुनाह से ड़रने का नहीं। जहन्नुम की आग उगलने वाले सांप और ख़ून पीन वाले जानवर और लपकते हुए शोले मेरी रूह को जलायें, तड़पायें कोई बात नहीं। अगर महज़ मेरी रूह की तबाही, मेरी क़ौम और वतन को मौत के गड्ढे से बचा सके तो वह मुबारक है। विजयगढ़ ने ज्यादती की है, उसने महज जयगढ़ को जलील करने के लिए सिर्फ उसको भड़काने के लिए शीरीं बाई को शहर-निकाले को हुक्म़ जारी किया जो सरासर बेजा था। हाय, अफ़सोस, मैंने उसी वक्त इस्तीफ़ा न दे दिया और गुलामी की इस क़ैद से क्यों न निकल गया।

‘हाय ग़जब, जयगढ़ी फ़ौज ख़न्दकों तक पहुँच गयी, या खुदा! इन जांबाजों पर रहम कर, इनकी मदद कर। कलदार तोपों से कैसे गोले बरस रहे हैं, गोया आसमान के बेशुमार तारे टूट पड़ते हैं। अल्लाह की पनाह, हुमायूं दरवाजे पर गोलों की कैसी चोटें पड़ रही हैं। कान के परदे फ़टे जाते हैं। काश दरवाजा टूट जाता! हाय मेरा असकरी, मेरे जिगर का टुकड़ा, वह घोड़े पर सवार आ रहा है। कैसा बहादुर, कैसा जांबाज, कैसी पक्की हिम्मत वाला! आह, मुझ अभागे कलमुंहे की मौत क्यों नही आ जाती! मेरे सर पर कोई गोला क्यों नहीं आ गिरता! हाय, जिस पौधे को अपने जिगर के ख़ून से पाला, जो मेरी पतझड़ जैसी ज़िन्दगी का सदाबहार फूल था, जो मेरी अंधेरी रात का चिरा, मेरी ज़िन्दगी की उम्मीद, मेरी हस्ती का दारोमदार, मेरी आरजू की इन्तहा था, वह मेरी आंखों के सामने आग के भंवर में पड़ा हुआ है, और मैं हिल नहीं सकता। इस कातिल जंजीर को क्योंकर तोड़ दूं? इस बाग़ी दिल को क्योंकर समझाऊं? मुझे मुंह में कालिख लगाना मंजूर है, मुझे जहन्नुम की मुसीबतें झेलना मंजूर है, मैं सारी दुनिया के गुनाहों का बोझ अपने सर पर लेने को तैयार हूँ, सिर्फ इस वकत मुझे गुनाही करने की, वफ़ा के पैमाने को तोड़ने की, नमकहराम बनने की तौफ़ीक दे! एक लम्हे के लिए मुझे शैतान के हवाले कर दे, मैं नमक हराम बनूंगा, दग़ाबाज बनूंगा पर क़ौमफ़रोश नहीं बन सकता!

‘आह, ज़ालिम सुरंगें उड़ाने की तैयारी कर रहे हैं। सिपहसालार ने हुक्म दे दिया। वह तीन आदमी तहखाने की तरफ़ चले। जिगर कांप रहा है, जिस्म कांप रहा है। यह आख़िरी मौका है। एक लमहा और, बस फिर अंधेरा है और तबाही। हाय, मेरे ये बेवफ़ा हाथ-पांव अब भी नहीं हिलते, जैसे इन्होंने मुझसे मुंह मोड़ लिया हो। यह खून अब भी गरम नहीं होता। आह, वह धमाके की आवाज हुई, खुदा की पनाह, जमीन कॉंप उठी, हाय असकरी, असकरी, रूख़सत, मेरे प्यारे बेटे, रूख़सत, इस जालिम बेरहम बाप ने तुझे अपनी वफ़ा

पर कुर्बान कर दिया! मैं तेरा बाप न था, तेरा दुश्मन था! मैंने तेरे गले पर छुरी चलयी। अब धुआं साफ़ हो गया। आह वह फ़ौज कहां है जो सैलाब की तरह बढ़ती आती थी और इन दीवारों से टकरा रही थी। ख़न्दकें लाशों से भरी हुई हैं और वह जिसका मैं दुश्मन था, जिसका क़ातिल, वह बेटा, वह मेरा दुलारा असकरी कहां है, कहीं नजर नही आता....आह....।'

—'जमाना', नवम्बर, १९१८

मुबारक बीमारी

रात के नौ बज गये थे, एक युवती अंगीठी के सामने बैठी हुई आग फूंकती थी और उसके गाल आग के कुन्दनी रंग में दहक रहे थ। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें दरवाजे की तरफ़ लगी हुई थीं। कभी चौंककर आंगन की तरफ़ ताकती, कभी कमरे की तरफ़। फिर आनेवालों की इस देरी से त्योरियों पर बल पड़ जाते और आंखों में हलका-सा गुस्सा नजर आता। कमल पानी में झकोले खाने लगता।

इसी बीच आनेवालों की आहट मिली। कहर बाहर पड़ा खर्राटे ले रहा था। बूढ़े लाला हरनामदास ने आते ही उसे एक ठोकर लगाकर कहा-कम्बख्त, अभी शाम हुई है और अभी से लम्बी तान दी!

नौजवान लाला हरिदास घर मे दाखिल हुए—चेहरा बुझा हुआ, चिन्तित। देवकी ने आकर उनका हाथ पकड़ लिया और गुस्से व प्यार की मिली ही हुई आवाज में बोली—आज इतनी देर क्यों हुई?

दोनों नये खिले हुए फूल थे—एक पर ओस की ताज़गी थी, दूसरा धूप से मुरझाया हुआ।

हरिदास—हां, आज देर हो गयी, तुम यहां क्यों बैठी रहीं?

देवकी—क्या करती, आग बुझी जाती थी, खाना न ठन्डा हो जाता।

हरिदास—तुम ज़रा-से-काम के लिए इतनी आग के सामने न बैठा करो। बाज आया गरम खाने से।

देवकी—अच्छा, कपड़े तो उतारो, आज इतनी देर क्यों की?

हरिदास—क्या बताऊँ, पिताजी ने ऐसा नाक में दम कर दिया है कि कुछ कहते नहीं बनता। इस रोज-रोज की झंझट से तो यही अच्छा कि मैं कहीं और नौकरी कर लूं।

लाला हरनामदास एक आटे की चक्की के मालिक थे। उनकी जवानी के दिनों में आस-पास दूसरी चक्की न थी। उन्होंने खूब धन कमाया। मगर अब वह हालत न थी। चक्कियां कीड़े-मकोडों की तरह पैदा हो गयी थीं, नयी मशीनों और ईजादों के साथ। उसके काम करनेवाले भी जोशीले नौजवान थे, मुस्तैदी से काम करते थे। इसलिए हरनामदास का कारखाना रोज गिरता जाता था। बूढ़े आदमियों को नयी चीजों से चिढ़ हो जाती है। वह लाला हरनामदास को भी थी। वह अपनी पुरानी मशीन ही को चलाते थे, किसी किस्म की तरक्की या सुधार को पाप समझते थे, मगर अपनी इस मन्दी पर कुढा करते थे। हरिदास ने उनकी मर्जी के खिलाफ़ कालेजियेट शिक्षा प्राप्त की थी और उसका इरादा था कि अपने पिता के कारखाने को नये उसूलों पर चलाकर आगे बढायें। लेकिन जब वह उनसे किसी परिवर्तन या सुधार का जिक्र करता तो लाला साहब जामे से बाहर हो जाते और बड़े गर्व से कहते—कालेज में पढ़ने से तजुर्बा नहीं आता। तुम अभी बच्चे हो, इस काम में मेरे बाल सफेद हो गये हैं, तुम मुझे सलाह मत दो। जिस तरह मैं कहता हूँ, काम किये जाओ।

कई बार ऐसे मौके आ चुके थे कि बहुत ही छोटे मसलों में अपने पिता की मर्जी के खिलाफ काम करने के जुर्म में हरिदास को सख्त फटकारें पड़ी थीं। इसी वजह से अब वह इस काम में कुछ उदासीन हो गया थ और किसी दूसरे कारखाने में किस्मत आजमाना चाहता था जहां उसे अपने विचारों को अमली सूरत देने की ज्यादा सहूलतें हासिल हों।

देवकी ने सहानुभूतिपूर्वक कहा—तुम इस फिक्र में क्यों जान खपाते हो, जैसे वह कहें, वैसे ही करो, भला दूसरी जगह नौकरी कर लोगे तो वह क्या कहेगे? और चाहे वे गुस्से के मारे कुछ न बोलें, लेकिन दुनिया तो तुम्हीं को बुरा कहेगी।

देवकी नयी शिक्षा के आभूषण से वंचित थी। उसने स्वार्थ का पाठ न पढा था, मगर उसका पति अपने 'अलमामेटर' का एक प्रतिष्ठित सदस्य था। उसे अपनी योग्यता पर पूरा भरोसा था। उस पर नाम कमाने का जोश। इसलिए वह बूढ़े पिता के पुराने ढर्रों को देखकर धीरज खो बैठता था। अगर अपनी योग्यताओं के लाभप्रद उपयोग की कोशिश के लिए दुनिया उसे बुरा कहे, तो उसकी परवाह न थी। झुंझलाकर बोला—कुछ मैं अमरित की घरिया पीकर तो नहीं आया हूँ कि सारी उम्र उनके मरने का इंतजार करूँ। मूर्खों की अनुचित टीका-टिप्पणियों के डर से क्या अपनी उम्र बरबार कर दूं? मैं अपने कुछ हमउम्रों को जानता हूँ जो हरगिज मेरी-सी योग्यता नहीं रखते। लेकिन वह मोटर पर हवा खाने निकलते हैं, बंगलों में रहते हैं और शान से जिन्दगी बसर करते हैं तो मैं क्यों हाथ पर हाथ रखे जिन्दगी को अमर समझे बैठा रहूँ! सन्तोष और निस्पृहता का युग बीत गया। यह संघर्ष का युग है। यह मैं जानता हूँ कि पिता का आदर करना मेरा धर्म है। मगर सिद्धांतों के मामले में मैं उनसे क्या, किसी से भी नहीं दब सकता।

इसी बीच कहार ने आकर कहा—लाला जी थाली मांगते हैं।

लाल हरनामदास हिन्दू रस्म-रिवाज के बड़े पाबन्द थे। मगर बुढापे के कारण चौक के चक्कर से मुक्ति पा चुके थे। पहले कुछ दिनों तक जाड़ों में रात को पूरियां न हजम होती थीं इसलिए चपातियां ही अपनी बैठक में मंगा लिया करते थे। मजबूरी ने वह कराया था जो हुज्जत और दलील के काबू से बाहर था।

हरिदास के लिए भी देवकी ने खाना निकाला। पहले तो वह हजरत बहुत दुखी नजर आते थे, लेकिन बघार की खुशबू ने खाने के लिए चाव पैदा कर दिया था। अक्सर हम अपनी आंख और नाक से हाजमे का काम लिया करते हैं।

२

लाला हरनामदास रात को भले-चंगे सोये लेकिन अपने बेटे की गुस्ताख़ियां और कुछ अपने कारबार की सुस्ती और मन्दी उनकी आत्मा के लिए भयानक कष्ट का कारण हो गयीं और चाहे इसी उद्विग्नता का असर हो, चाहे बुढापे का, सुबह होने से पहले उन पर लकवे का हमला हो गय। जबान बन्द हो गयी और चेहरा ऐंठ गया। हरिदास ड़ाक्टर के पास दौड़ा। ड़ाक्टर आये, मरीज़ को देखा और बोले—डरने की कोई बात नहीं। सेहत होगी मगर तीन महीने से कम न लगेंगे। चिन्ताओं के कारण यह हमला हुआ है इसलिए कोशिश करनी चाहिये कि वह आराम से सोयें, परेशान न हों और जबान खुल जाने पर भी जहां तक मुमकिन हो, बोलने से बचें।

बेचारी देवकी बैठी रो रही थी। हरिदास ने आकर उसको सान्त्वना दी, और फिर ड़ाक्टर के यहां से दवा लाकर दी। थोड़ी देर में मरीज को होश आया, इधर-उधर कुछ खोजती हुई-सी निगाहों से देखा कि जैसे कुछ कहना चाहते हैं और फिर इशारे से लिखन के लिए कागज मांगा। हरिदास ने कागज और पेंसिल रख दी, तो बूढ़े लाला साहब ने हाथों को खूब सम्हालकर लिख—इन्तजाम दीनानाथ के हाथ मे रहे।

ये शब्द हरिदास के हृदय में तीर की तरह लगे। अफ़सोस! अब भी मुझ पर भरोसा नहीं! यानी कि दीनानाथ मेरा मालिक होगा और मैं उसका गुलाम बनकर रहूँगा! यह नहीं होने का। काग़ज़ लिए देवकी के पास आये और बोले—लालाजी ने दीनानाथ को मैनेजर बनाया है, उन्हें मुझ पर इतना एतबार भी नहीं हैं, लेकिन मैं इस मौके को हाथ से न दूंगा। उनकी बीमारी का अफ़सोस तो जरूर है मगर शायद परमात्मा ने मुझे अपनी योग्यता दिखलाने का यह अवसर दिया है। और इससे मैं जरूर फायदा उठाऊँगा। कारखाने के कर्मचारियों ने इस दुर्घटना की खबर सुनी तो बहुत घबराये। उनमें कई निकम्मे, बेमसरफ़ आदमी भरे हुए थे, जो सिर्फ खुशामद और चिकनी-चुपड़ी बातों की रोटी खाते थे। मिस्त्री ने कई दूसरे कारखानों में मरम्मत का काम उठा लिया था रोज किसी-न-किसी बहाने से खिसक जाता था। फायरमैन और मशीनमैन दिन को झूठ-मूठ चक्की की सफाई में काटते थे और रात के काम करके ओवर टाइम की मजदूरी लिया करते थे। दीनानाथ जरूर होशियार और तजुर्बेकार आदमी था, मगर उसे भी काम करने के मुकाबिले में 'जी हां' रटते रहने में ज्यादा मजा आता था। लाला हरनामदास मजदूरी देन में बहुत हीले-हवाले किया करते थे और अक्सर काट-कपट के भी आदी थे। इसी को वह कारबार का अच्छा उसूल समझाते थे।

हरिदास ने कारखाने में पहुँचते ही साफ शब्दों कह दिय कि तुम लोगों को मेरे वक्त में जी लगाकर काम करना होगा। मैं इसी महीन में काम देखकर सब की तरक्की करूंगा। मगर अब टाल-मटोल का गुजर नहीं, जिन्हें मंजूर न हो वह अपना बोरिया-बिस्तर सम्हालें और फिर दीनानाथ को बुलाकर कहा-भाई साहब, मुझे खूब मालूम है कि आप होशियार और सूझ-बूझ रखनेवाले आदमी हैं। आपने अब तक यह यहां का जो रंग देखा, वही अख्तियार किया है। लेकिन अब मुझे आपके तजुर्बे और मेहनत की जरूरत है। पुराने हिसाबों की जांच-पड़ताल किजिए। बाहर से काम मेरा जिम्मा है लेकिन यहां का इन्तजाम आपके सुपुर्द है। जो कुछ नफा होगा, उसमें आपका भी हिस्सा होगा। मैं चाहता हूँ कि दादा की अनुपस्थिति में कुछ अच्छा काम करके दिखाऊँ।

इस मुस्तैदी और चुस्ती का असर बहुत जल्द कारखाने में नजर आने लगा। हरिदास ने खूब इश्तहार बंटवाये। उसका असर यह हुआ कि काम आने लगा। दीनानाथ की मुस्तैदी की बदौलत ग्राहकों को नियत समय पर और किफायत से आटा मिलने लगा। पहला महीना भी खत्म न हुआ था कि हरिदास ने नयी मशीन मंगवायी। थोड़े अनुभवी आदमी रख लिये, फिर क्या था, सारे शहर में इस कारखाने की धूम मच गयी। हरिदास ग्राहकों से इतनी अच्छी तरह से पेश आता कि जो एक बार उससे मुआमला करता वह हमेशा के लिए उसका खरीदार बन जाता। कर्मचारियों के साथ उसका सिद्धांत था—काम सख्त और मजदूरी ठीक।

उसके ऊंचे व्यक्तित्व का भी स्पस्ट प्रभाव दिखाई पड़ा। करीब-करीब सभी कारखानों का रंग फीका पड़ गया। उसने बहुत ही कम नफे पर ठेले ले लिये। मशीन को दम मारने की मोहलत न थी, रात और दिन काम होता था। तीसरा महीना खत्म होते-होते उस कारखाने की शकल ही बदल गयी। हाते में घुसते ही ठेले और गाडियों की भीड़ नज़र आती थी। कारखाने में बड़ी चहल-पहल थी-हर आदमी अपने अपने काम में लगा हुआ। इसके साथ की प्रबन्ध कौशल का यह वरदान था कि भद्दी हड़बड़ी और जल्दबाजी का कहीं निशान न था।

३

लाला हरनामदास धीरे-धीरे ठीक होने लगे। एक महीने के बाद वह रूककर कुछ बोलने लगे। ड़ाक्टर की सख्त ताकीद थी कि उन्हे पूरी शान्ति की स्थिति में रखा जाय मगर जब उनकी जबान खुली उन्हें एक दम को भी चैन न था। देवकी से कहा करते—सारा कारबार मिट्टी में मिल जाता है। यह लड़का मालूम नहीं क्या कर रहा है, सारा काम अपने हाथ में ले रखा है। मैंने ताकीद कर दी थी कि दीनानाथ को मैनेजर बनाना लेकिन उसने जरा भी परवाह न की। मेरी सारी उम्र की कमाई बरबाद हुई जाती है।

देवकी उनको सान्त्वना देती कि आप इन बातों की आशंका न करें। कारबार बहुत खूबी से चल रहा है और खूब नफ़ा हो रहा है। पर वह भी इस मामले में तूल देते हुए ड़रती थी कि कहीं लक़वे का फिर हमला न हो जाय। हूं-हां कहकर टालना चाहती थी। हरिदास ज्यों ही घर में आता, लाला जी उस पर सवालों की बौछार कर देते और जब वह टालकर कोई दूसरा जिक्र छेड़ देता तो बिगड़ जाते और कहते—जालिम, तू जीते जी मेरे गले पर छुरी फेर रहा है। मेरी पूंजी उड़ा रहा है। तुझे क्या मालूम कि मैंने एक-एक कौड़ी किस मशक्कत से जमा की है। तूने दिल में ठान ली है कि इस बुढ़ापे में मुझे गली-गली ठोकर खिलाये, मुझे कौड़ी-कौड़ी का मुहतात बनाये।

हरिदास फटकार का कोई जवाब न देता क्योंकि बात से बात बढ़ती है। उसकी चुप्पी से लाला साहब को यकीन हो जाता कि कारखाना तबाह हो गया।

एक रोज देवकी ने हरिदास से कहा—अभी कितने दिन और इन बातों का लालाजी से छिपाओगे?

हरिदास ने जवाब दिया—मैं तो चाहता हूँ कि नयी मशीन का रुपया अदा हो जाय तो उन्हें ले जाकर सब कुछ दिखा दूँ। तब तक ड़ाक्टर साहब की हिदायत के अनुसार तीन महीने पूरे भी हो जायेंगे।

देवकी—लेकिन इस छिपाने से क्या फायदा, जब वे आठों पहर इसी की रट लगाये रहते हैं। इससे तो चिन्ता और बढ़ती ही है, कम नहीं होती। अससे तो यही अच्छा है, कि उनसे सब कुछ कह दिय जाए।

हरिदास—मेरे कहने का तो उन्हें यकीन आ चुका। हां, दीनानाथ कहें तो शायद यकीन हो

देवकी—अच्छा तो कल दीनानाथ को यहां भेज दो। लालाजी उसे देखते ही खुद बुला लेंगे, तुम्हें इस रोज-रोज की डांट-फ़टकर से तो छुट्टी मिल जाएगी।

हरिदास—अब मुझे इन फटकारों का जरा भी दुख नहीं होता। मेरी मेहनत और योग्यता का नतीजा आंखों के सामने मौजूद है। जब मैंने कारखाना आने हाथ में लिया था, आमदनी और खर्च का मीज़ान मुश्किल से बैठता था। आज पांच से का नफा है। तीसरा महीना खत्म होनेवाला है और मैं मशीन की आधी कीमत अदा कर चुका। शायद अगले महीने दो महीने में पूरी कीमत अदा हो जायेगी। उस वक्त से कारखाने का खर्च तिगुने से ज्यादा है लेकिन आमदनी पंचगुनी हो गयी है। हजरत देखेंगे तो आंखें खुल जाएंगी। कहां हाते में उल्लू बोलते थे। एक मेज़ पर बैठे आप ऊंघा करते थे, एक पर दीनानाथ कान कुरेदा करता था। मिस्त्री और फायरमैन ताश खेलते थ। बस, दो-चार घण्टे चक्की चल जाती थी। अब दम मारने की फुरसत नहीं है। सारी ज़िन्दगी में जो कुछ न कर सके वह मैंने तीन महीने मे करके दिखा दिया। इसी तजुर्बे और कार्रवाई पर आपको इतना घमण्ड था। जितना काम वह एक महीने में करते थे उतना मैं रोज कर ड़ालता हूँ।

देवकी ने भर्त्सनापूर्ण नेत्रों से देखकर कहा—अपने मुंह मियां मिट्ठू बनना कोई तुमसे सीख ले! जिस तरह मां अपने बेटे को हमेशा दुबला ही समझती है, उसी तरह बाप बेटे को हमेशा नादान समझा करता है। यह उनकी ममता है, बुरा मानने की बात नहीं है।

हरिदास ने लज्जित होकर सर झुका लिया।

दूसरे रोज दीनानाथ उनको देखने के बहाने से लाला हरनामदास की सेवा में उपस्थित हुआ। लालाजी उसे देखते ही तकिये के सहारे उठ बैठे और पागलों की तरह बेचैन होकर पूछा—क्यों, कारबार सब तबाह

हो गया कि अभी कुछ कसर बाकी है! तुम लोगों ने मुझे मुर्दा समझ लिया है। कभी बात तक न पूछी। कम से कम मुझे ऐसी उम्मीद न थी। बहू ने मेरी तीमारदारी ने की होती तो मर ही गया होती

दीनानाथ—आपका कुशल-मंगल रोज बाबू साहब से पूछ लिया करता था। आपने मेरे साथ जो नेकियां की हैं, उन्हें मैं भूल नहीं सकता। मेरा एक-एक रोआं आपका एहसानमन्द है। मगर इस बीच काम ही कुछ एकस था कि हाज़िर होने की मोहलत न मिली।

हरनामदास—खैर, कारखाने का क्या हाल है? दीवाला होने में क्या कसर बाकी है?

दीनानाथ ने ताज्जुब के साथ कहा—यह आपसे किसने कह दिया कि दीवाला होनेवाला है? इस अरसे में कारोबार में जो तरक्की हुई है, वह आप खुद अपनी आंखों से देख लेंगे।

हरनामदास व्यंग्यपूर्वक बोले—शायद तुम्हारे बाबू साहब ने तुम्हारी मनचाही तरक्की कर दी! अच्छा अब स्वामिभक्ति छोड़ो और साफ बतलाआ। मैंने ताकीद कर दी थी कि कारखाने का इन्तज़ाम तुम्हारे हाथ में रहेगा। मगर शायद हरिदास ने सब कुछ अपने हाथ में रखा।

दीनानाथ—जी हां, मगर मुझे इसका जरा भी दुख नहीं। वही रइस काम के लिए ठीक भी थे। जो कुछ उन्होंने कर दिखाया, वह मुझसे हरगिज न हो सकता।

हरनामदास—मुझे यह सुन-सुनकर हैरत होती है। बतलाओ, क्या तरक्की हुई?

दीनानाथ—तफ़सील तो बहुत ज्यादा होगी, मगर थोड़े मे यह समझ लीजिए कि पहले हम लोग जितना काम एक महीने में करते थे उतना अब रोज होता है। नयी मशीन आयी थी, उसकी आधी, कीमत अदा हो चुकी है। वह अक्सर रात को भी चलती है। ठाकुर कम्पनी का पांच हजार मन आटे का ठेका लिया था, वह पूरा होनेवाला है। जगतराम बनवारीलाल से कमसरियट का ठेका लिया है। उन्होंने हमको पांच सौ बोरे महावार का बयाना दिया है। इसी तरह और फुटकर काम कई गुना बढ़ गया है। आमदनी के साथ खर्च भी बढ़े हैं। कई आदमी नए रखे गये हैं, मुलाज़िमों को मजदूरी के साथ कमीशन भ्री मिलता है मगर खालिस नफा पहले के मुकाबले में चौगुने के करीब है।

हरनामदास ने बड़े ध्यान से यह बात सुनी। वह ग़ौर से दीनानाथ के चेहरे की तरफ देख रहे थे। शायद उसके दिन में पैठकर सच्चाई की तह तक पहुँचना चाहते थे। सन्देहपूर्ण स्वर में बोले—दीननाथ, तुम कभी मुझसे झूठ नहीं बोलते थे लेकिन तो भी मुझे इन बातों पर यक़ीन नहीं आता और जब तक अपनी आंखों से देख न लूंगा, यकीन न आयेगा।

दीनानाथ कुछ निराश होकर बिदा हुआ। उसे आशा थी कि लाला साहब तरक्की और कारगुजारी की बात सुनते ही फूले न समायेंगे और मेरी मेहनत की दाद देंगे। उस बेचारे को न मालूम था कि कुछ दिलों में सन्देह की जड़ इतनी मज़बूत होती है कि सबूत और दलील के हमले उस पर कुछ असर नहीं कर सकते। यहां तक कि वह अपनी आंख से देखने को भी धोखा या तिलिस्म समझता है।

दीनानाथ के चले जाने के बाद लाला हरनामदास कुछ देर तक गहरे विचार में डूबे रहे और फिर यकायक कहार से बग्घी मंगवायी, लाठी के सहारे बग्घी में आ बैठे और उसे अपने चक्कीघर चलने का हुक्म दिया।

दोपहर का वक्त था। कारखानों के मजदूर खाना खाने के लिए गोल के गोल भागे चले आते थे मगर हरिदास के कारखाने में काम जारी था। बग्घी हाते में दाखिल हुई, दोनों तरफ फूलों की कतारें नजर आयीं, माली क्यारियों में पानी दे रहा था। ठेले और गाड़ियों के मारे बग्घी को निकलने की जगह न मिलती थी। जिधर निगाह जाती थी, सफाईं और हरियाली नजर आती थी।

हरिदास अपने मुहर्रिर को कुछ खतों का मसौदा लिखा रहा था कि बूढ़े लाला जी लाठी टेकते हुए कारखाने में दाखिल हुए। हरिदास फौरन उठ खड़ा हुआ और उन्हें हाथों से सहारा देते हुए बोला—'आपने कहला क्यों न भेजा कि मैं आना चाहता हूँ, पालकी मंगवा देता। आपको बहुत तकलीफ़ हुई।' यह कहकर उसने एक आराम-कुर्सी बैठने के लिए खिसका दी। कारखाने के कर्मचारी दौड़े और उनके चारों तरफ बहुत अदब के साथ खड़े हो गये। हरनामदास कुर्सी पर बैठ गये और बोरों के छत चूमनेवाले ढ़ेर पर नजर दौड़ाकर बोले—मालूम होता है दीनानाथ सच कहता था। मुझे यहां कई नयी सूरतें नज़र आती हैं। भला कितना काम रोज होता है? भला कितना काम रोज होता है?

हरिदास—आजकल काम ज्यादा आ गया था इसलिए कोई पांच सौ मन रोजाना तैयार हो जाता था लेकिन औसत ढाई सौ मन का रहेगा। मुझे नयी मशीन की कीमत अदा करनी थी इसलिए अक्सर रात को भी काम होता है।

हरनामदास—कुछ क़र्ज लेना पड़ा?

हरिदास—एक कौड़ी नहीं। सिर्फ मशीन की आधी कीमत बाकी है।

हरनामदास के चेहरे पर इत्मीनाना का रंग नजर आया। संदेह ने वह विश्वास को जगह दी। प्यार-भरी आंखों से लड़के की तरफ देखा और करूण स्वर में बोले—बेटा, मैंने तुम्हार ऊपर बड़ा जुल्म किया, मुझे माफ करों। मुझे आदमियों की पहचान पर बड़ा घमण्ड था, लेकिन मुझे बहुत धोखा हुआ। मुझे अब से बहुत पहले इस काम से हाथ खींच लेना चाहिए था। मैंने तुम्हें बहुत नुकसान पहुँचाया। यह बीमारी बड़ी मुबारक है जिसने तुम्हारी परख का मौका दिया और तुम्हें लियाकत दिखाने का। काश, यह हमला पांच साल पहले ही हुआ होता। ईश्वर तुम्हें खुश रखे और हमेशा उन्नति दे, यही तुम्हारे बूढ़े बाप का आशीर्वाद है।

—'प्रेम बत्तीसी' से

वासना की कडियॉ

बहादुर, भाग्यशाली क़ासिम मुलतान की लड़ाई जीतकर घमंउ के नशे से चूर चला आता था। शाम हो गयी थी, लश्कर के लोग आरामगाह की तलाश मे नज़रें दौड़ाते थे, लेकिन क़ासिम को अपने नामदार मालिक की ख़िदमत में पहुंचन का शौक उड़ाये लिये आता था। उन तैयारियों का ख़याल करके जो उसके स्वागत के लिए दिल्ली में की गयी होंगी, उसका दिल उमंगो से भरपूर हो रहा था। सड़कें बन्दनवारों और झंडियों से सजी होंगी, चौराहों पर नौबतखाने अपना सुहाना राग अलापेंगे, ज्योंहि मैं सरे शहर के अन्दर दाखिल हूँगा। शहर में शोर मच जाएगा, तोपें अगवानी के लिए जोर-शोर से अपनी आवाजें बूलंद करेंगी। हवेलियों के झरोखों पर शहर की चांद जैसी सुन्दर स्त्रियां ऑखें गड़ाकर मुझे देखेंगी और मुझ पर फूलों की बारिश करेंगी। जड़ाऊ हौदों पर दरबार के लोग मेरी अगवानी को आयेंगे। इस शान से दीवाने खास तक जाने के बद जब मैं अपने हुजुर की ख़िदमत में पहुँचूँगा तो वह बॉहे खोले हुए मुझे सीने से लगाने के लिए उठेंगे और मैं बड़े आदर से उनके पैरों को चूम लूंगा। आह, वह शुभ घड़ी कब आयेगी? क़ासिम मतवाला हो गया, उसने अपने चाव की बेसुधी में घोड़े को एड़ लगायी।

कासिम लश्कर के पीछे था। घोड़ा एड़ लगाते ही आगे बढा, कैदियों का झुण्ड पीछे छूट गया। घायल सिपाहियों की डोलियां पीछे छूटीं, सवारों का दस्ता पीछे रहा। सवारों के आगे मुलतान के राजा की बेगमों और मैं उन्हें और शहजादियों की पनसें और सुखपाल थे। इन सवारियों के आगे-पीछे हथियारबन्द ख्वाजासराओं की एक बड़ी जमात थी। क़ासिम अपने रौ में घोड़ा बढाये चला आता था। यकायक उसे एक सजी हुई पालकी में से दो आंखें झांकती हुई नजर आयीं। क्रासिंग ठिठक गया, उसे मालूम हुआ कि मेरे हाथों के तोते उड़ गये, उसे अपने दिल में एक कंपकंपी, एक कमजोरी और बुद्धि पर एक उन्माद-सा अनुभव हुआ। उसका आसन खुद-ब-खुद ढ़ीला पड़ गया। तनी हुई गर्दन झुक गयी। नजरें नीची हुईं। वह दोनों आंखें दो चमकते और नाचते हुए सितारों की तरह, जिनमें जादू का-सा आकर्षण था, उसके आदिल के गोशे में बैठीं। वह जिधर ताकता था वहीं दोनों उमंग की रोशनी से चमकते हुए तारे नजर आते थे। उसे बर्छी नहीं लगी, कटार नहीं लगी, किसी ने उस पर जादू नहीं किया, मंतर नहीं किया, नहीं उसे अपने दिल में इस वक्त एक मजेदार बेसुधी, दर्द की एक लज्जत, मीठी-मीठी-सी एक कैफ़ियत और एक सुहानी चुभन से भरी हुई रोने की-सी हालत महसूस हो रही थी। उसका रोने को जी चाहता था, किसी दर्द की पुकार सुनकर शायद वह रो पड़ता, बेताब हो जाता। उसका दर्द का एहसास जाग उठा था जो इश्क की पहली मंजिल है।

क्षण-भर बाद उसने हुक्म दिया—आज हमारा यहीं कयाम होगा।

२

आधी रात गुजर चुकी थी, लश्कर के आदमी मीटी नींद सो रहे थे। चारों तरफ़ मशालें जलती थीं और तिलासे के जवान जगह-जगह बैठे जम्हाइयां लेते थे। लेकिन क़ासिम की आंखों में नींद न थी। वह अपने लम्बे-चौड़े पुरलुत्फ़ ख़ेमे में बैठा हुआ सोच रहा था—क्या इस जवान औरत को एक नजर देख लेना कोई बड़ा गुनाह है? माना कि वह मुलतान के राजा की शहजादी है और मेरे बादशाह अपने हरम को उससे रोशन करना चाहते हैं लेकिन मेरी आरजू तो सिर्फ इतनी है कि उसे एक निगाह देख लूँ और वह भी इस तरह कि किसी को खबर न हो। बस। और मान लो यह गुनाह भी हो तो मैं इस वक्त वह गुनाह करूँगा। अभी हजारों बेगुनाहों को इन्हीं हाथों से क़त्ल कर आया हूँ। क्या खुदा के दरबार में गुनाहों की माफ़ी सिर्फ़ इसलिए हो जाएगी कि बादशाह के हुक्म से किये गये? कुछ भी हो, किसी नाज़नीन को एक नजर देख लेना किसी की जान लेने से बड़ा गुनाह नहीं। कम से कम मैं ऐसा नहीं समझता।

क़ासिम दीनदार नौजवान था। वह देर तक इस काम के नैतिक पहलू पर ग़ौर करता रहा। मुलतान को फ़तेह करने वाला हीरो दूसरी बाधाओं को क्यों खयाल में लाता?

उसने अपने खेमे से बाहर निकलकर देखा, बेगमों के खेमे थोड़ी ही दूर पर गड़े हुए थे। क़ासिम ने तजान-बूझकर अपना खेमा उसके पास लगाया था। इन खेमों के चारों तरफ़ कई मशालें जल रही थीं और पांच हब्शी ख्वाजासरा रंगी तलवारें लिये टहल रहे थे। कासिम आकर मसनद पर लेट गया और सोचने लगा—इन कम्बख्तों को क्या नींद न आयेगी? और चारों तरफ़ इतनी मशाले क्यों जला रक्खी हैं? इनका गुल होना जरूरी है। इसलिए पुकारा—मसरूर।

-हुजुर, फ़रमाइए?

-मशालें बुझा दो, मुझे नींद नहीं आती।

-हुज़ूर, रात अंधेरी है।

-हां।

-जैसी हुज़ूर की मर्ज़ी।

ख्व़ाजासरा चला गया और एक पल में सब की सब मशालें गुल हो गयीं, अंधेरा छा गया। थोड़ी देर में एक औरत शहजादी के खेमे से निकलकर पूछा-मसरूम, सरकमार पूछती हैं, यह मशालें क्यों बुझा दी गयीं?

मशरूम बोला-सिपहदार साहब की मर्ज़ी। तुम लोग होशियार रहना, मुझे उनकी नियत साफ़ नहीं मालूम होती।

३

कासिम उत्सुकता से व्यग्र होकर कभी लेटता था, कभी उठ बैठता था, कभी टहलने लगता था। बार-बार दरवाजे पर आकर देखता, लेकिन पांचों ख्व़ाजासरा देंवों की तरह खडें नजर आते थे। क़ासिम को इस वक्त यही धुन थी कि शाहजादी का दर्शन क्योंकर हो। अंजाम की फ़िक्र, बदनामी का डर और शाही गुस्से का ख़तरा उस पुरज़ोर ख्वाहिश के नीचे दब गया था।

घड़ियाल ने एक बजाया। क़ासिम यों चौकं पड़ा गोया कोई अनहोनी बात हो गयी। जैसे कचहरी में बैठा हुआ कोई फ़रियाद अपने नाम की पुकार सुनकर चौंक पड़ता है। ओ हो, तीन घंटों से सुबह हो जाएगी। खेमे उखड़ जाएगें। लश्कर कूच कर देगा। वक्त तंग है, अब देर करने की, हिचकचाने की गुंजाइश नहीं। कल दिल्ली पहुँच जायेंगे। आरमान दिल में क्यों रह जाये, किसी तरह इन हरामखोर ख्वाजासराओं को चकमा देना चाहिए। उसने बाहर निकल आवाज़ दी-मसरूर।

--हुज़ूर, फ़रमाइए।

--होशियार हो न?

-हुज़ूर पलक तक नहीं झपकी।

-नींद तो आती ही होगी, कैसी ठंड़ी हवा चल रही है।

-जब हुज़ूर ही ने अभी तक आराम नहीं फ़रमाया तो गुलामों को क्योंकर नींद आती।

-मै तुम्हें कुछ तकलीफ़ देना चाहता हूँ।

-कहिए।

-तुम्हारे साथ पांच आदमी है, उन्हें लेकर जरा एक बार लश्कर का चक्कर लगा आओ। देखो, लोग क्या कर रहे हैं। अक्सर सिपाही रात को जुआ खेलते हैं। बाज आस-पास के इलाक़ों में जाकर ख़रमस्ती किया करते हैं। जरा होशियारी से काम करना।

मसरूर- मगर यहां मैदान खाली हो जाएगा।

क़ासिम- मे तुम्हारे आने तक खबरदार रहूँगा।

मसरूर- जो मर्ज़ी हुज़ूर।

क़ासिम- मैने तुम्हें मोतबर समझकर यह ख़िदमत सुपुर्द की है, इसका मुआवजा इंशाअल्ला तुम्हें साकर से अता होगा।

मसरूम ने दबी ज़बान से कहा-बन्दा आपकी यह चालें सब समझता है। इंशाअल्ला सरकार से आपको भी इसका इनाम मिलेगा। और तब जोर बोला-आपकी बड़ी मेहरबानी है।

एक लम्हें में पाँचों ख्वाजासरा लश्कर की तरफ़ चले। क़ासिम ने उन्हें जाते देखा। मैदान साफ़ हो गया। अब वह बेधड़क खेमें में जा सकता था। लेकिन अब क़ासिम को मालूम हुआ कि अन्दर जाना इतना आसान नहीं है जितना वह समझा था। गुनाह का पहलू उसकी नजर से ओझल हो गया था। अब सिर्फ ज़ाहिरी मुश्किलों पर निगाह थी।

४

क़ासिम दबे पांव शहज़ादी के खेमे के पास आया, हालांकि दबे पांव आने की जरूरत न थी। उस सन्नाटे में वह दौड़ता हुआ चलता तो भी किसी को खबर न होती। उसने ख़ेमे से कान लगाकर सुना, किसी की आहट न मिली। इत्मीनान हो गया। तब उसने कमर से चाकू निकाला और कांपते हुए हाथों से खेमे की दो-तीन रस्सियां काट डालीं। अन्दर जाने का रास्ता निकल आया। उसने अन्दर की तरफ़ झांका।

एक दीपक जल रहा था। दो बांदियां फ़र्श पर लेटी हुई थीं और शहज़ादी एक मख़मली गद्दे पर सो रही थी। क़ासिम की हिम्मत बढ़ी। वह सरककर अन्दर चला गया, और दबे पांव शहजादी के क़रीब जाकर उसके दिल-फ़रेब हुस्न का अमृत पीने लगा। उसे अब वह भय न था जो ख़ेमे में आते वक्त हुआ था। उसने जरूरत पड़ने पर अपनी भागने की राह सोच ली थी।

क़ासिम एक मिनट तक मूरत की तरह खड़ा शहजादी को देखता रहा। काली-काली लटें खुलकर उसके गालों को छिपाये हुए थी। गोया काले-काले अक्षरों में एक चमकता हुआ शायराना खयाल छिपा हुआ था। मिट्‌टी की अस दुनिया में यह मजा, यह घुलावट, वह दीप्ति कहां? कासिम की आंखें इस दृश्य के नशे में चूर हो गयीं। उसके दिल पर एक उमंग बढाने वाला उन्माद सा छा गया, जो नतीजों से नहीं डरता था। उत्कण्ठा ने इच्छा का रूप धारण किया। उत्कण्ठा में अधिरता थी और आवेश, इच्छा में एक उन्माद और पीड़ा का आनन्द। उसके दिल में इस सुन्दरी के पैरों पर सर मलने की, उसके सामने रोने की, उसके क़दमों पर जान दे देने की, प्रेम का निवेदन करने की , अपने गम का बयान करने की एक लहर-सी उठने लगी वह वासना के भवंर मे पड़ गया।

५

क़ासिम आध घंटे तक उस रूप की रानी के पैरो के पास सर झुकाये सोचता रहा कि उसे कैसे जगाऊँ। ज्यों ही वह करवट बदलती वह ड़र के मारे थरथरा जाता। वह बहादुरी जिसने मुलतान को जीता था, उसका साथ छोड़े देती थी।

एकाएक कसिम की निगाह एक सुनहरे गुलाबपोश पर पड़ी जो करीब ही एक चौकी पर रखा हुआ था। उसने गुलाबपोश उठा लिया और खड़ा सोचता रहा कि शहज़ादी को जगाऊँ या न जगाऊँ या न जगाउँ? सेने की डली पड़ी हुई देखकर हमं उसके उठाने में आगा-पीछा होता है, वही इस वक्त उसे हो रहा था। आखिरकार उसने कलेजा मजबूत करके शहजादी के कान्तिमान मुखमंण्डल पर गुलाब के कई छींटे दिये। दीपक मोतियों की लड़ी से सज उठा।

शहज़ादी ने चौंकर आंखें खोलीं और क़ासिम को सामने खड़ा देखकर फौरन मुंह पर नक़ाब खींच लिया और धीरे से बोली-मसरूर।

क़ासिम ने कहा-मसरूर तो यहां नही है, लेकिन मुझे अपना एक अदना जांबाज़ ख़ादिम समझिए। जो हुक्त होगा उसकी तामील में बाल बराबर उज्र न होगा।

शहज़ादी ने नक़ाब और खींच लिया और ख़ेमे के एक कोने में जाकर खड़ी हो गयी।

क़ासिम को अपनी वाक्-शक्ति का आज पहली बार अनुभव हुआ। वह बहुत कम बोलने वाला और गम्भीर आदमी था। अपने हृउय के भावों को प्रकट करने में उसे हमेशा झिझक होती थी लेकिन इस वक्त शब्द बारिश की बूंदो की तरह उसकी जबान पर आने लगे। गहरे पानी के बहाव में एक दर्द का स्वर पैदा हो जाता है। बोला-मैं जानता हूँ कि मेरी यह गुस्ताखी आपकी नाजुक तबियत पर नागवार गुज़री है। हुज़ूर, इसकी जो सजा मुनाशिब समझें उसके लिए यह सर झुका हुआ है। आह, मै ही वह बदनसीब, काले दिल का इंसान हूँ जिसने आपके बुजुर्ग बाप और प्यारे भाईयों के खून से अपना दामन नापाक किया है। मेरे ही हाथों मुलतान के हजारो जवान मारे गये, सल्तनत तबाह हो गयी, शाही खानदान पर मुसीबत आयी और आपको यह स्याह दिन देखना पडा। लेकिन इस वक्त आपका यह मुजरिम आपके सामने हाथ बांधे हाज़िर है। आपके एक इशारे पर वह आपके कदमों पर न्योठावर हो जायेगा और उसकी नापाक जिन्दगी से दुनिया पाक हो जायेगी। मुझे आज मालूम हुआ कि बहादुरी के परदे में वासना आदमी से कैसे-कैसे पाप करवाती है। यह महज लालच की आग है, राख में छिपी हुई सिर्फ़ एक कातिल जहर है, खुशनुमा शीशे में बन्द! काश मेरी आंखें पहले खुली होतीं तो एक नामवर शाही ख़ानदान यों खाक में न मिल जाता। पर इस मुहब्बत की शमा ने, जो कल शाम को मेरे सीने में रोशन हुई, इस अंधेरे कोने को रोशनी से भर दिया। यह उन रूहानी जज्बात का फैज है, जो कल मेरे दिल में जाग उठे, जिन्होंने मुझे लाजच की कैद से आज़ाद कर दिया।

इसके बाद क़ासिम ने अपनी बेक़रारी और दर्दे दिल और वियोग की पीड़ा का बहुत ही करूण शदों में वर्णन किया, यहां तक कि उसके शब्दों का भण्डार खत्म हो गया। अपना हाल कह सुनाने की लालसा पूरी हो गयी।

६

लेकिन वह वासना बन्दी वहां से हिला नहीं। उसकी आरज़ुओं ने एक कदम और आगे बढाया। मेरी इस रामकहानी का हासिल क्या? अगर सिर्फ़ दर्दे दिल ही सुनाना था, तो किसी तसवीर को, सुना सकता था। वह तसवीर इससे ज्यादा ध्यान से और ख़ामाशी से मेरे ग़म की दास्तान सुनती। काश, मैं भी इस रूप की रानी की मिठी आवाज सुनता, वह भी मुझसे कुछ अपने दिल का हाल कहती, मुझे मालूम होता कि मेरे इस दर्द के किस्से का उसके दिल पर क्या असर हुआ। काश, मुझे मालूत होता कि जिस आग में मैं फुंका जा रहा हूँ, कुछ उसकी आंच उधर भी पहुँचती है या नहीं। कौन जाने यह सच हो कि मुहब्बत पहले माशूक के दिल में पैदा होती है। ऐसा न होता तो वह सब्र को तोड़ने वाली निगाह मुझ पर पड़ती ही क्यों? आह, इस हुस्न की देवी की बातों में कितना लुत्फ़ आयेगा। बुलबुल का गाना सुन सकता, उसकी आवाज कितनी दिलकश होगी, कितनी पाकीजा, कितनी नूरानी, अमृत में डूबीं हुई और जो कहीं वह भी मुझसे प्यार करती हो तो फिर मुझसे ज्यादा खुशनसीब दुनिया में और कौन होगा?

इस ख़याल से क़ासिम का दिल उछलने लगा। रगों में एक हरकत-सी महसूस हुई। इसके बावजूद कि बांदियों के जग जाने और मसरूर की वापसी का धड़का लगा हुआ था, आपसी बातचीत की इच्छा ने उसे अधीर कर दिया, बोला-हुस्न की मलका, यह जख्मी दिल आपकी इनायत की नज़र की मुस्तहक है। कुड़ उसके हाल पर रहम न कीजिएगा?

शहज़ादी ने नकाब की ओट से उसकी तरफ़ ताका और बोली–जो खुद रहम का मुस्तहक हो, वह दूसरों के साथ क्या रहम कर सकता है? क़ैद में तड़पते हुए पंछी से, जिसके न बोल हैं न पर, गाने की उम्मीद रखना बेकार है। मैं जानती हूँ कि कल शाम को दिल्ली के ज़ालिम बादशाह के सामने बांदियों की तरह हाथ बांधे खड़ी हूंगी। मेरी इज्जत, मेरे रूतबे और मेरी शान का दारोमदार खानदानी इज्जत पर नहीं बल्कि मेरी सूरत पर होगा। नसीब का हक पूरा हा जायेगा। कौन ऐसा आदमी है जो इस जिन्दगी की आरज़ू रक्खेगा? आह, मुल्तान की शहजादी आज एक जालिम, चालबाज, पापी आदमी की वासना का शिकार बनने पर मजबूर है। जाइए, मुझे मेरे हाल पर छोड़ दीजिए। मैं बदनसीब हूँ, ऐसा न हो कि मेरे साथ आपको भी शाही गुस्से का शिकार बनना पड़े। दिल मे कितनी ही बातें है मगर क्यों कहूँ, क्या हासिल? इस भेद का भेद बना रहना ही अच्छा है। आपमें सच्ची बहादुरी और खुद्दारी है। आप दुनिया में अपना नाम पैदा करेंगे, बड़े-बड़े काम करेगें, खुदा आपके इरादों में बरकत दे–यही इस आफ़प की मारी हुई औरत की दुआ है। मैं सच्चे दिल से कहती हूँ कि मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है। आज मुझे मालूम हुआ कि मुहब्बत बैर से कितनी पाक होती है। वह उस दामन में मुंह छिपाने से भी परहेज नहीं करती जो उसके अजीजों के खून से लिथड़ा हुआ हो। आह, यह कम्बख्त दिल उबला पड़ता है। अपने काल बन्द कर लीजिए, वह अपने आपे में नहीं है, उसकी बातें न सुनिए। सिर्फ़ आपसे यही बिनती है कि इस ग़रीब को भूल न जाइएगा। मेरे दिल में उस मीठे सपने की याद हमेशा ताजा रहेगी, हरम की क़ैद में यही सपना दिल को तसकीन देता रहेगा, इस सपने को तोड़िए मत। अब खुदा के वास्ते यहां से जाइए, ऐसा न हो कि मसरूर आ जाए, वह एक ज़ालिम है। मुझे अंदेशा है कि उसने आपको धोखा दिया, अजब नहीं कि यहीं कहीं छुपा बैठा हो, उससे होथियार रहिएगा। खुदा हाफ़िज!

७

क़ासिम पर एक बेसुधी की सी हालत छा गयी। जैसे आत्मा का गीत सुनने के बाद किसी योगी की होती है। उसे सपने में भी जो उम्मीद न हो सकती थी, वह पूरी हो गयी थी। गर्व से उसकी गर्दन की रगें तन गयीं, उसे मालूम हुआ कि दुनिया में मुझसे ज्यादा भाग्यशाली दूसरा नहीं है। मैं चाहूँ तो इस रूप की वाटिका की बहार लूट सकता हूँ, इस प्याले से मस्त हो सकता हूँ। आह वह कितनी नशीली, कितनी मुबारक जिन्दगी होती! अब तक क़ासिम की मुहब्बत ग्वाले का दूध थी, पानी से मिली हुई; शहज़ादी के दिल की तड़प ने पानी को जलाकर सच्चाई का रंग पैदा कर दिया। उसके दिल ने कहा-मैं इस रूप की रानी के लिए क्या कुछ नहीं कर सकता? कोई ऐसी मुसीबत नहीं है जो झेल न सकूँ, कोई आग नहीं, जिसमें कूद न सकूं, मुझे किसका डर है! बादशाह का? मैं बादशाह का गुलाम नहीं, उसके सामने हाथ फैलानेवाला नहीं, उसका मोहताज नहीं। मेरे जौहर की हर एक दरबार में कद्र हो सकती है। मैं आज इस गूलामी की जंजीर को तोड़ डालूँगा और उस देश में जा बसूँगा, जहां बादशाह के फ़रिश्ते भी पर नहीं मार सकते। हुस्न की नेमत पाकर अब मुझे और किसी चीज़ की इच्छा नहीं। अब अपनी आरज़ुओं का क्यों गला घोटूं? कामनाओं को क्यों निराशा का ग्रास बनने दूँ? उसने उन्माद की-सी स्थिति में कमर से तलवार

निकाली और जोश के साथ बोला–जब तक मेरे बाज़ूओ में दम है, कोई आपकी तरफ़ आंख उठाकर देख भी नहीं सकता। चाहे वह दिल्ली का बादशाह ही क्यो ने हो! मैं दिल्ली के कूचे और बाजार में ख़ून की नदी बहा दुंगा, सल्तनत की जड़े हिलाउ दुँगा, शाही तख्त को उल्ट-पलट रख दूँगा, और कुछ न कर सकूंगा तो मर मिटूंगा। पर अपनी आंखो से आपकी याह जिल्लत न देखूँगा।

शहज़ादी आहिस्ता-आहिस्ता उसके क़रीब आयी बोली-मुझे आप पर पूरा भरोसा है, लेकिन आपको मेरी ख़ातिर से जब्त और सब्र करना होगा। आपके लिए मैं महलहरा की तकलीफ़ें और जुल्म सब सह लूंगी। आपकी मुहब्बत ही मेरी जिन्दगी का सहारा होगी। यह यक़ीन कि आप मुझे अपनी लौंडी समझते हैं, मुझे हमेशा सम्हालता रहेगा। कौन जाने तक़दीर हमें फिर मिलाये।

क़ासिम ने अकड़कर कहा-आप दिल्ली जायें ही क्यों! हम सबुह होते-होते भरतपुर पहुँच सकते हैं।

शहजादी–मगर हिन्दोस्तान के बाहर तो नहीं जा सकते। दिल्ली की आंख का कांटा बनकर मुमकिन है हम जंगलों और वीरानों में जिन्दगी के दिन काटें पर चैन नसीब न होगा। असलियत की तरफ से आंखे न बन्द की जिए, खुदा न आपकी बहादुरी दी है, पर तेगे इस्फ़हानी भी तो पहाड़ से टकराकर टुट ही जाएगी।

कासिम का जोश कुछ धीमा हुआ। भ्रम का परदा नजरों से हट गया। कल्पना की दुनिया में बढ़-बढ़कर बातें करना बाते करना आदमी का गुण है। क़ासिम को अपनी बेबसी साफ़ दिखाई पड़ने लगी। बेशक मेरी यह लनतरानियां मज़ाक की चीज़ हैं। दिल्ली के शाह के मुक़ाबिलें में मेरी क्या हस्ती है? उनका एक इशारा मेरी हस्ती को मिटा सकता है। हसरत-भरे लहजे में बोला-मान लीजिए, हमको जंगलो और बीरानों में ही जिन्दगी के दिन काटने पड़ें तो क्या? मुहब्बत करनेवाले अंधेरे कोने में भी चमन की सैर का लुफ़्त उठाते हैं। मुहब्बत में वह फ़क़ीरों और दरवेशों जैसा अलगाव है, जो दुनिया की नेमतों की तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखता।

शहज़ादी–मगर मुझ से यह कब मुमकिन है कि अपनी भलाई के लिए आपको इन खतरों में डालूँ? मै शाहे दिल्ली के जुल्मों की कहानियां सुन चुकी हूँ, उन्हें याद करके रोंगेटे खड़े हो जाते हैं। खुदा वह दिन न लाये कि मेरी वजह से आपका बाल भी बांका हो। आपकी लड़ाइयों के चर्चे, आपकी खैरियत की खबरे, उस क़ैद में मुझको तसकीन और ताक़त देंगी। मैं मुसीबते झेलूंगी और हंस–हंसकर आग में जलूँगी और माथे पर बल न आने दूँगी। हाँ, मै शाहे दिल्ली के दिल को अपना बनाऊँगी, सिर्फ आपकी खातिर से ताकि आपके लिए मौक़ा पड़ने पर दो-चार अच्छी बातें कह सकूँ।

८

लेकिन क़ासिम अब भी वहां से न हिला। उसकर आरजूएं उम्मीद से बढ़कर पूरी होती जाती थीं, फिर हवस भी उसी अन्दाज से बढ़ती जाती थी। उसने सोचा अगर हमारी मुहब्बत की बहार सिर्फ़ कुछ लमहों की मेहमान है, तो फिर उन मुबारकबाद लमहों को आगे की चिन्ता से क्यों बेमज़ा करें। अगर तक़दीर में इस हुस्न की नेमत को पाना नहीं लिखा है, तो इस मौक़े को हाथ से क्यों जाने दूँ। कौन जाने फिर मुलाकात हो या न हो? यह मुहब्बत रहे या न रहें? बोला-शहज़ादी, अगर आपका यही आखिरी फ़ैसाल है, तो मेरे लिए सिवाय हसरत और मायूसी के और क्या चारा है? दूख होगा, कुढूंगा, पर सब्र करूंगा। अब एक दम के लिए यहां आकर मेरे पहलू में बैठ जाइए ताकि इस बेकरार दिल को तस्कीन हो। आइए, एक लमहे के लिए भूल जाएं कि जुदाई की घड़ी हमारे सर पर खड़ी है। कौन जाने यह दिन कब आयें? शान-शौकत ग़रीबों की याद भूला देती है, आइए एक घड़ी मिलकर बैठें। अपनी जल्फ़ो की अम्बरी खुशबू से इस जलती हुई रूह को तरावट पहुँचाइए। यह बांहें, गलो की जंजीरे बने जाएं। अपने बिल्लौर जैसे हाथों से प्रेम के प्याले भर-भरकर पिलाइए। साग़र के ऐसे दौर चलें कि हम छक जाएं! दिलो पर सुरूर को ऐसा गाढ़ा रंग चढ़े जिस पर जुदाई की तुर्शियों का असर न हो। वह रंगीन शराब पिलाइए जो इस झुलसी हुई आरज़ूओं की खेती को सींच दे और यह रूह की प्यास हमेशा के लिए बुझ जाए।

मए अग़वानी के दौर चलने लगे। शहज़ादी की बिल्लौरी हथेली में सुर्ख शराब का प्याला ऐसा मालूम होता था जैसे पानी की बिल्लौरी सतह पर कमल का फूल खिला हो क़ासिम दीनो दुनिया से बेख़बर प्याले पर प्याले चढ़ाता जाता था जैसे कोई डाकू लूट के माल पर टूटा हुआ हो। यहां तक कि उसकी आंखे लाल हो गयीं, गर्दन झुक गयी, पी-पीकर मदहोश हो गया। शहजादी की तरफ़ वसाना-भरी आंखो से ताकता हुआ। बाहें खोले बढा कि घड़ियाल ने चार बजाये और कूच के डंके की दिल छेद देनेवाली आवाजें कान में आयीं।

बाँहें खुली की खुली रह गयीं। लौडियां उठ बैठी, शहजादी उठ खड़ी हुई और बदनसीब क़ासिम दिल की आरज़ुएं लिये खेमे से बाहर निकला, जैसे तक़दीर के फ़ैलादी पंजे ने उसे ढकेलकर बाहर निकाल दिया हो। जब अपने खेमे में आया तो दिल आरज़ूओं से भरा हुआ था। कुछ देर के बाद आरज़ुओं ने हवस का रूप भरा और अब बाहर निकला तो दिल हरसतों से पामाल था, हवस का मकड़ी-जाल उसकी रूह के लिए लोहे की जंजीरें बना हुआ था।

९

शाम का सुहाना वक़्त था। सुबह की ठण्डी-ठण्डी हवा से सागर में धीरे धीरे लहरें उठ रही थीं। बहादुर, क़िस्मत का धनी क़ासिम मुलतान के मोर्चे को सर करके गर्व की मादिरा पिये उसके नशे में चूर चला आता था। दिल्ली की सड़के बन्दनवारों और झंडियों से सजी हुई थीं। गुलाब और केवड़े की ख़ुशब चारों तरफ उड़ रही थी। जगह-जगह नौबतखाने अपना सुहाना राग गया। तोपों ने अगवानी की घनगरज सदांए बुलन्द कीं। ऊपर झरोखों में नगर की सुन्दरियां सितारों की तरह चमकने लगीं। कासिम पर फूलों की बरखा होने लगी। वह शाही महल के क़रीब पहुँचार तो बड़े-बड़े अमीर-उमरा उसकी अगवानी के लिए क़तार बांधे खड़े थे। इस शान से वह दीवाने खास तक पहुँचा। उसका दिमाग इस वक्त सातवें आसमान पर था। चाव-भरी आंखों से ताकता हुआ बादशाह के पास पहुँचा और शाही तख्त को चूम लिया। बादशाह मुस्काराकर तख़्त से उतरे और बांहें खोले हुए क़ासिम को सीने से लगाने के लिए बढ़े। क़ासिम आदर से उनके पैरों को चूमने के लिए झुका कि यकायक उसके सिर पर एक बिजली-सी गिरी। बादशाह को तेज खंजर उसकी गर्दन पर पड़ा और सर तन से जुदा होकर अलग जा गिरा। खून के फ़ौवारे बादशाह के क़दमो की तरफ़, तख्त की तरफ़ और तख़्त के पीछे खड़े होने वाले मसरूर की तरफ़ लपके, गोया कोई झल्लाया हुआ आग का सांप है।

घायल शरीर एक पल में ठंडा हो गया। मगर दोनों आंखे हसरत की मारी हुई दो मूरतों की तरह देर तक दीवारों की तरफ़ ताकती रहीं। आखिर वह भी बन्द हो गयीं। हवस ने अपना काम पूरा कर दिया। अब सिर्फ़ हसरत बाक़ी थी। जो बरसों तक दीवाने खास के दरोदीवार पर छायी रही और जिसकी झलक अभी तक क़ासिम के मज़ार पर घास-फूस की सूरत में नज़र आती है।

-'प्रेम बत्तीसी' से

पुत्र-प्रेम

बाबू चैतन्यादास ने अर्थशास्त्र खूब पढ़ा था, और केवल पढ़ा ही नहीं था, उसका यथायोग्य व्याहार भी वे करते थे। वे वकील थे, दो-तीन गांवो मे उनक जमींदारी भी थी, बैंक में भी कुछ रुपये थे। यह सब उसी अर्थशास्त्र के ज्ञान का फल था। जब कोई खर्च सामने आता तब उनके मन में स्वाभावत: प्रश्न होता था-इससे स्वयं मेरा उपकार होगा या किसी अन्य पुरुष का? यदि दो में से किसी का कुछ भी उपहार न होता तो वे बड़ी निर्दयता से उस खर्च का गला दबा देते थे। 'व्यर्थ' को वे विष के समाने समझते थे। अर्थशास्त्र के सिद्धन्त उनके जीवन-स्तम्भ हो गये थे।

बाबू साहब के दो पुत्र थे। बड़े का नाम प्रभुदास था, छोटे का शिवदास। दोनों कालेज में पढ़ते थे। उनमें केवल एक श्रेणी का अन्तर था। दोनो ही चुतर, होनहार युवक थे। किन्तु प्रभुदास पर पिता का स्नेह अधिक था। उसमें सदुत्साह की मात्रा अधिक थी और पिता को उसकी जात से बड़ी-बड़ी आशाएं थीं। वे उसे विद्योन्नति के लिए इंग्लैण्ड भेजना चाहते थे। उसे बैरिस्टर बनाना उनके जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा थी।

२

किन्तु कुछ ऐसा संयोग हुआ कि प्रभादास को बी०ए० की परीक्षा के बाद ज्वर आने लगा। डाक्टरों की दवा होने लगी। एक मास तक नित्य डाक्टर साहब आते रहे, पर ज्वर में कमी न हुई दूसरे डाक्टर का इलाज होने लगा। पर उससे भी कुछ लाभ न हुआ। प्रभुदास दिनों दिन क्षीण होता चला जाता था। उठने-बैठने की शक्ति न थी यहां तक कि परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने का शुभ-सम्बाद सुनकर भी उसक चेहरे पर हर्ष का कोई चिन्ह न दिखाई दिया । वह सदैव गहरी चिन्जा में डुबा रहाता था । उसे अपना जीवन बोझ सा जान पडने लगा था । एक रोज चैतन्यादास ने डाक्टर साहब से पूछा यह क्या बात है कि दो महीने हो गये और अभी तक दवा कोई असर नहीं हुआ ?

डाक्टर साहब ने सन्देहजनक उत्तर दिया- मैं आपको संशय में नही डालना चाहता । मेरा अनुमान है कि यह टयुबरक्युलासिस है ।

चैतन्यादास ने व्यग्र होकर कहा – तपेदिक ?

डाक्टर - जी हां उसके सभी लक्षण दिखायी देते है।

चैतन्यदास ने अविश्वास के भाव से कहा मानों उन्हे विस्मयकारी बात सुन पड़ी हो –तपेदिक हो गया !

डाक्टर ने खेद प्रकट करते हुए कहा- यह रोग बहुत ही गुप्तरीति सेशरीर में प्रवशे करता है।

चैतन्यदास – मेरे खानदान में तो यह रोग किसी को न था।

डाक्टर – सम्भव है, मित्रों से इसके जर्म (कीटाणु) मिले हो।

चैतन्यदास कई मिनट तक सोचने के बाद बोले- अब क्या करना चाहिए ।

डाक्टर -दवा करते रहिये । अभी फेफड़ो तक असर नहीं हुआ है इनके अच्छे होने की आशा है ।

चैतन्यदास – आपके विचार में कब तक दवा का असर होगा?

डाक्टर – निश्चय पूर्वक नहीं कह सकता । लेकिन तीन चार महीने में वे स्वस्थ हो जायेगे । जाड़ो में इसरोग का जोर कम हो जाया करता है ।

चैतन्यदास – अच्छे हो जाने पर ये पढने में परिश्रम कर सकेंगे ?

डाक्टर – मानसिक परिश्रम के योग्य तो ये शायद ही हो सकें।

चैतन्यदास – किसी सेनेटोरियम (पहाड़ी स्वास्थयालय) में भेज दूँ तो कैसा हो?

डाक्टर - बहुत ही उत्तम ।

चैतन्यदास तब ये पूर्णरीति से स्वस्थ हो जाएंगे?

डाक्टर - हो सकते है, लेकिन इस रोग को दबा रखने के लिए इनका मानसिक परिश्रम से बचना ही अच्छा है।

चैतन्यदास नैराश्य भाव से बोले – तब तो इनका जीवन ही नष्ट हो गया।

गर्मी बीत गयी। बरसात के दिन आये, प्रभुदास की दशा दिनो दिन बिगड़ती गई। वह पड़े-पड़े बहुधा इस रोग पर की गई बड़े बड़े डाक्टरों की व्याख्याएं पढा करता था। उनके अनुभवो से अपनी अवस्था की तुलना किया करता था। उनके अनुभवो स अपनी अवस्था की तुलना किया करता । पहले कुछ दिनो तक तो वह अस्थिरचित –सा हो गया था। दो चार दिन भी दशा संभली रहती तो पुस्तके देखने लगता और विलायत यात्रा की चर्चा करता । दो चार दिन भीज्वर का प्रकोप बढ जाता तो जीवन से निराश हो जाता । किन्तु कई मास के पश्चात जब उसे विश्वास हो गया कि इसरोग से मुक्त होना कठिन है तब उसने जीवन की भी चिन्ता छोड़ दी पथ्यापथ्य का विचार न करता , घरवालो की निगाह बचाकर औषधियां जमीन पर गिरा देता मित्रोंके साथ बैठकर जी बहलाता। यदि कोई उससे स्वास्थ्य केविषय में कुछ पूछता तोचिढकर मुंह मोड लेता । उसके भावों में एक शान्तिमय उदासीनता आ गई थी, और बातो मेंएक दार्शनिक मर्मज्ञता पाई जाती थी । वह लोक रीति और सामाजिक प्रथाओं पर बड़ी निर्भीकता से आलोचनारंए किया करता । यद्यपि बाबू चैतन्यदास के मन में रह –रहकर शंका उठा करती थी कि जब परिणाम विदित ही है तब इस प्रकार धन का अपव्यय करने से क्या लाभ तथापि वेकुछ तो पुत्र-प्रेम और कुछ लोक मत के भय से धैर्य के साथ् दवा दर्पन करतेक जाते थें ।

- जाड़े का मौसम था। चैतन्यदास पुत्र के सिरहाने बैठे हुए डाक्टर साहब की ओर प्रश्नात्मक दृष्टि से देख रहे थे। जब डाक्टर साहब टेम्परचर लेकर (थर्मामीटर लगाकर) कुर्सी पर बैठे तब चैतन्यदास ने पूछा- अब तो जाड़ा आ गया। आपको कुछ अन्तर मालूम होता है ?

- डाक्टर – बिलकुल नहीं , बल्कि रोग और भी दुस्साध्य होता जाता है।
- चैतन्यदास ने कठोर स्वर में पूछा – तब आप लोग क्यो मुझे इस भ्रम में डाले हुए थे किजाडे में अच्छे हो जायेगें ? इस प्रकार दूसरो की सरलता का उपयोग करना अपना मतलब साधने का साधन हो तो हो इसे सज्जनताकदापि नहीं कह सकते।
- डाक्टर ने नम्रता से कहा- ऐसी दशाओं में हम केवल अनुमान कर सकते है। और अनुमान सदैव सत्य नही होते। आपको जेरबारी अवश्य हुई पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मेरी इच्छा आपको भ्रम में डालने के नहीं थी ।
- शिवादास बड़े दिन की छुटिटयों में आया हुआ था , इसी समय वहि कमरे में आ गया और डाक्टर साहब से बोला – आप पिता जी की कठिनाइयों का स्वयं अनुमान कर सकते हैं । अगर उनकी बात नागवार लगी तो उन्हे क्षमा कीजिएगा ।
- चैतन्यदास ने छोटे पुत्र की ओर वात्सल्य की दृष्टि से देखकर कहा-तुम्हें यहां आने की जरुरत थी? मै तुमसे कितनी बार कह चुका हूँ कि यहॉंआया करो । लेकिन तुमको सबर ही नही होता ।
- शिवादास ने लज्जित होकर कहा- मै अभी चला जाता हूँ। आप नाराज न हों । मै केवल डाक्टर साहब से यह पूछना चाहताथा कि भाई साहब के लिए अब क्या करना चाहिए ।
- डाक्टर साहब ने कहा- अब केवल एकही साधनऔर है इन्हे इटली के किसी सेनेटारियम मे भेज देना चाहिये ।
- जचैतन्यदास ने सजग होकर पूछा- कितना खर्च होगा? 'ज्यादा स ज्यादा तीन हजार । साल भसा रहना होगा?
- निश्चय है कि वहां से अच्छे होकर आवेगें ।
- जी नहीं यहातो यह भयंकर रोग है साधारण बीमारीयो में भी कोई बात निश्चय रुप से नही कही जा सकती ।'
- इतना खर्च करनेपर भी वहां सेज्यो के त्यो लौटा आये तो?
- तो ईश्वार कीइच्छा। आपको यह तसकीन हो जाएगी कि इनके लिए मै जो कुछ कर सकता था। कर दिया ।
- 4

आधी रात तक घर में प्रभुदास को इटली भेजने के प्रस्तवा पर वाद-विवाद होता रहा। चैतन्यदास का कथन था कि एक संदिग्य फल केलिए तीन हजार का खर्च उठाना बुद्धिमत्ता के प्रतिकूल है। शिवादास फल उनसे सहमत था । किन्तु उसकी माता इस प्रस्ताव का बड़ी ढृढ़्ता के साथ विरोध कर रही थी । अतं में माता की धिक्कारों का यह फल हुआ कि शिवादास लज्जित होकर उसके पक्ष में हो गया बाबू साहब अकेले रह गये । तपेश्वरी ने तर्क से कामलिया । पति केसदभावो को प्रज्वलित करेन की चेष्टा की ।धन की नश्वरात कीलोकोक्तियां कहीं इनं शस्त्रों से विजय लाभ न हुआ तो अश्रु बर्षा करने लगी । बाबू साहब जल –बिन्दुओ क इस शर प्रहार के सामने न ठहर सके । इन शब्दों में हार स्वीकार की- अच्छा भाई रोओं मत। जो कुछ कहती हो वही होगा।

तपेश्वरी –तो कब ?

'रुपये हाथ में आने दो ।'

'तो यह क्यों नही कहते किभेजना ही नहीं चाहते?'

भेजना चाहता हूँ किन्तु अभी हाथ खाली हैं। क्या तुम नहीं जानतीं?'

'बैक में तो रुपये है? जायदाद तो है? दो-तीन हजार का प्रबन्ध करना ऐसा क्या कठिन है?'

चैतन्यदास ने पत्नी को ऐसी दृष्टि से देखा मानो उसे खाजायेगें और एक क्षण केबाद बोले – बिलकूल बच्चों कीसी बाते करतीहो। इटली में कोई संजीवनी नही रक्खी हुई है जो तुरन्त चमत्कार दिखायेगी । जब वहां भी केवल प्रारबध ही की परीक्षा करनी है तो सावधानी से कर लेगें । पूर्व पूरुषो की संचित जायदाद और रक्खहुए रुपये में अनिश्चित हित की आशा पर बलिदान नहीं कर सकता।

तपेश्वरी ने डरते – डरते कहा- आखिर , आधा हिस्सा तो प्रभुदास का भी है?

बाबू साहब तिरस्कार करते हुए बोले – आधा नही, उसमें मै अपना सर्वस्व दे देता, जब उससे कुछ आशा होती , वह खानदान की मर्यादा मै और ऐश्वर्य बढाता और इस लगाये। हुए लगाये हुए धन केफलस्वरुप कुछ कर दिखाता । मै केवल भावुकता के फेर में पड़कर धन का ह्रास नहीं कर सकता ।

तपेश्वीर अवाक रह गयी। जीतकर भी उसकी हार हुई ।

इस प्रस्ताव केछः महीने बाद शिवदास बी.ए पास होगया। बाबू चैतत्यदास नेअपनी जमींदरी केदो आने बन्धक रखकर कानून पढने के निमित्त उसे इंग्लैड भेजा ।उसे बम्बई तक खुद पहुँचाने गये । वहां से लौटेतो उनके अतं: करण में सदिच्छायों से परिमित लाभ होने की आशा थी उनके लौटने केएक सप्ताह पीछे अभागा प्रभुदास अपनी उच्च अभिलाषओं को लिये हुए परलोक सिधारा ।

5

चैतन्यदास मणिकर्णिका घाट पर अपने सम्बन्धियों केसाथ बैठे चिता – ज्वाला की ओर देख रहे थे ।उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी । पुत्र –प्रेम एक क्षण के लिए अर्थ –सिद्धांत पर गालिब हो गयाथा। उस विरक्तावस्था में उनके मन मे यह कल्पना उठ रही थी । - सम्भव है, इटली जाकर प्रभुदास स्वस्थ हो जाता । हाय! मैने तीन हजार का मुंह देखा और पुत्र रत्न को हाथ से खो दिया। यह कल्पना प्रतिक्षण सजग होती थी और उनको ग्लानि, शोक और पश्चात्ताप के बाणो से बेध रही थी । रह रहकर उनके हृदय में बेदना कीशुल सी उठती थी । उनके अन्तर की ज्वाला उस चिता –ज्वाला से कम दग्धकारिणी न थी। अक्स्मात उनके कानों में शहनाइयों की आवाज आयी। उन्होने आंख ऊपर उठाई तो मनुष्यों का एक समूह एक अर्थी के साथ आता हुआ दिखाई दिया। वे सब के सब ढोल बजाते, गाते, पुष्य आदि की वर्षा करते चले आते थे । घाट पर पहुँचकर उन्होने अर्थी उतारी और चिता बनाने लगे । उनमें से एक युवक आकर चैतन्यदास के पास खड़ा हो गया। बाबू साहब ने पूछा –किस मुहल्ले में रहते हो?

युवक ने जवाब दिया- हमारा घर देहात में है । कल शाम को चले थे । ये हमारे बाप थे । हम लोग यहां कम आते है, पर दादा की अन्तिम इच्छा थी कि हमें मणिकर्णिका घाट पर ले जाना ।

चैतन्यदास -येसब आदमी तुम्हारे साथ है?

युवक -हॉं और लोग पीछे आते है । कई सौ आदमी साथ आये है। यहां तक आने में सैकड़ो उठ गयेपर सोचता हूँ किबूढे पिता की मुक्ति तो बन गई । धन और ही किसलिए ।

चैतन्यदास- उन्हें क्या बीमारी थी ?

युवक ने बड़ी सरलता से कहा , मानो वह अपने किसी निजी सम्बन्धी से बात कर रहा हो।- बीमार का किसी को कुछ पता नहीं चला। हरदम ज्वर चढा रहता था। सूखकर कांटा हो गये थे । चित्रकूट हरिद्वार प्रयाग सभी स्थानों में ले लेकर घूमे । वैद्यो ने जो कुछ कहा उसमे कोई कसर नही की।

इतने में युवक का एक और साथी आ गया। और बोला –साहब , मुंह देखा बात नहीं, नारायण लड़का दे तो ऐसा दे । इसने रुपयों को ठीकरे समझा ।घर की सारी पूंजी पिता की दवा दारु में स्वाहा कर दी । थोड़ी सी जमीन तक बेच दी पर काल बली के सामने आदमी का क्या बस है।

युवक ने गदगद स्वर से कहा – भैया, रुपया पैसा हाथ का मैल है। कहां आता है कहां जाता है, मुनष्य नहीं मिलता। जिन्दगानी है तो कमा खाउंगा। पर मन में यह लालसा तो नही रह गयी कि हाय! यह नही किया, उस वैद्य के पास नही गया नही तो शायद बच जाते। हम तो कहते है कि कोई हमारा सारा घर द्वार लिखा ले केवल दादा को एक बोल बुला दे ।इसी माया –मोह का नाम जिन्दगानी हैं , नहीं तो इसमे क्या रक्खा है? धन से प्यारी जान जान से प्यारा ईमान । बाबू साहब आपसे सच कहता हूँ अगर दादा के लिए अपने बस की कोई बात उठा रखता तो आज रोते न बनता । अपना ही चित्त अपने को धिक्कारता । नहीं तो मुझे इस घड़ी ऐसा जान पड़ता है कि मेरा उद्धार एक भारी ऋण से हो गया। उनकी आत्मा सुख और शान्ति से रहेगीतो मेरा सब तरह कल्याण ही होगा।

बाबू चैतन्यादास सिर झुकाए ये बाते सुन रहे थे ।एक -एक शब्द उनके हृदय में शर के समान चुभता था। इस उदारता के प्रकाश में उन्हें अपनी हृदय-हीनता, अपनी आत्मशुन्यता अपनी भौतिकता अत्यनत भयंकर दिखायी देती थी । उनके चित्त परइस घटना का कितना प्रभाव पड़ा यह इसी से अनुमान किया जा सकता हैं कि प्रभुदास के अन्त्येष्टि संस्कार में उन्होने हजारों रुपये खर्च कर डाले उनके सन्तप्त हृदय की शान्ति के लिए अब एकमात्र यही उपाय रह गया था।

‘सरस्वती’ , जून, 1932

इज्ज़त का ख़ून

मैंने कहानियों और इतिहासो मे तकदीर के उलट फेर की अजीबो- गरीब दास्ताने पढी हैं । शाह को भिखमंगा और भिखमंगें को शाह बनते देखा है तकदीर एक छिपा हुआ भेद हैं । गालियों में टुकड़े चुनती हुई औरते सोने के सिंहासन पर बैठ गई और वह ऐश्वर्य के मतवाले जिनके इशारे पर तकदीर भी सिर झुकाती थी ,आन की शान में चील कौओं का शिकार बन गये है।पर मेरे सर पर जो कुछ बीती उसकी नजीर कहीं नहीं मिलती आह उन घटनाओं को आज याद करतीहूं तो रोगटे खड़े हो जाते है ।और हैरत होती है । कि अब तक मै क्यो और क्योंकर जिन्दा हूँ । सौन्दर्य लालसाओं का स्त्रोत हैं । मेरे दिल में क्या लालसाएं न थीं पर आह ,निष्ठूर भाग्य के हाथों में मिटीं । मै क्या जानती थी कि वह आदमी जो मेरी एक-एक अदा पर कुर्बान होता था एक दिन मुझे इस तरह जलील और बर्बाद करेगा ।

आज तीन साल हुए जब मैने इस घर में कदम रक्खा उस वक्त यह एक हरा भरा चमन था ।मै इस चमन की बुलबूल थी , हवा में उड़ती थीख् डालियों पर चहकती थी , फूलों पर सोती थी । सईद मेरा था। मै सईद की थी । इस संगमरमर के हौज के किनारे हम मुहब्बत के पासे खेलते थे । - तुम मेरी जान हो। मै उनसे कहती थी –तुम मेरे दिलदार हो । हमारी जायदाद लम्बी चौड़ी थी। जमाने की कोई फ्रिक,जिन्दगी का कोई गम न था । हमारे लिए जिन्दगी सशरीर आनन्द एक अनन्त चाह और बहार का तिलिस्म थी, जिसमें मुरादे खिलती थी । और ाखुशियॉं हंसती थी जमाना हमारी इच्छाओं पर चलने वाला था। आसमान हमारी भलाई चाहता था। और तकदीर हमारी साथी थी।

एक दिन सईद ने आकर कहा- मेरी जान , मै तुमसे एक विनती करने आया हूँ । देखना इन मुस्कराते हुए होठों पर इनकार का हर्फ न आये । मै चाहता हूँ कि अपनी सारी मिलकियत, सारी जायदाद तुम्हारे नाम चढ़वा दूँ मेरे लिए तुम्हारी मुहब्बत काफी है। यही मेरे लिए सबसे बड़ी नेमत है मै अपनी हकीकत को मिटा देना चाहता हूँ । चाहता हूँ कि तुम्हारे दरवाजे का फकीर बन करके रहूँ । तुम मेरी नूरजहॉं बन जाओं ;
मैं तुम्हारा सलीम बनूंगा , और तुम्हारी मूंगे जैसी हथेली के प्यालों पर उम्र बसर करुंगा।

मेरी आंखें भर आयी। खुशियां चोटी पर पहुँचकर आंसु की बूंद बन गयीं।

2

पर अभी पूरा साल भी न गुजरा था कि मुझे सईद के मिजाज में कुछ तबदीली नजर आने लगी । हमारे दरमियान कोई लड़ाई-झगड़ा या बदमजगी न हुई थी मगर अब वह सईद न था। जिसे एक लमहे के लिए भी मेरी जुदाई दूभर थी वह अब रात की रात गयाब रहता ।उसकी आंखो में प्रेम की वह उंमग न थी न अन्दाजों में वह प्यास ,न मिजाज में वह गर्मी।

कुछ दिनों तक इस रुखेपन ने मुझे खूब रुलाया। मुहब्बत के मजे याद आ आकर तड़पा देते । मैने पढा थाकि प्रेम अमर होता है ।क्या, वह स्त्रोत इतनी जल्दी सूख गया? आह, नहीं वह अब किसी दूसरे चमन को शादाब करता था। आखिर मै भी सईद से आंखे चूराने लगी । बेदिली से नहीं, सिर्फ इसलिए कि अब मुझे उससे आंखे मिलाने की ताव न थी।उस देखते ही महुब्बत के हजारों करिश्मे नजरो केसामने आ जाते और आंखे भर आती । मेरा दिल अब भी उसकी तरफ खिचंता था कभी – कभी बेअख्तियार जी चाहता कि उसके पैरों पर गिरुं और कहूं –मेरे दिलदार , यह बेरहमी क्यो ? क्या तुमने मुझसे मुहं फेर लिया है । मुझसे क्या खता हुई ? लेकिन इस स्वाभिमान का बुरा हो जो दीवार बनकर रास्ते में खड़ा हो जाता ।
यहां तक कि धीर-धीरे दिल में भी मुहब्बत की जगह हसद ने ले ली। निराशा के धैर्य ने दिल को तसकीन दी । मेरे लिए सईद अब बीते हुए बसन्त का एक भूला हुआ गीत था। दिल की गर्मी ठण्डी हो गयी । प्रेम का दीपक बुझ गया। यही नही, उसकी इज्जत भी मेरे दिल से रुखसत हो गयी। जिस आदमी के प्रेम के पवित्र मन्दिर मे मैल भरा हुंआ होवह हरगिज इस योग्य नही कि मै उसके लिए घुलूं और मरुं ।

एक रोज शाम के वक्त मैं अपने कमरे में पंलग पर पड़ी एक किस्सा पढ़ रही थी , तभी अचानक एक सुन्दर स्त्री मेरे कमरे मे आयी। ऐसा मालूम हूआ कि जैसे कमरा जगमगा उठा ।रुप की ज्योति ने दरो

दीवार को रोशान कर दिया। गोया अभी सफेदी हुईहैं उसकी अलंकृत शोभा, उसका खिला हुआ फूला जैसा लुभावना चेहरा उसकी नशीली मिठास, किसी तारीफ करुं मुझ पर एक रोब सा छा गया । मेरा रुप का घमंड धूल में मिल गया है। मै आश्चर्य में थी कि यह कौन रमणी है और यहां क्योंकर आयी। बेअख्तियार उठी कि उससे मिलूं और पूछूं कि सईद भी मुस्कराता हुआ कमरे में आया मैं समझ गयी कि यह रमणी उसकी प्रेमिका है। मेरा गर्व जाग उठा । मैं उठी जरुर पर शान से गर्दन उठाए हुए आंखों में हुस्न के रौब की जगह घृणा का भाव आ बैठा । मेरी आंखों में अब वह रमणी रुप की देवी नहीं डसने वाली नागिन थी।मै फिर चारपाई पर बैठगई और किताब खोलकर सामने रख ली- वह रमणी एक क्षण तक खड़ी मेरी तस्वीरों को देखती रही तब कमरे से निकली चलते वक्त उसने एक बार मेरी तरफ देखा उसकी आंखों से अंगारे निकल रहे थे । जिनकी किरणों में हिंसप्रतिशोध की लाली झलक रही थी । मेरे दिल में सवाल पैदा हुंआ- सईद इसे यहां क्यों लाया? क्या मेरा घमण्ड तोड़ने के लिए?

3

जायदाद पर मेरा नाम था पर वह केवल एक,भ्रम था, उस परअधिकार पूरी तरह सईद का था । नौकर भी उसीको अपना मालिक समझते थें और अक्सर मेरे साथ ढिठाई से पेश आते । मैं सब्र केसाथ् जिन्दगी केदिन काट रही थी । जब दिल में उमंगे न रहीं तो पीड़ा क्यों होती ?

सावन का महीना था , काली घटा छायी हुई थी , और रिसझिम बूंदें पड़ रही थी । बगीचे पर हसद का अंधेरा और सिहास दराख्तों पर जुंगनुओ की चमक ऐसी मालूम होती थी । जैसे कि उनके मुंह से चिनगारियॉँ जैसी आहें निकल रही हैं । मै देर तक हसद का यह तमाशा देखती रही । कीड़े एक साथ् चमकते थे और एक साथ् बुझ जाते थे, गोया रोशानी की बाढेंछूट रही है। मुझे भी झूला झूलने और गाने का शौक हुआ। मौसम की हालतें हसंद के मारे हुए दिलों परभरी अपना जादु कर जाती है । बगीचे में एक गोल बंगला था। मै उसमें आयी और बरागदे की एक कड़ी में झूला डलवाकर झूलने लगी । मुझे आज मालूम हुआकि निराशा में भी एक आध्यात्मिक आनन्द होता है जिसकी हाल उसको नही मालूम जिसकी इच्छाई पूर्ण है । मैं चाव से मल्हार गान लगी सावन विरह और शोक का महीना है । गीत में एक वियोगी । ह्रदय की गाथा की कथा ऐसे दर्द भरे शब्दों बयान की गयी थी कि बरबस आंखों से आंसू टपकने लगे । इतने में बाहर से एक लालटेन की रोशनी नजर आयी। सईद दोनो चले आ रहेथे । हसीना ने मेरे पास आकर कहा-आज यहां नाच रंग की महफिल सजेगी और शराब के दौर चलेगें।

मैने घृणा से कहा – मुबारक हो ।

हसीना - बारहमासे और मल्हार कीताने उड़ेगी साजिन्दे आ रहे है ।

मैं – शौक से ।

हसीना - तुम्हारा सीना हसद से चाक हो जाएगा ।

सईद ने मुझेसे कहा- जुबैदा तुम अपने कमरे में चली रही जाओ यह इस वक्त आपे में नहीं है।

हसीना - ने मेरी तरफ लाल –लाल आखों निकालकर कहा-मैंतुम्हें अपने पैरों कीधूल के बराबर भी नही समझती ।

मुझे फिर जब्त न रहा । अगड़कर बोली –और मै क्या समझाती हूं एक कुतिय, दुसरों की उगली हुई हडिडयो चिचोड़ती फिरती है ।

अब सईद के भी तेवर बदले मेरी तरफ भयानक आंखो सेदेखकर बोले- जुबैदा , तुम्हारे सर पर शैतान तो नही संवार है?

सईद का यह जुमला मेरे जिगर में चुभ गया, तपड़ उठी, जिन होठों से हमेशा मुहब्बत और प्यार कीबाते सुनी हो उन्ही से यह जहर निकले और बिल्कुल बेकसूर ! क्या मै ऐसी नाचीज और हकीर हो गयी हूँ कि एक बाजारु औरत भी मुझे छेड़कर गालियां दे सकती है। और मेरा जबान खोलना मना! मेरे दिल मेंसाल भर से जो बुखार हो रहाथा, वह उछल पड़ा ।मै झूले से उतर पड़ी और सईद की तरफ शिकायता-भरी निगाहों से देखकर बोली – शैतान मेरे सर पर सवार हो या तुम्हारे सर पर, इसका फैसला तुम खुद कर सकते हों । सईद , मै तुमको अब तक शरीफ और गैरतवाला समझतीथी, तुम खुद कर सकते हो । बेवफाई की, इसका मलाला मुझे जरुर था , मगर मैने सपनों में भी यह न सोचा था कि

तुम गैरत से इतने खाली हो कि हया-फरोश औरत के पीछे मुझे इस तरह जलीज करोगें । इसका बदला तुम्हें खुदा से मिलेगा।

हसीना ने तेज होकर कहा- तू मुझे हया फरोश कहतीहै ?

मैं- बेशक कहतीहूँ।

सईद –और मै बेगैरत हूँ . ?

मैं – बेशक ! बेगैरत ही नहीं शोबदेबाज , मक्कार पापी सब कुछ ।यह अल्फाज बहुत घिनावने है लेकिन मेरे गुस्से के इजहार के लिए काफी नहीं ।

मै यह बातें कह रही थी कि यकायक सईद केलम्बे तगडे , हटटे कटटे नौकर ने मेरी दोनो बाहें पकड़ ली और पलक मारते भर में हसीना ने झूले की रस्सियां उतार कर मुझे बरामदे के एकलोहे केखम्भे सेबाध दिया।

इस वक्त मेरे दिल में क्या ख्याल आ रहे थे । यह याद नहीं पर मेरी आंखो के सामने अंधेरा छा गया था । ऐसा मालूम होताथा कि यह तीनो इंसान नहीं यमदूतहै गूस्से की जगहदिल में डर समा गयाथा । इस वक्त अगर कोई रौबी ताकत मेरे बन्धनों को काट देती , मेरे हाथों में आबदार खंजर देदेती तो भी तो जमीन पर बैठकर अपनी जिल्लत और बेकसी पर आंसु बहाने केसिवा और कुछ न कर सकती। मुझे ख्याल आताथाकि शायद खुदा की तरफ से मुझ परयह कहर नाजिल हुआ है। शायद मेरी बेनमाजी और बेदीनी की यह सजा मिल रहा है। मैं अपनी पिछली जिन्दगी पर निगाह डाल रही थी कि मुझसे कौन सी गलती हुई हौ जिसकी यह सजा है। मुझे इस हालत में छोड़कर तीनो सूरते कमरे मेंचली गयीं । मैने समझा मेरी सजा खत्म हुई लेकिन क्या यह सब मुझे यो ही बधां रक्खेगे ? लौडियां मुझे इस हालत में देख ले तो क्या कहें? नहीं अब मैइस घर में रहने के काबिल ही नही ।मै सोच रही थी कि रस्सियां क्योकर खालूं मगर अफसोस मुझे न मालूम थाकि अभी तक जो मेरी गति हुई है वह आने वाली बेरहमियो का सिर्फ बयाना है । मैअब तक न जानती थीकि वह छोटा आदमी कितना बेरहम , कितना कातिल है मै अपने दिल से बहस कररही थी कि अपनी इस जिल्लत मुझ पर कहां तक है अगर मैंे हसीना की उन दिल जलाने वाली बातों को जबाव न देती तो क्या यह नौबत ,न आती ? आती और जरुर आती। वहा काली नागिन मुझे डसने का इरादा करके चली ,थी इसलिए उसने ऐसे दिलदुखाने वाले लहजे में ही बात शुरु की थी । मै गुस्से मे आकर उसको लान तान करुँ और उसे मुझें जलील करने का बहाना मिल जाय।

पानी जोरसे बरसने लगा, बौछारो से मेरा सारा शरीर तर हो गया था। सामने गहरा अंधेरा था। मैं कान लगाये सुन रही थी कि अन्दर क्या मिसकौट हो रही है मगर मेह की सनसनाहट के कारण आवाजे साफ न सुनायी देती थी । इतने लालटेन फिर से बरामदे मेआयी और तीनो उरावनी सूरते फिर सामने आकर खड़ी हो गयी । अब की उस खून परी के हाथो में एक पतली सी कमची थी उसके तेवर देखकर मेरा खून सर्द हो गया । उसकी आंखो मे एक खून पीने वाली वहशत एक कातिल पागलपन दिखाई दे रहा था। मेरी तरफ शरारत –भरी नजरो सेदेखकर बोली बेगम साहबा ,मै तुम्हारी बदजबानियो का ऐसा सबक देना चाहती हूं । जो तुम्हें सारी उम्र याद रहे । और मेरे गुरु ने बतलाया है कि कमची सेज्यादा देर तक ठहरने वाला और कोई सबक नहीं होता ।

यह कहकर उस जालिम ने मेरी पीठ पर एक कमची जोर से मारी। मै तिलमिया गयी मालूम हुआ । कि किसी ने पीठ परआग की चिरगारी रख दी । मुझेसे जब्त न हो सका माँ बाप ने कभी फूल की छड़ी से भीन मारा था। जोर से चीखे मार मारकर रोने लगी । स्वाभिमान , लज्जा सब लुप्त हो गयी ।कमची की डरावनी और रौशन असलियत के सामने और भावनाएं गायब हो गयीं । उन हिन्दु देवियो क दिल शायद लोहे के होते होगे जो अपनी आन पर आग में कुद पड़ती थी । मेरे दिल पर तो इस दिल पर तो इस वक्त यही खयाल छाया हुआ था कि इस मुसीबत से क्योकर छुटकारा हो सईद तस्वीर की तरह खामोश खड़ा था। मैं उसक तरफ फरियाद कीआंखे से देखकर बड़े विनती केस्वर में बोली – सईद खुदा क लिए मुझे इस जालिम सेबचाओ ,मै तुम्हारे पैरो पडती हूँ ख, तुम मुझे जहर दे दो, खंजर से गर्दन काट लो लेकिन यह मुसीबत सहने की मुझमें ताब नहीं ।उन दिलजोइयों को याद करों, मेरी मुहब्बत का याद करो, उसी क सदके इस वक्त मुझे इस अजाब से बचाओ, खुदा तुम्हें इसका इनाम देगा ।

सईद इन बातो से कुछ पिंघला। हसीना की तरह डरी हुई आंखों से देखकर बोला- जरीना मेरे कहने से अब जाने दो । मेरी खातिर से इन पर रहम करो।

ज़रीना तेर बदल कर बोली- तुम्हारी ख़ातिर से सब कुछ कर सकती हूं, गालियां नहीं बर्दाश्त कर सकती।

सईद –क्या अभी तुम्हारे खयाल में गालियों की काफी सजा नहीं हुई?

जरीना- तब तो आपने मेरी इज्जत की ख़ूब कद्र की! मैने रानियों से चिलमचियां उठवायी है, यह बेगम साहबा है किस ख्याल में? मै इसे अगर

कुछ छुरी से काटूँ तब भ्ज्ञी इसकी बदजबानियों की काफ़ी सजा न होगी।

सईद-मुझसे अब यह जुल्म नहीं देखा जाता।

ज़रीना-आंखे बन्द कर लो।

सईद- जरीना, गुस्सा न दिलाओ, मैं कहता हूँ, अब इन्हें माफ़ करो।

ज़रीना ने सईद को ऐसी हिकारत-भरी आंखों से देखा गोया वह उसका गुलाम है। खुदा जाने उस पर उसने क्या मन्तर मार दिया था कि उसमें ख़ानदानी ग़ैरत और बड़ाई ओ इन्सानियत का ज़रा भी एहसास बाकी न रहा था। वह शायद उसे गुस्से जैसे मर्दानास जज्बे के क़ाबिल ही न समझती थी। हुलिया पहचानने वाले कितनी गलती करते हैं क्योंकि दिखायी कुछ पड़ता है, अन्दर कुछ होता है ! बाहर के ऐसे सुन्दर रुप के परदे में इतनी बेरहमी, इतनी निष्ठुरता ! कोई शक नहीं, रुप हुलिया पहचानने की विद्या का दुशमन है। बोली – अच्छा तो अब आपको मुझ पर गुस्सा आने लगा ! क्यों न हो, आखिर निकाह तो आपने बेगम ही से किया है। मैं तो हया- फरोश कुतिया ही ठहरी !

सईद- तुम ताने देती हो और मुझसे यह खून नहीं देखा जाता।

ज़रीना – तो यह क़मची हाथ में लो, और इसे गिनकर सौ लगाओ। गुस्सा उतर जाएगा, इसका यही इलाज है।

ज़रीना – फिर वही मजाक़।

ज़रीना- नहीं, मैं मज़ाक नहीं करती।

सईद ने क़मची लेने को हाथ बढ़ाया मगर मालूम नहीं जरीना को क्या शुबहा पैदा हुआ, उसने समझा शायद वह क़ मची को तोड़ कर फेंक देंगे। कमची हटा ली और बोली- अच्छा मुझसे यह दगा ! तो लो अब मैं ही हाथों की सफाई दिखाती हूँ। यह कहकर उसे बेदर्द ने मुझे बेतहाशा कमचियां मारना शुरु कीं। मैं दर्द से ऐंठ-ऐंठकर चीख रही थी। उसके पैरों पड़ती थी, मिन्नते करती थी, अपने किये पर शर्मिन्दा थी, दुआएं देती थी, पीर और पैगम्बर का वास्ता देती थी, पर उस क़ातिल को ज़रा भी रहम न आता था। सईद काठ के पुतले की तरह दर्दोसितम का यह नज्जारा आंखो से देख रहा था और उसको जोश न आता था। शायद मेरा बड़े-से-बड़े दुश्मन भी मेरे रोने-धोने पर तरस खातां मेरी पीठ छिलकर लहू-लुहान हो गयी, जख़्म पड़ते थे, हरेक चोट आग के शोले की तरह बदन पर लगती थी। मालूम नहीं उसने मुझे कितने दर्रे लगाये, यहां तक कि क़मची को मुझ पर रहम आ गया, वह फटकर टूट गयी। लकड़ी का कलेजा फट गया मगर इन्सान का दिल न पिघला।

४

मुझे इस तरह जलील और तबाह करके तीनों ख़बीस रुहें वहां से रुखसत हो गयीं। सईद के नौकर ने चलते वक्त मेरी रस्सियां खोल दीं। मैं कहां जाती ? उस घर में क्योंकर क़दम रखती ?

मेरा सारा जिस्म नासूर हो रहा था लेकिन दिल नके फफोले उससे कहीं ज्यादा जान लेवा थे। सारा दिल फफोलों से भर उठा था। अच्छी भावनाओं के लिए भी जगह बाक़ी न रही थी। उस वक्त मैं किसी अंधे को कुंए में गिरते देखती तो मुझे हंसी आती, किसी यतीम का दर्दनाक रोना सुनती तो उसका मुंह चिढ़ाती। दिल की हालत में एक ज़बर्दस्त इन् कालाब हो गया था। मुझे गुस्सा न था, गम न था, मौत की आरजू न थी, यहां तक कि बदला लेने की भावना न थी। उस इन्तहाई जिल्लत ने बदला लेने की इच्छा को भी खत्म कर दिया थरा। हालांकि मैं चाहती तो कानूनन सईद को शिकंजे में ला सकती थी , उसे दाने-दाने के लिए तरसा सकती थी लेकिन यह बेइज्ज़ती, यह बेआबरुई, यह पामाली बदले के खयाल के दायरे से बाहर थी। बस, सिर्फ़ एक चेतना बाकी थी और वह अपमान की चेतना थी। मैं हमेशा के लिए ज़लील हो गयी। क्या यह दाग़ किसी तरह मिट सकता था ? हरगिज नहीं। हां, वह छिपाया जा सकता था और

उसकी एक ही सूरत थी कि जिल्लत के काले गड्डे में गिर पड़ूँ ताकि सारे कपड़ों की सियाही इस सियाह दाग को छिपा दे। क्या इस घर से बियाबान अच्छा नहीं जिसके पेंदे में एक बड़ा छेद हो गया हो? इस हालत में यही दलील मुझ पर छा गयी। मैंने अपनी तबाही को और भी मुकम्मल, अपनी जिल्लत को और भी गहरा, आने काले चेहरे को और ळभी काला करने का पक्का इरादा कर लिया। रात-भर मैं वहीं पड़ी कभी दर्द से कराहती और कभी इन्हीं खयालात में उलझती रही। यह घातक इरादा हर क्षण मजबूत से और भी मजबूत होता जाता था। घर में किसी ने मेरी खबर न ली। पौ फटते ही मैं बाग़ीचे से बाहर निकल आयी, मालूम नहीं मेरी लाज-शर्म कहां गायब हो गयी थी। जो शख्स समुन्दर में ग़ोते खा चुका हो उसे ताले- तलैयों का क्या डर ? मैं जो दरो-दीवार से शर्माती थी, इस वक्त शहर की गलियों में बेधड़क चली जा रही थी-चोर कहां, वहीं जहां जिल्लत की कद्र है, जहां किसी पर कोई हंसने वाला नहीं, जहां बदनामी का बाज़ार सजा हुआ है, जहां हया बिकती है और शर्म लुटती है !

इसके तीसरे दिन रुप की मंडी के एक अच्छे हिस्से में एक ऊंचे कोठे पर बैठी हुई मैं उस मण्डी की सैर कर रही थी। शाम का वक्त था, नीचे सड़क पर आदमियों की ऐसी भीड़ थी कि कंधे से कंधा छिलता था। आज सावन का मेला था, लोग साफ़-सुथरे कपड़ पहने क़तार की क़तार दरिया की तरफ़ जा रहे थे। हमारे बाज़ार की बेशकीमती जिन्स भी आज नदी के किनारे सजी हुई थी। कहीं हसीनों के झूले थे, कहीं सावन की मीत, लेकिन मुझे इस बाज़ार की सैर दरिया के किनारे से ज्यादा पुरलुत्फ मालूम होती थी, ऐसा मालूम होता है कि शहर की और सब सड़कें बन्द हो गयी हैं, सिर्फ़ यही तंग गली खुली हुई है और सब की निगाहें कोठों ही की तरफ़ लगी थीं ,गोया वह जमीन पर नहीं चल रहें हैं, हवा में उड़ना चाहते हैं। हां, पढ़े-लिखे लोगों को मैंने इतना बेधड़क नहीं पाया। वह भी घूरते थे मगर कनखियों से। अधेड़ उम्र के लोग सबसे ज्यादा बेधड़क मालूम होते थे। शायद उनकी मंशा जवानी के जोश को जाहिर करना था। बाजार क्या था एक लम्बा-चौड़ा थियेटर था, लोग हंसी-दिल्लगी करते थे, लुत्फ उठाने के लिए नहीं, हसीनों को सुनाने के लिए। मुंह दूसरी तरफ़ था, निगाह किसी दूसरी तरफ़। बस, भांडों और नक्कालों की मजलिस थी।

यकायक सईद की फिंटन नजर आयी। मैं रउस पर कई बार सैर कर चुकी थी। सईद अच्छे कपड़े पहने अकड़ा हुआ बैठा था। ऐसा सजीला, बांका जवान सारे शहर में न था, चेहरे-मोहरे से मर्दानापन बरसता था। उसकी आंख एक बारे मेरे कोठे की तरफ़ उठी और नीचे झुक गयी। उसके चेहरे पर मुर्दनी- सी छा गयी जेसे किसी जहरीले सांप ने काट खाया हो। उसने कोचवान से कुछ कहा, दम के दम में फ़िटन हवा हो गयी। इस वक्त उसे देखकर मुझे जो द्वेषपूर्ण प्रसन्नता हुई, उसके सामने उस जानलेवा दर्द की कोई हक़ीक़त न थी। मैंने जलील होकर उसे जलील कर दिया। यक कटार कमचियों से कहीं ज्यादा तेज थी। उसकी हिम्मत न थी कि अब मुझसे आंख मिला सके। नहीं, मैंने उसे हरा दिया, उसे उम्र-भर के दिलए कैद में डाल दिया। इस कालकोठरी से अब उसका निकलना गैर-मुमकिन था क्योंकि उसे अपने खानदान के बड़प्पन का घमण्ड था।

दूसरे दिन भोर में खबर मिली कि किसी क़ातिल ने मिर्जा सईद का काम तमाम कर दिया। उसकी लाश उसीर बागीचे के गोल कमरे में मिलीं सीने में गोली लग गयी थी। नौ बजे दूसरे खबर सुनायी दी, जरीना को भी किसी ने रात के वक्त क़त्ल कर डाला था। उसका सर तन जुदा कर दिया गया। बाद को जांच-पड़ताल से मालूम हुआ कि यह दोनों वारदातें सईद के ही हाथों हुई। उसने पहले जरीना को उसके मकान पर क़त्ल किया और तब अपने घर आकर अपने सीने में गोली मारी। इस मर्दाना गैरतमन्दी ने सईद की मुहब्बत मेरे दिल में ताजा कर दी।

शाम के वक्त मैं अपने मकान पर पहुँच गयी। अभी मुझे यहां से गये हुए सिर्फ चार दिन गुजरे थे मगर ऐसा मालूम होता था कि वर्षो के बाद आयी हूँ। दरोदीवार पर हसरत छायी हुई थी। मैाने घर में पांव रक्खा तो बरबस सईद की मुस्कराती हुई सूरत आंखों के सामने आकर खड़ी हो गयी-वही मर्दाना हुस्न, वहीं बांकपन, वहीं मनुहार की आंखे। बेअख्तियार मेरी आंखे भर आयी और दिल से एक ठण्डी आह निकल आयी। ग़म इसका न था कि सईद ने क्यों जान दे दी। नहीं, उसकी मुजरिमाना बेहिसी और रुप के पीछे भागना इन दोनों बातों को मैं मरते दम तक माफ़ न करुंगी। गम यह था कि यह पागलपन उसके सर में क्यों समाया ? इस वक्त दिल की जो कैफ़ियत है उससे मैं समझती हूँ कि कुछ दिनों में सईद की बेवफाई और बेरहमी का घाव भर जाएगा, अपनी जिल्लत की याद भी शायद मिट जाय, मगर उसकी चन्दरोजा मुहब्बत का नक्श बाकी रहेगा और अब यसही मेरी जिन्दगी का सहारा है।

--उर्दू 'प्रेम पचीसी' से

होली की छुट्टी

वर्नाक्युलर फ़ाइनल पास करने के बाद मुझे एक प्राइमरी स्कूल में जगह वमिली, जो मेरे घर से ग्यारह मील पर था। हमारे हेडमास्टर साहब को छुट्टियों में भी लड़कों को पढ़ाने की सनक थी। रात को लड़के खाना खाकर स्कूल में आ जाते और हेडमास्टर साहब चारपाई पर लेटकर अपने खर्राटों से उन्हें पढ़ाया करते। जब लड़कों में धौल-धप्पा शुरु हो जाता और शोर-गुल मचने लगता तब यकायक वह खरगोश की नींद से चौंक पड़ते और लड़को को दो- चार तकाचे लगाकर फिर अपने सपनों के मजे लेने लगते। ग्यायह-बारह बजे रात तक यही ड्रामा होता रहता, यहां तक कि लड़के नींद से बेक़रार होकर वहीं टाट पर सो जाते। अप्रैल में सलाना इम्तहान होनेवाला था, इसलिए जनवरी ही से हाय-तौ बा मची हुई थी। नाइट स्कूलों पर इतनी रियायत थी कि रात की क्लासों में उन्हें न तलब किया जाता था, मगर छुट्टियां बिलकुल न मिलती थीं। सोमवती अमावस आयी और निकल गयी, बसन्त आया और चला गया,शिवरात्रि आयी और गुजर गयी। और इतवारों का तो जिक्र ही क्या है। एक दिन के लिए कौन इतना बड़ा सफ़र करता, इसलिए कई महीनों से मुझे घर जाने का मौका न मिला था। मगर अबकी मैंने पक्का इरादा कर लिया था कि होली परर जरुर घर जाऊंगा, चाहे नौकरी से हाथ ही क्यों न धोने पड़ें। मैंने एक हफ्ते पहले से ही हेडमास्टर साहब को अल्टीमेटम दे दिया कि २० मार्च को होली की छुट्टी शुरु होगी और बन्दा १९ की शाम को रुखसत हो जाएगा। हेडमास्टर साहब ने मुझे समझाया कि अभी लड़के हो, तुम्हें क्या मालूम नौकरी कितनी मुश्किलों से मिलती है और कितनी मुश्किपलों से निभती है, नौकरी पाना उतना मुश्किल नहीं जितना उसको निभाना। अप्रैल में इम्तहान होनेवाला है, तीन-चार दिन स्कूल बन्द रहा तो बताओ कितने लड़के पास होंगे ? साल-भर की सारी मेहनत पर पानी फिर जाएगा कि नहीं ? मेरा कहना मानो, इस छुट्टी में न जाओ, इम्तसहान के बाद जो छुट्टी पड़े उसमें चले जाना। ईस्टर की चार दिन की छुट्टी होगी, मैं एक दिन के लिए भी न रोकूंगा।

मैं अपने मोर्चे पर कायम रहा, समझाने-बुझाने, डराने –धमकाने और जवाब-तलब किये जाने के हथियारों का मुझ पर असर न हुआ। १९ को ज्यों ही स्कूल बन्द हुआ, मैंने हेडमास्टर साहब को सलाम भी न किया और चुपके से अपने डेरे पर चला आया। उन्हें सलाम करने जाता तो वह एक न एक काम निकालकर मुझे रोक लेते- रजिस्टर में फ़ीस की मीज़ान लगाते जाओ, औसत हाज़िरी निकालते जाओ, लड़को की कापियां जमा करके उन पर संशोधन और तारीख सब पूरी कर दो। गोया यह मेरा आखिरी सफ़र है और मुझे जिन्दगी के सारे काम अभी खतम कर देने चाहिए।

मकान पर आकर मैंने चटपट अपनी किताबों की पोटली उठायी, अपना हलका लिहाफ़ कंधे पर रखा और स्टेशन के लिए चल पड़ा। गाड़ी ५ बजकर ५ मिनट पर जाती थी। स्कूल की घड़ी हाज़िरी के वक्त हमेशा आध घण्टा तेज और छुट्टी के वक्त आधा घण्टा सुस्त रहती थी। चार बजे स्कूल बन्द हुआ था। मेरे खयाल में स्टेशन पहुँचने के लिए काफी वक्त था। फिर भी मुसाफिरों को गाड़ी की तरफ से आम तौर पर जो अन्देशा लगा रहता है, और जो घड़ी हाथ में होने परर भी और गाड़ी का वक्त ठीक मालूम होने पर भी दूर से किसी गाड़ी की गड़गड़ाहट या सीटी सुनकर कदमों को तेज और दिल को परेशान कर दिया करता है, वह मुझे भी लगा हुआ था। किताबों की पोटली भारी थी, उस पर कंध्णे पर लिहाफ़, बार-बार हाथ बदल ता और लपका चला जाता था। यहां तक कि स्टेशन कोई दो फ़र्लांग से नजर आया। सिगनल डाउन था। मेरी हिम्मत भी उस सिगनल की तरह डाउन हो गयी, उम्र के तक़ाजे से एक सौ क़दम दौड़ा जरुर मगर यह निराशा की हिम्मत थी। मेरे देखते-देखते गाड़ी आयी, एक मिनट ठहरी और रवाना हो गयी। स्कूल की घड़ी यक़ीनन आज और दिनों से भी ज्यादा सुस्त थी।

अब स्टेशन पर जाना बेकार था। दूसरी गाड़ी ग्यारह बजे रात को आयगी, मेरे घरवाले स्टेशन पर कोई बारह बजे पुहुँचेगी और वहां से मकान पर जाते-जाते एक बज जाएगा। इस सन्नाटे में रास्ता चलना भी एक मोर्चा था जिसे जीतने की मुझमें हिम्मत न थी। जी में तो आया कि चलकर हेडमास्टर को आड़े हाथों लूं मगरी जब्त किया और चलने के लिए तैयार हो गया। कुल बारह मील ही तो हैं, अगर दो मील फ़ी घण्टा भी चलूं तो छः घण्टों में घर पहुँच सकता हूँ। अभी पाँच बजे हैं, जरा क़दम बढ़ाता जाऊँ तो दस बजे यकीनन पहुँच जाऊँगा। अम्मं और मुन्नू मेरा इन्तजार कर रहे होंगे, पहुँचते ही गरम-गरम खाना मिलेगा। कोल्हाड़े में गुड़ पक रहा होगा, वहां से गरम-गरम रस पीने को आ जाएगा और जब लोग

सुनेंगे कि मैं इतनी दूर पैदल आया हूँ तो उन्हें कितना अचवरज होगा! मैंने फ़ौरन गंगा की तरफ़ पैर बढ़ाया। यह क़स्बा नदी के किनारे था और मेरे गांव की सड़क नदी के उस पार से थी। मुझे इस रास्ते से जाने का कभी संयोग न हुआ था, मगर इतना सुना था कि कच्ची सड़क सीधी चली जाती है, परेशानी की कोई बात न थी, दस मिनट में नाव पार पहुँच जाएगी और बस फ़र्राटे भरता चल दूंगा। बारह मील कहने को तो होते हैं, हैं तो कुल छः कोस।

मगर घाट पर पहुँचा तो नाव में से आधे मुसाफिर भी न बैठे थे। मैं कूदकर जा बैठा। खेवे के पैसे भी निकालकर दे दिये लेकिन नाव है कि वहीं अचल ठहरी हुई है। मुसाफिरों की संख्या काफ़ी नहीं है, कैसे खुले। लोग तहसील और कचहरी से आते जाते हैं औ बैठते जाते हैं और मैं हूँ कि अन्दर हीर अन्दर भुना जाता हूँ। सूरज नीचे दौड़ा चला जा रहा है, गोया मुझसे बाजी लगाये हुए है। अभी सफेद था, फिर पीला होना शुरु हुआ और देखते – देखते लाल हो गया। नदी के उस पार क्षितिजव पर लटका हुआ, जैसे कोई डोल कुएं पर लटक रहा है। हवा में कुछ खुनकी भी आ गयी, भूख भी मालूम होने लगी। मैंने आज धर जाने की खुशी और हड़बड़ी में रोटियां न पकायी थीं, सोचा था कि शाम को तो घर पहुँच जाऊँगा ,लाओ एक पैसे के चने लेकर खा लूं। उन दानों ने इतनी देर तक तो साथ दिया ,अब पेट की पेचीदगियों में जाकर न जाने कहां गुम हो गये। मगर क्या गम है, रास्ते में क्या दुकानें न होंगी, दो-चार पैसे की मिठाइयां लेकर खा लूंगा।

जब नाव उस किनारे पहुँची तो सूरज की सिर्फ अखिरी सांस बांकी थी, हालांकि नदी का पाट बिलकुल पेंदे में चिमटकर रह गया था।

मैंने पोटली उठायी और तेजी से चला। दोनों तरफ़ चने के खेते थे जिलनके ऊदे फूलों पर ओस सका हलका-सा पर्दा पड़ चला था। बेअख्तियार एक खेत में घुसकर बूट उखाड़ लिये और टूंगता हुआ भागा।

२

सामने बारह मील की मंजिल है, कच्चा सुनसान रास्ता, शाम हो गयी है, मुझे पहली बार गलती मालूम हुई। लेकिन बचपन के जोश ने कहा, क्या बात है, एक-दो मील तो दौड़ ही सकते हैं। बारह को मन में १७६० से गुणा किया, बीस हजार गज़ ही तो होते हैं। बारह मील के मुक़ाबिले में बीस हज़ार गज़ कुछ हलके और आसान मालूम हुए। और जब दो-तीन मील रह जाएगा तब तो एक तरह से अपने गांव ही में हूंगा, उसका क्या शुमार। हिम्मत बंध गयी। इक्के-दुक्के मुसाफिर भी पीछे चले आ रहे थे, और इत्मीनान हुआ।

अंधेरा हो गया है, मैं लपका जा रहा हूँ। सड़क के किनारे दूर से एक झोंपड़ी नजर आती है। एक कुप्पी जल रही है। ज़रुर किसी बनिये की दुकान होगी। और कुछ न होगा तो गुड़ और चने तो मिल ही जाएंगे। क़दम और तेज़ करता हूँ। झोंपड़ी आती है। उसके सामने एक क्षण के निलए खड़ा हो जाता हूँ। चार –पाँच आदमी उकड़ूं बैठे हुए हैं, बीच में एक बोतल है, हर एक के सामने एक-एक कुल्हाड़। दीवार से मिली हुई ऊंची गद्‌दी है, उस पर साहजी बैठे हुए हैं, उनके सामने कई बोतलें रखी हुई हैं। ज़रा और पीछे हटकर एक आदमी कड़ाही में सूखे मटर भून रहा है। उसकी सोंधी खुशबू मेरे शरीर में बिजली की तरह दौड़ जाती है। बेचैन होकर जेब में हाथ डालता हूँ और एक पैसा निकालकर उसकी तरफ चलता हूँ लेकिन पांव आप ही रुक जाते हैं – यह कलवारिया है।

खोंचेवाला पूछता है – क्या लोगे ?

मैं कहता हूं – कुछ नहीं।

और आगे बढ़ जाता हूँ। दुकान भी मिली तो शराब की, गोया दुनियसा में इन्सान के लिए शराब रही सबसे जरुरी चीज है। यह सब आदमी धोबी और चमार होंगे, दूसरा कौन शराब पीता है, देहात में। मगर वह मटर का आकर्षक सोंधापन मेरा पीछा कर रहा है और मैं भागा जा रहा हूँ।

किताबों की पोटली जी का जंजाल हो गया है, ऐसी इच्छा होती है कि इसे यहीं सड़क पर पटक दूं। उसका वज़न मुश्किल से पांच सेर होगा, मगर इस वक्त मुझे मन-भर से ज्यादा मालूम हो रही है। शरीर में कमजोरी महसूस हो रही है। पूरनमासी का चांद पेड़ो के ऊपर जा बैठा है और पत्तियों के बीच से जमीन की तरफ झांक रहा है। मैं बिलकुल अकेला जा रहा हूँ, मगर दर्द बिलकुल नहीं है, भूख ने सारी चेतना को दबा रखा है और खुद उस पर हावी हो गयी है।

आह हा, यह गुड़ की खुशबू कहां से आयी ! कहीं ताजा गुड़ पक रहा है। कोई गांव क़ रीब ही होगा। हां, वह आमों के झुरमुट में रोशनी नजर आ रही है। लेकिन वहां पैसे-दो पैसे का गुड़ बेचेगा और यों मुझसे मांगा न जाएगा, मालूम नहीं लोग क्या समझें। आगे बढ़ता हूँ, मगर जबान से लार टपक रही हैं गुउ़ से मुझे बड़ा प्रेम है। जब कभी किसी चीज की दुकान खोलने की सोचता था तो वह हलवाई की दुकान होती थी। बिक्री हो या न हो, मिठाइयां तो खाने को मिलेंगी। हलवाइयों को देखो, मारे मोटापे के हिल नहीं सकते। लेकिन वह बेवकूफ होते हैं, आरामतलबी के मारे तोंद निकाल लेते हैं, मैं कसरत करता रहूँगा। मगर गुड़ की वह धीरज की परीक्षा लेनेवाली, भूख को तेज करनेवाली खूशबू बराबर आ रही है। मुझे वह घटना याद आती है, जब अम्मां तीन महीने के लिए अपने मैके या मेरी ननिहाल गयी थीं और मैंने तीन महीने के एक मन गुड़ का सफ़ाया कर दिया था। यही गुड़ के दिन थे। नाना बिमार थे, अम्मां को बुला भेजा था। मेरा इम्तहान पास था इसलिए मैं उनके साथ न जा सका, मुन्नू को लेती गयीं। जाते वक्त उन्होंने एक मन गुउ़ लेकर उस मटके में रखा और उसके मुंह पर सकोरा रखकर मिट्टी से बन्द कर दिया। मुझे सख्त ताकीद कर दी कि मटका न खोलना। मेरे लिए थोड़ा-सा गुड़ एक हांडी में रख दिया था। वह हांड़ी मैंने एक हफ्ते में सफाचट कर दी सुबह को दूध के साथ गुड़, रात को फिर दूध के साथ गुउ़। यहॉं तक जायज खर्च था जिस पर अम्मां को भी कोई एतराज न हो सकता। मगर स्कूलन से बार-बार पानी पीने के बहाने घर आता और दो-एक पिण्डियां निकालकर खा लेता- उसकी बजट में कहां गुंजाइश थी। और मुझे गुड़ का कुछ ऐसा चस्का पड़ गया कि हर वक्त वही नशा सवार रहता। मेरा घर में आना गुड़ के सिर शामत आना था। एक हफ्ते में हांडी ने जवाब दे दिया। मगर मटका खोलने की सख्त मनाही थी और अम्मां के ध्ज़र आने में अभी पौने तीन महीने ब़ाकी थे। एक दिन तो मैंने बड़ी मुश्किल से जैसे-तैसे सब्र किया लेकिन दूसरे दिन क आह के साथ सब्र जाता रहा और मटके को बन्द कर दिया और संकल्प कर लिया कि इस हांड़ी को तीन महीने चलाऊंगा। चले या न चले, मैं चलाये जाऊंगा। मटके को वह सात मंजिल समझूंगा जिसे रुस्तम भी न खोल सका था। मैंने मटके की पिण्डियों को कुछ इस तरह कैंची लगकार रखा कि जैसे बाज दुकानदार दियासलाई की डिब्बियां भर देते हैं। एक हांड़ी गुउ़ खाली हो जाने पर भी मटका मुंहों मुंह भरा था। अम्मां को पता ही चलेगा, सवाल-जवाब की नौबत कैसे आयेगी। मगर दिल और जान में वह खींच-तान शुरु हुई कि क्या कहूं, और हर बार जीत जबान ही के हाथ रहती। यह दो अंगुल की जीभ दिल जैसे शहज़ोर पहलवान को नचा रही थी, जैसे मदारी बन्दर को नचाये-उसको, जो आकाश में उड़ता है और सातवें आसमान के मंसूबे बांधता है और अपने जोम में फ़रऊन को भी कुछ नहीं समझता। बार-बार इरादा करता, दिन-भर में पांच पिंडियों से ज्यादा न खाऊं लेकिन यह इरादा शाराबियों की तौबा की तरह घंटे-दो से ज्यादा न टिकता। अपने को कोसता, धिक्कारता-गुड़ तो खा रहे हो मगरर बरसात में सारा शरीर सड़ जाएगा, गंधक का मलहम लगाये घूमोगे, कोई तुम्हारे पास बैठना भी न पसन्द करेगा ! कसमें खाता, विद्या की, मां की, स्वर्गीय पिता की, गऊ की, ईश्वर की, मगर उनका भी वही हाल होता। दूसरा हफ्ता खत्म होते-होते हांड़ी भी खत्म हो गयी। उस दिन मैं ने बड़े भक्तिभाव से ईश्वर से प्रार्थना की – भगवान्, यह मेरा चंचल लोभी मन मुझे परेशान कर रहा है, मुझे शक्ति दो कि उसको वश में रख सकूं। मुझे अष्टधात की लगाम दो जो उसके मुंह में डाल दूं! यह अभागा मुझे अम्मां से पिटवाने आैर घुड़कियां खिलवाने पर तुला हुआ है, तुम्हीं मेरी रक्षा करो तो बच सकता हूँ। भक्ति की विह्वलता के मारे मेरी आंखों से दो- चार बूंदे आंसुओं की भी गिरीं लेकिन ईश्वर ने भी इसकी सुनवायी न की और गुड़ की बुभुक्षा मुझ पर छायी रही ; यहां तक कि दूसरी हांड़ी का मर्सिया पढ़ने कीर नौबत आ पहुँची।

संयोग से उन्हीं दिनों तीन दिन की छुट्टी हुई और मैं अम्मां से मिलने ननिहाल गया। अम्मां ने पूछा- गुड़ का मटका देखा है? चींटे तो नहीं लगे? सीलत तो नहीं पहुँची? मैंने मटकों को देखने की कसम खाकर अपनी ईमानदारी का सबूत दिया। अम्मां ने मुझे गर्व के नेत्रों से देखा और मेरे आज्ञा- पालन के पुरस्कार- स्वरुप मुझे एक हांडी निकाल लेने की इजाजत दे दी, हां, ताकीद भी करा दी कि मटकं का मुंह अच्छी तरह बन्द कर देना। अब तो वहां मुझे एक-एक –दिन एक –एक युग मालूम होने लगा। चौथे दिन घर आते ही मैंने पहला काम जो किया वह मटका खोलकर हांड़ी – भर गुड़ निकालना था। एकबारगी पांच पींडियां उड़ा गया फिर वहीं गुड़बाजी शुरु हुई। अब क्या गम हैं, अम्मां की इजाजत मिल गई थी। सैयां भले कोतवाल, और आठ दिन में हांड़ी गायब ! आखिर मैंने अपने दिल की कमजोरी से मजबूर होकर मटके की कोठरी के दरवाजे पर ताला डाल दिया और कुंजी दीवार की एक मोटी संधि में डाल दी। अब देखें तुम

कैसे गुड़ खाते हो। इस संधि में से कुंजी निकालने का मतलब यह था कि तीन हाथ दीवार खोद डाली जाय और यह हिम्म्त मुझमें न थी। मगर तीन दिन में ही मेरे धीरज का प्याला छलक उठा औ इन तीन दिनों में भी दिल की जो हालत थी वह बयान से बाहर है। शीरीं, यानी मीठे गुड़, की कोठरी की तरफ से बार-बार गुजरता और अधीर नेत्रों से देखता और हाथ मलकर रह जाता। कई बार ताले को खटखटाया,खींचा, झटके दिये, मगर जालिम जरा भी न हुमसा। कई बार जाकर उस संधि की जांच -पडताल की, उसमें झांककर देखा, एक लकड़ी से उसकी गहराई का अन्दाजा लगाने की कोशिश की मगर उसकी तह न मिली। तबियत खोई हुई-सी रहती, न खाने-पीने में कुछ मज़ा था, न खेलने-कूदने में। वासना बार-बार युक्तियों के जारे खाने-पीने में कुछ मजा था, न खेलने-कूदने में। वासना बार-बार युक्तियों के जोर से दिल को कायल करने की कोशिश करती। आखिर गुड़ और किस मज्र् की दवा है। मे। उसे फेंक तो देता नहीं, खाता ही तो हूँ, क्या आज खाया और क्या एक महीनेबाद खाया, इसमें क्या फर्क है। अम्मां ने मनाही की है बेशक लेकिन उन्हे ंमुझेस एक उचित काम से अलग रखने का क्या हक है? अगर वह आज कहें खेलने मत जाओ या पेंड़ पर मत चढ़ो या तालाब में तैरने मत जाओ, या चिड़ियों के लिए कम्पा मत लगाओ, तितलियां मत पकड़ो, तो क्या में माने लेता हूँ ? आखिर चौथे दिन वासना की जीत हुई। मैंने तड़के उठकर एक कुदाल लेकर दीवार खोदना शुरु किया। संधि थी ही, खोदने में ज्यादा देर न लगी, आध घण्टे के घनघोर परिश्रम के बाद दीवार से कोई गज-भर लम्बा और तीन इंच मोटा चप्पड़ टूटकर नीचे गिर पड़ा और संधि की तह में वह सफलता की कुंजी पड़ी हुई थी, जैसे समुन्दर की तह में मोती की सीप पड़ी हो। मैंने झटपट उसे निकाला और फौरन दरवाजा खोला, मटके से गुउ़ निकालकर हांड़ी में भरा और दरवाजा बन्द कर दिया। मटके में इस लूट-पाट से स्पष्ट कमी पैदा हो गयी थी। हजार तरकीबें आजमाने पर भी इसका गढ़ा न भरा। मगर अबकी बार मैंने चटोरेपन का अम्मां की वापसी तक खात्मा कर देने के लिए कुंजी को कुएं में डाल दिया। किस्सा लम्बा है , मैंने कैसे ताला तोड़ा, कैसे गुड़ निकाला और मटका खाली हो जाने पर कैसे फोड़ा और उसके टुकड़े रात को कुंए में फेंके और अम्मां आयीं तो मैंने कैसे रो-रोकर उनसे मटके के चोरी जाने की कहानी कही, यह बयन करने लगा तो यह घटना जो मैं आज लिखने बैठा हूँ अधूरी रह जाएगी।

चुनांचे इस वक्त गुड़ की उस मीठी खुशबू ने मुझे बेसुध बना दिया। मगर मैं सब्र करके आगे बढ़ा।

ज्यों-ज्यों रात गुजरती थी, शरीर थकान से चूर होता जाता था, यहाँ तक कि पांव कांपने लगे। कच्ची सड़क पर गाड़ियों के पहियों की लीक पड़ गयी थी। जब कभी लीक में पांव चला जाता तो मालूम होता किसी गहरे गढ़े में गिर पड़ा हूँ। बार-बार जी में आता, यहीं सड़क के किनारे लेट जाऊँ। किताबों की छोटी-सी पोटली मन-भर की लगती थी। अपने को कोसता था कि किताबें लेकर क्यों चला। दूसरी जबान का इम्तहान देने की तैयारी कर रहा था। मगर छुट्टियों में एक दिन भी तो किताब खोलने की नौबत न आयेगी, खामखाह यह बोझ उठाये चला आता हूँ। ऐसा जी झुंझलाता था कि इस मूर्खता के बोझ को वहीं पटक दूँ। आखिर टाँगों ने चलने से इनकार कर दिया। एक बार मैं गिर पड़ा और और सम्हलकर उठा तो पांव थरथरा रहे थे। अब बगैर कुछ खाये पैर उठना दूभर था, मगर यहां क्या खाऊँ। बार-बार रोने को जी चाहता था। संयोग से एक ईख का खेत नज़र आया, अब मैं अपने को न रोक सका। चाहता था कि खेत में घुसकर चार-पांच ईख तोड़ लूँ और मजे से रस चूसता हुआ चलूँ। रास्ता भी कट जाएगा और पेट में कुछ पड़ भी जाएगा। मगर मेड़ पर पांव रखा ही था कि कांटों में उलझ गया। किसान ने शायद मेंड़ पर कांटे बिखेर दिये थे। शायद बेर की झाड़ी थी। धोती-कुर्ता सब कांटों में फंसा हुआ , पीछे हटा तो कांटों की झाड़ी साथ-साथ चलीं, कपड़े छुड़ाना लगा तो हाथ में कांटे चुभने लगे। जोर से खींचा तो धोती फट गयी। भूख तो गायब हो गयी, फ़िक्र हुई कि इन नयी मुसीबत से क्योंकर छुटकारा हो। कांटों को एक जगह से अलग करता तो दूसरी जगह चिमट जाते, झुकता तो शरीर में चुभते, किसी को पुकारूँ तो चोरी खुली जाती है, अजीब मुसीबत में पड़ा हुआ था। उस वक्त मुझे अपनी हालत पर रोना आ गया , कोई रेगिस्तानों की खाक छानने वाला आशिक भी इस तरह कांटों में फंसा होगा ! बड़ी मंश्किल से आध घण्टे में गला छूटा मगर धोती और कुर्ते के माथे गयी ,हाथ और पांव छलनी हो गये वह घाते में । अब एक क़दम आगे रखना मुहाल था। मालूम नहीं कितना रास्ता तय हुआ, कितना बाकी है, न कोई आदमी न आदमज़ाद, किससे पूछूँ। अपनी हालत पर रोता हुआ जा रहा था। एक बड़ा गांव नज़र आया । बड़ी खुशी हुई। कोई न कोई दुकान मिल ही जाएगी। कुछ खा लूँगा और किसी के सायबान में पड़ रहूँगा, सुबह देखी जाएगी।

मगर देहातों में लोग सरे-शाम सोने के आदी होते है। एक आदमी कुएं पर पानी भर रहा था। उससे पूछा तो उसने बहुत ही निराशाजनक उत्तर दिया—अब यहां कुछ न मिलेगा। बनिये नमक-तेल रखते हैं। हलवाई की दुकान एक भी नहीं। कोई शहर थोड़े ही है, इतनी रात तक दुकान खोले कौन बैठा रहे !

मैंने उससे बड़े विनती के स्वर में कहा-कहीं सोने को जगह मिल जाएगी ?

उसने पूछा-कौन हो तुम ? तुम्हारी जान – पहचान का यहां कोई नही है ?

'जान-पहचान का कोई होता तो तुमसे क्यों पूछता ?'

'तो भाई, अनजान आदमी को यहां नहीं ठहरने देंगे । इसी तरह कल एक मुसाफिर आकर ठहरा था, रात को एक घर में सेंध पड़ गयी, सुबह को मुसाफ़िर का पता न था।'

'तो क्या तुम समझते हो, मैं चोर हूँ ?'

'किसी के माथे पर तो लिखा नहीं होता, अन्दर का हाल कौन जाने !'

'नहीं ठहराना चाहते न सही, मगर चोर तो न बनाओ। मैं जानता यह इतना मनहूस गांव है तो इधर आता ही क्यों ?'

मैंने ज्यादा खुशामद न की, जी जल गया। सड़क पर आकर फिर आगे चल पड़ा। इस वक्त मेरे होश ठिकाने न थे। कुछ खबर नहीं किस रास्ते से गांव में आया था और किधर चला जा रहा था। अब मुझे अपने घर पहुँचने की उम्मीद न थी। रात यों ही भटकते हुए गुज़रेगी, फिर इसका क्या ग़म कि कहां जा रहा हूँ। मालूम नहीं कितनी देर तक मेरे दिमाग की यह हालत रही। अचानक एक खेत में आग जलती हुई दिखाई पड़ी कि जैसे आशा का दीपक हो। जरूर वहां कोई आदमी होगा। शायद रात काटने को जगह मिल जाए। कदम तेज किये और करीब पहुँचा कि यकायक एक बड़ा-सा कुत्ता भूँकता हुआ मेरी तरफ दौड़ा। इतनी डरावनी आवाज थी कि मैं कांप उठा। एक पल में वह मेरे सामने आ गया और मेरी तरफ़ लपक-लपककर भूँकने लगा। मेरे हाथों में किताबों की पोटली के सिवा और क्या था, न कोई लकड़ी थी न पत्थर , कैसे भगाऊँ, कहीं बदमाश मेरी टांग पकड़ ले तो क्या करूँ ! अंग्रेजी नस्ल का शिकारी कुत्ता मालूम होता था। मैं जितना ही धत्-धत् करता था उतना ही वह गरजता था। मैं खामोश खड़ा हो गया और पोटली जमीन पर रखकर पांव से जूते निकाल लिये, अपनी हिफ़ाजत के लिए कोई हथियार तो हाथ में हो ! उसकी तरफ़ गौर सें देख रहा था कि खतरनाक हद तक मेरे करीब आये तो उसके सिर पर इतने जोर से नालदार जूता मार दूं कि याद ही तो करे लेकिन शायद उसने मेरी नियत ताड़ ली और इस तरह मेरी तरफ़ झपटा कि मैं कांप गया और जूते हाथ से छूटकर ज़मीन पर गिर पड़े। और उसी वक्त मैंने डरी हुई आवाज में पुकारा-अरे खेत में कोई है, देखो यह कुत्ता मुझे काट रहा है ! ओ महतो, देखो तुम्हारा कुत्ता मुझे काट रहा है।

जवाब मिला—कौन है ?

'मैं हूँ, राहगीर, तुम्हारा कुत्ता मुझे काट रहा है।'

'नहीं, काटेगा नहीं , डरो मत। कहां जाना है ?'

'महमूदनगर।'

'महमूदनगर का रास्ता तो तुम पीछे छोड़ आये, आगे तो नदी हैं।'

मेरा कलेजा बैठ गया, रुआंसा होकर बोला—महमूदनगर का रास्ता कितनी दूर छूट गया है ?

'यही कोई तीन मील।'

और एक लहीम-शहीम आदमी हाथ में लालटन लिये हुए आकर मेरे आमने खड़ा हो गया। सर पर हैट था, एक मोटा फ़ौजी ओवरकोट पहने हुए, नीचे निकर, पांव में फुलबूट, बड़ा लंबा-तड़ंगा, बड़ी-बड़ी मूँछें, गोरा रंग, साकार पुरुस-सौन्दर्य। बोला—तु म तो कोई स्कूल के लडके मालूम होते हो।

'लड़का तो नहीं हूँ, लड़कों का मुदर्रिस हूँ, घर जा रहा हूँ। आज से तीन दिन की छुट्टी है।'

'तो रेल से क्यों नहीं गये ?'

रेल छूट गयी और दूसरी एक बजे छूटती है।'

'वह अभी तुम्हें मिल जाएगी। बारह का अमल है। चलो मैं स्टेशन का रास्ता दिखा दूँ।'

'कौन-से स्टेशन का ?'

'भगवन्तपुर का।'

'भगवन्तपुर ही से तो मैं चला हूँ। वह बहुत पीछे छूट गया होगा।'

'बिल्कुल नहीं, तुम भगवन्तपुर स्टेशन से एक मील के अन्दर खड़े हो। चलो मैं तुम्हें स्टेशन का रास्ता दिखा दूँ। अभी गाड़ी मिल जाएगी। लेकिन रहना चाहो तो मेरे झोंपड़े में लेट जाओ। कल चले जाना।'

अपने ऊपर गुस्सा आया कि सिर पीट लूं। पांच बजे से तेली के बैल की तरह घूम रहा हूँ और अभी भगवन्तपुर से कुल एक मील आया हूँ। रास्ता भूल गया। यह घटना भी याद रहेगी कि चला छ: घण्टे और तय किया एक मील। घर पहुँचने की धुन जैसे और भी दहक उठी।

बोला—नहीं , कल तो होली है। मुझे रात को पहुँच जाना चाहिए।

'मगर रास्ता पहाड़ी है, ऐसा न हो कोई जानवर मिल जाए। अच्छा चलो, मैं तुम्हें पहुँचाये देता हूँ, मगर तुमने बड़ी गलती की , अनजान रास्ते को पैदल चलना कितना खतरनाक है। अच्छा चला मैं पहुँचाये देता हूँ। ख़ैर, खड़े रहो, मैं अभी आता हूँ।'

कुत्ता दुम हिलाने लगा और मुझसे दोस्ती करने का इच्छुक जान पड़ा। दुम हिलाता हुआ, सिर झुकाये क्षमा-याचना के रूप में मेरे सामने आकर खड़ा हुआ। मैंने भी बड़ी उदारता से उसका अपराध क्षमा कर दिया और उसके सिर पर हाथ फेरने लगा। क्षण—भर में वह आदमी बन्दूक कंधे पर रखे आ गया और बोला—चलो, मगर अब ऐसी नादानी न करना, ख़ैरियत हुई कि मैं तुम्हें मिल गया। नदी पर पहुँच जाते तो जरूर किसी जानवर से मुठभेड़ हो जाती।

मैंने पूछा—आप तो कोई अंग्रेज मालूम होते हैं मगर आपकी बोली बिलकुल हमारे जैसी है ?

उसने हंसकर कहा—हां, मेरा बाप अंग्रेज था, फौजी अफ़सर। मेरी उम्र यहीं गुज़री है। मेरी मां उसका खाना पकाती थी। मैं भी फ़ौज में रह चुका हूँ। योरोप की लड़ाई में गया था, अब पेंशन पाता हूँ। लड़ाई में मैंने जो दृश्य अपनी आंखों से देखे और जिन हालात में मुझे जिन्दगी बसर करनी पड़ी और मुझे अपनी इन्सानियत का जितना खून करना पड़ा उससे इस पेशे से मुझे नफ़रत हो गई और मैं पेंशन लेकर यहां चला आया । मेरे पापा ने यहीं एक छोटा-सा घर बना लिया था। मैं यहीं रहता हूँ और आस-पास के खेतों की रखवाली करता हूँ। यह गंगा की धाटी है। चारों तरफ पहाड़ियां हैं। जंगली जानवर बहुत लगते है। सुअर, नीलगाय, हिरन सारी खेती बर्बाद कर देते हैं। मेरा काम है, जानवरों से खेती की हिफ़ाजत करना। किसानों से मुझे हल पीछे एक मन गल्ला मिल जाता है। वह मेरे गुज़र-बसर के लिए काफी होता है। मेरी बुढ़िया मां अभी जिन्दा है। जिस तरह पापा का खाना पकाती थी , उसी तरह अब मेरा खाना पकाती है। कभी-कभी मेरे पास आया करो, मैं तुम्हें कसरत करना सिखा दूँगा, साल-भर मे पहलवान हो जाओगे।

मैंने पूछा—आप अभी तक कसरत करते हैं?

वह बोला—हां, दो घण्टे रोजाना कसरत करता हूँ। मुगदर और लेज़िम का मुझे बहुत शौक है। मेरा पचासवां साल है, मगर एक सांस में पांच मील दौड़ सकता हूँ। कसरत न करूँ तो इस जंगल में रहूँ कैसे। मैंने खूब कुश्तियां लड़ी है। अपनी रेजीमेण्ट में खूब मज़बूत आदमी था। मगर अब इस फौजी जिन्दगी की हालातों पर गौर करता हूँ तो शर्म और अफ़सोस से मेरा सर झुक जाता है। कितने ही बेगुनाह मेरी रायफल के शिकार हुएं मेरा उन्होंने क्या नुकसान किया था ? मेरी उनसे कौन-सी अदावत थी? मुझे तो जर्मन और आस्ट्रियन सिपाही भी वैसे ही सच्चे, वैसे ही बहादुर, वैसे ही खुशमिज़ाज, वेसे ही हमदर्द मालूम हुए जैसे फ्रांस या इंग्लैण्ड के । हमारी उनसे खूब दोस्ती हो गयी थी, साथ खेलते थे, साथ बैठते थे, यह खयाल ही न आता था कि यह लोग हमारे अपने नही हैं। मगर फिर भी हम एक-दूसरे के खून के प्यासे थे। किसलिए ? इसलिए कि बड़े-बड़े अंग्रेज सौदागरों को खतरा था कि कहीं जर्मनी उनका रोज़गार न छीन ले। यह सौदागरों का राज है। हमारी फ़ौजें उन्हीं के इशारों पर नाचनेवाली कठपुतलियां हैं। जान हम गरीबों की गयी, जेबें गर्म हुई मोटे-मोटे सौदागरों की । उस वक्त हमारी ऐसी खातिर होती थी, ऐसी पीठ ठोंकी जाती थी, गोया हम सल्तनत के दामाद हैं। हमारे ऊपर फूलों की बारिश होती थी, हमें गाईन पार्टियां दी जाती थीं, हमारी बहादुरी की कहानियां रोजाना अखबारों में तस्वीरों के साथ छपती थीं। नाजुक-बदल लेडियां और शहज़ादियां हमारे लिए कपड़े सीती थीं, तरह-तरह के मुरब्बे और अचार बना-बना कर भेजती थीं। लेकिन जब सुलह हो गयी तो उन्ही जांबाजों को कोई टके को भी न पूछता था। कितनों ही के अंग भंग हो गये थे, कोई लूला हो गया था, कोई लंगड़ा,कोई अंधा। उन्हें एक टुकड़ा रोटी भी देनेवाला कोई न था। मैंने कितनों ही को सड़क पर भीख मांगते देखा। तब से मुझे इस पेशे से नफ़रत हो गयी। मैंने यहॉ आकर यह काम अपने जिम्मे ले लिया और खुश हूँ। सिपहगिरी इसलिए है कि उससे गरीबों की जानमाल की हिफ़ाजत हो, इसलिए नहीं कि करोड़पतियों की बेशुमार दौलत और बढ़े। यहां मेरी जान हमेशा खतरे में बनी रहती है। कई बार मरते-मरते

बचा हूँ लेकिन इस काम में मर भी जाऊँ तो मुझे अफ़सोस न होगा, क्योंकि मुझे यह तस्कीन होगा कि मेरी जिन्दगी ग़रीबों के काम आयी। और यह बेचारे किसान मेरी कितनी खातिर करते हैं कि तुमसे क्या कहूँ। अगर मैं बीमर पड़ जाऊँ और उन्हें मालू हो जाए कि मैं उनके शरीर के ताजे खून से अच्छा हो जाऊँगा तो बिना झिझके अपना खून दे देंगे। पहले मैं बहुत शराब पीता था। मेरी बिरादरी को तो तुम लोग जानते होगे। हममें बहुत ज्यादा लोग ऐसे हैं, जिनको खाना मयस्सर हो या न हो मगर शराब जरूर चाहिए। मैं भी एक बोतल शराब रोज़ पी जाता था। बाप ने काफी पैसे छोड़े थे। अगर किफ़ायत से रहना जानता तो जिन्दगी-भर आराम से पड़ा रहता। मगर शराब ने सत्यानाश कर दिया। उन दिनों मैं बड़े ठाठ से रहता था। कालर –टाई लगाये, छैला बना हुआ, नौजवान छोकरियों से आंखें लड़ाया करता था। घुड़दौड़ में जुआ खेलना, शरीब पीना, क्लब में ताश खेलना और औरतों से दिल बहलाना, यही मेरी जिन्दगी थी । तीन-चार साल में मैंने पचीस-तीस हजार रुपये उड़ा दिये। कौड़ी कफ़न को न रखी। जब पैसे खतम हो गये तो रोजी की फिक्र हुई। फौज में भर्ती हो गया। मगर खुदा का शुक्र है कि वहां से कुछ सीखकर लौटा यह सच्चाई मुझ पर खुल गयी कि बहादुर का काम जान लेना नहीं, बल्कि जान की हिफ़ाजत करना है।

'योरोप से आकर एक दिन मैं शिकार खेलने लगा और इधर आ गया। देखा, कई किसान अपने खेतों के किनारे उदास खड़े हैं मैंने पूछा क्या बात है ? तुम लोग क्यों इस तरह उदास खड़े हो ? एक आदमी ने कहा—क्या करें साहब, जिन्दगी से तंग हैं। न मौत आती है न पैदावार होती है। सारे जानवर आकर खेत चर जाते हैं। किसके घर से लगान चुकायें, क्या महाजन को दें, क्या अमलों को दें और क्या खुद खायें ? कल इन्ही खेतो को देखकर दिल की कली खिल जाती थी, आज इन्हे देखकर आंखों मे आंसू आ जाते है जानवरों ने सफ़ाया कर दिया ।

'मालूम नहीं उस वक्त मेरे दिल पर किस देवता या पैगम्बर का साया था कि मुझे उन पर रहम आ गया। मैने कहा—आज से मै तुम्हारे खेतो की रखवाली करूंगा। क्या मजाल कि कोई जानवर फटक सके । एक दाना जो जाय तो जुर्माना दूँ। बस, उस दिन से आज तक मेरा यही काम है। आज दस साल हो गये, मैंने कभी नागा नहीं किया। अपना गुज़र भी होता है और एहसान मुफ्त मिलता है और सबसे बड़ी बात यह है कि इस काम से दिल की खुशी होती है।'

नदी आ गयी। मैने देखा वही घाट है जहां शाम को किश्ती पर बैठा था। उस चांदनी में नदी जड़ाऊ गहनों से लदी हुई जैसे कोई सुनहरा सपना देख रही हो।

मैंने पूछा—आपका नाम क्या है ? कभी-कभी आपके दर्शन के लिए आया करूँगा।

उसने लालटेन उठाकर मेरा चेहरा देखा और बोला –मेरा नाम जैक्सन है। बिल जैक्सन। जरूर आना। स्टेशन के पास जिससे मेरा नाम पूछोगे, मेरा पता बतला देगा।

यह कहकर वह पीछे की तरफ़ मुड़ा, मगर यकायक लौट पड़ा और बोला— मगर तुम्हें यहां सारी रात बैठना पड़ेगा और तुम्हारी अम्मां घबरा रही होगी। तुम मेरे कंधे पर बैठ जाओ तो मैं तुम्हें उस पार पहुँचा दूँ। आजकल पानी बहुत कम है, मैं तो अक्सर तैर आता हूँ।

मैंने एहसान से दबकर कहा—आपने यही क्या कम इनायत की है कि मुझे यहां तक पहुँचा दिया, वर्ना शायद घर पहुँचना नसीब न होता। मैं यहां बैठा रहूँगा और सुबह को किश्ती से पार उतर जाऊँगा।

'वाह, और तुम्हारी अम्मां रोती होंगी कि मेरे लाड़ले पर न जाने क्या गुज़री ?'

यह कहकर मिस्टर जैक्सन ने मुझे झट उठाकर कंधे पर बिठा लिया और इस तरह बेधड़क पानी में घुसे कि जैसे सूखी जमीन है । मैं दोनों हाथों से उनकी गरदन पकड़े हूँ, फिर भी सीना धड़क रहा है और रगों में सनसनी-सी मालूम हो रही है। मगर जैक्सन साहब इत्मीनान से चले जा रहे हैं। पानी घुटने तक आया, फिर कमर तक पहुँचा, ओफ्फोह सीने तक पहुँच गया। अब साहब को एक-एक क़दम मुश्किल हो रहा है। मेरी जान निकल रही है। लहरें उनके गले लिपट रही हैं मेरे पांव भी चूमने लगीं । मेरा जी चाहता है उनसे कहूँ भगवान् के लिए वापस चलिए, मगर ज़बान नहीं खुलती। चेतना ने जैसे इस संकट का सामना करने के लिए सब दरवाजे बन्द कर लिए । डरता हूँ कहीं जैक्सन साहब फिसले तो अपना काम तमाम है। यह तो तैराक़ है, निकल जाएंगे, मैं लहरों की खुराक बन जाऊँगा। अफ़सोस आता है अपनी बेवकूफी पर कि तैरना क्यों न सीख लिया ? यकायक जैक्सन ने मुझे दोनों हाथों से कंधें के ऊपर उठा लिया। हम बीच धार में पहुँच गये थे। बहाव में इतनी तेजी थी कि एक-एक क़दम आगे रखने में एक-एक मिनट लग जाता था। दिन को इस नदी में कितनी ही बार आ चुका था लेकिन रात को और इस मझधार में वह बहती हुई मौत

मालूम होती थी दस –बारह क़दम तक मैं जैक्सन के दोनों हाथों पर टंगा रहा। फिर पानी उतरने लगा। मैं देख न सका, मगर शायद पानी जैक्सन के सर के ऊपर तक आ गया था। इसीलिए उन्होंने मुझे हाथों पर बिठा लिया था। जब गर्दन बाहर निकल आयी तो जोर से हंसकर बोले—लो अब पहुँच गये।

मैंने कहा—आपको आज मेरी वजह से बड़ी तकलीफ़ हुई।

जैक्सन ने मुझे हाथों से उतारकर फिर कंधे पर बिठाते हुए कहा—और आज मुझे जितनी खुशी हुई उतनी आज तक कभी न हुई थी, जर्मन कप्तान को कत्ल करके भी नहीं। अपनी माँ से कहना मुझे दुआ दें।

घाट पर पहुँचकर मैं साहब से रुखसत हुआ, उनकी सज्जनता, नि:स्वार्थ सेवा, और अदम्य साहस का न मिटने वाला असर दिल पर लिए हुए। मेरे जी में आया, काश मैं भी इस तरह लोगों के काम आ सकता।

तीन बजे रात को जब मैं घर पहुँचा तो होली में आग लग रही थी। मैं स्टेशन से दो मील सरपट दौड़ता हुआ गया। मालूम नहीं भूखे शरीर में दतनी ताक़त कहां से आ गयी थी।

अम्मां मेरी आवाज सुनते ही आंगन में निकल आयीं और मुझे छाती से लगा लिया और बोली—इतनी रात कहां कर दी, मैं तो सांझ से तुम्हारी राह देख रही थी, चलो खाना खा लो, कुछ खाया-पिया है कि नहीं ?

वह अब स्वर्ग में हैं। लेकिन उनका वह मुहब्बत–भरा चेहरा मेरी आंखों के सामने है और वह प्यार-भरी आवाज कानों में गूंज रही है।

मिस्टर जैक्सन से कई बार मिल चुका हूँ। उसकी सज्जनता ने मुझे उसका भक्त बना दिया हैं। मैं उसे इन्सान नहीं फरिश्ता समझता हूँ।

--'जादे राह' से

नादान दोस्त

केशव के घर में कार्निस के ऊपर एक चिड़िया ने अण्डे दिए थे। केशव और उसकी बहन श्यामा दोनों बड़े ध्यान से चिड़ियों को वहां आते-जाते देखा करते । सवेरे दोनों आंखे मलते कार्निस के सामने पहुँच जाते और चिड़ा या चिड़िया दोनों को वहां बैठा पातें। उनको देखने में दोनों बच्चों को न मालूम क्या मजा मिलता, दूध और जलेबी की भी सुध न रहती थी। दोनों के दिल में तरह-तरह के सवाल उठते। अण्डे कितने बड़े होंगे ? किस रंग के होंगे ? कितने होंगे ? क्या खाते होंगे ? उनमें बच्चे किस तरह निकल आयेंगे ? बच्चों के पर कैसे निकलेंगे ? घोंसला कैसा है? लेकिन इन बातों का जवाब देने वाला कोई नहीं। न अम्मां को घर के काम-धंधों से फुर्सत थी न बाबूजी को पढ़ने-लिखने से । दोनों बच्चे आपस ही में सवाल-जवाब करके अपने दिल को तसल्ली दे लिया करते थे।

श्यामा कहती—क्यों भइया, बच्चे निकलकर फुर से उड़ जायेंगे ?

केशव विद्वानों जैसे गर्व से कहता—नहीं री पगली, पहले पर निकलेंगे। बगैर परों के बेचारे कैसे उड़ेगे ?

श्यामा—बच्चों को क्या खिलायेगी बेचारी ?

केशव इस पेचीदा सवाल का जवाब कुछ न दे सकता था।

इस तरह तीन-चान दिन गुजर गए। दोनों बच्चों की जिज्ञासा दिन-दिन बढ़ती जाती थीं अण्डों को देखने के लिए वह अधी हो उठते थे। उन्होने अनुमान लगाया कि अब बच्चे जरूर निकल आये होंगे । बच्चों के चारों का सवाल अब उनके सामने आ खड़ा हुआ। चिड़ियां बेचारी इतना दाना कहां पायेंगी कि सारे बच्चों का पेट भरे। ग़रीब बच्चे भूख के मारे चूं-चूं करके मर जायेंगे।

इस मुसीबत का अन्दाजा करके दोनों घबरा उठे। दोनों ने फैसला किया कि कार्निस पर थोड़ा-सा दाना रख दिया जाये। श्यामा खुश होकर बोली—तब तो चिड़ियों को चारे के लिए कहीं उड़कर न जाना पड़ेगा न ?

केशव—नहीं, तब क्यों जायेंगी ?

श्यामा—क्यों भइया, बच्चों को धूप न लगती होगी?

केशव का ध्यान इस तकलीफ की तरफ न गया था। बोला—जरूर तकलीफ हो रही होगी। बेचारे प्यास के मारे पड़फ रहे होंगे। ऊपर छाया भी तो कोई नहीं ।

आखिर यही फैसला हुआ कि घोंसले के ऊपर कपड़े की छत बना देनी चाहिये। पानी की प्याली और थोड़े-से चावल रख देने का प्रस्ताव भी स्वीकृत हो गया।

दोनों बच्चे बड़े चाव से काम करने लगें श्यामा माँ की आंख बचाकर मटके से चावल निकाल लायी। केशव ने पत्थर की प्याली का तेल चुपके से जमीन पर गिरा दिया और खूब साफ़ करके उसमें पानी भरा।

अब चांदनी के लिए कपड़ा कहां से लाए ? फिर ऊपर बगैर छड़ियों के कपड़ा ठहरेगा कैसे और छड़ियां खड़ी होंगी कैसे ?

केशव बड़ी देर तक इसी उधेड़-बुन में रहा। आखिरकार उसने यह मुश्किल भी हल कर दी। श्यामा से बोला—जाकर कूड़ा फेंकने वाली टोकरी उठा लाओ। अम्मांजी को मत दिखाना।

श्यामा—वह तो बीच में फटी हुई है। उसमें से धूप न जाएगी ?

केशव ने झुंझलाकर कहा—तू टोकरी तो ला, मै उसका सुराख बन्द करने की कोई हिकमत निकालूंगा।

श्यामा दौड़कर टोकरी उठा लायी। केशव ने उसके सुराख में थोड़ा –सा कागज ठूँस दिया और तब टोकरी को एक टहनी से टिकाकर बोला—देख ऐसे ही घोंसले पर उसकी आड़ दूंगा। तब कैसे धूप जाएगी?

श्यामा ने दिल में सोचा, भइया कितने चालाक हैं।

२

गर्मी के दिन थे। बाबूजी दफ्तर गए हुए थे। अम्मां दोनो बच्चों को कमरे में सुलाकर खुद सो गयी थीं। लेकिन बच्चों की आंखों में आज नींद कहां ? अम्माजी को बहकाने के लिए दोनों दम रोके आंखें बन्द किए मौके का इन्तजार कर रहे थे। ज्यों ही मालूम हुआ कि अम्मां जी अच्छी तरह सो गयीं, दोनों चुपके से उठे और बहुत धीरे से दरवाजे की सिटकनी खोलकर बाहर निकल आये। अण्डों की हिफाजत करने की

तैयारियां होने लगीं। केशव कमरे में से एक स्टूल उठा लाया, लेकिन जब उससे काम न चला, तो नहाने की चौकी लाकर स्टूल के नीचे रखी और डरते-डरते स्टूल पर चढ़ा।

श्यामा दोनों हाथों से स्टूल पकड़े हुए थी। स्टुल को चारों टागें बराबर न होने के कारण जिस तरफ ज्यादा दबाव पाता था, जरा-सा हिल जाता था। उस वक्त केशव को कितनी तकलीफ उठानी पड़ती थी। यह उसी का दिल जानता था। दोनो हाथों से कार्निस पकड़ लेता और श्यामा को दबी आवाज से डांटता—अच्छी तरह पकड़, वर्ना उतरकर बहुत मारूँगा। मगर बेचारी श्यामा का दिल तो ऊपर कार्निस पर था। बार-बार उसका ध्यान उधर चला जाता और हाथ ढीले पड़ जाते।

केशव ने ज्यों ही कार्निस पर हाथ रक्खा, दोनों चिड़ियां उड़ गयी । केशव ने देखा, कार्निस पर थोड़े-से तिनके बिछे हुए है, और उस पर तीन अण्डे पड़े हैं। जैसे घोंसले उसने पेड़ों पर देखे थे, वैसा कोई घोंसला नहीं है। श्यामा ने नीचे से पूछा—कै बच्चे हैं भइया?

केशव—तीन अण्डे हैं, अभी बच्चे नहीं निकले।

श्यामा—जरा हमें दिखा दो भइया, कितने बड़े है ?

केशव—दिखा दूंगा, पहले जरा चिथड़े ले आ, नीचे बिछा दूँ। बेचारे अंडे तिनकों पर पड़े है।

श्यामा दौड़कर अपनी पुरानी धोती फाड़कर एक टुकड़ा लायी। केशव ने झुककर कपड़ा ले लिया, उसके कई तह करके उसने एक गद्दी बनायी और उसे तिनकों पर बिछाकर तीनों अण्डे उस पर धीरे से रख दिए।

श्यामा ने फिर कहा—हमको भी दिखा दो भइया।

केशव—दिखा दूँगा, पहले जरा वह टोकरी दे दो, ऊपर छाया कर दूँ।

श्यामा ने टोकरी नीचे से थमा दी और बोली—अब तुम उतर आओ, मैं भी तो देखूं।

केशव ने टोकरी को एक टहनी से टिकाकर कहा—जा, दाना और पानी की प्याली ले आ, मैं उतर आऊँ तो दिखा दूँगा।

श्यामा प्याली और चावल भी लाची । केशव ने टोकरी के नीचे दोनों चीजें रख दीं और आहिस्ता से उतर आया।

श्यामा ने गिड़गिड़ा कर कहा—अब हमको भी चढ़ा दो भइया

केशव—तू गिर पड़ेगी ।

श्यामा—न गिरूंगी भइया, तुम नीये से पकड़े रहना।

केशव—न भइया, कहीं तू गिर-गिरा पड़ी तो अम्मां जी मेरी चटनी ही कर डालेंगी। कहेंगी कि तूने ही चढ़ाया था। क्या करेगी देखकर। अब अण्डे बड़े आराम से हैं। जब बच्चे निकलेगें, तो उनको पालेंगे।

दोनों चिड़ियाँ बार-बार कार्निस पर आती थीं और बगैर बैठे ही उड़ जाती थीं। केशव ने सोचा, हम लोगों के डर के मारे नहीं बैठतीं। स्टूल उठाकर कमरे में रख आया , चौकी जहां की थी, वहां रख दी।

श्यामा ने आंखों में आंसू भरकर कहा—तुमने मुझे नहीं दिखाया, मैं अम्मां जी से कह दूँगी।

केशव—अम्मां जी से कहेगी तो बहुत मारूँगा, कहे देता हूँ।

श्यामा—तो तुमने मुझे दिखाया क्यों नहीं ?

केशव—और गिर पड़ती तो चार सर न हो जाते।

श्यामा—हो जाते, हो जाते। देख लेना मैं कह दूँगी।

इतने में कोठरी का दरवाजा खुला और मां ने धूप से आंखें को बचाते हुए कहा- तुम दोनों बाहर कब निकल आए ? मैंने कहा था न कि दोपहर को न निकलना ? किसने किवाड़ खोला ?

किवाड़ केशव ने खोला था, लेकिन श्यामा न मां से यह बात नहीं कही। उसे डर लगा कि भैया पिट जायेंगे। केशव दिल में कांप रहा था कि कहीं श्यामा कह न दे। अण्डे न दिखाए थे, इससे अब उसको श्यामा पर विश्वास न था श्यामा सिर्फ मुहब्बत के मारे चुप थी या इस क़सूर में हिस्सेदार होने की वजह से, इसका फैसला नहीं किया जा सकता। शायद दोनों ही बातें थीं।

माँ ने दोनों को डाँट-डपटकर फिर कमरे में बंद कर दिया और आप धीरे-धीरे उन्हें पंखा झलने लगी। अभी सिर्फ दो बजे थें बाहर तेज लू चल रही थी। अब दोनों बच्चों को नींद आ गयी थी।

३

चार बजे यकायक श्यामा की नींद खुली। किवाड़ खुले हुए थे। वह दौड़ी हुई कार्निस के पास आयी और ऊपर की तरफ ताकने लगी । टोकरी का पता न था। संयोग से उसकी नजर नीचे गयी और वह

उलटे पांव दौड़ती हुई कमरे में जाकर जोर से बोली—भइया,अण्डे तो नीचे पड़े हैं, बच्चे उड़ गए!

केशव घबराकर उठा और दौड़ा हुआ बाहर आया तो क्या देखता है कि तीनों अण्डे नीचे टूटे पड़े हैं और उनसे को चूने की-सी चीज बाहर निकल आयी है। पानी की प्याली भी एक तरफ टूटी पड़ी हैं।

उसके चेहरे का रंग उड़ गया। सहमी हुई आंखों से जमीन की तरफ देखने लगा।

श्यामा ने पूछा—बच्चे कहां उड़ गए भइया ?

केशव ने करुण स्वर में कहा—अण्डे तो फूट गए ।

'और बच्चे कहां गये ?'

केशव—तेरे सर में। देखती नहीं है अण्डों से उजला-उजला पानी निकल आया है। वही दो-चार दिन में बच्चे बन जाते।

मां ने सोटी हाथ में लिए हुए पूछा—तुम दोनो वहां धूप में क्या कर रहें हो ?

श्यामा ने कहा—अम्मां जी, चिड़िया के अण्डे टूटे पड़े है।

मां ने आकर टूटे हुए अण्डों को देखा और गुस्से से बोलीं—तुम लोगों ने अण्डों को छुआ होगा ?

अब तो श्यामा को भइया पर ज़रा भी तरस न आया। उसी ने शायद अण्डों को इस तरह रख दिया कि वह नीचे गिर पड़े। इसकी उसे सजा मिलनी चाहिएं बोली—इन्होंने अण्डों को छेड़ा था अम्मां जी।

मां ने केशव से पूछा—क्यों रे?

केशव भीगी बिल्ली बना खड़ा रहा।

मां—तू वहां पहुँचा कैसे ?

श्यामा—चौके पर स्टूल रखकर चढ़े अम्मांजी।

केशव—तू स्टूल थामे नहीं खड़ी थी ?

श्यामा—तुम्हीं ने तो कहा था !

मां—तू इतना बड़ा हुआ, तुझे अभी इतना भी नहीं मालूम कि छूने से चिड़ियों के अण्डे गन्दे हो जाते हैं। चिड़िया फिर इन्हें नहीं सेती।

श्यामा ने डरते-डरते पूछा—तो क्या चिड़िया ने अण्डे गिरा दिए हैं, अम्मां जी ?

मां—और क्या करती। केशव के सिर इसका पाप पड़ेगा। हाय, हाय, जानें ले लीं दुष्ट नें!

केशव रोनी सूरत बनाकर बोला—मैंने तो सिर्फ अण्डों को गद्दी पर रख दिया था, अम्मा जी !

मां को हंसी आ गयी। मगर केशव को कई दिनों तक अपनी गलती पर अफसोस होता रहा। अण्डों की हिफ़ाजत करने के जोश में उसने उनका सत्यानाश कर डाला। इसे याद करके वह कभी-कभी रो पड़ता था।

दोनों चिड़ियां वहां फिर न दिखायी दीं।

--'खाके परवाना' से

प्रतिशोध

माया अपने तिमंजिले मकान की छत पर खड़ी सड़क की ओर उद्विग्न और अधीर आंखों से ताक रही थी और सोच रही थी, वह अब तक आये क्यों नहीं ? कहां देर लगायी ? इसी गाड़ी से आने को लिखा था। गाड़ी तो आ गयी होगी, स्टेशन से मुसाफिर चले आ रहे हैं। इस वक्त तो कोई दूसरी गाड़ी नहीं आती। शायद असबाब वगैरह रखने में देर हुई, यार-दोस्त स्टेशन पर बधाई देने के लिए पहुँच गये हों, उनसे फुर्सत मिलेगी, तब घर की सुध आयेगी ! उनकी जगह मैं होती तो सीधे घर आती। दोस्तों से कह देती , जनाब, इस वक्त मुझे माफ़ कीजिए, फिर मिलिएगा। मगर दोस्तों में तो उनकी जान बसती है !

मिस्टर व्यास लखनऊ के नौजवान मगर अत्यंत प्रतिष्ठित बैरिस्टरों में हैं। तीन महीने से वह एक राजीतिक मुकदमें की पैरवी करने के लिए सरकार की ओर से लाहौर गए हुए हैं। उन्होंने माया को लिखा था—जीत हो गयी। पहली तारीख को मैं शाम की मेल में जरूर पहुंचूंगा। आज वही शाम है। माया ने आज सारा दिन तैयारियों में बिताया। सारा मकान धुलवाया। कमरों की सजावट के सामान साफ करायें, मोटर धुलवायी। ये तीन महीने उसने तपस्या के काटे थे। मगर अब तक मिस्टर व्यास नहीं आये। उसकी छोटी बच्ची तिलोत्तमा आकर उसके पैरों में चिमट गयी और बोली—अम्मां, बाबूजी कब आयेंगे ?

माया ने उसे गोद में उठा लिया और चूमकर बोली—आते ही होंगे बेटी, गाड़ी तो कब की आ गयी।

तिलोत्तमा—मेरे लिए अच्छी गुड़ियां लाते होंगे।

माया ने कुछ जवाब न दिया। इन्तजार अब गुस्से में बदलता जाता था। वह सोच रही थी, जिस तरह मुझे हजरत परेशान कर रहे हैं, उसी तरह मैं भी उनको परेशान करूँगी। घण्टे-भर तक बोलूंगी ही नहीं। आकर स्टेशन पर बैठे हुए है ? जलाने में उन्हें मजा आता है । यह उनकी पुरानी आदत है। दिल को क्या करूँ। नहीं, जी तो यही चाहता है कि जैसे वह मुझसे बेरुखी दिखलाते है, उसी तरह मैं भी उनकी बात न पूछूँ।

यकायक एक नौकर ने ऊपर आकर कहा—बहू जी, लाहौर से यह तार आया है।

माया अन्दर-ही-अन्दर जल उठी। उसे ऐसा मालूम हुआ कि जैसे बड़े जोर की हरारत हो गयी हो। बरबस खयाल आया—सिवाय इसके और क्या लिखा होगा कि इस गाड़ी से न आ सकूंगा। तार दे देना कौन मुश्किल है। मैं भी क्यों न तार दे दूं कि मै एक महीने के लिए मैके जा रही हूँ। नौकर से कहा—तार ले जाकर कमरे में मेज पर रख दो। मगर फिर कुछ सोचकर उसने लिफाफा ले लिया और खोला ही था कि कागज़ हाथ से छूटकर गिर पड़ा। लिखा था—मिस्टर व्यास को आज दस बजे रात किसी बदमाश ने कत्ल कर दिया।

२

कई महीने बीत गये। मगर खूनी का अब तक पता नहीं चला। खुफिया पुलिस के अनुभवी लोग उसका सुराग लगाने की फिक्र में परेशान हैं। खूनी को गिरफ्तार करा देनेवाले को बीस हजार रुपये इनाम दिये जाने का एलान कर दिया गया है। मगर कोई नतीजा नहीं ।

जिस होटल में मिस्टर व्यास ठहरे थे, उसी में एक महीने से माया ठहरी हुई है। उस कमरे से उसे प्यार-सा हो गया है। उसकी सूरत इतनी बदल गयी है कि अब उसे पहचानना मुश्किल है। मगर उसके चेहरे पर बेकसी या दर्द का पीलापन नहीं क्रोध की गर्मी दिखाई पड़ती है। उसकी नशीली ऑंखों में अब खून की प्यास है और प्रतिशोध की लपट। उसके शरीर का एक-एक कण प्रतिशोध की आग से जला जा रहा है। अब यही उसके जीवन का ध्येय, यही उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा है। उसके प्रेम की सारी निधि अब यही प्रतिशोध का आवेग हैं। जिस पापी ने उसके जीवन का सर्वनाश कर दिया उसे अपने सामने तड़पते देखकर ही उसकी आंखें ठण्डी होंगी। खुफ़िया पुलिस भय और लोभ, जाँच और पड़ताल से काम ले रही है, मगर माया ने अपने लक्ष्य पर पहुँचने के लिए एक दूसरा ही रास्ता अपनाया है। मिस्टर व्यास को प्रेत-विद्या से लगाव था। उनकी संगति में माया ने कुछ आरम्भिक अभ्यास किया था। उस वक्त उसके लिए यह एक मनोरंजन था। मगर अब यही उसके जीवन का सम्बल था। वह रोजाना तिलोत्तमा पर अमल करती और रोज-ब-रोज अभ्यास बढ़ाती जाती थी। वह उस दिन का इन्तजार कर रही थी जब अपने पति की आत्मा को बुलाकर उससे खूनी का सुराग लगा सकेगी। वह बड़ी लगन से, बड़ी एकाग्रचित्तता से अपने काम में व्यस्त थी। रात के दस बज गये थे। माया ने कमरे को अंधेरा कर दिया था और तिलोत्तमा पर अभ्यास कर रही

थी। यकायक उसे ऐसा मालूम कि कमरे में कोई दिव्य व्यक्तित्व आया। बुझते हुए दीपक की अंतिम झलक की तरह एक रोशनी नज़र आयी।

माया ने पूछा—आप कौन है ?

तिलोत्तमा ने हंसकर कहा—तुम मुझे नहीं पहचानतीं ? मैं ही तुम्हारा मनमोहन हूँ जो दुनिया में मिस्टर व्यास के नाम से मशहूर था।

'आप खूब आये। मैं आपसे खूनी का नाम पूछना चाहती हूँ।'

'उसका नाम है, ईश्वरदास।'

'कहां रहता है ?'

'शाहजहॉपुर।'

माया ने मुहल्ले का नाम, मकान का नम्बर, सूरत-शक्ल, सब कुछ विस्तार के साथ पूछा और कागज पर नोट कर लिया। तिलोत्तमा जरा देर में उठ बैठी। जब कमरे में फिर रोशनी हुई तो माया का मुरझाया हुआ चेहरा विजय की प्रसन्नता से चमक रहा था। उसके शरीर में एक नया जोश लहरें मार रहा था कि जैसे प्यास से मरते हुए मुसाफिर को पानी मिल गया हो।

उसी रात को माया ने लाहौर से शाहजहांपुर आने का इरादा किया।

३

रात का वक्त। पंजाब मेल बड़ी तेजी से अंधेरे को चीरती हुई चली जा रही थी। माया एक सेकेण्ड क्लास के कमरे में बैठी सोच रही थी कि शाहजहॉपुर में कहां ठहरेगी, कैसे ईश्वरदास का मकान तलाशा करेगी और कैसे उससे खून का बदला लेगी। उसके बगल में तिलोत्तमा बेखबर सो रही थीं सामने ऊपर के बर्थ पर एक आदमी नींद में गाफ़िल पड़ा हुआ था।

यकायक गाड़ी का कमरा खुला और दो आदमी कोट-पतलून पहने हुए कमरे में दाखिल हुए। दोनो अंग्रेज थे। एक माया की तरफ बैठा और दूसरा दूसरी तरफ। माया सिमटकर बैठ गयी । इन आदमियों को यों बैठना उसे बहुत बुरा मालूम हुआ। वह कहना चाहती थी, आप लोग दूसरी तरफ बैठें, पर वही औरत जो खून का बदला लेने जा रही थी, सामने यह खतरा देखकर कांप उठी। वह दोनों शैतान उसे सिमटते देखकर और भी करीब आ गये। माया अब वहां न बैठी रह सकी । वह उठकर दूसरे वर्थ पर जाना चाहती थी कि उनमें से एक ने उसका हाथ पकड़ लिया । माया ने जोर से हाथ छुड़ाने की कोशिश करके कहा—तुम्हारी शामत तो नहीं आयी है, छोड़ दो मेरा हाथ, सुअर ?

इस पर दूसरे आदमी ने उठकर माया को सीने से लिपटा लिया। और लड़खड़ाती हुई जबान से बोला—वेल हम तुमका बहुत-सा रुपया देगा।

माया ने उसे सारी ताकत से ढ़केलने की कोशिश करते हुए कहा—हट जा हरामजादे, वर्ना अभी तेरा सर तोड़ दूंगी।

दूसरा आदमी भी उठ खड़ा हुआ और दोनों मिलकर माया को बर्थ पर लिटाने की कोशिश करने लगे ।यकायक यह खटपट सुनकर ऊपर के बर्थ पर सोया हुआ आदी चौका और उन बदमाशों की हरकत देखकर ऊपर से कूद पड़ा। दोनों गोरे उसे देखकर माया को छोड़ उसकी तरफ झपटे और उसे घूंसे मारने लगे। दोनों उस पर ताबड़तोडं हमला कर रहे थे और वह हाथों से अपने को बचा रहा था। उसे वार करने का कोई मौका न मिलता था। यकायक उसने उचककर अपने बिस्तर में से एक छूरा निकाल दिया और आस्तीनें समेटकर बोला—तुम दोनों अगर अभी बाहर न चले गये तो मैं एक को भी जीता ना छोड़ुँगा।

दोनों गोरे छुरा देखकर डरे मगर वह भी निहत्थे न थे। एक ने जेब से रिवाल्वर निकल लिया और उसकी नली उस आदमी की तरफ करके बोला-निकल जाओ, रैस्कल !

माया थर-थर कांप रही थी कि न जाने क्या आफत आने वाली हे । मगर खतरा हमारी छिपी हुई हिम्मतों की कुंजी है। खतरे में पड़कर हम भय की सीमाओं से आगे बढ़ जाते हैं कुछ कर गुजरते हैं जिस पर हमें खुद हैरत होती है। वही माया जो अब तक थर-थर कांप रही थी, बिल्ली की तरह कूद कर उस गोरे की तरफ लपकी और उसके हाथ से रिवाल्वर खींचकर गाड़ी के नीचे फेंक दिया। गोरे ने खिसियाकर माया को दांत काटना चाहा मगर माया ने जल्दी से हाथ खींच लिया और खतरे की जंजीर के पास जाकर उसे जोर से खीचा। दूसरा गोरा अब तक किनारे खड़ा था। उसके पास कोई हथियार न था इसलिए वह छुरी के सामने न आना चाहता था। जब उसने देखा कि माया ने जंजीर खींच ली तो भीतर का दरवाजा खोलकर

भागा। उसका साथी भी उसके पीछे-पीछे भागा। चलते-चलते छुरी वाले आदमी ने उसे इतने जोर से धक्का दिया कि वह मुंह के बल गिर पड़ा। फिर तो उसने इतनी ठोकरें, इतनी लातें और इतने घुंसे जमाये कि उसके मुंह से खून निकल पड़ा। इतने में गाड़ी रुक गयी और गार्ड लालटेन लिये आता दिखायी दिया।

४

मगर वह दोनों शैतान गाड़ी को रुकते देख बेतहाशा नीचे कूद पड़े और उस अंधेरे में न जाने कहां खो गये । गार्ड ने भी ज्यादा छानबीन न की और करता भी तो उस अंधेरे में पता लगाना मुश्किल था । दोनों तरफ खड्ड थे, शायद किसी नदी के पास थीं। वहां दो क्या दो सौ आदमी उस वक्त बड़ी आसानी से छिप सकते थे। दस मिनट तक गाड़ी खड़ी रही, फिर चल पड़ी।

माया ने मुक्ति की सांस लेकर कहा—आप आज न होते तो ईश्वर ही जाने मेरा क्या हाल होता आपके कहीं चोट तो नहीं आयी ?

उस आदमी ने छुरे को जेब में रखते हुए कहा—बिलकुल नहीं। मैं ऐसा बेसुध सोया हुआ था कि उन बदमाशों के आने की खबर ही न हुई। वर्ना मैंने उन्हें अन्दर पांव ही न रखने दिया होता । अगले स्टेशन पर रिपोर्ट करूँगा।

माया—जी नहीं, खामखाह की बदनामी और परेशानी होगी। रिपोर्ट करने से कोई फायदा नहीं। ईश्वर ने आज मेरी आबरू रख ली। मेरा कलेजा अभी तक धड़-धड़ कर रहा है। आप कहां तक चलेंगे?

'मुझे शाहजहॉपुर जाना है।'

'वहीं तक तो मुझे भी जाना है। शुभ नाम क्या है ? कम से कम अपने उपकारक के नाम से तो अपरिचित न रहूँ।

'मुझे तो ईश्वरदास कहते हैं।

'माया का कलेजा धक् से हो गया। जरूर यह वही खूनी है, इसकी शक्ल-सूरत भी वही है जो उसे बतलायी गयी थीं उसने डरते-डरते पूछा—आपका मकान किस मुहल्ले में है ?

'.....में रहता हूँ।

माया का दिल बैठ गया। उसने खिड़की से सिर बाहर निकालकर एक लम्बी सांस ली। हाय ! खूनी मिला भी तो इस हालत में जब वह उसके एहसान के बोझ से दबी हुई है ! क्या उस आदमी को वह खंजर का निशाना बना सकती है, जिसने बगैर किसी परिचय के सिर्फ हमदर्दी के जोश में ऐसे गाढ़े वक्त में उसकी मदद की ? जान पर खेल गया ? वह एक अजीब उलझन में पड़ गयी । उसने उसके चेहरे की तरफ देखा, शराफत झलक रही थी। ऐसा आदमी खून कर सकता है, इसमें उसे सन्देह था

ईश्वरदास ने पूछा—आप लाहौर से आ रही हैं न ? शाहजहाँपुर में कहां जाइएगा ?

'अभी तो कहीं धर्मशाला में ठहरूंगी, मकान का इन्तजाम करना हैं।'

ईश्वरदास ने ताज्जुब से पूछा—तो वहां आप किसी दोस्त या रिश्तेदार के यहाँ नहीं जा रही हैं?

'कोई न कोई मिल ही जाएगा।'

'यों आपका असली मकान कहां है?'

'असली मकान पहले लखनऊ था, अब कहीं नहीं है। मै बेवा हूँ।'

५

ईश्वर दास ने शाहजहॉपुर में माया के लिए एक अच्छा मकान तय कर दिया । एक नौकर भी रख दिया । दिन में कई बार हाल-चाल पूछने आता। माया कितना ही चाहती थी कि उसके एहसान न ले, उससे घनिष्ठता न पैदा करे, मगर वह इतना नेक, इतना बामुरौवत और शरीफ था कि माया मजबूर हो जाती थी।

एक दिन वह कई गमले और फर्नीचर लेकर आया। कई खूबसूरत तसवीरें भी थी। माया ने त्यौरियां चढ़ाकर कहा—मुझे साज-सामान की बिलकुल जरूरत नहीं, आप नाहक तकलीफ करते हैं।

ईश्वरदास ने इस तरह लज्जित होकर कि जैसे उससे कोई भूल हो गयी हो कहा—मेरे घर में यह चीजें बेकार पड़ी थीं, लाकर रख दी।

'मैं इन टीम-टाम की चीजों का गुलाम नहीं बनना चाहती।'

ईश्वरदास ने डरते-डरते कहा –अगर आपको नागवार हो तो उठवा ले जाऊँ ?

माया ने देखा कि उसकी ऑखें भर आयी हैं, मजबूर होकर बोली—अब आप ले आये हैं तो रहने दीजिए। मगर आगे से कोई ऐसी चीज न लाइएगा

एक दिन माया का नौकर न आया। माया ने आठ-नौ बजे तक उसकी राह देखीं जब अब भी वह न आया तो उसने जूठे बर्तन मांजना शुरू किया। उसे कभी अपने हाथ से चौका –बर्तन करने का संयोग न हुआ था। बार-बार अपनी हालत पर रोना आता था एक दिन वह था कि उसके घर में नौकरों की एक पलटन थी, आज उसे अपने हाथों बर्तन मांजने पड़ रहे हैं। तिलोत्तमा दौड़-दौड़ कर बड़े जोश से काम कर रही थी। उसे कोई फिक्र न थी। अपने हाथों से काम करने का, अपने को उपयोगी साबित करने का ऐसा अच्छा मौका पाकर उसकी खुशी की सीमा न रही । इतने में ईश्वरदास आकर खड़ा हो गया और माया को बर्तन मांजते देखकर बोला—यह आप क्या कर रही हैं ? रहने दीजिए, मैं अभी एक आदमी को बुलावाये लाता हूँ। आपने मुझे क्यों ने खबर दी, राम-राम, उठ आइये वहां से ।

माया ने लापरवाही से कहा—कोई जरुरत नहीं, आप तकलीफ न कीजिए। मैं अभी मांजे लेती हूँ।

‘इसकी जरूरत भी क्या, मैं एक मिनट में आता हूँ।’

‘नहीं, आप किसी को न लाइए, मै इतने बर्तन आसानी से धो लूँगी।’

‘अच्छा तो लाइए मैं भी कुछ मदद करूँ।’

यह कहकर उसने डोल उठा लिया और बाहर से पानी लेने दौड़ा। पानी लाकर उसने मंजे हुए बर्तनों को धोना शुरू किया।

माया ने उसके हाथ से बर्तन छीनने की कोशिश करके कहा—आप मुझे क्यों शर्मिन्दा करते है ? रहने दीजिए, मैं अभी साफ़ किये डालती हूँ।

‘आप मुझे शर्मिदा करती हैं या मैं आपको शर्मिदा कर रहा हूँ? आप यहाँ मुसाफ़िर हैं , मैं यहां का रहने वाला हूँ, मेरा धर्म है कि आपकी सेवा करूँ। आपने एक ज्यादती तो यह की कि मुझे जरा भी खबर न दी, अब दूसरी ज्यादती यह कर रही हैं। मै इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता ।’

ईश्वरदास ने जरा देर में सारे बर्तन साफ़ करके रख दिये। ऐसा मालूम होता था कि वह ऐसे कामों का आदी है। बर्तन धोकर उसने सारे बर्तन पानी से भर दिये और तब माथे से पसीना पोंछता हुआ बोला–बाजार से कोई चीज लानी हो तो बतला दीजिए, अभी ला दूँ।

माया—जी नहीं, माफ कीजिए, आप अपने घर का रास्ता लीजिए।

ईश्वरदास—तिलोत्तमा, आओ आज तुम्हें सैर करा लायें।

माया—जी नहीं, रहने दीजिएं। इस वक्त सैर करने नहीं जाती।

माया ने यह शब्द इतने रूखेपन से कहे कि ईश्वरदास का मुंह उतर गया। उसने दुबारा कुछ न कहा। चुपके से चला गया। उसके जाने के बाद माया ने सोचा, मैंने उसके साथ कितनी बेमुरौवती की। रेलगाड़ी की उस दु:खद घटना के बाद उसके दिल में बराबर प्रतिशोध और मनुष्यता में लड़ाई छिड़ी हुई थी। अगर ईश्वरदास उस मौके पर स्वर्ग के एक दूत की तरह न आ जाता तो आज उसकी क्या हालत होती, यह ख्याल करके उसके रोएं खड़े हो जाते थे और ईश्वादास के लिए उसके दिल की गहराइयों से कृतज्ञता के शब्द निकलते । क्या अपने ऊपर इतना बड़ा एहसान करने वाले के खून से अपने हाथ रंगेगी ? लेकिन उसी के हाथों से उसे यह मनहूस दिन भी तो देखना पड़ा ! उसी के कारण तो उसने रेल का वह सफर किया था वर्ना वह अकेले बिना किसी दोस्त या मददगार के सफर ही क्यों करती ? उसी के कारण तो आज वह वैधव्य की विपत्तियां झेल रही है और सारी उम्र झेलेगी। इन बातों का खयाल करके उसकी आंखें लाल हो जातीं, मुंह से एक गर्म आह निकल जाती और जी चाहता इसी वक्त कटार लेकरचल पड़े और उसका काम तमाम कर दे।

६

आज माया ने अन्तिम निश्चय कर लिया। उसने ईश्वरदास की दावत की थी। यही उसकी आखिरी दावत होगी। ईश्वरदास ने उस पर एहसान जरूर किये हैं लेकिन दुनिया में कोई एहसान, कोई नेकी उस शोक के दाग को मिटा सकती है ? रात के नौ बजे ईश्वादास आया तो माया ने अपनी वाणी में प्रेम का आवेग भरकर कहा—बैठिए, आपके लिए गर्म-गर्म पूड़ियाँ निकाल दूँ ?

ईश्वरदास—क्या अभी तक आप मेरे इन्तजार में बैठी हुई हैं ? नाहक गर्मी में परेशान हुई।

माया ने थाली परसकर उसके सामने रखते हुए कहा—मैं खाना पकाना नहीं जानती ? अगर कोई चीज़ अच्छी न लगे तो माफ़ कीजिएगा।

ईश्वरदास ने खूब तारीफ़ करके एक-एक चीज खायीं। ऐसी स्वादिष्ट चीजें उसने अपनी उम्र में कभी न खायी थी।

'आप तो कहती थी मैं खाना पकाना नहीं जानती ?'

'तो क्या मैं ग़लत कहती थी ?'

'बिलकुल ग़लत। आपने खुद अपनी ग़लती साबित कर दीं। ऐसे खस्ते मैंने जिन्दगी में भी न खाये थे।'

'आप मुझे बनाते है, अच्छा साहब बना लीजिए।'

'नहीं, मैं बनाता नहीं, बिलकुल सच कहता हूँ। किस-कीस चीज की तारीफ करूं? चाहता हूँ कि कोई ऐब निकालूँ, लेकिन सूझता ही नहीं। अबकी मैं अपने दोस्तों की दावत करूंगा तो आपको एक दिन तकलीफ दूंगा।'

'हां, शौक़ से कीजिए, मैं हाजिर हूँ।'

खाते-खाते दस बज गये। तिलोत्तमा सो गयी। गली में भी सन्नाटा हो गया। ईश्वरदास चलने को तैयार हुआ, तो माया बोली—क्या आप चले जाएंगे ? क्यों न आज यहीं सो रहिए? मुझे कुछ डर लग रहा है। आप बाहर के कमरे में सो रहिएगा, मैं अन्दर आंगन में सो रहूँगीं

ईश्वरदास ने क्षण-भर सोचकर कहा—अच्छी बात है। आपने पहले कभी न कहा कि आपको इस घर में डर लगता है वर्ना मैं किसी भरोसे की बुड्ढी औरत को रात को सोने के लिए ठीक कर देता ।

ईश्वरदास ने तो कमरे में आसन जमाया, माया अन्दर खाना खाने गयी। लेकिन आज उसके गले के नीचे एक कौर भी न उतर सका। उसका दिल जोर-जोर से घड़क रहा था। दिल पर एक डर–सा छाया हुआ था। ईश्वरदास कहीं जाग पड़ा तो ? उसे उस वक्त कितनी शर्मिन्दगी होगी !

माया ने कटार को खूब तेज कर रखा था। आज दिन-भर उसे हाथ में लेकर अभ्यास किया । वह इस तरह वार करेगी कि खाली ही न जाये। अगर ईश्वरदास जाग ही पड़ा तो जानलेवा घाव लगेगा।

जब आधी रात हो गयी और ईश्वरदास के खर्राटों की आवाजें कानों में आने लगी तो माया कटार लेकर उठी पर उसका सारा शरीर कांप रहा था। भय और संकल्प, आकर्षण और घृणा एक साथ कभी उसे एक कदम आगे बढ़ा देती, कभी पीछे हटा देती । ऐसा मालूम होता था कि जैसे सारा मकान, सारा आसमान चक्कर खा रहा हैं कमरे की हर एक चीज घूमती हुई नजर आ रही थी। मगर एक क्षण में यह बेचैनी दूर हो गयी और दिल पर डर छा गया। वह दबे पांव ईश्वरदास के कमरे तक आयी, फिर उसके क़दम वहीं जम गये। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। आह, मैं कितनी कमजोर हूँ, जिस आदमी ने मेरा सर्वनाश कर दिया, मेरी हरी-भरी खेती उजाड़ दी, मेरे लहलहाते हुए उपवन को वीरान कर दिया, मुझे हमेशा के लिए आग के जलते हुए कुंडों में डाल दिया, उससे मैं खून का बदला भी नहीं ले सकती ! वह मेरी ही बहनें थी, जो तलवार और बन्दूक लेकर मैदान में लड़ती थीं, दहकती हुई चिता में हंसते-हंसते बैठ जाती थी। उसे उस वक्त ऐसा मालूम हुआ कि मिस्टर व्यास सामने खडें हैं और उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा कर रहे हैं, कह रहे है, क्या तुम मेरे खून का बदला न लोगी ? मेरी आत्मा प्रतिशोध के लिए तड़प रही हैं । क्या उसे हमेशा-हमेशा यों ही तड़पाती रहोगी ? क्या यही वफ़ा की शर्त थी ? इन विचारों ने माया की भावनाओं को भड़का दिया। उसकी आंखें खून की तरह लाल हो गयीं, होंठ दांतों के नीचे दब गये और कटार के हत्थे पर मुटठी बंध गयी। एक उन्माद-सा छा गया। उसने कमरे के अन्दर पैर रखा मगर ईश्वरदास की आंखें खुल गयी थीं। कमरे में लालटेन की मद्धिम रोशनी थी। माया की आहट पाकर वह चौंका और सिर उठाकर देखा तो खून सर्द हो गया—माया प्रलय की मूर्ति बनी हाथ में नंगी कटार लिये उसकी तरफ चली आ रही थी!

वह चारपाई से उठकर खड़ा हो गया और घबड़ाकर बोला—क्या है बहन ? यह कटार क्यों लिये हुए हो ?

माया ने कहा—यह कटार तुम्हारे खून की प्यासी है क्योंकि तुमने मेरे पति का खून किया है।

ईश्वरदास का चेहरा पीला पड़ गया । बोला—मैंनें !

'हां तुमने, तुम्हीं ने लाहौर में मेरे पति की हत्या की, जब वे एक मुकदमें की पैरवी करने गये थे। क्या तुम इससे इनकार कर सकते हो ?मेरे पति की आत्मा ने खुद तुम्हारा पता बतलाया है।'

'तो तूम मिस्टर व्यास की बीवी हो?'

‘हां, मैं उनकी बदनसीब बीवी हूँ और तुम मेरा सोहाग लूटनेवाले हो ! गो तुमने मेरे ऊपर एहसान किये हैं लेकिन एहसानों से मेरे दिल की आग नहीं बुझ सकती। वह तुम्हारी खून ही से बुझेगी।’

ईश्वरदास ने माया की ओर याचना-भरी आंखों से देखकर कहा—अगर आपका यही फैसला है तो लीजिए यह सर हाजिर है। अगर मेरे खून से आपके दिल की आग बुझ जाय तो मैं खुद उसे आपके कदमों पर गिरा दूँगा। लेकिन जिस तरह आप मेरे खून से अपनी तलवार की प्यास बुझाना अपना धर्म समझती हैं उसी तरह मैंने भी मिस्टर व्यास को क़त्ल करना अपना धर्म समझा। आपको मालूम है, वह एक रानीतिक मुकदमें की पैरवी करने लाहौर गये थें। लेकिन मिस्टर व्यास ने जिस तरह अपनी ऊंची कानूनी लियाकत का इस्तेमाल किया, पुलिस को झुठी शहादतों के तैयार करने में जिस तरह मदद दी, जिस बेरहमी और बेदर्दी से बेकस और ज्यादा बेगुनाह नौजवानों को तबाह किया, उसे मैं सह न सकता था। उन दिनों अदालत में तमाशाइयों की बेइन्ता भीड़ रहती थी। सभी अदालत से मिस्टर व्यास को कोसते हुए जाते थे मैं तो मुकदमे की हकीकत को जानता था । इस लिए मेरी अन्तरात्मा सिर्फ कोसने और गालियाँ देने से शांत न हो सकती थी । मैं आपसे क्या कहूँ । मिस्टर व्यास ने आखं खोलकर समझ- बूझकर झूठ को सच साबित किया और कितने ही घरानो को बेचिराग कर दिया आज कितनी माए अपने बेटो के लिए खून के आंसू रो रही है, कितनी ही औरते रंडापे की आग में जल रही है। पुलिस कितनी ही ज्यादतियां करे, हम परवाह नही करते । पुलिस से हम इसके सिवा और उम्मीद नही रखते। उसमे ज्यादातर जाहिल शोहदे लुच्चे भरे हुए है । सरकार ने इस महकमे को कायम ही इसलिए किया है कि वह रिआया को तंग करे। मगर वकीलो से हम इन्साफ की उम्मीद रखते है। हम उनकी इज्जत करते है । वे उच्चकोटि के पढे लिखे सजग लोग होते है । जब ऐसे आदमियों को हम पुलिस के हाथो की कठपुतली बना हुआ देखते है तो हमारे क्रोध की सीमा नहीं रहती मैं मिस्टर व्यास का प्रशंसक था। मगर जब मैने उन्हें बेगुनाह मुलजिमों से जबरन जुर्म का इकबाल कराते देखा तो मुझे उनसे नफरत हो गयी । गरीब मुलजिम रात दिन भर उल्टे लटकाये जाते थे ! सिर्फ इसलिए कि वह अपना जुर्म, तो उन्होने कभी नही किया, इकबाल कर ले ! उनकी नाक में लाल मिर्च का धुआं डाला जाता था ! मिस्टर व्यास यह सारी ज्यादातियां सिर्फ अपनी आंखो से देखते ही नही थे, बल्कि उन्हीं के इशारे पर वह की जाती थी।

माया के चेहरे की कठोरता जाती रही । उसकी जगह जायज गुस्से की गर्मी पैदा हुई । बोली–इसका आपके के पास कोई सबूत है कि उन्होने मुलजिमो पर ऐसी सख्तियां की ?

‘यह सारी बाते आमतौर पर मशहूर थी । लाहौर का बच्चा बच्चा जानता है। मैने खुद अपनी आंखों से देखी इसके सिवा मैं और क्या सबूत दे सकता हूँ उन बेचारो का बस इतना कसूर था। कि वह हिन्दुस्तान के सच्चे दोस्त थे, अपना सारा वक्त प्रजा की शिक्षा और सेवा में खर्च करते थे। भूखे रहते थे, प्रजा पर पुलिस हुक्काम की सख्तिंया न होने देते थे, यही उनका गुनाह था और इसी गुनाह की सजा दिलाने में मिस्टर व्यास पुलिस के दाहिने हाथ बने हुए थे!’

माया के हाथ से खंजर गिर पड़ा। उसकी आंखो मे आंसू भर आये, बोली मुझे न मालूम था कि वे ऐसी हरकते भी कर सकते है।

ईश्वरदास ने कहा- यह न समझिए कि मै आपकी तलवार से डर कर वकील साहब पर झूठे इल्जाम, लगा रहा हूं । मैने कभी जिन्दगी की परवाह नहीं की। मेरे लिए कौन रोने वाला बैठा हुआ है जिसके लिए जिन्दगी की परवाह करुँ। अगर आप समझती हैं कि मैने अनुंचित हत्या की है तो आप इस तलवार को उठाकर इस जिन्दगी का खात्मा कर दीजिए, मै जरा भी न झिझकूगां। अगर आप तलवार न उठा सके तो पुलिस को खबर कर दीजिए, वह बड़ी आसानी से मुझे दुनिया से रुखसत कर सकती है। सबूत मिल जाना मुश्किल न होगा। मैं खुद पुलिस के सामने जुर्म का इकबाल कर लेता मगर मै इसे जुर्म नही समझता। अगर एक जान से सैकड़ो जाने बच जाएं तो वह खून नही है। मैं सिर्फ इसलिए जिन्दा रहना चाहता हूँ कि शायद किसी ऐसे ही मौके पर मेरी फिर जरुरत पड़े

माया ने रोते हुए- अगर तुम्हारा बयान सही है तो मै अपना, खून माफ करती हूँ तुमने जो किया या बेजा किया इसका फैसला ईश्वर करेगे। तुमसे मेरी प्रार्थना है कि मेरे पति के हाथों जो घर तबाह हुए है। उनका मुझे पता बतला दो, शायद मै उनकी कुछ सेवा कर सकूँ।

-- प्रेमचालीसा’ से

देवी

रात भीग चुकी थी। मैं बरामदे में खडा था। सामने अमीनुददौला पार्क नीदं में डूबा खड़ा था। सिर्फ एक औरत एक तकियादार वेचं पर बैठी हुंई थी। पार्क के बाहर सड़क के किनारे एक फकीर खड़ा राहगीरो को दुआएं दे रहा था। खुदा और रसूल का वास्ता......राम और भगवान का वास्ता..... इस अंधे पर रहम करो ।

सड़क पर मोटरों ओर सवारियों का तातां बन्द हो चुका था। इक्के–दुक्के आदमी नजर आ जाते थे। फ़कीर की आवाज जो पहले नक्कारखाने में तूती की आवाज थी अब खुले मैदान की बुलंद पुकार हो रही थी ! एकाएक वह औरत उठी और इधर उधर चौकन्नी आंखो से देखकर फकीर के हाथ में कुछ रख दिया और फिर बहुत धीमे से कुछ कहकर एक तरफ चली गयी। फकीर के हाथ मे कागज का टुकडा नजर आया जिसे वह बार बार मल रहा था। क्या उस औरत ने यह कागज दिया है ?

यह क्या रहस्य है ? उसके जानने के कूतूहल से अधीर होकर मै नीचे आया ओर फेकीर के पास खड़ा हो गया।

मेरी आहट पाते ही फकीर ने उस कागज के पुर्जे को दो उंगलियों से दबाकर मुझे दिखाया। और पूछा,- बाबा, देखो यह क्या चीज है ?

मैने देखा– दस रुपये का नोट था ! बोला– दस रुपये का नोट है, कहां पाया ?

फकीर ने नोट को अपनी झोली में रखते हुए कहा-कोई खुदा की बन्दी दे गई है।

मैने ओर कुछ ने कहा। उस औरत की तरफ दौडा जो अब अधेरे में बस एक सपना बनकर रह गयी थी।

वह कई गलियों मे होती हुई एक टूटे–फूटे गिरे-पडे मकान के दरवाजे पर रुकी, ताला खोला और अन्दर चली गयी।

रात को कुछ पूछना ठीक न समझकर मै लौट आया।

रातभर मेरा जी उसी तरफ लगा रहा। एकदम तड़के मै फिर उस गली में जा पहुचा । मालूम हुआ वह एक अनाथ विधवा है।

मैने दरवाजे पर जाकर पुकारा – देवी, मैं तुम्हारे दर्शन करने आया हूँ। औरत बहार निकल आयी। ग़रीबी और बेकसी की जिन्दा तस्वीर मैने हिचकते हुए कहा- रात आपने फकीर को.................

देवी ने बात काटते हुए कहा– अजी वह क्या बात थी, मुझे वह नोट पड़ा मिल गया था, मेरे किस काम का था।

मैने उस देवी के कदमो पर सिर झुका दिया।

- प्रेमचालीसा' से

खुदी

मुन्नी जिस वक्त दिलदारनगर में आयी, उसकी उम्र पांच साल से ज्यादा न थी। वह बिलकुल अकेली न थी, माँ-बाप दोनों न मालूम मर गये या कहीं परदेस चले गये थे। मुन्नी सिर्फ इतना जानती थी कि कभी एक देवी उसे खिलाया करती थी और एक देवता उसे कंधे पर लेकर खेतों की सैर कराया करता था। पर वह इन बातों का जिक्र कुछ इस तरह करती थी कि जैसे उसने सपना देखा हो। सपना था या सच्ची घटना, इसका उसे ज्ञान न था। जब कोई पूछता तेरे माँ-बाप कहां गये ? तो वह बेचारी कोई जवाब देने के बजाय रोने लगती और यों ही उन सवालों को टालने के लिए एक तरफ हाथ उठाकर कहती—ऊपर। कभी आसमान की तरफ़ देखकर कहती—वहां। इस 'ऊपर' और 'वहां' से उसका क्या मतलब था यह किसी को मालूम न होता। शायद मुन्नी को यह खुद भी मालूम न था। बस, एक दिन लोगों ने उसे एक पेड़ के नीचे खेलते देखा और इससे ज्यादा उसकी बाबत किसी को कुछ पता न था।

लड़की की सूरत बहुत प्यारी थी। जो उसे देखता, मोह जाता। उसे खाने-पीने की कुछ फ़िक्र न रहती। जो कोई बुलाकर कुछ दे देता, वही खा लेती और फिर खेलने लगती। शक्ल-सूरज से वह किसी अच्छे घर की लड़की मालूम होती थी। ग़रीब-से-ग़रीब घर में भी उसके खाने को दो कौर और सोने को एक टाट के टुकड़े की कमी न थी। वह सबकी थी, उसका कोई न था।

इस तरह कुछ दिन बीत गये। मुन्नी अब कुछ काम करने के क़ाबिल हो गयी। कोई कहता, ज़रा जाकर तालाब से यह कपड़े तो धो ला। मुन्नी बिना कुछ कहे-सुने कपड़े लेकर चली जाती। लेकिन रास्ते में कोई बुलाकर कहता, बेटी, कुएँ से दो घड़े पानी तो खींच ला, तो वह कपड़े वहीं रखकर घड़े लेकर कुएँ की तरफ चल देती। जरा खेत से जाकर थोड़ा साग तो ले आ और मुन्नी घड़े वहीं रखकर साग लेने चली जाती। पानी के इन्तज़ार में बैठी हुई औरत उसकी राह देखते-देखते थक जाती। कुएँ पर जाकर देखती है तो घड़े रखे हुए हैं। वह मुन्नी को गालियाँ देती हुई कहती, आज से इस कलमुँही को कुछ खाने को न दूँगी। कपड़े के इन्तज़ार में बैठी हुई औरत उसकी राह देखते-देखते थक जाती और गुस्से में तालाब की तरफ़ जाती तो कपड़े वहीं पड़े हुए मिलते। तब वह भी उसे गालियाँ देकर कहती, आज से इसको कुछ खाने को न दूँगी। इस तरह मुन्नी को कभी-कभी कुछ खाने को न मिलता और तब उसे बचपन याद आता, जब वह कुछ काम न करती थी और लोग उसे बुलाकर खाना खिला देते थे। वह सोचती किसका काम करुँ, किसका न करुँ जिसे जवाब दूँ वही नाराज़ हो जायेगा। मेरा अपना कौन है, मैं तो सब की हूँ। उसे ग़रीब को यह न मालूम था कि जो सब का होता है वह किसी का नहीं होता। वह दिन कितने अच्छे थे, जब उसे खाने-पीने की और किसी की खुशी या नाखुशी की परवाह न थी। दुर्भाग्य में भी बचपन का वह समय चैन का था।

कुछ दिन और बीते, मुन्नी जवान हो गयी। अब तक वह औरतों की थी, अब मर्दो की हो गयी। वह सारे गाँव की प्रेमिका थी पर कोई उसका प्रेमी न था। सब उससे कहते थे—मैं तुम पर मरता हूँ, तुम्हारे वियोग में तारे गिनता हूँ, तुम मेरे दिलोजान की मुराद हो, पर उसका सच्चा प्रेमी कौन है, इसकी उसे खबर न होती थी। कोई उससे यह न कहता था कि तू मेरे दुख-दर्द की शरीक हो जा। सब उससे अपने दिल का घर आबाद करना चाहते थे। सब उसकी निगाह पर, एक मद्धिम-सी मुस्कराहट पर कुर्बान होना चाहते थे; पर कोई उसकी बाँह पकड़नेवाला, उसकी लाज रखनेवाला न था। वह सबकी थी, उसकी मुहब्बत के दरवाजे सब पर खुले हुए थे ; पर कोई उस पर अपना ताला न डालता था जिससे मालूम होता कि यह उसका घर है, और किसी का नहीं।

वह भोली-भाली लड़की जो एक दिन न जाने कहाँ से भटककर आ गयी थी, अब गाँव की रानी थी। जब वह अपने उन्नत वक्षों को उभारकर रुप-गर्व से गर्दन उठाये, नजाकत से लचकती हुई चलती तो मनचले नौजवान दिल थामकर रह जाते, उसके पैरों तले आँखें बिछाते। कौन था जो उसके इशारे पर अपनी जान न निसार कर देता। वह अनाथ लड़की जिसे कभी गुड़ियाँ खेलने को न मिलीं, अब दिलों से खेलती थी। किसी को मारती थी। किसी को जिलाती थी, किसी को ठुकराती थी, किसी को थपकियाँ देती थी, किसी से रुठती थी, किसी को मनाती थी। इस खेल में उसे क़त्ल और खून का-सा मज़ा मिलता था। अब पाँसा पलट गया था। पहले वह सबकी थी, कोई उसका न था; अब सब उसके थे, वह किसी की न थी। उसे जिसे चीज़ की तलाश थी, वह कहीं न मिलती थी। किसी में वह हिम्मत न थी जो उससे कहता, आज से तू मेरी है। उस

पर दिल न्यौछावर करने वाले बहुतेरे थे, सच्चा साथी एक भी न था। असल में उन सरफिरों को वह बहुत नीची निगाह से देखती थी। कोई उसकी मुहब्बत के क़ाबिल नहीं था। ऐसे पस्त-हिम्मतों को वह खिलौनों से ज्यादा महत्व न देना चाहती थी, जिनका मारना और जिलाना एक मनोरंजन से अधिक कुछ नहीं।

जिस वक्त कोई नौजवान मिठाइयों के थाल और फूलों के हार लिये उसके सामने खड़ा हो जाता तो उसका जी चाहता; मुंह नोच लूँ। उसे वह चीजें कालकूट हलाहल जैसी लगतीं। उनकी जगह वह रुखी रोटियाँ चाहती थी, सच्चे प्रेम में डूबी हुई। गहनों और अशर्फियों के ढेर उसे बिच्छू के डंक जैसे लगते। उनके बदले वह सच्ची, दिल के भीतर से निकली हुई बातें चाहती थी जिनमें प्रेम की गंध और सच्चाई का गीत हो। उसे रहने को महल मिलते थे, पहनने को रेशम, खाने को एक-से-एक व्यंजन, पर उसे इन चीजों की आकांक्षा न थी। उसे आकांक्षा थी, फूस के झोंपड़े, मोटे-झोटे सूखे खाने। उसे प्राणघातक सिद्धियों से प्राणपोषक निषेध कहीं ज्यादा प्रिय थे, खुली हवा के मुकाबले में बंद पिंजरा कहीं ज्यादा चाहेता !

एक दिन एक परदेसी गांव में आ निकला। बहुत ही कमजोर, दीन-हीन आदमी था। एक पेड़ के नीचे सत्तू खाकर लेटा। एकाएक मुन्नी उधर से जा निकली। मुसाफ़िर को देखकर बोली—कहां जाओगे ?

मुसाफिर ने बेरुखी से जवाब दिया- जहन्नुम !

मुन्नी ने मुस्कराकर कहा- क्यों, क्या दुनिया में जगह नहीं ?

'औरों के लिए होगी, मेरे लिए नहीं।'

'दिल पर कोई चोट लगी है ?'

मुसाफिर ने ज़हरीली हंसी हंसकर कहा- बदनसीबों की तक़दीर में और क्या है ! रोना-धोना और डूब मरना, यही उनकी जिन्दगी का खुलासा है। पहली दो मंजिल तो तय कर चुका, अब तीसरी मंज़िल और बाकी है, कोई दिन वह पूरी हो जायेगी; ईश्वर ने चाहा तो बहुत जल्द।

यह एक चोट खाये हुए दिल के शब्द थे। जरुर उसके पहलू में दिल है। वर्ना यह दर्द कहां से आता ? मुन्नी बहुत दिनों से दिल की तलाश कर रही थी बोली—कहीं और वफ़ा की तलाश क्यों नहीं करते ?

मुसाफिर ने निराशा के भव से उत्तर दिया—तेरी तक़दीर में नहीं, वर्ना मेरा क्या बना-बनाया घोंसला उजड़ जाता ? दौलत मेरे पास नहीं। रुप-रंग मेरे पास नहीं, फिर वफ़ा की देवी मुझ पर क्यों मेहरबान होने लगी ? पहले समझता था वफ़ा दिल के बदले मिलती है, अब मालूम हुआ और चीजों की तरह वह भी सोने-चाँदी से खरीदी जा सकती है।

मुन्नी को मालूम हुआ, मेरी नज़रों ने धोखा खाया था। मुसाफिर बहुत काला नहीं, सिर्फ साँवला। उसका नाक-नक्शा भी उसे आकर्षक जान पड़ा। बोली—नहीं, यह बात नहीं, तुम्हारा पहला खयाल ठीक था।

यह कहकर मुन्नी चली गयी। उसके हृदय के भाव उसके संयम से बाहर हो रहे थे। मुसाफिर किसी खयाल में डूब गया। वह इस सुन्दरी की बातों पर गौर कर रहा था, क्या सचमुच यहां वफ़ा मिलेगी ? क्या यहाँ भी तक़दीर धोखा न देगी ?

मुसाफ़िर ने रात उसी गाँव में काटी। वह दूसरे दिन भी न गया। तीसरे दिन उसने एक फ़ूस का झोंपड़ा खड़ा किया। मुन्नी ने पूछा—यह झोपड़ा किसके लिए बनाते हो ?

मुसाफ़िर ने कहा—जिससे वफ़ा की उम्मीद है।

'चले तो न जाओगे?'

'झोंपड़ा तो रहेगा।'

'खाली घर में भूत रहते हैं।'

'अपने प्यारे का भूत ही प्यारा होता है।'

दूसरे दिन मुन्नी उस झोंपड़े में रहने लगी। लोगों को देखकर ताज्जुब होता था। मुन्नी उस झोंपड़े में नही रह सकती। वह उस भोले मुसाफिर को जरुर द़गा देगी, यह आम खयाल था, लेकिन मुन्नी फूली न समाती थी। वह न कभी इतनी सुन्दर दिखायी पड़ी थी, न इतनी खुश। उसे एक ऐसा आदमी मिल गया था, जिसके पहलू में दिल था।

2

लेकिन मुसाफिर को दूसरे दिन यह चिन्ता हुई कि कहीं यहां भी वही अभागा दिन न देखना पड़े। रुप में वफ़ा कहाँ ? उसे याद आया, पहले भी इसी तरह की बातें हुई थीं, ऐसी ही कसम खायी गयी थीं, एक दूसरे से वादे किए गए थे। मगर उन कच्चे धागों को टूटते कितनी देर लगी ? वह धागे क्या फिर न

टूट जाएंगे ? उसके क्षणिक आनन्द का समय बहुत जल्द बीत गया और फिर वही निराशा उसके दिल पर छा गयी। इस मरहम से भी उसके जिगर का जख्म न भरा। तीसरे रोज वह सारे दिन उदास और चिन्तित बैठा रहा और चौथे रोज लापता हो गया। उसकी यादगार सिर्फ उसकी फूस की झोंपड़ी रह गयी।

मुन्नी दिन-भर उसकी राह देखती रही। उसे उम्मीद थी कि वह जरुर आयेगा। लेकिन महीनों गुजर गये और मुसाफिर न लौटा। कोई खत भी न आया। लेकिन मुन्नी को उम्मीद थी, वह जरुर आएगा।

साल बीत गया। पेड़ों में नयी-नयी कोपलें निकलीं, फूल खिले, फल लगे, काली घटाएं आयीं, बिजली चमकी, यहां तक कि जाड़ा भी बीत गया और मुसाफिर न लौटा। मगर मुन्नी को अब भी उसके आने की उम्मीद थी; वह जरा भी चिन्तित न थी, भयभीत न थीं वह दिन-भर मजदूरी करती और शाम को झोंपड़े में पड़ रहती। लेकिन वह झोंपड़ा अब एक सुरक्षित किला था, जहां सिरफिरों के निगाह के पांव भी लंगड़े हो जाते थे।

एक दिन वह सर पर लकड़ी का गट्ठा लिए चली आती थी। एक रसियों ने छेड़खानी की—मुन्नी, क्यों अपने सुकुमार शरीर के साथ यह अन्याय करती हो ? तुम्हारी एक कृपा दृष्टि पर इस लकड़ी के बराबर सोना न्यौछावर कर सकता हूँ।

मुन्नी ने बड़ी घृणा के साथ कहा—तुम्हारा सोना तुम्हें मुबारक हो, यहां अपनी मेहनत का भरोसा है।

'क्यों इतना इतराती हो, अब वह लौटकर न आयेगा।'

मुन्नी ने अपने झोंपड़े की तरफ इशारा करके कहा—वह गया कहां जो लौटकर आएगा ? मेरा होकर वह फिर कहां जा सकता हैं ? वह तो मेरे दिल में बैठा हुआ है !

इसी तरह एक दिन एक और प्रेमीजन ने कहा—तुम्हारे लिए मेरा महल हाजिर है। इस टूटे-फूटे झोपड़े में क्यों पड़ी हो ?

मुन्नी ने अभिमान से कहा—इस झोपड़े पर एक लाख महल न्यौछावर हैं। यहां मैने वह चीज़ पाई है, जो और कहीं न मिली थी और न मिल सकती है। यह झोपड़ा नहीं है, मेरे प्यारे का दिल है !

इस झोंपड़े में मुन्नी ने सत्तर साल काटे। मरने के दिन तक उसे मुसाफ़िर के लौटने की उम्मीद थी, उसकी आखिरी निगाहें दरवाजे की तरफ लगी हुई थीं। उसके खरीदारों में कुछ तो मर गए, कुछ जिन्दा हैं, मगर जिस दिन से वह एक की हो गयी, उसी दिन से उसके चेहरे पर दीप्ति दिखाई पड़ी जिसकी तरफ़ ताकते ही वासना की आंखें अंधी हो जातीं। खुदी जब जाग जाती है तो दिल की कमजोरियां उसके पास आते डरती हैं।

-'खाके परवाना' से

बड़े बाबू

तीन सौ पैंसठ दिन, कई घण्टे और कई मिनट की लगातार और अनथक दौड़-धूप के बाद मैं आखिर अपनी मंजिल पर धड़ से पहुँच गया। बड़े बाबू के दर्शन हो गए। मिट्टी के गोले ने आग के गोले का चक्कर पूरा कर लिया। अब तो आप भी मेरी भूगोल की लियाकत के कायल हो गए। इसे रुपक न समझिएगा। बड़े बाबू में दोपहर के सूरज की गर्मी और रोशनी थी और मैं क्या और मेरी बिसात क्या, एक मुठ्ठी खाक। बड़े बाबू मुझे देखकर मुस्कराये। हाय, यह बड़े लोगों की मुस्कराहट, मेरा अधमरा-सा शरीर कांपते लगा। जी में आया बड़े बाबू के कदमों पर बिछ जाऊँ। मैं काफिर नहीं, गालिब का मुरीद नहीं, जन्नत के होने पर मुझे पूरा यकीन है, उतरा ही पूरा जितना अपने अंधेरे घर पर। लेकिन फरिश्ते मुझे जन्नत ले जाने के लिए आए तो भी यकीनन मुझे वह जबरदस्त खुशी न होती जो इस चमकती हुई मुस्कराहट से हुई। आंखों में सरसों फूल गई। सारा दिल और दिमाग एक बगीचा बन गया। कल्पना ने मिस्र के ऊंचे महल बनाने शुरु कर दिय। सामने कुर्सियों, पर्दो और खस की टट्टियों से सजा-सजाया कमरा था। दरवाजे पर उम्मीदवारों की भीड़ लगी हुई थी और ईजानिब एक कुर्सी पर शान से बैठे हुए सबको उसका हिस्सा देने वाले खुदा के दुनियाबी फ़र्ज अदा कर रहे थे। नजर-मियाज़ का तूफ़ान बरपा था और मैं किसी तरफ़ आंख उठाकर न देखता था कि जैसे मुझे किसी से कुछ लेना-देना नहीं।

अचानक एक शेर जैसी गरज ने मेरे बनते हुए महल में एक भूचाल-सा ला दिया—क्या काम है? हाय रे, ये भोलापन ! इस पर सारी दुनिया के हसीनों का भोलापन और बेपरवाही निसार है। इस ड्याढ़ी पर माथा रगड़ते-रगड़ते तीने सौ पैंसठ दिन, कई घण्टे और कई मिनट गुजर गए। चौखट का पत्थर घिसकर जमीन से मिल गया। ईदू बिसाती की दुकान के आधे खिलौने और गोवर्द्धन हलवाई की आधी दुकान इसी ड्यौढ़ी की भेंट चढ़ गयी और मुझसे आज सवाल होता है, क्या काम
है !

मगर नहीं, यह मेरी ज्यादती हैं सरासर जुल्म। जो दिमाग़ बड़े-बड़े मुल्की और माली तमद्दुनी मसलों में दिन-रात लगा रहता है, जो दिमाग़ डाकूमेंटों, सरकुलरों, परवानों, हुक्मनामों, नक्शों वग़ैरह के बोझ से दबा जा रहा हो, उसके नजदीक मुझ जैसे खाक के पुतले की हस्ती ही क्या। मच्छर अपने को चाहे हाथी समझ ले पर बैल के सींग को उसकी क्या खबर। मैंने दबी जबान में कहा—हुजूर की क़दमबोसी के लिए हाजिर हुआ।

बड़े बाबू गरजे—क्या काम है?

अबकी बार मेरे रोएं खड़े हो गए। खुदा के फ़जल से लहीम-शहीम आदमी हूँ, जिन दिनों कालेज में था, मेरे डील-डौल और मेरी बहादुरी और दिलेरी की धूम थी। हाकी टीम का कप्तान, फुटवाल टीम का नायब कप्तान और क्रिकेट का जनरल था। कितने ही गोरों के जिस्म पर अब भी मेरी बहादुरी के दाग़ बाकी होंगे। मुमकिन है, दो-चार अब भी बैसाखियां लिए चलते या रेंगते हों। 'बम्बई क्रानिकल' और 'टाइम्स' में मेरे गेंदों की धूम थी। मगर इस वक्त बाबू साहब की गरज सुनकर मेरा शरीर कांपने लगा। कांपते हुए बोला—हुजूर की कदमबोसी के लिए हाजिर हुआ।

बड़े बाबू ने अपना स्लीपरदार पैर मेरी तरफ़ बढ़ाकर कहा—शौक से लीजिए, यह कदम हाजिर है, जितने बोसे चाहे लीजिए, बेहिसाब मामले हैं, मुझसे कसम ले लीजिए जो मैं गिनूँ, जब तक आपका मुंह न थक जाए, लिए जाइए ! मेरे लिए इससे बढ़कर खुशनसीबी का क्या मौका होगा ? औरों को जो बात बड़े जप-तप, बड़े संयम-व्रत से मिलती है, वह मुझे बैठे-बिठाये बग़ैर हड़-फिटकरी लगाए हासिल हो गयी। वल्लाह, हूं मैं भी खुशनसीब । आप अपने दोस्त-अहबाब, आत्मीय-स्वजन जो हों, उन सबको लायें तो और भी अच्छा, मेरे यहां सबको छूट है !

हंसी के पर्दे में यह जो जुल्म बड़े बाबू कर रहे थे उस पर शायद अपने दिल में उनको नाज हो। इस मनहूस तकदीर का बुरा हो, जो इस दरवाज़े का भिखारी बनाए हुए है। जी में तो आया कि हज़रत के बढ़े हुए पैर को खींच लूं और आपको जिन्दगी-भर के लिए सबक दे दूँ कि बदनसीबों से दिल्लगी करने का यह मजा हैं मगर बदनसीबी अगर दिल पर जब्र न कराये, जिल्लत का अहसास न पैदा करे तो वह बदनसीबी क्यों कहलाए। मैं भी एक जमाने में इसी तरह लोगों को तकलीफ पहुँचाकर हंसता था। उस वक्त इन बड़े बाबुओं की मेरी निगाह में कोई हस्ती न थी। कितने ही बड़े बाबुओं को रुलाकर छोड़ दिया। कोई ऐसा

प्रोफेसर न था, जिसका चेहरा मेरी सूरत देखते ही पीला न पड़ जाता हो। हजार-हजार रुपया पाने वाले प्रोफेसरों की मुझसे कोर दबकी थी। ऐसे क्लर्कों को मैं समझता ही क्या था। लेकिन अब वह जमाना कहां। दिल में पछताया कि नाहक कदमबोसी का लफ़्ज जबान पर लाया। मगर अपनी बात कहना जरुरी था। मैं पक्का इरादा करके अया था कि उस ड्योढ़ी से आज कुछ लेकर ही उठूंगा। मेरे धीरज और बड़े बाबू के इस तरह जान-बूझकर अनजान बनने में रस्साकशी थी। दबी ज़बान से बोला—हुजूर, ग्रेजुएट हूँ।

शुक्र है, हज़ार शुक्र हैं, बड़े बाबू हंसे। जैसे हांडी उबल पड़ी हो। वह गरज और वह करख्त आवाज न थी। मेरा माथा रगड़ना आखिर कहां तक असर न करता। शायद असर को मेरी दुआ से दुश्मनी नहीं। मेरे कान बड़ी बेक़रारी से वे लफ़्ज सुनने के लिए बेचैन हो रहे थे जिनसे मेरी रुह को खुशी होगी। मगर आह, जितनी मायूसी इन कानों को हुई है उतनी शायद पहाड़ खोदने वाले फ़रहाद को भी न हुई होगी। वह मुस्कराहट न थी, मेरी तक़दीर की हंसी थी। हुजूर ने फ़रमाया—बड़ी खुशी की बात है, मुल्क और क़ौम के लिए इससे ज्यादा खुशी की बात और क्या हो सकती है। मेरी दिली तमन्ना है, मुल्क का हर एक नौजवान ग्रेजुएट हो जाए। ये ग्रेजुएट ज़िन्दगी के जिस मैदान में जाय, उस मैदान को तरक्की ही देगा—मुल्की, माली, तमददुनी (मजहबी) ग़रज कि हर एक किस्म की तहरीक का जन्म और तरक्की ग्रेजुएटों ही पर मुनहसर है। अगर मुल्क में ग्रेजुएटों का यह अफ़सोसनाक अकाल न होता तो असहयोग की तहरीक क्यों इतनी जल्दी मुर्दा हो जाती ! क्यों बने हुए रंगे सियार, दग़ाबाज जरपस्त लीडरों को डाकेजनी के ऐसे मौके मिलते! तबलीग क्यों मुबल्लिगे अले हुस्सलाम की इल्लत बनती! ग्रेजुएट में सच और झूठ की परख, निगाह का फैलाव और जांचने-तोलने की क़ाबलियत होना जरुरी बात है। मेरी आंखें तो ग्रेजुएटों को देखकर नशे के दर्जे तक खुशी से भर उठती हैं। आप भी खुदा के फ़जल से अपनी क़िस्म की बहुत अच्छी मिसाल हैं, बिल्कुल आप-टू-डेट। यह शेरवानी तो बरकत एण्ड को की दुकान की सिली हुई होगी। जूते भी डासन के हैं। क्यों न हो। आप लोंगों ने कौम की जिन्दगी के मैयार को बहुत ऊंचा बना दिया है और अब वह बहुत जल्द अपनी मंजिल पर पहुँचेगी। ब्लैकबर्ड पेन भी है, वेस्ट एण्ड की रिस्टवाच भी है। बेशक अब कौमी बेड़े को ख्वाजा खिज़र की जरुरत भी नहीं। वह उनकी मिन्नत न करेगा।

हाय तक़दीर और वाय तक़दीर ! अगर जानता कि यह शेरवानी और फ़ाउंटेनपेन और रिस्टवाज यों मज़ाक का निशाना बनेगी, तो दोस्तों का एहसान क्यों लेता। नमाज़ बख्शवाने आया था, रोज़े गले पड़े। किताबों में पढ़ा था, ग़रीबी की हुलिया ऐलान है अपनी नाकामी का, न्यौता देना है अपनी जिल्लत कों। तजुर्बा भी यही कहता था। चीथड़े लगाये हुए भिखमंगों को कितनी बेदर्दी से दुतकारता हूँ लेकिन जब कोई हजरत सूफी-साफ़ी बने हुए, लम्बे-लम्बे बाल कंधों पर बिखेरे, सुनहरा अमामा सर पर बांका-तिरछा शान से बांधे, संदली रंग का नीचा कुर्ता पहने, कमरे में आ पहुँचते हैं तो मजबूर होकर उनकी इज्जत करनी पड़ती है और उनकी पाकीज़गी के बारे में हजारों शुबहे पैदा होने पर भी छोटी-छोटी रक़म जो उनकी नज़र की जाती हे, वह एक दर्जन भिखारियों को अच्छा खाना खिलाने के सामान इकट्ठा कर देती। पुरानी मसल है—भेस से ही भीख मिलती है। पर आज यह बात ग़लत साबित हो गयी । अब बीवी साहिबा की वह तम्बीह याद आयी जो उसने चलते वक्त दी थी—क्यों बेकार अपनी बइज्जती कराने जा रहे हो। वह साफ़ समझेंगे कि यह मांगे-जांचे का ठाठ है। ऐसे रईस होते तो मेरे दरवाजे पर आते क्यों। उस वक्त मैंने इस तम्बीह को बीवी की कमनिगाह और उसका गंवारपन समझा था। पर अब मालूम हुआ कि गंवारिनें भी कभी-कभी सूझ की बातें कहते हैं। मगर अब पछताना बेकार है। मैंने आज़िज़ी से कहा—हुजूर, कहीं मेरी भी परवरिश फ़रमायें।

बड़े बाबू ने मेरी तरफ़ इस अन्दाज से देखा जैसे मैं किसी दूसरी दुनिया का कोई जानवर हूँ और बहुत दिलासा देने के लहजे में बोले—आपकी परवरिश खुदा करेगा। वही सबका रज्ज़ाक है, दुनिया जब से शुरु हुई तब से तमाम शायर, हकीम और औलिया यही सिखाते आये हैं कि खुदा पर भरोसा रख और हम हैं कि उनकी हिदायत को भूल जाते हैं। लकिन खैर, मैं आपको नेक सलाह देने में कंजूसी न करुँगा। आप एक अखबार निकाल लीजिए। यकीन मानिए इसके लिए बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे होने की जरुरत नहीं और आप तो खुदा के फ़ज़ल से ग्रेजुएट है।, स्वादिष्ट तिलाओं और स्तम्भन-बटियों के नुस्खें लिखिए। तिब्बे अकबर में आपको हज़ारों नुस्खे मिलेंगे। लाइब्रेरी जाकर नकल कर लाइए और अखबार में नये नाम से छापिए। कोकशास्त्र तो आपने पढ़ा ही होगा अगर न पढ़ा हो तो एक बार पढ़ जाइए और अपने अखबार में शादी के मर्जो के तरीके लिखिए। कामेन्द्रिय के नाम जिंतने ज्यादा आ सकें, बेहतर है फिर देखिए कैसे डाक्टर और प्रोफेसर और डिप्टी कलेक्टर आपके भक्त हो जाते हैं। इसका खयाल रहे कि यह काम हकीमाना अन्दाज़ से

किया जाए। ब्योपारी और हकीमाना अन्दाज में थोड़ा फ़र्क़ है, ब्योपारी सिर्फ़ अपनी दवाओं की तारीफ़ करता है, हकीम परिभाषाओं और सूक्तियों को खोलकर अपने लेखों को इल्मी रंग देता है। ब्योपारी की तारीफ से लोग चिढ़ते हैं, हकीम की तारीफ़ भरोसा दिलाने वाली होती है। अगर इस मामले में कुछ समझने-बूझने की जरुरत हो तो रिसाला 'दरवेश' हाज़िर हैं अगर इस काम में आपको कुछ दिक्कत मालूम होती हो, तो स्वामी श्रद्धानन्द की खिदमत में जाकर शुद्धि पर आमादगी जाहिर कीजिए—फिर देखिए आपकी कितनी खातिर-तवाजों होती है। इतना समझाये देता हूँ कि शुद्धि के लिए फौरन तैयार न हो जाइएगा। पहले दिन तो दो-चार हिन्दू धर्म की किताबें मांग लाइयेगा। एक हफ्ते के बाद जाकर कुछ एतराज कीजिएगा। मगर एतराज ऐसे हो जिनका जवाब आसानी से दिया जा सके इससे स्वामीजी को आपकी छान-बीन और जानने की ख्वाहिश का यकीन हो जायेगा। बस, आपकी चांदी है। आप इसके बाद इसलाम की मुखालिफत पर दो-एक मजमून या मजमूनों का सिलसिला किसी हिन्दू रिसाले में लिख देंगे तो आपकी जिन्दगी और रोटी का मसला हल हो जाएगा। इससे भी सरल एक नुस्खा है—तबलीग़ी मिशन में शरीक हो जाइए, किसी हिन्दू औरत, खासकर नौजवान बेवा, पर डोरे डालिए। आपको यह देखकर हैरत होगी कि वह कितनी आसानी से आपसे मुहब्बत करने लग जाती है। आप उसकी अंधेरी जिन्दगी के लिए एक मशाल साबित होंगे। वह उज़ नहीं करती, शौक से इसलाम कबूल कर लेगी। बस, अब आप शहीदों में दाखिल हो गए। अगर जरा एहतियात से काम करते रहें तो आपकी जिन्दगी बड़े चैन से गुजरेगी। एक ही खेवे में दीनो-दुनिया दोनों ही पार हैं। जनाब लीडर बन जाएंगे वल्लाह, एक हफ्ते में आपका शुमार नामी-गरामी लोगों में होने लगेगा, दीन के सच्चे पैरोकार। हजारों सीधे-सादे मुसलमान आपकों दीन की डूबती हुई किश्ती का मल्लाह समझेंगे। फिर खुदा के सिवा और किसी को खबर न होगी कि आपके हाथ क्या आता है और वह कहां जाता है और खुदा कभी राज नहीं खोला करता, यह आप जानते ही हैं। ताज्जुब है कि इन मौकों पर आपकी निगाह क्यों नहीं जाती ! मैं तो बुड्ढा हो गया और अब कोई नया काम नहीं सीख सकता, वर्ना इस वक्त लीडरों का लीडर होता।

इस आग की लपट जैसे मज़ाक ने जिस्म में शोले पैदा कर दिये। आंखों से चिनगारियां निकलने लगीं। धीरज हाथ से छूटा जा रहा था। मगर कहरे दरवेश बर जाने दरवेश(भिखारी का गुस्सा अपनी जान पर) के मुताबिक सर झुकाकर खड़ा रहा। जितनी दलीलें दिमाग में कई दिनों से चुन-चुनकर रखी थीं, सब धरी रह गयीं। बहुत सोचने पर भी कोई नया पहलू ध्यान में न आया। यों खुदा के फ़ज़ल से बेवकूफ़ या कुन्दजेहन नहीं हूँ, अच्छा दिमाग पाया है। इतने सोच-विचार से कोई अच्छी-सी गजल हो जाती। पर तबीयत ही तो है, न लड़ी। इत्तफाक से जेब में हाथ डाला तो अचानक याद आ गया कि सिफारिशी खतों का एक पोथा भी साथ लाया हूँ। रोब का दिमाग पर क्या असर पड़ता है इसका आज तजुर्बा हो गया। उम्मीद से चेहरा फूल की तरह खिल उठा। खतों का पुलिन्दा हाथ में लेकर बोला—हुजूर, यह चन्द खत हैं इन्हें मुलाहिजा फरमा लें।

बड़े बाबू ने बण्डल लेकर मेज़ पर रख दिया और उस पर एक उड़ती हुई नज़र डालकर बोले—आपने अब तक इन मोतियों को क्यों छिपा रक्खा था ?

मेरे दिल में उम्मीद की खुशी का एक हंगामा बरपा हो गया। जबान जो बन्द थी, खुल गयी। उमंग से बोला—हुजूर की शान-शौकत ने मुझ पर इतना रोब डाल दिया और कुछ ऐसा जादू कर दिया कि मुझे इन खतों की याद न रही। हुजूर से मैं बिना नमक-मिर्च लगाये सच-सच कहता हूँ कि मैंने इनके लिए किसी तरह की कोशिश या सिफारिश नहीं पहुँचायी। किसी तरह की दौड़-भाग नहीं की।

बड़े बाबू ने मुस्कराकर कहा—अगर आप इनके लिए ज्यादा से ज्यादा दौड़-भाग करने में भी अपनी ताक़त खर्च करते तो भी मैं आपको इसके लिए बुरा-भला न कहता। आप बेशक बड़े खुशनसीब हैं कि यह नायाब चीज़ आपकों बेमांग मिल गई, इसे जिन्दगी के सफ़र का पासपोर्ट समझिए। वाह, आपकों खुदा के फ़ज़ल से एक एक़ से एक कद्रदान नसीब हुए। आप जहीन हैं, सीधे-सच्चे हैं, बेलौस हैं, फर्माबरदार है। ओफ्फोह, आपके गुणों की तो कोई इन्तहा ही नहीं है। कसम खुदा की, आपमें तो तमाम भीतरी और बाहरी कमाल भरे हुए हैं। आपमें सूझ-बूझ गम्भीरता, सच्चाई, चौकसी, कुलीनता, शराफत, बहादुरी, सभी गुण मौजूद हैं। आप तो नुमाइश में रखे जाने के क़ाबिल मालूम होते हैं कि दुनिया आपकों हैरत की निगाह से देखे तो दांतों तले उंगली दबाये। आज किसी भले का मुंह देखकर उठा था कि आप जैसे पाकीजा आदमी के दर्शन हुए। यह वे गुण हैं जो जिन्दगी के हर एक मैदान में आपको शोहरत की चोटी तक पहुँचा सकते हैं।

सरकारी नौकरी आप जैसे गुणियों की शान के क़ाबिल नहीं। आपकों यह कब गवारा होगा। इस दायरे में आते ही आदमी बिलकुल जानवर बन जाता है। बोलिए, आप इसे मंजूर कर सकते हैं ? हरगिज़ नहीं।

मैंने डरते-डरते कहा—जनाब, जरा इन लफ्जों को खोलकर समझा दीजिए। आदमी के जानवर बनजाने से आपकी क्या मंशा है?

बड़े बाबू ने त्योरी चढ़ाते हुए कहा—या तो कोई पेचीदा बात न थी जिसका मतलब खोलकर बतलाने की जरुरत हो। तब तो मुझे बात करने के अपने ढंग में कुछ तरमीम करनी पड़ेगी। इस दायरे के उम्मीदवारों के लिए सबसे जरुरी और लाज़िमी सिफ़त सूझ-बूझ है। मैं नहीं कह सकता कि मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, वह इस लफ्ज से अदा होता है या नहीं। इसका अंग्रेजी लफ्ज है इनटुइशन—इशारे के असली मतलब को समझना। मसलन अगर सरकार बहादुर यानी हाकिम जिला को शिकायत हो कि आपके इलाके में इनकमटैक्स कम वसूल होता है तो आपका फ़र्ज है कि उसमें अंधाधुन्ध इजाफ़ा करें। आमदनी की परवाह न करें। आमदनी का बढ़ना आपकी सूझबूझ पर मुनहसर है! एक हल्की-सी धमकी काम कर जाएगी और इनकमटैक्स दुगुना-तिगुना हो जाएगा। यकीनन आपकों इस तरह अपना ज़मीर (अन्त:करण) बेचना गवारा न होगा।

मैंने समझ लिया कि मेरा इम्तहान हो रहा है, आशिकों जैसे जोश और सरगर्मी से बोला—मैं तो इसे जमीर बेचना नहीं समझता, यह तो नमक का हक़ है। मेरा ज़मीर इतना नाज़ुक नहीं है।

बड़े बाबू ने मेरी तरफ़ क़द्रदानी की निगाह से देखकर कहा—शाबाश, मुझे तुमसे ऐसे ही जवाब की उम्मीद थी। आप मुझे होनहार मालूम होते हैं। लेकिन शायद यह दूसरी शर्त आपको मंजूर न हो। इस दायरे के मुरीदों के लिए दूसरी शर्त यह है कि वह अपने को भूल जाएं। कुछ आया आपकी समझ में ?

मैंने दबी जबान में कहा—जनाब को तकलीफ़ तो होगी मगर जरा फिर इसको खोलकर बतला दीजिए।

बड़े बाबू ने त्योरियों पर बल देते हुए कहा—जनाब, यह बार-बार का समझाना मुझे बुरा मालूम होता है। मैं इससे ज्यादा आसान तरीक़े पर खयालों को ज़ाहिर नहीं कर सकता। अपने को भूल जाना बहुत ही आम मुहावरा हैं। अपनी खुदी को मिटा देना, अपनी शख्सियत को फ़ना कर देना, अपनी पर्सनालिटी को खत्म कर देना। आपकी वज़ा-कज़ा से आपके बोलने, बात करने के ढंग से, आपके तौर-तरीकों से आपकी हिन्दियत मिट जानी चाहिए। आपके मज़हबी, अखलाकी और तमद्दुनी असरों का बिलकुल ग़ायब हो जाना ज़रुर हैं। मुझे आपके चेहरे से मालूम हो रहा है कि इस समझाने पर भी आप मेरा मतलब नहीं समझ सके। सुनिए, आप ग़ालिबन मुसलमान हैं। शायद आप अपने अक़ीदों में बहुत पक्के भी हों। आप नमाज़ और रोज़े के पाबन्द हैं?

मैंने फ़ख से कहा—मैं इन चीजों का उतना ही पाबन्द हूँ जितना कोई मौलवी हो सकता हैं। मेरी कोई नमाज़ क़ज़ा नहीं हुई। सिवाय उन वक्तों के जब मैं बीमार था।

बड़े बाबू ने मुस्कराकर कहा—यह तो आपके अच्छे अखलाक ही कह देते हैं। मगर इस दायरे में आकर आपकों अपने अक़ीदे और अमल में बहुत कुछ काट-छांत करनी पड़ेगी। यहां आपका मज़हब मज़हबियत का जामा अख्तियार करेगा। आप भूलकर भी अपनी पेशानी को किसी सिजदे में न झुकाएं, कोई बात नहीं। आप भूलकर भी ज़कात के झगड़े में न फूसें, कोई बात नहीं। लेकिन आपको अपने मजहब के नाम पर फ़रियाद करने के लिए हमेशा आगे रहना और दूसरों को आमादा करना होगा। अगर आपके ज़िले में दो डिप्टी कलक्टर हिन्दू हैं और मुसलमान सिर्फ़ एक, तो आपका फ़र्ज होगा कि हिज एक्सेलेंसी गवर्नर की खिदमत में एक डेपुटेशन भेजने के लिए कौम के रईसों में आमादा करें। अगर आपको मालूम हो कि किसी म्युनिसिपैलिटी ने क़साइयों को शहर से बाहर दूकान रखने की तजवीज़ पास कर दी है तो आपका फ़र्ज होगा कि कौम के चौधरियों को उस म्युनिसिपैलिटी का सिर तोड़ने के लिए तहरीक करें। आपको सोते-जागते, उठते-बैठते जात-पॉत का राग अलापना चाहिए। मसलन इम्तहान के नतीजों में अगर आपको मुसलमान विद्यार्थियों की संख्या मुनासिब से कम नज़र आये तो आपको फौरन चांसकर के पास एक गुमनाम ख़त लिख भेजना होगा कि इस मामले में जरुर ही सख्ती से काम लिया गया है। यह सारी बातें उसी इनटुइशनवाली शर्त के भीतर आ जाती हैं। आपको साफ़-साफ़ शब्दों में या इशारों से यह काम करने से लिए हिदायत न की जाएगी। सब कुछ आपकी सूझ-सूझ पर मुनहसर होगा। आपमें यह जौहर होगा तो आप एक दिन जरुर ऊंचे ओहदे पर पहुँचेंगे। आपको जहां तक मुमकिन हो, अंग्रेजी में लिखना और बोलना पड़ेगा। इसके बग़ैर हुक्काम आपसे खुश न होंगे। लेकिन क़ौमी ज़बान की हिमायत और प्रचार की सदा आपकी

ज़बान से बराबर निकलती रहनी चाहिए। आप शौक़ से अखबारों का चन्दा हज़म करें, मंगनी की किताबें पढ़ें चाहे वापसी के वक्त किताब के फट-चिंथ जाने के कारण आपको माफ़ी ही क्यों न मांगनी पड़े, लेकिन जबान की हिमायत बराबर जोरदार तरीकें से करते रहिए। खुलासा यह कि आपको जिसका खाना उसका गाना होगा। आपकों बातों से, काम से और दिल से अपने मालिक की भलाई में और मजबूती से उसको जमाये रखने में लगे रहना पड़ेगा। अगर आप यह खयाल करते हों कि मालिक की खिदमत के ज़रिये कौम की खिदमत की करुंगा तो यह झूठ बात है, पागलपन है, हिमाक़त है। आप मेरा मतलब समझ गये होंगे। फ़रमाइए, आप इस हद तक अपने को भूल सकते हैं?

मुझे जवाब देने में जरा देर हुई। सच यह है कि मैं भी आदमी हूँ और बीसवीं सदी का आदमी हूँ। मैं बहुत जागा हुआ न सही, मगर बिलकुल सोया हुआ भी नहीं हूँ, मैं भी अपने मुल्क और क़ौम को बुलन्दी पर देखना चाहता हूँ। मैंने तारीख पढ़ी है और उससे इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ कि मज़हब दुनिया में सिर्फ एक है और उसका नाम है—दर्द। मज़हब की मौजूदा सूरत धड़ेबंदी के सिवाय और कोई हैसियत नहीं रखती। खतने या चोटी से कोई बदल नहीं जाता। पूजा के लिए कलिसा, मसजिद, मन्दिर की मैं बिलकुल जरुरत नहीं समझता। हॉं, यह मानता हूँ कि घमण्ड और खुदगरजी को दबाये रखने के लिए कुछ करना जरुरी है। इसलिए नहीं कि उससे मुझे जन्नत मिलेगी या मेरी मुक्ति होगी, बल्कि सिर्फ़ इसलिए कि मुझे दूसरों के हक़ छीनने से नफ़रत होगी। मुझमें खुदी का खासा ज़ुज़ मौजूद है। यों अपनी खुशी से कहिए तो आपकी जूतियाँ सीधी करुँ लकिन हुकूमत की बरदाश्त नहीं। महकूम बनना शर्मनाक समझता हूँ। किसी ग़रीब को जुल्म का शिकार होते देखकर मेरे खून में गर्मी पैदा हो जाती है। किसी से दबकर रहने से मर जाना बेहतर समझता हूँ। लेकिन खयाल हालतों पर तो फ़तह नहीं पा सकता। रोज़ी फ़िक्र तो सबसे बड़ी। इतने दिनों के बाद बड़े बाबू की निगाहे करम को अपनी ओर मुड़ता देखकर मैं इसके सिवा कि अपना सिर झुका दूँ, दूसरा कर ही क्या सकता था। बोला- जनाब, मेरी तरफ़ से भरोसा रक्खें। मालिक की खिदमत में अपनी तरफ़ से कुछ उठा न रक्खूँगा।

'ग़ैरत को फ़ना कर देना होगा।'

'मंजूर।'

'शराफत के जज्बों को उठाकर ताक़ पर रख देना होगा।'

'मंजूर।'

'मुखबिरी करनी पड़ेगी?'

'मंजूर।'

'तो बिस्मिल्लाह, कल से आपका नाम उम्मीदवारों की फ़ेहरिस्त में लिख दिया जायेगा ।'

मैंने सोचा था कल से कोई जगह मिल जायेगी। इतनी जिल्लत क़बूल करने के बाद रोजी की फ़िक से तो आज़ाद हो जाऊँगा। अब यह हक़ीकत खुली। बरबस मुंह से निकला—और जगह कब तक मिलेगी?

बड़े बाबू हंसे, वही दिल दुखानेवाली हंसी जिसमें तौहीन का पहलू खास था—जनाब, मैं कोई ज्योतिषी नहीं, कोई फ़कीर-दरवेश नहीं, बेहतर है इस सवाल का जवाब आप किसी औलिया से पूछें। दस्तरखान बिछा देना मेरा काम है। खाना आयेगा और वह आपके हलक में जायेगा, यह पेशीनगोई मैं नहीं कर सकता।

मैंने मायूसी के साथ कहा—मैं तो इससे बड़ी इनायत का मुन्तज़िर था।

बड़े बाबू कुर्सी से उठकर बोले—क़सम खुदा की, आप परले दर्जे के कूड़मग्ज़ आदमी हैं। आपके दिमाग में भूसा भरा है। दस्तरखान का आ जाना आप कोई छोटी बात समझते हैं? इन्तज़ार का मज़ा आपकी निगाह में कोई चीज़ ही नहीं? हालांकि इन्तजार में इन्सान उमरें गुज़ार सकता है। अमलों से आपका परिचय हो जाएगा। मामले बिठाने, सौदे पटाने के सुनहरे मौके हाथ आयेंगे। हुक्काम के लड़के पढ़ाइये। अगर गंडे-तावीज का फ़न सीख लीजिए तो आपके हक़ में बहुत मुफ़ीद हो। कुछ हकीमी भी सीख लीजिए। अच्छे होशियार सुनारों से दोस्ती पैदा किजिए,क्योंकि आपको उनसे अक्सर काम पड़ेगा। हुक्काम की औरतें आप ही के मार्फ़त अपनी जरुरतें पूरी करायेंगी। मगर इन सब लटकों से ज्यादा कारगर एक और लटका है, अगर वह हुनर आप में है, तो यक़ीनन आपके इन्तजार की मुद्दत बहुत कुछ कम हो सकती है। आप बड़े-बड़े हाकिमों के लिए तफ़रीह का सामान जुटा सकते हैं !

बड़े बाबू मेरी तरफ़ कनखियों से देखकर मुस्कराये। तफ़रीह के सामान से उनका क्या मतलब है, यह मैं न समझ सका। मगर पूछते हुए भी डर लगता था कि कहीं बड़े बाबू बिगड़ न जाएं और फिर मामला खराब हो जाए। एक बेचैनी की-सी हालत में जमीन की तरफ ताकने लगा।

बड़े बाबू ताड़ तो गये कि इसकी समझ में मेरी बात न आयी लेकिन अबकी उनकी त्योरियों पर बल नहीं पड़े। न ही उनके लहजे में हमदर्दी की झलक फ़रमायी—यह तो ग़ैर-मुमकिन है किक आपने बाज़ार की सैर न की हो।

मैंने शर्माते हुए कहा—नहीं हुजूर, बन्दा इस कूचे को बिलकुल नहीं जानता।

बड़े बाबू—तो आपको इस कूचे की खाक छाननी पड़ेगी। हाकिम भी आंख-कान रखते हैं। दिन-भर की दिमागी थकन के बाद स्वभावत: रात को उनकी तबियत तफ़रीह की तरफ़ झुकती हैं। अगर आप उनके लिए ऑंखों को अच्छा लगनेवाले रुप और कानों को भानेवाले संगीत का इन्तज़ाम सस्ते दामों कर सकते हैं या कर सकें तो...

मैंने किसी क़दर तेज़ होकर कहा—आपका कहने का मतलब यह है कि मुझे रुप की मंडी की दलाली करनी पड़ेगी ?

बड़े बाबू—तो आप तेज़ क्यों होते हैं, अगर अब तक इतनी छोटी-सी बात आप नहीं समझे तो यह मेरा क़सूर है या आपकी अक्ल का !

मेरे जिस्म में आग लग गयी। जी में आया कि बड़े बाबू को जुजुत्सू के दो-चार हाथ दिखाऊँ, मगर घर की बेसरोसामानी का खयाल आ गया। बीवी की इन्तजार करती हुई आंखें और बच्चों की भूखी सूरतें याद आ गयीं। जिल्लत का एक दरिया हलक़ से नीचे ढकेलते हुए बोला—जी नहीं, मैं तेज़ नहीं हुआ था। ऐसी बेअदबी मुझसे नहीं हो सकती। (आंखों में आंसू भरकर) जरुरत ने मेरी ग़ैरत को मिटा दिया है। आप मेरा नाम उम्मीदवारों में दर्ज कर दें। हालात मुझसे जो कुछ करायेंगे वह सब करुँगा और मरते दम तक आपका एहसानमन्द रहूँगा।

-‘खाके परवाना’से

राष्ट्र का सेवक

राष्ट्र के सेवक ने कहा—देश की मुक्ति का एक ही उपाय है और वह है नीचों के साथ भाईचारे का सुलूक, पतितों के साथ बराबरी को बर्ताव। दुनिया में सभी भाई हैं, कोई नीचा नहीं, कोई ऊंचा नहीं।

दुनिया ने जयजयकार की—कितनी विशाल दृष्टि है, कितना भावुक हृदय !

उसकी सुन्दर लड़की इन्दिरा ने सुना और चिन्ता के सागर में डूब गयी।

राष्ट्र के सेवक ने नीची जात के नौजवान को गले लगाया।

दुनिया ने कहा—यह फ़रिश्ता है, पैग़म्बर है, राष्ट्र की नैया का खेवैया है।

इन्दिरा ने देखा और उसका चेहरा चमकने लगा।

राष्ट्र का सेवक नीची जात के नौजवान को मंदिर में ले गया, देवता के दर्शन कराये और कहा—हमारा देवता ग़रीबी में है, जिल्लत में है ; पस्ती में हैं।

दुनिया ने कहा—कैसे शुद्ध अन्त:करण का आदमी है ! कैसा ज्ञानी !

इन्दिरा ने देखा और मुस्करायी।

इन्दिरा राष्ट्र के सेवक के पास जाकर बोली— श्रद्धेय पिता जी, मैं मोहन से ब्याह करना चाहती हूँ।

राष्ट्र के सेवक ने प्यार की नजरों से देखकर पूछा—मोहन कौन हैं?

इन्दिरा ने उत्साह-भरे स्वर में कहा—मोहन वही नौजवान है, जिसे आपने गले लगाया, जिसे आप मंदिर में ले गये, जो सच्चा, बहादुर और नेक है।

राष्ट्र के सेवक ने प्रलय की आंखों से उसकी ओर देखा और मुँह फेर लिया।

-'प्रेम चालीसा' से

आख़िरी तोहफ़ा

सारे शहर में सिर्फ एक ऐसी दुकान थी, जहाँ विलायती रेशमी साड़ी मिल सकती थीं। और सभी दुकानदारों ने विलायती कपड़े पर कांग्रेस की मुहर लगवायी थी। मगर अमरनाथ की प्रेमिका की फ़रमाइश थी, उसको पूरा करना जरुरी था। वह कई दिन तक शहर की दुकानोंका चक्कर लगाते रहे, दुगुना दाम देने पर तैयार थे, लेकिन कहीं सफल-मनोरथ न हुए और उसके तक़ाजे बराबर बढ़ते जाते थे। होली आ रही थी। आख़िर वह होली के दिन कौन-सी साड़ी पहनेगी। उसके सामने अपनी मजबूरी को जाहिर करना अमरनाथ के पुरुषोचित अभिमान के लिए कठिन था। उसके इशारे से वह आसमान के तारे तोड़ लाने के लिए भी तत्पर हो जाते। आख़िर जब कहीं मक़सद पूरा न हुआ, तो उन्होंने उसी खास दुकान पर जाने का इरादा कर लिया। उन्हें यह मालूम था कि दुकान पर धरना दिया जा रहा है। सुबह से शाम तक स्वयंसेवक तैनात रहते हैं और तमाशाइयों की भी हरदम खासी भीड़ रहती है। इसलिए उस दुकान में जाने के लिए एक विशेष प्रकार के नैतिक साहस की जरुरत थी और यह साहस अमरनाथ में जरुरत से कम था। पड़े-लिखे आदमी थे, राष्ट्रीय भावनाओं से भी अपरिचित न थे, यथाशक्ति स्वदेशी चीजें ही इस्तेमाल करते थे। मगर इस मामले में बहुत कट्टर न थे। स्वदेशी मिल जाय तो बेहतर वर्ना विदेशी ही सही- इस उसूल के मानने वाले थे। और खासकर जब उसकी फरमाइश थी तब तो कोई बचाव की सूरत ही न थी। अपनी जरुरतों को तो वह शायद कुछ दिनों के लिए टाल भी देते, मगर उसकी फरमाइश तो मौत की तरह अटल है। उससे मुक्ति कहां ! तय कर लिया कि आज साड़ी जरुर लायेंगे। कोई क्यों रोके? किसी को रोकने का क्या अधिकर हैं? माना स्वदेशी का इस्तेमाल अच्छी बात है लेकिन किसी को जबर्दस्ती करने का क्या हक़ है? अच्छी आजादी की लड़ाई है जिसमें व्यक्ति की आजादी का इतना बेदर्दी से खून हो !

यों दिल को मजबूत करके वह शाम को दुकान पर पहुँचे। देखा तो पाँच वालण्टियर पिकेटिंग कर रहे हैं और दुकान के सामने सड़क पर हज़ारों तमाशाई खड़े हैं। सोचने लगे, दुकान में कैसे जाएं। कई बार कलेजा मज़बूत किया और चले मगर बरामदे तक जाते-जाते हिम्मत ने जवाब दे दिया।

संयोग से एक जान-पहचान के पण्डितजी मिल गये। उनसे पूछा—क्यों भाई, यह धरना कब तक रहेगा? शाम तो हो गयी।

पण्डितजी ने कहा—इन सिरफिरों को सुबह और शाम से क्या मतलब, जब तक दुकान बन्द न हो जाएगी, यहां से न टलेंगे। कहिए, कुछ खरीदने को इरादा है? आप तो रेशमी कपड़ा नहीं खरीदते?

अमरनाथ ने विवशता की मुद्रा बनाकर कहा—मैं तो नहीं खरीदता। मगर औरतों की फ़रमाइश को कैसे टालूँ।

पण्डितजी ने मुस्कराकर कहा—वाह, इससे ज्यादा आसान तो कोई बात नहीं। औरतों को भी चकमा नहीं दे सकते? सौ हीले-हजार बहाने हैं।

अमरनाथ—आप ही कोई हीला सोचिए।

पण्डितजी—सोचना क्या है, यहाँ रात-दिन यही किया करते हैं। सौ-पचास हीले हमेशा जेबों में पड़े रहते हैं। औरत ने कहा, हार बनवा दो। कहा, आज ही लो। दो-चार रोज़ के बाद कहा, सुनार माल लेकर चम्पत हो गया। यह तो रोज का धन्धा है भाई। औरतों का काम फ़रमाइश करना है, मर्दो का काम उसे खूबसूरती से टालना है।

अमरनाथ—आप तो इस कला के पण्डित मालूम होते हैं !

पण्डितजी—क्या करें भाई, आबरु तो बचानी ही पड़ती है। सूखा जवाब दें तो शर्मिंदगी अलग हो, बिगड़ें वह अगल से, समझें, हमारी परवाह ही नहीं करते। आबरु का मामला हैं। आप एक काम कीजिए। यह तो आपने कहा ही होगा कि आजकल पिकेटिंग है?

अमरनाथ—हां, यह तो बहाना कर चुका भाई, मगर वह सुनती ही नहीं, कहती है, क्या विलायती कपड़े दुनिया से उठ गये, मुझसे चले हो उड़ने!

पण्डितजी—तो मालूम होता है, कोई धुन की पक्की औरत है। अच्छा तो मैं एक तरकीब बताऊँ। एक खाली कार्ड का बक्स ले लो, उसमें पुराने कपड़े जलाकर भर लो। जाकर कह देना, मैं कपड़े लिये आता था, वालण्टियरों ने छीनकर जला दिये। क्यों, कैसी रेहगी?

अमरनाथ—कुछ जंचती नहीं। अजी, बीस एतराज़ करेंगी, कहीं पर्दाफ़ाश हो जाय तो मुफ्त की शर्मिंदगी उठानी पड़े।

पण्डितजी—तो मालूम हो गया, आप बोदे आदमी हैं और हैं भी आप कुछ ऐसे ही। यहाँ तो कुछ इस शान से हीले करते हैं कि सच्चाई की भी उसके आगे धुल हो जाय। जिन्दगी यही बहाने करते गुजरी और कभी पकड़े न गये। एक तरकीब और है। इसी नमूने का देशी माल ले जाइए और कह दीजिए कि विलायती है।

अमरनाथ—देशी और विलायती की पहचान उन्हें मुझसे और आपसे कहीं ज्यादा हैं। विलायती पर तो जल्द विलयती का यक़ीन आयेगा नहीं, देशी की तो बात ही क्या है !

एक खद्दरपोश महाशय पास ही खड़े यह बातचीत सुन रहे थे, बोल उठे— ए साहब, सीधी-सी तो बात है, जाकर साफ़ कह दीजिए कि मैं विदेशी कपड़े न लाऊंगा। अगर जिद करे तो दिन-भर खाना न खाइये, आप सीधे रास्ते पर आ जायेगी।

अमरनाथ ने उनकी तरफ कुछ ऐसी निगाहों से देखा जो कह रही थीं, आप इस कूचे को नहीं जानते और बोले—यह आप ही कर सकते हैं, मैं नहीं कर सकता।

खद्दरपोश—कर तो आप भी सकते हैं लेकिन करना नहीं चाहते। यहां तो उन लोगों में से हैं कि अगर विदेशी दुआ से मुक्ति भी मिलती हो तो उसे ठुकरा दें।

अमरनाथ—तो शायद आप घर में पिकेटिंग करते होंगे?

खद्दरपोश—पहले घर में करके तब बाहर करते हैं भाई साहब।

खद्दरपोश साहब चले गये तो पण्डितजी बोले—यह महाशय तो तीसमारखां से भी तेज़ निकल। अच्छा तो एक काम कीजिए। इस दुकान के पिंछवाड़े एक दूसरा दरवाज़ा है, ज़रा अंधेरा हो जाय तो उधर चले जाइएगा, दायें-बायें किसी की तरफ़ न देखिएगा।

अमरनाथ ने पण्डितजी को धन्यवाद दिया और जब अंधेरा हो गया तो दुकान के पिछवाड़े की तरफ जा पहुँचे। डर रहे थे, कहीं यहां भी घेरा न पड़ा हो। लेकिन मैदान खाली था। लपककर अन्दर गये, एक ऊंचे दामों की साड़ी ख़रीदी और बाहर निकले तो एक देवीजी केसरिया साड़ी पहने खड़ी थीं। उनको देखकर इनकी रुह फ़ना हो गयी, दरवाजे से बाहर पांव रखने की हिम्मत नीं हुई। एक तरफ़ देखकर तेजी से निकल पड़े और कोई सौ कदम भागते हुए चले गये। कम्र का लिखा, सामने से एक बुढ़िया लाठी टेकती चली आ रही थी। आप उससे लड़ गये। बुढ़िया गिर पड़ी और लगी कोसने—अरे अभागे, यह जवानी बहुत दिन न रहेगी, आंखों में चर्बी छा गयी है, धक्के देता चलता है !

अमरनाथ उसकी खुशामद करने लगे—माफ करो, मुझे रात को कुछ कम दिखाई पड़ता है। ऐनक घर भूल आया।

बुढ़िया का मिज़ाज ठण्डा हुआ, आगे बढ़ी और आप भी चले। एकाएक कानों में आवाज आयी, 'बाबू साहब, जरा ठहरियेगा' और वही केसरिया कपड़ोवाली देवीजी आती हुई दिखायी दीं।

अमरनाथ के पांव बंध गये। इस तरह कलेजा मजबूत करके खड़े हो गये जैसे कोई स्कूली लड़का मास्टर की बेंत के सामने खड़ा होता है।

देवीजी ने पास आकर कहा—आप तो ऐसे भागे कि मैं जैसे आपको काट खाऊँगी। आप जब पढ़े-लिखे आदमी होकर अपना धर्म नहीं समझते तो दुख होता है। देश की क्या हालत है, लोगों को खद्दर नहीं मिलता, आप रेशमी साड़ियां खरीद रहे हैं !

अमरनाथ ने लज्जित होकर कहा—मैं सच कहता हूँ देवीजी, मैंने अपने लिए नहीं खरीदी, एक साहब की फ़रमाइश थीं

देवीजी ने झोली से एक चूड़ी लिकालकर उनकी तरफ़ बढ़ाते हुए कहा—ऐसे हीले रोज़ ही सुना करती हूँ। या तो आप उसे वापस कर दीजिए या लाइए हाथ मैं चूड़ी पहना दूँ।

अमरनाथ—शौक से पहना दीजिए। मैं उसे बड़े गर्व से पह
नूँगा। चूड़ी उस बलिदान का चिह्न है जो देवियों के जीवन की विशेषता है। चूड़ियां उन देवियों के हाथ में थीं जिनके नाम सुनकर आज भी हम आदर से सिर झुकाते हैं। मैं तो उसे शर्म की बात नहीं समझता। आप अगर और कोई चीज पहनाना चाहें तो वह भी शौक़ से पहना दीजिए। नारी पूजा की वस्तु है, उपेक्षा की

नहीं। अगर स्त्री, जो क़ौम को पैदा करती हैं, चूड़ी पहनना अपने लिए गौरव की बात समझती है तो मर्दों के लिए चूड़ी पहनाना क्यों शर्म की बात हो?

देवीजी को उनकी इस निर्लज्जता पर आश्चर्य हुआ मगर वह इतनी आसानी से अमरनाथ को छोड़नेवाली न थीं। बोलीं—आप बातों के शेर मालूम होते हैं। अगर आप ह्रदय से स्त्री को पूज़ा की वस्तु मानते हैं, तो मेरी यह विनती क्यों नहीं मान जाते?

अमरनाथ-इसलिए कि यह साड़ी भी एक स्त्री की फरमाइश है।

देवी-अच्छा चलिए, मैं आपके साथ चलूँगी, जरा देखूँ आपकी देवी जी किस स्वभाव की स्त्री हैं।

अमरनाथ का दिल बैठ गया। बेचारा अभी तक बिना-ब्याहा था, इसलिए नहीं कि उसकी शादी न होती थी बल्कि इसलिए कि शादी को वह एक आजीवन कारावास समझता था। मगर वह आदमी रसिक स्वभाव के थे। शादी से अलग रहकर भी शादी के मजों से अपिरचित न थे। किसी ऐसे प्राणी की जरूरत उनके लिए अनिवार्य थी जिस पर वह अपने प्रेम को समर्पित कर सकें, जिसकी तरावट से वह अपनी रूखी-सूखी जिन्दगी को तरो-ताज़ा कर सकें, जिसके प्रेम की छाया में वह जरा देर के लिए ठण्डक पा सकें, जिसके दिल मे वह अपनी उमड़ी हुई जवानी की भावनाओं को बिखेरकर उनका उगना देख सकें। उनकी नज़र ने मालती को चुना था जिसकी शहर में घूम थी। इधर डेढ़-दो साल से वह इसी खलिहान के दाने चुना करते थे। देवीजी के आग्रह ने उन्हें थोड़ी देर के लिए उलझन में डाल दिया था। ऐसी शर्मिंदगी उन्हें जिन्दगी में कभी न हुई थी। बोले-आज तो वह एक न्योते में गई हैं, घर में न होंगी।

देवीजी ने अविश्वास से हंसकर कहा-तो मैं समझ यह आपकी देवीजी का कुसूर नहीं, आपका कुसूर है।

अमरनाथ ने लज्जित होकर कहा-मैं आपसे सच कहता हूँ, आज वह घर पर नहीं।

देवी ने कहा-कल आ जाएंगी?

अमरनाथ बोले-हां, कल आ जाएंगी।

देवी-तो आप यह साड़ी मुझे दे दीजिए और कल यहीं आ जाइएगा, मैं आपके साथ चलूँगी। मेरे साथ दो-चार बहनें भी होंगी।

२

अमरनाथ ने बिना किसी आपत्ति के वह साड़ी देवीजी को दे दी और बोले-बहुत अच्छा, मैं कल आ जाऊँगा। मगर क्या आपको मुझ पर विश्वास नहीं है जो साड़ी की जमानत जरूरी है?

देवीजी ने मुस्कराकर कहा-सच्ची बात तो यही है कि मुझे आप पर विश्वास नहीं।

अमरनाथ ने स्वाभिमानपूर्वक कहा- अच्छी बात है, आप इसे ले जाएं।

देवी ने क्षण-भर बाद कहा-शायद आपको बुरा लग रहा हो कि कहीं साड़ी गुम न हो जाए। इसे आप लेते जाइए, मगर कल आइए जरूर।

अमरनाथ स्वाभिमान के मारे बगैर कुछ कहे घर की तरफ चल दिये, देवीजी 'लेते जाइए लेते जाइए' करती रह गयीं।

अमरनाथ घर न जाकर एक खद्दर की दुकान पर गये और दो सूटों का खद्दर खरीदा। फिर अपने दर्जी के पास ले जाकर बोले-खलीफा, इसे रातों-रात तैयार कर दो, मुहंमागी सिलाई दूंगा।

दर्जी ने कहा-बाबू साहब , आजकल तो होली की भीड़ है। होली से पहले तैयार न हो सकेंगे।

अमरनाथ ने आग्रह करते हुए कहा-मैं मुंहमांगी सिलाई दूंगा, मगर कल दोपहर तक मिल जाए। मुझे कल एक जगह जाना है। अगर दोपहर तक न मिले तो फिर मेरे किस काम के न होंगे।

दर्जी ने आधी सिलाई पेशगी ले ली और कल तैयार कर देने का वादा किया।

अमरनाथ यहां से आश्वस्त होकर मालती की तरफ चले। क़दम आगे बढ़ते थे लेकिन दिल पीछे रहा जाता था। काश, वह उनकी इतनी विनती स्वीकार कर ले कि कल दो घण्टे के लिए उनके वीरान घर को रोशन करे! लेकिन यकीनन वह उन्हें खाली हाथ देखकर मुहं फेर लेगी, सीधे मुहं बात नहीं करेगी, आने का जिक्र ही क्या। एक ही बेमुरौवत है। तो कल आकर देवीजी से अपनी सारी शर्मनाक कहानी बयान कर दूँ? उस भोले चेहरे की निस्स्वार्थ उंमग उनके दिल में एक हलचल पैदा कर रही थी। उन आंखों में कितनी गंभीरता थी, कितनी सच्ची सहानुभूति, कितनी पवित्रता! उसके सीधे-सादे शब्दों में कर्म की ऐसी प्रेरणा थी, कि अमरनाथ का अपने इन्द्रिय-परायण जीवन पर शर्म आ रही थी। अब तक कांच के टुकड़े को हीरा समझकर सीने से लगाये हुए थे। आज उन्हें मालूम हुआ हीरा किसे कहते हैं। उसके सामने वह टुकड़ा तुच्छ

मालूम हो रहा था। मालती की वह जादू-भरी चित्तवन, उसकी वह मीठी अदाएं, उसकी शोखियां और नखरे सब जैसे मुलम्मा उड़ जाने के बाद अपनी असली सूरत में नजर आ रहे थे और अमरनाथ के दिल में नफरत पैदा कर रहे थे। वह मालती की तरफ जा रहे थे, उसके दर्शन के लिए नहीं, बल्कि उसके हाथों से अपना दिल छीन लेने के लिए। प्रेम का भिखारी आज अपने भीतर एक विचित्र अनिच्छा का अनुभव कर रहा था। उसे आश्चर्य हो रहा था कि अब तक वह क्यों इतना बेखबर था। वह तिलिस्म जो मालती ने वर्षों के नाज-नखरे, हाव-भाव से बांधा था, आज किसी छू-मन्तर से तार-तार हो गया था।

मालती ने उन्हें खाली हाथ देखकर त्योरियां चढ़ाते हुए कहा-साड़ी लाये या नहीं?

अमरनाथ ने उदासीनता के ढंग से जवाब दिया-नहीं।

मालती ने आश्चर्य से उनकी तरफ देखा-नही! वह उनके मुंह से यह शब्द सुनने की आदी न थी। यहां उसने सम्पूर्ण समर्पण पाया था। उसका इशारा अमरनाथ के लिए भाग्य-लिपि के समान था। बोली-क्यों?

अमरनाथ- क्यों नहीं, नहीं लाये।

मालती- बाजार में मिली न होगी। तुम्हें क्यों मिलने लगी, और मेरे लिए।

अमरनाथ-नहीं साहब, मिली मगर लाया नहीं।

मालती-आख़िर कोई वजह? रुपये मुझसे ले जाते।

अमरनाथ-तुम खामख़ाह जलाती हो। तुम्हारे लिए जान देने को मैं हाज़िर रहा।

मालती-तो शायद तुम्हें रुपये जान से भी ज्यादा प्यारे हों?

अमरनाथ-तुम मुझे बैठने दोगी या नहीं? अमर मेरी सूरत से नफरत हो तो चला जाऊँ!

मालती-तुम्हें आज हो क्या गया है, तुम तो इतने तेज मिजाज के न थे?

अमरनाथ-तुम बातें ही ऐसी कर रही हो।

मालती-तो आखिर मेरी चीज़ क्यों नहीं लाये?

अमरनाथ ने उसकी तरफ़ बड़े वीर-भाव के साथ देखकर कहा-दुकान पर गया, जिल्लत उठायी और साड़ी लेकर चला तो एक औरत ने छीन ली। मैंने कहा, मेरी बीवी की फ़रमाइश है तो बोली-मैं उन्हीं को दूंगी, कल तुम्हारे घर आऊँगी।

मालती ने शरारत-भरी नज़रों से देखते हुए कहा-तो यह कहिए आप दिल हथेली पर लिये फिर रहे थे। एक औरत को देखा और उसके कदमों पर चढ़ा दिया!

अमरनाथ-वह उन औरतों में नहीं, जो दिलों की घात में रहती हैं।

मालती-तो कोई देवी होगी?

अमरनाथ-मै उसे देवी ही समझता हूँ।

मालती-तो आप उस देवी की पूजा कीजिएगा?

अमरनाथ-मुझ जैसे आवारा नौजवान के लिए उस मन्दिर के दरवाजे बन्द हैं।

मालती-बहुत सुन्दर होगी?

अमरनाथ-न सुन्दर है, न रूपवाली, न ऐसी अदाएं कुछ, न मधुर भाषिणी, न तन्वंगी। बिलकुल एक मामूली मासूम लड़की है। लेकिन जब मेरे हाथ से उसने साड़ी छीन ली तो मैं क्या कर सकता हूँ। मेरी गैरत ने तो गवारा न किया कि उसके हाथ से साड़ी छीन लूँ। तुम्हीं इन्साफ करो, वह दिल में क्या कहती?

मालती-तो तुम्हें इसकी ज्यादा परवाह है कि वह अपने दिल में क्या कहेगी। मैं क्या कहूँगी, इसकी जरा भी परवाह न थी! मेरे हाथ से कोई मर्द मेरी कोई चीज़ छीन ले तो देखूं, चाहे वह दूसरा कामदेव ही क्यों न हो।

अमरनाथ-अब इसे चाहे मेरी कायरता समझो, चाहे हिम्मत की कमी, चाहे शराफ़त, मैं उसके हाथ से न छीन सका।

मालती-तो कल वह साड़ी लेकर आयेगी, क्यों?

अमरनाथ-जरूर आयेगी।

मालती-तो जाकर मुंह धो आओ। तुम इतने नादान हो, यह मुझे मालूम न था। साड़ी देकर चले आये, अब कल वह आपको देने आयेगी! कुछ भंग तो नहीं खा गये!

अमरनाथ-खैर, इसका इम्तहान कल ही हो जाएगा, अभी से क्यों बदगुमानी करती हो। तुम शाम को ज़रा देर के लिए मेरे घर तक चली चलना।

मालती-जिससे आप कहें कि यह मेरी बीवी है!

अमरनाथ-मुझे क्या खबर थी कि वह मेरे घर आने के लिए तैयार हो जाएगी, नहीं तो और कोई बहाना कर देता।

मालती-तो आपकी साड़ी आपको मुबारक हो, मैं नहीं जाती।

अमरनाथ-मैं तो रोज तुम्हारे घर आता हूँ, तुम एक दिन के लिए भी नहीं चल सकतीं?

मालती ने निष्ठुरता से कहा-अगर मौक़ा आ जाए तो तुम अपने को मेरा शौहर कहलाना पसन्द करोगे? दिल पर हाथ रखकर कहना।

अमरनाथ दिल में कट गये, बात बनाते हुए बोले-मालती, तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो। बुरा न मानना, मेरे व तुम्हारे बीच प्यार और मुहब्बत दिखलाने के बावजूद एक दूरी का पर्दा पड़ा था। हम दोनों एक-दूसरे की हालत को समझते थे और इस पर्दे का हटाने की कोशिश न करते थे। यह पर्दा हमारे सम्बन्धों की अनिवार्य शर्त था। हमारे बीच एक व्यापारिक समझौता-सा हो गया। हम दोनों उसकी गहराई में जाते हुए डरते थे। नहीं,बल्कि मैं डरता था और तुम जान-बूझकर न जाना चाहती थी। अगर मुझे विश्वास हो जाता कि तुम्हें जीवन-सहचरी बनाकर मैं वह सब कुछ पा जाऊँगा जिसका मैं अपने को अधिकारी समझता हूँ तो मैं अब तक कभी का तुमसे इसकी याचना कर चुका होता! लेकिन तुमने कभी मेरे दिल में यह विश्वास पैदा करने की परवाह न की। मेरे बारे में तुम्हें यह शक है, मैं नहीं कह सकता, तुम्हें यह शक करने का मैं ने कोई मौक़ा नहीं दिया और मैं कह सकता हूँ कि मैं उससे कहीं बेहतर शौहर बन सकता हूँ जितनी तुम बीवी बन सकती हो। मेरे लिए सिर्फ़ एतवार की जरूरत है और तुम्हारे लिए ज्यादा वज़नी और ज्यादा भौतिक चीज़ों की। मेरी स्थायी आमदनी पाँच सौ से ज्यादा नहीं, तुमको इतने में सन्तोष न होगा। मेरे लिए सिर्फ इस इत्मीनान की जरूरत है कि तुम मेरी और सिर्फ मेरी हो। बोलो मंजूर है।

मालती को अमरनाथ पर रहम आ गया। उसकी बातों में जो सच्चाई भरी हुई थी, उससे वह इनकार न कर सकी। उसे यह भी यकीन हो गया कि अमरनाथ की वफ़ा के पैर डगमगायेंगे नहीं। उसे अपने ऊपर इतना भरोसा था कि वह उसे रस्सी से मजबूत जकड़ सकती है, लेकिन खुद जकड़े जाने पर वह अपने को तैयार न कर सकी। उसकी जिन्दगी मुहब्बत की बाजीगरी में, प्रेम के प्रदर्शन में गुजरी थी। वह कभी इस, कभी उस शाख में चहकती फिरती थी, बैकेद, आजाद, बेबन्द। क्या वह चिड़िया पिंजरे में बन्द रह सकती है जिसकी जबान तरह-तरह के मजों की आदी हो गयी हो? क्या वह सूखी रोटी से तृप्त हो सकती है? इस अनुभूति ने उसे पिघला दिया। बोली-आज तुम बड़ा ज्ञान बघार रहे हो?

अमरनाथ-मैंने तो केवल यथार्थ कहा है।

मालती-अच्छा मैं कल चलूँगी, मगर एक घण्टे से ज्यादा वहां न रहूँगी।

अमरनाथ का दिल शुक्रिये से भर उठा। बोला-मैं तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ मालती। अब मेरी आबरू बच जायेगी। नहीं तो मेरे लिए घर से निकलना मुश्किल हो जाता है। अब देखना यह है कि तुम अपना पार्ट कितनी खूबसूरती से अदा करती हो।

मालती-उसकी तरफ़ से तुम इत्मीनान रखो। ब्याह नहीं किया मगर बरातें देखी हैं। मगर मैं डरती हूँ कहीं तुम मुझसे दगा न कर रहे हो। मर्दों का क्या एतबार।

अमरनाथ ने निश्चल भाव से कहा-नहीं मालती, तुम्हारा सन्देह निराधार है। अगर यह जंजीर पैरों में डालने की इच्छा होती तो कभी का डाल चुका होता। फिर मुझ-से वासना के बन्दों का वहां गुज़र हीं कहां।

३

दूसरे दिन अमरनाथ दस बजे ही दर्जी की दुकान पर जा पहुँचे और सिर पर सवार होकर कपड़े तैयार कराये। फिर घर आकर नये कपड़े पहने और मालती को बुलाने चले। वहां देर हो गयी। उसने ऐसा तनाव-सिंगार किया कि जैसे आज बहुत बड़ा मोर्चा जितना है।

अमरनाथ ने कहा-वह ऐसी सुन्दरी नहीं है जो तुम इतनी तैयारियाँ कर रही हो।

मालती ने बालों में कंघी करते हुए कहा-तुम इन बातों को नहीं समझ सकते, चुपचाप बैठे रहो।

अमरनाथ-लेकिन देर जो हो रही है।

मालती-कोई बात नहीं।

भय की उस सहज आशंका ने, जो स्त्रियों की विशेषता है, मालती को और भी अधिक सर्तक कर दिया था। अब तक उसने कभी अमरनाथ की ओर विशेष रूप से कोई कृपा न की थी। वह उससे काफी उदासीनता

का बर्ताव करती थी। लेकिन कल अमरनाथ की भंगिमा से उसे एक संकट की सूचना मिल चुकी थी और वह उस संकट का अपनी पूरी शक्ति से मुकाबला करना चाहती थी। शत्रु को तुच्छ और अपदार्थ समझना स्त्रियों क लिए कठिन है। आज अमरनाथ को अपने हाथ से निकलते वह अपनी पकड़ को मजबूत कर रही थी। अगर इस तरह की उसकी चीजें एक-एक करके निकल गयीं तो फिर वह अपनी प्रतिष्ठा कब तक बनाये रख सकेगी? जिस चीज पर उसका क़ब्जा है उसकी तरफ़ कोई आंख ही क्यों उठाये। राजा भी तो एक-एक अंगुल जमीन के पीछे जान देता है। वह इस नये शिकारी को हमेशा के लिए अपने रास्ते से हटा देना चाहती थी। उसके जादू को तोड़ देना चाहती थी।

शाम को वह परी जैसी, अपनी नौकरानी और नौकर को साथ लेकर अमरनाथ के घर चली। अमरनाथ ने सुबह दस बजे तक मर्दाने घर को जनानेपन का रंग देने में खर्चा किया था। ऐसी तैयारियां कर रखी थीं जैसे कोई अफ़सर मुआइना करने वाला हो। मालती ने घर में पैर रखा तो उसकी सफ़ाई और सजावट देखकर बहुत खुश हुई। जनाने हिस्से में कई कुर्सियां रखी थीं। बोली-अब लाओ अपनी देवीजी को मगर जल्द आना। वर्ना मैं चली जाऊँगी।

अमरनाथ लपके हुए विलायती दुकान पर गये। आज भी धरना था। तमाशाइयों की वहीं भीड़। वहां देवी जी नहीं। पीछे की तरफ़ गये तो देवी जी एक लड़की के साथ उसी भेस में खड़ी थीं।

अमरनाथ ने कहा-माफ़ कीजिएगा, मुझे देर हो गयी। मैं आपके वादे की याद दिलाने आया हूँ।

देवीजी ने कहा-मैं तो आपका इन्तजार कर रही थी। चलो सुमित्रा, जरा आपके घर हो आयें। कितनी देर है?

अमरनाथ-बहुत पास है। एक तांगा कर लूंगा।

पन्द्रह मिनट में अमरनाथ दोनों को लिये घर पहुँचे। मालती ने देवीजी को देखा और देवीजी ने मालती को। एक किसी रईस का महल था, आलीशान; दूसरी किसी फ़कीर की कुटिया थी, छोटी-सी तुच्छ। रईस के महल में आडम्बर और प्रदर्शन था, फ़कीर की कुटिया में सादगी और सफ़ाई। मालती ने देखा, भोली लड़की है जिसे किसी तरह सुन्दर नहीं कह सकते। पर उसके भोलेपन और सादगी में जो आकर्षण था, उससे वह प्रभावित हुए बिना न रह सकी। देवीजी ने भी देखा, एक बनी-संवरी बेधड़क और घमण्डी औरत है जो किसी न किसी वजह से उस घर में अजनबी-सी मालूम हो रही है जैसे कोई जंगली जानवर पिंजरे में आ गया हो।

अमरनाथ सिर झुकाये मुजरिमों की तरह खड़े थे और ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे कि किसी तरह आज पर्दा रह जाये।

देवी ने आते ही कहा-बहन, आप भी सिर से पांव तक विदेशी कपड़े पहने हुई हैं?

मालती ने अमरनाथ की तरफ़ देखकर कहा-मैं विदेशी और देशी के फेर में नहीं पड़ती। जो यह लाकर देते हैं वह पहनती हूँ। लाने वाले है ये, मैं थोड़े ही बाजार जाती हूँ।

देवी ने शिकायत-भरी आंखों से अमरनाथ की तरफ देखकर कहा-आप तो कहते थे यह इनकी फरमाइश है, मगर आप ही का क़सूर निकल आया।

मालती-मेरे सामने इनसे कुछ मत कहो। तुम बाजार में भी दूसरे मर्दों से बातें कर सकती हो, जब वह बाहर चले जायं तो जितना चाहे कह-सुन लेना। मैं अपने कानों से नहीं सुनना चाहती।

देवीजी-मैं कुछ कहती नहीं और बहनजी, मैं कह ही क्या कर सकती हूँ, कोई जबर्दस्ती तो है नहीं, बस विनती कर सकता हूँ।

मालती-इसका मतलब यह है कि इन्हें अपने देश की भलाई का जरा भी ख्याल नहीं, उसका ठेका तुम्हीं ने ले लिया है। पढ़े-लिखे आदमी हैं, दस आदमी इज्ज़त करते हैं, अपना नफा-नुकसान समझ सकते हैं। तुम्हारी क्या हिम्मत कि उन्हें उपदेश देने बैठो, या सबसे ज्यादा अक्लमन्द तुम्हीं हो?

देवीजी-आप मेरा मतलब गलत समझ रही हैं बहन।

मालती-हॉं, गलत तो समझूँगी ही, इतनी अक्ल कहां से लाऊँ कि आपकी बातों का मतलब समझूँ! खद्दर की साड़ी पहल ली, झोली लटका ली, एक बिल्ला लगा लिया, बस अब अख्तियार है जहां चाहें आयें-जायें, जिससे चाहें हसें-बोलें, घर में कोई पूछता नहीं तो जेलखाने का भी क्या डर! मैं इसे हुड़दंगापन समझती हूँ, जो शरीफों की बहू-बेटियों को शोभा नहीं देता।

अमरनाथ दिल में कटे जा रहे थे। छिपने के लिए बिल ढूंढ रहे थे। देवी की पेशानी पर जरा बल न था लेकिन आंखें डबडबा रही थीं।

अमरनाथ ने मालती से जरा तेज स्वर में कहा-क्यों खामखाह किसी का दिल दुखाती हो? यह देवियां अपना ऐश-आराम छोड़कर यह काम कर रही हैं, क्या तुम्हें इसकी बिलकुल खबर नहीं?

मालती-रहने दो, बहुत तारीफ़ न करो। जमाने का रंग ही बदला जा रहा है, मैं क्या करूँगी और तुम क्या करोगे। तुम मर्दों ने औरतों को घर में इतनी बुरी तरह कैद किया कि आज वे रस्म-रिवाज, शर्म-हया को छोड़कर निकल आयी हैं और कुछ दिनों में तुम लोगों की हुकूमत का खातमा हुआ जाता है। विलायती और विदेशी तो दिखलाने के लिए हैं, असल में यह आजादी की ख्वाहिश है जो तुम्हें हासिल है। तुम अगर दो-चार शादियाँ कर सकते हो तो औरत क्यों न करें! सच्ची बात यह है, अगर आंखें है तो अब खोलकर देखो। मुझे वह आजादी न चाहिए। यहां तो लाज ढोते हैं और मैं शर्म-हया को अपना सिंगार समझती हूँ।

देवीजी ने अमरनाथ की तरफ फ़रियाद की आंखों से देखकर कहा-बहन ने औरतों को जलील करने की क़सम खा ली है। मैं बड़ी-बड़ी उम्मीदें लेकर आयी थी, मगर शायद यहां से नाकाम जाना पड़ेगा।

अमरनाथ ने वह साड़ी उसको देते हुए कहा-नहीं, बिलकुल नाकाम तो आप नहीं जायेंगी, हां, जैसी कामयाबी की आपको उम्मीद थी वह न होगी।

मालती ने डपटते हुए कहा-वह मेरी साड़ी है, तुम उसे नहीं दे सकते।

अमरनाथ ने शर्मिन्दा होते हुए कहा-अच्छी बात है, न दूंगा। देवीजी, ऐसी हालत में तो शायद आप मुझे माफ करेंगी।

देवीजी चली गयी तो अमरनाथ ने त्योरियाँ बदलकर कहा-यह तुमने आज मेरे मुंह में कालिख लगा दी। तुम इतनी बदतमीज और बदजबान हो, मुझे मालूम न था।

मालती ने रोषपूर्ण स्वर में कहा-तो अपनी साड़ी उसे दे देती? मैंने ऐसी कच्ची गोलियां नहीं खेली। अब तो बदतमीज भी हूँ, बदज़बान भी, उस दिन इन बुराइयों में से एक भी न थी जब मेरी जूतियां सीधी करते थे? इस छोकरी ने मोहिनी डाल दी। जैसी रूह वैसे फरिश्ते। मुबारक हो।

यह कहती हुई मालती बाहर निकली। उसने समझा था जबान चलाकर और ताक़त से वह उस लड़की को उखाड़ फेंकेगी लेकिन जब मालूम हुआ कि अमरनाथ आसानी से क़ाबू में आने वाला नहीं तो उसने फटकार बताई। इन दामों अगर अमरनाथ मिल सकता था तो बुरा न था। उससे ज्यादा कीमत वह उसके लिए दे न सकती थी।

अमरनाथ उसके साथ दरवाजे तक आये जब वह तांगे पर बैठी तो बिनती करते हुए बोले-यह साड़ी दे दो न मालती, मैं तुम्हें कल इससे अच्छी साड़ी ला दूँगा।

मगर मालती ने रूखेपन से कहा-यह साड़ी तो अब लाख रुपये पर भी नहीं दे सकती।

अमरनाथ ने त्यौरियां बदलकर जवाब दिया-अच्छी बात है, ले जाओ मगर समझ लो यह मेरा आखिरी तोहफ़ा है।

मालती ने होंठ चढ़ाकर कहा-इसकी परवाह नहीं। तुम्हारे बगैर मैं मर नहीं जाऊँगी, इसका तुम्हें यकीन दिलाती हूँ!

-'आखिरी तोहफ़ा' से

क़ातिल

जाड़ों की रात थी। दस बजे ही सड़कें बन्द हो गयी थीं और गालियों में सन्नाटा था। बूढ़ी बेवा मां ने अपने नौजवान बेटे धर्मवीर के सामने थाली परोसते हुए कहा-तुम इतनी रात तक कहां रहते हो बेटा? रखे-रखे खाना ठंडा हो जाता है। चारों तरफ सोता पड़ गया। आग भी तो इतनी नहीं रहती कि इतनी रात तक बैठी तापती रहूँ।

धर्मवीर हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर नवयुवक था। थाली खींचता हुआ बोला-अभी तो दस भी नहीं बजे अम्माँ। यहां के मुर्दादिल आदमी सरे-शाम ही सो जाएं तो कोई क्या करे। योरोप में लोग बारह-एक बजे तक सैर-सपाटे करते रहते हैं। जिन्दगी के मज़े उठाना कोई उनसे सीख ले। एक बजे से पहले तो कोई सोता ही नहीं।

मां ने पूछा-तो आठ-दस बजे सोकर उठते भी होंगे।

धर्मवीर ने पहलू बचाकर कहा-नहीं, वह छः बजे ही उठ बैठते हैं। हम लोग बहुत सोने के आदी हैं। दस से छः बजे तक, आठ घण्टे होते हैं। चौबीस में आठ घण्टे आदमी सोये तो काम क्या करेगा? यह बिलकुल गलत है कि आदमी को आठ घण्टे सोना चाहिए। इन्सान जितना कम सोये, उतना ही अच्छा। हमारी सभा ने अपने नियमों में दाखिल कर लिया है कि मेम्बरों को तीन घण्टे से ज्यादा न सोना चाहिए।

मां इस सभा का जिक्र सुनते-सुनते तंग आ गयी थी। यह न खाओ, वह न खाओ, यह न पहनो, वह न पहनो, न ब्याह करो, न शादी करो, न नौकरी करो, न चाकरी करो, यह सभा क्या लोगों को संन्यासी बनाकर छोड़ेगी? इतना त्याग तो संन्यासी ही कर सकता है। त्यागी संन्यासी भी तो नहीं मिलते। उनमें भी ज्यादातर इन्द्रियों के गुलाम, नाम के त्यागी हैं। आज सोने की भी क़ैद लगा दी। अभी तीन महीने का घूमना खत्म हुआ। जाने कहां-कहां मारे फिरते हैं। अब बारह बजे खाइए। या कौन जाने रात को खाना ही उड़ा दें। आपत्ति के स्वर में बोली-तभी तो यह सूरत निकल आयी है कि चाहो तो एक-एक हड्डी गिन लो। आख़िर सभावाले कोई काम भी करते हैं या सिर्फ़ आदमियों पर कैदें ही लगाया करते हैं?

धर्मवीर बोला-जो काम तुम करती हो वहीं हम करते हैं। तुम्हारा उद्देश्य राष्ट्र की सेवा करना है, हमारा उद्देश्य भी राष्ट्र की सेवा करना है।

बूढ़ी विधवा आजादी की लड़ाई में दिलो-जान से शरीक थी। दस साल पहले उसके पति ने एक राजद्रोहात्मक भाषण देने के अपराध में सजा पाई थी। जेल में उसका स्वास्थ्य बिगड़ गंया और जेल ही में उसका स्वर्गवास हो गया। तब से यह विधवा बड़ी सच्चाई और लगन से राष्ट्र की सेवा सेवा में लगी हुई थी। शुरू में उसका नौजवान बेटा भी स्वयं सेवकों में शमिल हो गया था। मगर इधर पांच महीनों से वह इस नयी सभा में शरीक हो गया और उसको जोशीले कार्यकर्ताओं मे समझा जाता था।

मां ने संदेह के स्वर में पूछा-तो तुम्हारी सभा का कोई दफ्तर हैं?

'हां है।'

'उसमें कितने मेम्बर हैं?'

'अभी तो सिर्फ़ पचास मेम्बर हैं? वह पचीस आदमी जो कुछ कर सकते हैं, वह तुम्हारे पचीस हजार भी नहीं कर सकते। देखो अम्मां, किसी से कहना मत वर्ना सबसे पहले मेरी जान पर आफ़त आयेगी। मुझे उम्मीद नहीं कि पिकेटिंग और जुलूसों से हमें आजादी हासिल हो सके। यह तो अपनी कमज़ोरी और बेबसी का साफ़ एलान हैं। झंडियां निकालकर और गीत गाकर कौमें नहीं आज़ाद हुआ करतीं। यहां के लोग अपनी अकल से काम नहीं लेते। एक आदमी ने कहा-यों स्वराज्य मिल जाएगा। बस, आंखें बन्द करके उसके पीछे हो लिए। वह आदमी गुमराह है और दूसरों को भी गुमराह कर रहा है। यह लोग दिल में इस ख्याल से खुश हो लें कि हम आज़ादी के करीब आते जाते हैं। मगर मुझे तो काम करने का यह ढंग बिल्कुल खेल-सा मालूम होता है। लड़कों के रोने-धोने और मचलने पर खिलौने और मिठाइयां मिला करती है-वही इन लोगों को मिल जाएगा। असली चीज तो तभी मिलेगी, जब हम उसकी कीमत देने को तैयार होंगे।

मां ने कहा-उसकी कीमत क्या हम नहीं दे रहे हैं? हमारे लाखों आदमी
जेल नहीं गये? हमने डंडे नहीं खाये? हमने अपनी जायदादें नहीं जब्त करायीं?

धर्मवीर-इससे अंग्रेजों को क्या-क्या नुकसान हुआ? वे हिन्दुस्तान उसी वक्त छोड़ेगे, जब उन्हें यकीन हो जाएगा कि अब वे एक पल-भर भी नहीं रह सकते। अगर आज हिन्दोस्तान के एक हजार अंग्रेज कत्ल कर दिए जाएं तो आज ही स्वराज्य मिल जाए। रूस इसी तरह आज़ाद हुआ, आयरलैण्ड भी इसी तरह

आज़ाद हुआ, हिन्दोस्तान भी इसी तरह आज़ाद होगा और कोई तरीका नहीं। हमें उनका खात्मा कर देना है। एक गोरे अफसर के कत्ल कर देने से हुकूमत पर जितना डर छा जाता है, उतना एक हजार जुलूसों से मुमकिन नहीं।

मां सर से पांव तक कापं उठी। उसे विधवा हुए दस साल हो गए थे। यही लड़का उसकी जिंदगी का सहारा है। इसी को सीने से लगाए मेहनत-मजदूरी करके अपने मुसीबत के दिन काट रही है। वह इस खयाल से खुश थी कि यह चार पैसे कमायेगा, घर में बहू आएगी, एक टुकड़ा खाऊँगी, और पड़ी रहूँगी। आरज़ुओं के पतले-पतले तिनकों से उसने ऐ किश्ती बनाई थी। उसी पर बैठकर जिन्दगी के दरिया को पार कर रही थी। वह किश्ती अब उसे लहरों में झकोले खाती हुई मालूम हुई। उसे ऐसा महसूस हुआ कि वह किश्ती दरिया में डूबी जा रही है। उसने अपने सीने पर हाथ रखकर कहा-बेटा, तुम कैसी बातें कर रहे हो। क्या तुम समझते हो, अंग्रेजों को कत्ल कर देने से हम आज़ाद हो जायेंगे? हम अंग्रेजों के दुश्मन नहीं। हम इस राज्य प्रणाली के दुश्मन हैं। अगर यह राज्य-प्रणाली हमारे भाई-बन्दों के ही हाथों में हो-और उसका बहुत बड़ा हिस्सा है भी-तो हम उसका भी इसी तरह विरोध करेंगे। विदेश में तो कोई दूसरी क़ौम राज न करती थी, फिर भी रूस वालों ने उस हुकूमत का उखाड़ फेंका तो उसका कारण यही था कि जार प्रजा की परवाह न करता था। अमीर लोग मज़े उड़ाते थे, गरीबों को पीसा जाता था। यह बातें तुम मुझसे ज्यादा जानते हो। वही हाल हमारा है। देश की सम्पत्ति किसी न किसी बहाने निकलती चली जाती है और हम गरीब होते जाते हैं। हम इस अवैधानिक शासन को बदलना चाहते हैं। मैं तुम्हारे पैरों में पड़ती हूँ, इस सभा से अपना नाम कटवा लो। खामखाह आग़ में न कूदो। मै अपनी आंखों से यह दृश्य नहीं देखना चाहती कि तुम अदालत में खून के जुर्म में लाए जाओ।

धर्मवीर पर इस विनती का कोई असर नहीं हुआ। बोला-इसका कोई डर नहीं। हमने इसके बारे में काफ़ी एहतियात कर ली है। गिरफ्तार होना तो बेवकूफी है। हम लोग ऐसी हिकमत से काम करना चाहते हैं कि कोई गिरफ्तार न हो।

मां के चेहरे पर अब डर की जगह शर्मिन्दगी की झलक नज़र आयी। बोली-यह तो उससे भी बुरा है। बेगुनाह सज़ा पायें और क़ातिल चैन से बैठे रहें! यह शर्मनाक हरकत है। मैं इसे कमीनापन समझती हूँ। किसी को छिपकर क़त्ल करना दगाबाजी है, मगर अपने बदले बेगुनाह भाइयों को फंसा देना देशद्रोह है। इन बेगुनाहों का खून भी कातिल की गर्दन पर होगा।

धर्मवीर ने अपनी मां की परेशानी का मजा लेते हुए कहा-अम्मां, तुम इन बातों को नहीं समझती। तुम अपने धरने दिए जाओ, जुलूस निकाले जाओ। हम जो कुछ करते हैं, हमें करने दो। गुनाह और सवाब, पाप और पुण्य, धर्म और अर्धम, यह निरर्थक शब्द है। जिस काम का तुम सापेक्ष समझती हो, उसे मैं पुण्य समझता हूँ। तुम्हें कैसे समझाऊँ कि यह सापेक्ष शब्द हैं। तुमने भगवदगीता तो पढ़ी है। कृष्ण भगवान ने साफ़ कहा है-मारने वाला मै हूँ, जिलाने वाला मैं हूँ, आदमी न किसी को मार सकता है, न जिला सकता है। फिर कहां रहा तुम्हारा पाप? मुझे इस बात की क्यों शर्म हो कि मेरे बदले कोई दूसरा मुजरिम करार दिया गया। यह व्यक्तिगत लड़ाई नहीं, इंग्लैण्ड की सामूहिक शक्ति से युद्ध है। मैं मरूं या मेरे बदले कोई दूसरा मरे, इसमें कोई अन्तर नहीं। जो आदमी राष्ट् की ज्यादा सेवा कर सकता है, उसे जीवित रहने का ज्यादा अधिकार है।

मां आश्चर्य से लड़के का मुहं देखने लगी। उससे बहस करना बेकार था। अपनी दलीलों से वह उसे कायल न कर सकती थी। धर्मवीर खाना खाकर उठ गया। मगर वह ऐसी बैठी रही कि जैसे लक़वा मार गया हो। उसने सोचा-कहीं ऐसा तो नहीं कि वह किसी का क़त्ल कर आया हो। या कत्ल करने जा रहा हो। इस विचार से उसके शरीर के कंपकंपी आ गयी। आम लोगों की तरह हत्या और खून के प्रति घृणा उसके शरीर के कण-कण में भरी हुई थी। उसका अपना बेटा खून करे, इससे ज्यादा लज्जा, अपमान, घृणा की बात उसके लिए और क्या हो सकती थी। वह राष्ट् सेवा की उस कसौटी पर जान देती थी जो त्याग, सदाचार, सच्चाई और साफ़दिली का वरदान है। उसकी आंखों मे राष्ट् का सेवक वह था जो नीच से नीच प्राणी का दिल भी न दुखाये, बल्कि जरूरत पड़ने पर खुशी से अपने को बलिदान कर दे। अहिंसा उसकी नैतिक भावनाओं का सबसे प्रधान अंग थी। अगर धर्मवीर किसी गरीब की हिमायत में गोली का निशाना बन जाता तो वह रोती जरूर मगर गर्दन उठाकर। उसे ग़हरा शोक होता, शायद इस शोक में उसकी जान भी चली जाती। मगर इस शोक में गर्व मिला हुआ होता। लेकिन वह किसी का खून कर आये यह एक भयानक पाप

था, कलंक था। लड़के को रोके कैसे, यही सवाल उसके सामने था। वह यह नौबत हरगिज न आने देगी कि उसका बेटा खून के जुर्म में पकड़ा न जाये। उसे यह बरदाश्त था कि उसके जुर्म की सजा बेगुनाहों को मिले। उसे ताज्जुब हो रहा था, लड़के मे यह पागलपन आया क्योंकर? वह खाना खाने बैठी मगर कौर गले से नीचे न जा सका। कोई जालिम हाथ धर्मवीर को उनकी गोद से छीन लेता है। वह उस हाथ को हटा देना चाहती थी। अपने जिगर के टुकड़े को वह एक क्षण के लिए भी अलग न करेगी। छाया की तरह उसके पीछे-पीछे रहेगी। किसकी मजाल है जो उस लड़के को उसकी गोद से छीने!

धर्मवीर बाहर के कमरे में सोया करता था। उसे ऐसा लगा कि कहीं वह न चला गया हो। फौरन उसके कमरे में आयी। धर्मवीर के सामने दीवट पर दिया जल रहा था। वह एक किताब खोले पढ़ता-पढ़ता सो गया था। किताब उसके सीने पर पड़ी थी। मां ने वहीं बैठकर अनाथ की तरह बड़ी सच्चाई और विनय के साथ परमात्मा से प्रार्थना की कि लड़के का हृदय-परिवर्तन कर दे। उसके चेहरे पर अब भी वहीं भोलापन, वही मासूमियत थी जो पन्द्रह-बीस साल पहले नज़र आती थी। कर्कशता या कठोरता का कोई चिह्न न था। मां की सिद्धांतपरता एक क्षण के लिए ममता के आंचल में छिप गई। मां ने हृदय से बेटे की हार्दिक भावनाओं को देखा। इस नौजवान के दिल में सेवा की कितनी उंमग है, कोम का कितना दर्द हैं, पीड़ितों से कितनी सहानुभूति हैं अगर इसमे बूढ़ों की-सी सूझ-बूझ, धीमी चाल और धैर्य है तो इसका क्या कारण है। जो व्यक्ति प्राण जैसी प्रिय वस्तु को बलिदान करने के लिए तत्पर हो, उसकी तड़प और जलन का कौन अन्दाजा कर सकता है। काश यह जोश, यह दर्द हिंसा के पंजे से निकल सकता तो जागरण की प्रगति कितनी तेज हो जाती!

मां की आहट पाकर धर्मवीर चौंक पड़ा और किताब संभालता हुआ बोला-तुम कब आ गयीं अम्मां? मुझे तो जाने कब नींद आ गयी।

मॉ ने दीवट को दूर हटाकर कहा-चारपाई के पास दिया रखकर न सोया करो। इससे कभी-कभी दुर्घटनाएं हो जाया करती हैं। और क्या सारी रात पढ़ते ही रहोगे? आधी रात तो हुई, आराम से सो जाओ। मैं भी यहीं लेटी जाती हूँ। मुझे अन्दर न जाने क्यों डर लगता है।

धर्मवीर-तो मैं एक चारपाई लाकर डाले देता हूँ।

'नहीं, मैं यहीं जमीन पर लेट जाती हूँ।'

'वाह, मैं चारपाई पर लेटूँ और तू जमीन पर पड़ी रहो। तुम चारपाई पर आ जाओ।'

'चल, मैं चारपाई पर लेटूं और तू जमीन पर पड़ा रहे यह तो नहीं हो सकता।'

'मैं चारपाई लिये आता हूँ। नहीं तो मैं भी अन्दर ही लेटता हूँ। आज आप डरीं क्यों?'

'तुम्हारी बातों ने डरा दिया। तू मुझे भी क्यों अपनी सभा में नहीं सरीक कर लेता?'

धर्मवीर ने कोई जवाब नहीं दिया। बिस्तर और चारपाई उठाकर अन्दर वाले कमरे में चला। मॉ आगे-आगे चिराग दिखाती हुई चली। कमरे में चारपाई डालकर उस पर लेटता हुआ बोला-अगर मेरी सभा में शरीक हो जाओ तो क्या पूछना। बेचारे कच्ची-कच्ची रोटियां खाकर बीमार हो रहे हैं। उन्हें अच्छा खाना मिलने लगेगा। फिर ऐसी कितनी ही बातें हैं जिन्हें एक बूढ़ी स्त्री जितनी आसानी से कर सकती है, नौजवान हरगिज़ नहीं कर सकते। मसलन, किसी मामले का सुराग लगाना, औरतों में हमारे विचारों का प्रचार करना। मगर तुम दिल्लगी कर रही हो!

मां ने गम्भीरता से कहा-नहीं बेटा दिल्लगी नहीं कर रही। दिल से कह रही हूँ। मां का दिल कितना नाजुक होता है, इसका अन्दाजा तुम नहीं कर सकते। तुम्हें इतने बड़े खतरे में अकेला छोड़कर मैं घर नहीं बैठ सकती। जब तक मुझे कुछ नहीं मालूम था, दूसरी बात थी। लेकिन अब यह बातें जान लेने के बाद मैं तुमसे अलग नहीं रह सकती। मैं हमेशा तुम्हारे बग़ल में रहूँगी और अगर कोई ऐसा मौक़ा आया तो तुमसे पहले मैं अपने को कुर्बान करूँगी। मरते वक्त तुम मेरे सामने होगे। मेरे लिए यही सबसे बड़ी खुशी है। यह मत समझो कि मैं नाजुक मौक़ों पर डर जाऊंगी, चीखूंगी, चिल्लाऊंगी, हरगिज नहीं। सख्त से सख्त खतरों के सामने भी तुम मेरी जबान से एक चीख न सुनोगे। अपने बच्चे की हिफाज़त के लिए गाय भी शेरनी बन जाती है।

धर्मवीर ने भक्ति से विह्वल होकर मां के पैरों को चूम लिया। उसकी दृष्टि में वह कभी इतने आदर और स्नेह के योग्य न थी।

दूसरे ही दिन परीक्षा का अवसर उपस्थित हुआ। यह दो दिन बुढ़िया ने रिवाल्वर चलाने के अभ्यास में खर्च किये। पटाखे की आवाज़ पर कानों पर हाथ रखने वाली, अहिंसा और धर्म की देवी, इतने साहस से रिवाल्वर चलाती थी और उसका निशाना इतना अचूक होता था कि सभा के नौजवानों को भी हैरत होती थी।

पुलिस के सबसे बड़े अफ़सर के नाम मौत का परवाना निकला और यह काम धर्मवीर के सुपुर्द हुआ।

दोनों घर पहुँचे तो मां ने पूछा-क्यों बेटा, इस अफ़सर ने तो कोई ऐसा काम नहीं किया फिर सभा ने क्यों उसको चुना?

धर्मवीर मां की सरलता पर मुस्कराकर बोला-तुम समझती हो हमारी कांस्टेबिल और सब-इंस्पेक्टर और सुपरिण्टेण्डैण्ट जो कुछ करते हैं, अपनी खुशी से करते हैं? वे लोग जितने अत्याचार करते हैं, उनके यही आदमी जिम्मेदार हैं। और फिर हमारे लिए तो इतना ही काफ़ी है कि वह उस मशीन का एक खास पुर्जा है जो हमारे राष्ट्र को चरम निर्दयता से बर्बाद कर रही है। लड़ाई में व्यक्तिगत बातों से कोई प्रयोजन नहीं, वहां तो विरोध पक्ष का सदस्य होना ही सबसे बड़ा अपराध है।

मां चुप हो गयी। क्षण-भर बाद डरते-डरते बोली-बेटा, मैंने तुमसे कभी कुछ नहीं मांगा। अब एक सवाल करती हूँ, उसे पूरा करोगे?

धर्मवीर ने कहा-यह पूछने की कोई जरूरत नहीं अम्मा, तुम जानती हो मैं तुम्हारे किसी हुक्म से इन्कार नहीं कर सकता।

मां-हां बेटा, यह जानती हूँ। इसी वजह से मुझे यह सवाल करने की हिम्मत हुई। तुम इस सभा से अलग हो जाओ। देखो, तुम्हारी बूढ़ी मां हाथ जोड़कर तुमसे यह भीख मांग रही है।

और वह हाथ जोड़कर भिखारिन की तरह बेटे के सामने खड़ी हो गयी। धर्मवीर ने क़हक़हा मारकर कहा-यह तो तुमने बेढब सवाल किया, अम्मां। तुम जानती हो इसका नतीजा क्या होगा? जिन्दा लौटकर न आऊँगा। अगर यहां से कहीं भाग जाऊं तो भी जान नहीं बच सकती। सभा के सब मेम्बर ही मेरे खून के प्यासे हो जायेंगे और मुझे उनकी गोलियों का निशाना बनना पड़ेगा। तुमने मुझे यह जीवन दिया है, इसे तुम्हारे चरणों पर अर्पित कर सकता हूँ। लेकिन भारतमाता ने तुम्हें और मुझे दोनों ही को जीवन दिया है और उसका हक सबसे बड़ा है। अगर कोई ऐसा मौक़ा हाथ आ जाय कि मुझे भारतमाता की सेवा के लिए तुम्हें कत्ल करना पड़े तो मैं इस अप्रिय कर्त्तव्य से भी मुहं न मोड़ सकूंगा। आंखों से आंसू जारी होंगे, लेकिन तलवार तुम्हारी गर्दन पर होगी। हमारे धर्म में राष्ट्र की तुलना में कोई दूसरी चीज नहीं ठहर सकती। इसलिए सभा को छोड़ने का तो सवाल ही नहीं है। हां, तुम्हें डर लगता हो तो मेरे साथ न जाओ। मैं कोई बहाना कर दूंगा और किसी दूसरे कामरेड को साथ ले लूंगा। अगर तुम्हारे दिल में कमज़ोरी हो, तो फ़ौरन बतला दो।

मां ने कलेजा मजबूत करके कहा-मैंने तुम्हारे ख्याल से कहा था भइया, वर्ना मुझे क्या डर।

अंधेरी रात के पर्दे में इस काम को पूरा करने का फैसला किया गया था। कोप का पात्र रात को क्लब से जिस वक्त लौटे वहीं उसकी जिन्दगी का चिराग़ बुझा दिया जाय। धर्मवीर ने दोपहर ही को इस मौके का मुआइना कर लिया और उस खास जगह को चुन लिया जहां से निशाना मारेगा। साहब के बंगले के पास करील और करौंदे की एक छोटी-सी झाड़ी थी। वही उसकी छिपने की जगह होगी। झाड़ी के बायीं तरफ़ नीची ज़मीन थी। उसमें बेर और अमरूद के बाग़ थे। भाग निकलने का अच्छा मौक़ा था।

साहब के क्लब जाने का वक्त सात और आठ बजे के बीच था, लौटने का वक्त ग्यारह बजे था। इन दोनों वक्तों की बात पक्की तरह मालूम कर ली गयी थी। धर्मवीर ने तय किया कि नौ बजे चलकर उसी करौंदेवाली झाड़ी में छिपकर बैठ जाय। वहीं एक मोड़ भी था। मोड़ पर मोटर की चाल कुछ धीमी पड़ जायेगी। ठीक इसी वक्त उसे रिवाल्वर का निशाना बना लिया जाय।

ज्यों-ज्यों दिन गुजरता जाता था, बूढ़ी मां का दिल भय से सूखता जाता था। लेकिन धर्मवीर के दैनंदिन आचरण में तनिक भी अन्तर न था। वह नियत समय पर उठा, नाश्ता किया, सन्ध्या की और अन्य दिनों की तरह कुछ देर पढ़ता रहा। दो-चार मित्र आ गये। उनके साथ दो-तीन बाज़ियां शतरंज की खेलीं। इत्मीनान से खाना खाया और अन्य् दिनों से कुछ अधिक। फिर आराम से सो गया, कि जैसे उसे कोई चिन्ता नहीं है। मां का दिल उचाट था। खाने-पीने का तो जिक्र ही क्या, वह मन मारकर एक जगह बैठ भी न सकती थी। पड़ोस की औरतें हमेशा की तरह आयीं। वह किसी से कुछ न बोली। बदहवास-सी

इधर-उधर दौड़ती फिरती थीं कि जैसे चुहिया बिल्ली के डर से सुराख ढूंढ़ती हो। कोई पहाड़-सा उसके सिर पर गिरता था। उसे कहीं मुक्ति नहीं। कहीं भाग जाय, ऐसी जगह नहीं। वे घिसे-पिटे दार्शनिक विचार जिनसे अब तक उसे सान्तवना मिलती थी-भाग्य, पुनर्जन्म, भगवान की मर्जी-वे सब इस भयानक विपत्ति के सामने व्यर्थ जान पड़ते थे। जिरहबख्तर और लोहे की टोपी तीर-तुपक से रक्षा कर सकते हैं लेकिन पहाड़ तो उसे उन सब चीजों के साथ कुचल डालेगा। उसके दिलो-दिमाग बेकार होते जाते थे। अगर कोई भाव शेष था, तो वह भय था। मगर शाम होते-होते उसके हृदय पर एक शन्ति-सी छा गयी। उसके अन्दर एक ताकत पैदा हुई जिसे मजबूरी की ताक़त कह सकते हैं। चिड़िया उस वक्त तक फड़फड़ाती रही, जब तक उड़ निकलने की उम्मीद थी। उसके बाद वह बहेलिये के पंजे और क़साई के छुरे के लिए तैयार हो गयी। भय की चरम सीमा साहस है।

उसने धर्मवीर को पुकारा-बेटा, कुछ आकर खा लो।

धर्मवीर अन्दर आया। आज दिन-भर मां-बेटे में एक बात भी न हुई थी। इस वक्त मां ने धर्मवीर को देखा तो उसका चेहरा उतरा हुआ था। वह संयम जिससे आज उसने दिन-भर अपने भीतर की बेचैनी को छिपा रखा था, जो अब तक उड़े-उड़े से दिमाग की शकल में दिखायी दे रही थी, खतरे के पास आ जाने पर पिघल गया था-जैसे कोई बच्चा भालू को दूर से देखकर तो खुशी से तालियां बजाये लेकिन उसके पास आने पर चीख उठे।

दोनों ने एक दूसरे की तरफ़ देखा। दोनों रोने लगे।

मां का दिल खुशी से खिल उठा। उसने आंचल से धर्मवीर के आंसू पोंछते हुए कहा-चलो बेटा, यहां से कहीं भाग चलें।

धर्मवीर चिन्ता-मग्न खड़ा था। मां ने फिर कहा-किसी से कुछ कहने की जरूरत नहीं। यहां से बाहर निकल जायं जिसमें किसी को खबर भी न हो। राष्ट्र की सेवा करने के और भी बहुत-से रास्ते हैं।

धर्मवीर जैसे नींद से जागा, बोला-यह नहीं हो सकता अम्मां। कर्त्तव्य तो कर्त्तव्य है, उसे पूरा करना पड़ेगा। चाहे रोकर पूरा करो, चाहे हसंकर। हां, इस ख्याल से डर लगता है कि नतीजा न जाने क्या हो। मुमकिन है निशाना चूक जाये और गिरफ्तार हो जाऊं या उसकी गोली का निशाना बनूं। लेकिन खैर, जो हो, सो हो। मर भी जायेंगे तो नाम तो छोड़ जाएंगे।

क्षण-भर बाद उसने फिर कहा-इस समय तो कुछ खाने को जी नहीं चाहता, मां। अब तैयारी करनी चाहिए। तुम्हारा जी न चाहता हो तो न चलो, मैं अकेला चला जाऊंगा।

मां ने शिकायत के स्वर में कहा-मुझे अपनी जान इतनी प्यारी नहीं है बेटा, मेरी जान तो तुम हो। तुम्हें देखकर जीती थी। तुम्हें छोड़कर मेरी जिन्दगी और मौत दोनों बराबर हैं, बल्कि मौत जिन्दगी से अच्छी है।

धर्मवीर ने कुछ जवाब न दिया। दोनों अपनी-अपनी तैयारियों में लग गये। मां की तैयारी ही क्या थी। एक बार ईश्वर का ध्यान किया, रिवाल्वर लिया और चलने को तैयार हो गयी।

धर्मवीर का अपनी डायर लिखनी थी। वह डायरी लिखने बैठा तो भावनाओं का एक सागर-सा उमड़ पड़ा। यह प्रवाह, विचारों की यह स्वत: स्फूर्ति उसके लिए नयी चीज थी। जैसे दिल में कहीं सोता खुल गया हो। इन्सान लाफ़ानी है, अमर है, यही उस विचार-प्रवाह का विषय था। आरम्भ एक दर्दनाक अलविदा से हुआ-

'रुखसत! ऐ दुनिया की दिलचस्पियों, रुखस्त! ऐ जिन्दगी की बहारो, रुखसत! ऐ मीठे जख्मों, रुखसत! देशभाइयों, अपने इस आहत और अभागे सेवक के लिए भगवान से प्रार्थना करना! जिन्दगी बहुत प्यारी चीज़ है, इसका तजुर्बा हुआ। आह! वही दुख-दर्द के नश्तर, वही हसरतें और मायूसियां जिन्होंने जिंदगी को कड़ुवा बना रखा था, इस समय जीवन की सबसे बड़ी पूंजी हैं। यह प्रभात की सुनहरी किरनों की वर्षा, यह शाम की रंगीन हवाएं, यह गली-कूचे, यह दरो-दीवार फिर देखने को मिलेंगे। जिन्दगी बन्दिशों का नाम है। बन्दिशें एक-एक करके टूट रही हैं। जिन्दगी का शीराज़ा बिखरा जा रहा है। ऐ दिल की आज़ादी! आओ तुम्हें नाउम्मीदी की कब्र में दफ़न कर दूँ। भगवान् से यही प्रार्थना है कि मेरे देशवासी फलें-फूलें, मेरा देश लहलहाये। कोई बात नहीं, हम क्या और हमारी हस्ती ही क्या, मगर गुलशन बुलबुलों से खाली न रहेगा। मेरी अपने भाइयों से इतनी ही विनती है कि जिस समय आप आजादी के गीत गायें तो इस ग़रीब की भलाई से लिए दुआ करके उसे याद कर लें।'

डायरी बन्द करके उसने एक लम्बी सांस खींची और उठ खड़ा हुआ। कपड़े पहनेख् रिवाल्वर जेब में रखा और बोला-अब तो वक्त हो गया अम्मां!

मां ने कुछ जवाब न दिया। घर सम्हालने की किसे परवाह थी, जो चीज़ जहां पड़ी थी, वहीं पड़ी रही। यहां तक कि दिया भी न बुझाया गया। दोनों खामोश घर से निकले।–एक मर्दानगी के साथ क़दम उठाता, दूसरी चिन्तित और शोक-मग्न और बेबसी के बोझ से झुकी हुई। रास्ते में भी शब्दों का विनिमय न हुआ। दोनों भाग्य-लिपि की तरह अटल, मौन और तत्पर थे-गद्यांश तेजस्वी, बलवान् पुनीत कर्म की प्रेरणा, पद्यांश दर्द, आवेश और विनती से कांपता हुआ।

झाड़ी में पहुँचकर दोनों चुपचाप बैठ गये। कोई आध घण्टे के बाद साहब की मोटर निकली। धर्मवीर ने गौर से देखा। मोटर की चाल धीमी थी। साहब और लेडी बैठे थे। निशाना अचूक था। धर्मवीर ने जेब से रिवाल्वर निकाला। मां ने उसका हाथ पकड़ लिया और मोटर आगे निकल आयी।

धर्मवीर ने कहा-यह तुमने क्या किया अम्मां! ऐसा सुनहरा मौक़ा फिर हाथ न आयेगा।

मां ने कहा-मोटर में मेम भी थी। कहीं मेम को गोली लग जाती तो?

‘तो क्या बात थी। हमारे धर्म में नाग, नागिन और सपोले में कोई भी अन्तर नहीं।’

मां ने घृणा भरे स्वर में कहा-तो तुम्हारा धर्म जंगली जानवरों और वहशियों का है, जो लड़ाई के बुनियादी उसूलों की भी परवाह नहीं करता। स्त्री हर एक धर्म में निर्दोष समझी गयी है। यहां तक कि वहशी भी उसका आदर करते हैं।

‘वापसी के समय हरगिज न छोडूंगा।’

‘मेरे जीते-जी तुम स्त्री पर हाथ नहीं उठा सकते।’

‘मैं इस मामले मे तुम्हारी पाबन्दियों का गुलाम नहीं हो सकता।’

मां ने कुछ जवाब न दिया। इस नामर्दों जैसी बात से उसकी ममता टुकड़े-टुकड़े हो गयी। मुश्किल से बीस मिनट बीते होंगे कि वहीं मोटर दूसरी तरफ़ से आती दिखायी पड़ी। धर्मवीर ने मोटर को गौर से देखा और उछलकर बोला- लो अम्मां, अबकी बार साहब अकेला है। तुम भी मेरे साथ निशाना लगाना।

मां ने लपककर धर्मवीर का हाथ पकड़ लिया और पागलों की तरह जोर लगाकर उसका रिवाल्वर छीनने लगा। धर्मवीर ने उसको एक धक्का देकर गिरा दिया और एक कदम रिवाल्वर साधा। एक सेकेण्ड में मां उठी। उसी वक्त गोली चली। मोटर आगे निकल गयी, मगर मां जमीन पर तड़प रही थी।

धर्मवीर रिवाल्वर फेंककर मां के पास गया और घबराकर बोला-अम्मां, क्या हुआ? फिर यकायक इस शोकभरी घटना की प्रतीति उसके अन्दर चमक उठी-वह अपनी प्यारी मां का कातिल है। उसके स्वभाव की सारी कठोरता और तेजी और गर्मी बुझ गयी। आंसुओं की बढ़ती हुई थरथरी को अनुभव करता हुआ वह नीचे झुका, और मां के चेहरे की तरफ आंसुओं में लिपटी हुई शर्मिन्दगी से देखकर बोला-यह क्या हो गया अम्मां! हाय, तुम कुछ बोलतीं क्यों नहीं! यह कैसे हो गया। अंधेरे में कुछ नज़र भी तो नहीं आता। कहॉ गोली लगी, कुछ तो बताओ। आह! इस बदनसीब के हाथों तुम्हारी मौत लिखी थी। जिसको तुमने गोद में पाला उसी ने तुम्हारा खून किया। किसको बुलाऊँ, कोई नजर भी तो नहीं आता।

मां ने डूबती हुई आवाज में कहा-मेरा जन्म सफल हो गया बेटा। तुम्हारे हाथों मेरी मिट्टी उठेगी। तुम्हारी गोद में मर रही हूँ। छाती में घाव लगा है। ज्यों तुमने गोली चलायी, मैं तुम्हारे सामने खड़ी हो गयी। अब नहीं बोला जाता, परमात्मा तुम्हें खुश रखे। मेरी यही दुआ है। मैं और क्या करती बेटा। मॉ की आबरू तुम्हारे हाथ में है। मैं तो चली।

क्षण-भर बाद उस अंधेरे सन्नाटे में धर्मवीर अपनी प्यारी मॉ के नीमजान शरीर को गोद में लिये घर चला तो उसके ठंडे तलुओं से अपनी ऑसू-भरी ऑखें रगड़कर आत्मिक आह्लाद से भरी हुई दर्द की टीस अनुभव कर रहा था।

वरदान

विन्ध्याचल पर्वत मध्यरात्रि के निविड़ अन्धकार में काल देव की भांति खड़ा था। उस पर उगे हुए छोटे-छोटे वृक्ष इस प्रकार दष्टिगोचर होते थे, मानो ये उसकी जटाएं है और अष्टभुजा देवी का मन्दिर जिसके कलश पर श्वेत पताकाएं वायु की मन्द-मन्द तरंगों में लहरा रही थीं, उस देव का मस्तक है मंदिर में एक झिलमिलाता हुआ दीपक था, जिसे देखकर किसी धुंधले तारे का मान हो जाता था।

अर्धरात्रि व्यतीत हो चुकी थी। चारों और भयावह सन्नाटा छाया हुआ था। गंगाजी की काली तरंगें पर्वत के नीचे सुखद प्रवाह से बह रही थीं। उनके बहाव से एक मनोरंजक राग की ध्वनि निकल रही थी। ठौर-ठौर नावों पर और किनारों के आस-पास मल्लाहों के चूल्हों की आंच दिखायी देती थी। ऐसे समय में एक श्वेत वस्त्रधारिणी स्त्री अष्टभुजा देवी के सम्मुख हाथ बांधे बैठी हुई थी। उसका प्रौढ़ मुखमण्डल पीला था और भावों से कुलीनता प्रकट होती थी। उसने देर तक सिर झुकाये रहने के पश्चात कहा।

‘माता! आज बीस वर्ष से कोई मंगलवार ऐसा नहीं गया जबकि मैंने तुम्हारे चरणो पर सिर न झुकाया हो। एक दिन भी ऐसा नहीं गया जबकि मैंने तुम्हारे चरणों का ध्यान न किया हो। तुम जगतारिणी महारानी हो। तुम्हारी इतनी सेवा करने पर भी मेरे मन की अभिलाषा पूरी न हुई। मैं तुम्हें छोड़कर कहां जाऊ ?’

‘माता। मैंने सैकड़ों व्रत रखे, देवताओं की उपासनाएं की’, तीर्थयात्राएं की, परन्तु मनोरथ पूरा न हुआ। तब तुम्हारी शरण आयी। अब तुम्हें छोड़कर कहां जाऊं? तुमने सदा अपने भक्तो की इच्छाएं पूरी की है। क्या मैं तुम्हारे दरबार से निराश हो जाऊं?’

सुवामा इसी प्रकार देर तक विनती करती रही। अकस्मात उसके चित्त पर अचेत करने वाले अनुराग का आक्रमण हुआ। उसकी आंखें बन्द हो गयीं और कान में ध्वनि आयी

‘सुवामा! मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूं। मांग, क्या मांगती है?

सुवामा रोमांचित हो गयी। उसका हृदय धड़कने लगा। आज बीस वर्ष के पश्चात महारानी ने उसे दर्शन दिये। वह कांपती हुई बोली ‘जो कुछ मांगूंगी, वह महारानी देंगी’ ?

‘हां, मिलेगा।’

‘मैंने बड़ी तपस्या की है अतएव बड़ा भारी वरदान मांगूगी।’

‘क्या लेगी कुबेर का धन’?

‘नहीं।’

‘इन्द का बल।’

‘नहीं।’

‘सरस्वती की विद्या?’

‘नहीं।’

‘फिर क्या लेगी?’

‘संसार का सबसे उत्तम पदार्थ।’

‘वह क्या है?’

‘सपूत बेटा।’

‘जो कुल का नाम रोशन करे?’

‘नहीं।’

‘जो माता-पिता की सेवा करे?’

‘नहीं।’

‘जो विद्वान और बलवान हो?’

‘नहीं।’

‘फिर सपूत बेटा किसे कहते हैं?’

‘जो अपने देश का उपकार करे।’

‘तेरी बुद्‌वि को धन्य है। जा, तेरी इच्छा पूरी होगी।’

वैराग्य

मुंशी शालिग्राम बनारस के पुराने रईस थे। जीवन-वृति वकालत थी और पैतृक सम्पत्ति भी अधिक थी। दशाश्वमेध घाट पर उनका वैभवान्वित गृह आकाश को स्पर्श करता था। उदार ऐसे कि पचीस-तीस हजार की वार्षिक आय भी व्यय को पूरी न होती थी। साधु-ब्राहमणों के बड़े श्रद्वावान थे। वे जो कुछ कमाते, वह स्वयं ब्रह्मभोज और साधुओं के भंडारे एवं सत्यकार्य में व्यय हो जाता। नगर में कोई साधु-महात्मा आ जाये, वह मुंशी जी का अतिथि। संस्कृत के ऐसे विद्वान कि बड़े-बड़े पंडित उनका लोहा मानते थे वेदान्तीय सिद्वान्तों के वे अनुयायी थे। उनके चित्त की प्रवृति वैराग्य की ओर थी।

मुंशीजी को स्वभावत: बच्चों से बहुत प्रेम था। मुहल्ले-भर के बच्चे उनके प्रेम-वारि से अभिसिंचित होते रहते थे। जब वे घर से निकलते थे तब बालाकों का एक दल उसके साथ होता था। एक दिन कोई पाषाण-हृदय माता अपने बच्वे को मार थी। लड़का बिलख-बिलखकर रो रहा था। मुंशी जी से न रहा गया। दौड़े, बच्चे को गोद में उठा लिया और स्त्री के सम्मुख अपना सिर झुक दिया। स्त्री ने उस दिन से अपने लड़के को न मारने की शपथ खा ली जो मनुष्य दूसरो के बालकों का ऐसा स्नेही हो, वह अपने बालक को कितना प्यार करेगा, सो अनुमान से बाहर है। जब से पुत्र पैदा हुआ, मुंशी जी संसार के सब कार्यो से अलग हो गये। कहीं वे लड़के को हिंडोल में झुला रहे हैं और प्रसन्न हो रहे हैं। कहीं वे उसे एक सुन्दर सैरगाड़ी में बैठाकर स्वयं खींच रहे हैं। एक क्षण के लिए भी उसे अपने पास से दूर नहीं करते थे। वे बच्चे के स्नेह में अपने को भूल गये थे।

सुवामा ने लड़के का नाम प्रतापचन्द्र रखा था। जैसा नाम था वैसे ही उसमें गुण भी थे। वह अत्यन्त प्रतिभाशाली और रुपवान था। जब वह बातें करता, सुनने वाले मुग्ध हो जाते। भव्य ललाट दमक-दमक करता था। अंग ऐसे पुष्ट कि द्विगुण डीलवाले लड़कों को भी वह कुछ न समझता था। इस अल्प आयु ही में उसका मुख-मण्डल ऐसा दिव्य और ज्ञानमय था कि यदि वह अचानक किसी अपरिचित मनुष्य के सामने आकर खड़ा हो जाता तो वह विस्मय से ताकने लगता था।

इस प्रकार हंसते-खेलते छ: वर्ष व्यतीत हो गये। आनंद के दिन पवन की भांति सन्न-से निकल जाते हैं और पता भी नहीं चलता। वे दुर्भाग्य के दिन और विपत्ति की रातें हैं, जो काटे नहीं कटतीं। प्रताप को पैदा हुए अभी कितने दिन हुए। बधाई की मनोहारिणी ध्वनि कानों मे गूंज रही थी छठी वर्षगांठ आ पहुंची। छठे वर्ष का अंत दुर्दिनों का श्रीगणेश था। मुंशी शालिग्राम का सांसारिक सम्बन्ध केवल दिखावटी था। वह निष्काम और निस्सम्बद्व जीवन व्यतीत करते थे। यद्यपि प्रकट वह सामान्य संसारी मनुष्यों की भांति संसार के क्लेशों से क्लेशित और सुखों से हर्षित दृष्टिगोचर होते थे, तथापि उनका मन सर्वथा उस महान और आनन्दपूर्व शांति का सुख-भोग करता था, जिस पर दु:ख के झोंकों और सुख की थपकियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

माघ का महीना था। प्रयाग में कुम्भ का मेला लगा हुआ था। रेलगाड़ियों में यात्री रुई की भांति भर-भरकर प्रयाग पहुंचाये जाते थे। अस्सी-अस्सी बरस के वृद्व-जिनके लिए वर्षो से उठना कठिन हो रहा था-लंगड़ाते, लाठियां टेकते मंजिल तै करके प्रयागराज को जा रहे थे। बड़े-बड़े साधु-महात्मा, जिनके दर्शनो की इच्छा लोगों को हिमालय की अंधेरी गुफाओं में खींच ले जाती थी, उस समय गंगाजी की पवित्र तरंगों से गले मिलने के लिए आये हुए थे। मुंशी शालिग्राम का भी मन ललचाया। सुवाम से बोले- कल स्नान है।

सुवामा - सारा मुहल्ला सूना हो गया। कोई मनुष्य नहीं दीखता।

मुंशी - तुम चलना स्वीकार नहीं करती, नहीं तो बड़ा आनंद होता। ऐसा मेला तुमने कभी नहीं देखा होगा।

सुवामा - ऐसे मेला से मेरा जी घबराता है।

मुंशी - मेरा जी तो नहीं मानता। जब से सुना कि स्वामी परमानन्द जी आये हैं तब से उनके दर्शन के लिए चित्त उद्विग्न हो रहा है।

सुवामा पहले तो उनके जाने पर सहमत न हुई, पर जब देखा कि यह रोके न रुकेंगे, तब विवश होकर मान गयी। उसी दिन मुंशी जी ग्यारह बजे रात को प्रयागराज चले गये। चलते समय उन्होंने प्रताप के मुख का चुम्बन किया और स्त्री को प्रेम से गले लगा लिया। सुवामा ने उस समय देखा कि उनके नेत्र सजल हैं। उसका कलेजा धक से हो गया। जैसे चैत्र मास में काली घटाओं को देखकर कृषक का हृदय कॉपने लगता है,

उसी भाती मुंशीजी ने नेत्रों का अश्रुपूर्ण देखकर सुवामा कम्पित हुई। अश्रु की वे बूंदें वैराग्य और त्याग का अगाघ समुद्र थीं। देखने में वे जैसे नन्हे जल के कण थीं, पर थीं वे कितनी गंभीर और विस्तीर्ण।

उधर मुंशी जी घर के बाहर निकले और इधर सुवामा ने एक ठंडी श्वास ली। किसी ने उसके हृदय में यह कहा कि अब तुझे अपने पति के दर्शन न होंगे। एक दिन बीता, दो दिन बीते, चौथा दिन आया और रात हो गयी, यहा तक कि पूरा सप्ताह बीत गया, पर मुंशी जी न आये। तब तो सुवामा को आकुलता होने लगी। तार दिये, आदमी दौड़ाये, पर कुछ पता न चला। दूसरा सप्ताह भी इसी प्रयत्न में समाप्त हो गया। मुंशी जी के लौटने की जो कुछ आशा शेष थी, वह सब मिट्टी में मिल गयी। मुंशी जी का अदृश्य होना उनके कुटुम्ब मात्र के लिए ही नहीं, वरन सारे नगर के लिए एक शोकपूर्ण घटना थी। हाटों में दुकानों पर, हथाइयो में अर्थात चारों और यही वार्तालाप होता था। जो सुनता, वही शोक करता- क्या धनी, क्या निर्धन। यह शौक सबको था। उसके कारण चारों और उत्साह फैला रहता था। अब एक उदासी छा गयी। जिन गलियों से वे बालकों का झुण्ड लेकर निकलते थे, वहां अब धूल उड़ रही थी। बच्चे बराबर उनके पास आने के लिए रोते और हठ करते थे। उन बेचारों को यह सुध कहां थी कि अब प्रमोद सभा भंग हो गयी है। उनकी माताएं ऑंचल से मुख ढांप-ढांपकर रोतीं मानों उनका सगा प्रेमी मर गया है।

वैसे तो मुंशी जी के गुप्त हो जाने का रोना सभी रोते थे। परन्तु सब से गाढ़े आंसू, उन आढतियों और महाजनों के नेत्रों से गिरते थे, जिनके लेने-देने का लेखा अभी नहीं हुआ था। उन्होंने दस-बारह दिन जैसे-जैसे करके काटे, पश्चात एक-एक करके लेखा के पत्र दिखाने लगे। किसी ब्रह्नभोज मे सौ रुपये का घी आया है और मूल्य नहीं दिया गया। कही से दो-सौ का मैदा आया हुआ है। बजाज का सहस्रों का लेखा है। मन्दिर बनवाते समय एक महाजन के बीस सहस्र ऋण लिया था, वह अभी वैसे ही पड़ा हुआ है लेखा की तो यह दशा थी। सामग्री की यह दशा कि एक उत्तम गृह और तत्सम्बन्धिनी सामग्रियों के अतिरिक्त कोई वस्त न थी, जिससे कोई बड़ी रकम खड़ी हो सके। भू-सम्पत्ति बेचने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय न था, जिससे धन प्राप्त करके ऋण चुकाया जाए।

बेचारी सुवामा सिर नीचा किए हुए चटाई पर बैठी थी और प्रतापचन्द्र अपने लकड़ी के घोड़े पर सवार आंगन में टख-टख कर रहा था कि पण्डित मोटेराम शास्त्री - जो कुल के पुरोहित थे - मुस्कराते हुए भीतर आये। उन्हें प्रसन्न देखकर निराश सुवामा चौंककर उठ बैठी कि शायद यह कोई शुभ समाचार लाये हैं। उनके लिए आसन बिछा दिया और आशा-भरी दृष्टि से देखने लगी। पण्डितजी आसान पर बैठे और सुंघनी सूंघते हुए बोले तुमने महाजनों का लेखा देखा?

सुवामा ने निराशापूर्ण शब्दों में कहा-हां, देखा तो।

मोटेराम-रकम बड़ी गहरी है। मुंशीजी ने आगा-पीछा कुछ न सोचा, अपने यहां कुछ हिसाब-किताब न रखा।

सुवामा-हां अब तो यह रकम गहरी है, नहीं तो इतने रुपये क्या, एक-एक भोज में उठ गये हैं।

मोटेराम-सब दिन समान नहीं बीतते।

सुवामा-अब तो जो ईश्वर करेगा सो होगा, क्या कर सकती हूं।

मोटेराम- हां ईश्वर की इच्छा तो मूल ही है, मगर तुमने भी कुछ सोचा है ?

सुवामा-हां गांव बेच डालूंगी।

मोटेराम-राम-राम। यह क्या कहती हो ? भूमि बिक गयी, तो फिर बात क्या रह जायेगी?

मोटेराम- भला, पृथ्वी हाथ से निकल गयी, तो तुम लोगों का जीवन निर्वाह कैसे होगा?

सुवामा-हमारा ईश्वर मालिक है। वही बेड़ा पार करेगा।

मोटेराम यह तो बड़े अफसोस की बात होगी कि ऐसे उपकारी पुरुष के लड़के-बाले दु:ख भोगें।

सुवामा-ईश्वर की यही इच्छा है, तो किसी का क्या बस?

मोटेराम-भला, मैं एक युक्ति बता दूं कि सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे।

सुवामा- हां, बतलाइए बड़ा उपकार होगा।

मोटेराम-पहले तो एक दरख्वास्त लिखवाकर कलक्टर साहिब को दे दो
कि मालगुलारी माफ की जाये। बाकी रुपये का बन्दोबस्त हमारे ऊपर छोड दो। हम जो चाहेंगे करेंगे, परन्तु इलाके पर आंच ना आने पायेगी।

सुवामा-कुछ प्रकट भी तो हो, आप इतने रुपये कहां से लायेंगी?

मोटेराम- तुम्हारे लिए रुपये की क्या कमी है? मुंशी जी के नाम पर बिना लिखा-पढ़ी के पचास हजार रुपये का बन्दोस्त हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है। सच तो यह है कि रुपया रखा हुआ है, तुम्हारे मुंह से 'हां' निकलने की देरी है।

सुवामा- नगर के भद्र-पुरुषों ने एकत्र किया होगा?

मोटेराम- हां, बात-की-बात में रुपया एकत्र हो गया। साहब का इशारा बहुत था।

सुवामा-कर-मुक्ति के लिए प्रार्थना-पत्र मुझसे न लिखवाया जाएगा और मैं अपने स्वामी के नाम ऋण ही लेना चाहती हूं। मैं सबका एक-एक पैसा अपने गांवों ही से चुका दूंगी।

यह कहकर सुवामा ने रुखाई से मुंह फेर लिया और उसके पीले तथा शोकान्वित बदन पर क्रोध-सा झलकने लगा। मोटेराम ने देखा कि बात बिगड़ना चाहती है, तो संभलकर बोले- अच्छा, जैसे तुम्हारी इच्छा। इसमें कोई जबरदस्ती नहीं है। मगर यदि हमने तुमको किसी प्रकार का दु:ख उठाते देखा, तो उस दिन प्रलय हो जायेगा। बस, इतना समझ लो।

सुवामा-तो आप क्या यह चाहते हैं कि मैं अपने पति के नाम पर दूसरों की कृतज्ञता का भार रखूं? मैं इसी घर में जल मरुंगी, अनशन करते-करते मर जाऊंगी, पर किसी की उपकृत न बनूंगी।

मोटेराम-छि:छि:। तुम्हारे ऊपर निहोरा कौन कर सकता है? कैसी बात मुख से निकालती है? ऋण लेने में कोई लाज नहीं है। कौन रईस है जिस पर लाख दो-लाख का ऋण न हो?

सुवामा- मुझे विश्वास नहीं होता कि इस ऋण में निहोरा है।

मोटेराम- सुवामा, तुम्हारी बुद्वि कहां गयी? भला, सब प्रकार के दु:ख उठा लोगी पर क्या तुम्हें इस बालक पर दया नहीं आती?

मोटेराम की यह चोट बहुत कड़ी लगी। सुवामा सजलनयना हो गई। उसने पुत्र की ओर करुणा-भरी दृष्टि से देखा। इस बच्चे के लिए मैंने कौन-कौन सी तपस्या नहीं की? क्या उसके भाग्य में दु:ख ही बदा है। जो अमोला जलवायु के प्रखर झोंकों से बचाता जाता था, जिस पर सूर्य की प्रचण्ड किरणें न पड़ने पाती थीं, जो स्नेह-सुधा से अभी सिंचित रहता था, क्या वह आज इस जलती हुई धूप और इस आग की लपट में मुरझायेगा? सुवामा कई मिनट तक इसी चिन्ता में बैठी रही। मोटेराम मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे कि अब सफलीभूत हुआ। इतने में सुवामा ने सिर उठाकर कहा-जिसके पिता ने लाखों को जिलाया-खिलाया, वह दूसरों का आश्रित नहीं बन सकता। यदि पिता का धर्म उसका सहायक होगा, तो स्वयं दस को खिलाकर खायेगा। लड़के को बुलाते हुए 'बेटा। तनिक यहां आओ। कल से तुम्हारी मिठाई, दूध, घी सब बन्द हो जायेंगे। रोओगे तो नहीं?' यह कहकर उसने बेटे को प्यार से बैठा लिया और उसके गुलाबी गालों का पसीना पोंछकर चुम्बन कर लिया।

प्रताप- क्या कहा? कल से मिठाई बन्द होगी? क्यों क्या हलवाई की दुकान पर मिठाई नहीं है?

सुवामा-मिठाई तो है, पर उसका रुपया कौन देगा?

प्रताप- हम बड़े होंगे, तो उसको बहुत-सा रुपया देंगे। चल, टख। टख। देख मां, कैसा तेज घोड़ा है।

सुवामा की आंखों में फिर जल भर आया। 'हा हन्त। इस सौन्दर्य और सुकुमारता की मूर्ति पर अभी से दरिद्रता की आपत्तियां आ जायेंगी। नहीं नहीं, मैं स्वयं सब भोग लूंगी। परन्तु अपने प्राण-प्यारे बच्चे के ऊपर आपत्ति की परछाहीं तक न आने दूंगी।' माता तो यह सोच रही थी और प्रताप अपने हठी और मुंहजोर घोड़े पर चढ़ने में पूर्ण शक्ति से लीन हो रहा था। बच्चे मन के राजा होते हैं।

अभिप्राय यह कि मोटेराम ने बहुत जाल फैलाया। विविध प्रकार का वाक्चातुर्य दिखलाया, परन्तु सुवामा ने एक बार 'नहीं करके 'हां' न की। उसकी इस आत्मरक्षा का समाचार जिसने सुना, धन्य-धन्य कहा। लोगों के मन में उसकी प्रतिष्टा दूनी हो गयी। उसने वही किया, जो ऐसे संतोषपूर्ण और उदार-हृदय मनुष्य की स्त्री को करना उचित था।

इसके पन्द्रहवें दिन इलाका नीलामा पर चढ़ा। पचास सहस्र रुपये प्राप्त हुए कुल ऋण चुका दिया गया। घर का अनावश्यक सामान बेच दिया गया। मकान में भी सुवामा ने भीतर से ऊंची-ऊंची दीवारें खिंचवा कर दो अलग-अलग खण्ड कर दिये। एक में आप रहने लगी और दूसरा भाड़े पर उठा दिया।

नये पड़ोसियों से मेल-जोल

मुंशी संजीवनलाल, जिन्होंने सुवाम का घर भाड़े पर लिया था, बड़े विचारशील मनुष्य थे। पहले एक प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त थे, किन्तु अपनी स्वतंत्र इच्छा के कारण अफसरों को प्रसन्न न रख सके। यहां तक कि उनकी रुष्टता से विवश होकर इस्तीफा दे दिया। नौकर के समय में कुछ पूंजी एकत्र कर ली थी, इसलिए नौकरी छोड़ते ही वे ठेकेदारी की ओर प्रवृत्त हुए और उन्होंने परिश्रम द्वारा अल्पकाल में ही अच्छी सम्पत्ति बना ली। इस समय उनकी आय चार-पांच सौ मासिक से कम न थी। उन्होंने कुछ ऐसी अनुभवशालिनी बुद्‌वि पायी थी कि जिस कार्य में हाथ डालते, उसमें लाभ छोड़ हानि न होती थी।

मुंशी संजीवनलाल का कुटुम्ब बड़ा न था। सन्तानें तो ईश्वर ने कई दीं, पर इस समय माता-पिता के नयनों की पुतली केवल एक पुत्री ही थी। उसका नाम वृजरानी था। वही दम्पति का जीवनाश्राम थी।

प्रतापचन्द्र और वृजरानी में पहले ही दिन से मैत्री आरंभ हा गयी। आधे घंटे में दोनों चिड़ियों की भांति चहकने लगे। विरजन ने अपनी गुड़िया, खिलौने और बाजे दिखाये, प्रतापचन्द्र ने अपनी किताबें, लेखनी और चित्र दिखाये। विरजन की माता सुशीला ने प्रतापचन्द्र को गोद में ले लिया और प्यार किया। उस दिन से वह नित्य संध्या को आता और दोनों साथ-साथ खेलते। ऐसा प्रतीत होता था कि दोनों भाई-बहिन है। सुशीला दोनों बालकों को गोद में बैठाती और प्यार करती। घंटों टकटकी लगाये दोनों बच्चों को देखा करती, विरजन भी कभी-कभी प्रताप के घर जाती। विपत्ति की मारी सुवामा उसे देखकर अपना दु:ख भूल जाती, छाती से लगा लेती और उसकी भोली-भाली बातें सुनकर अपना मन बहलाती।

एक दिन मुंशी संजीवनलाल बाहर से आये तो क्या देखते हैं कि प्रताप और विरजन दोनों दफ्तर में कुर्सियों पर बैठे हैं। प्रताप कोई पुस्तक पढ़ रहा है और विरजन ध्यान लगाये सुन रही है। दोनों ने ज्यों ही मुंशीजी को देखा उठ खड़े हुए। विरजन तो दौड़कर पिता की गोद में जा बैठी और प्रताप सिर नीचा करके एक ओर खड़ा हो गया। कैसा गुणवान बालक था। आयु अभी आठ वर्ष से अधिक न थी, परन्तु लक्षण से भावी प्रतिभा झलक रही थी। दिव्य मुखमण्डल, पतले-पतले लाल-लाल अधर, तीव्र चितवन, काले-काले भ्रमर के समान बाल उस पर स्वच्छ कपड़े मुंशी जी ने कहा- यहां आओ, प्रताप।

प्रताप धीरे-धीरे कुछ हिचकिचाता-सकुचाता समीप आया। मुंशी जी ने पितृवत् प्रेम से उसे गोद में बैठा लिया और पूछा- तुम अभी कौन-सी किताब पढ़ रहे थे।

प्रताप बोलने ही को था कि विरजन बोल उठी- बाबा। अच्छी-अच्छी कहानियां थीं। क्यों बाबा। क्या पहले चिड़ियां भी हमारी भांति बोला करती थीं।

मुंशी जी मुस्कराकर बोले-हां। वे खूब बोलती थीं।

अभी उनके मुंह से पूरी बात भी न निकलने पायी थी कि प्रताप जिसका संकोच अब गायब हो चला था, बोला- नहीं विरजन तुम्हें भुलाते हैं ये कहानिया बनायी हुई हैं।

मुंशी जी इस निर्भीकतापूर्ण खण्डन पर खूब हंसे।

अब तो प्रताप तोते की भांति चहकने लगा-स्कूल इतना बड़ा है कि नगर भर के लोग उसमें बैठ जायें। दीवारें इतनी ऊंची हैं, जैसे ताड़। बलदेव प्रसाद ने जो गेंद में हिट लगायी, तो वह आकाश में चला गया। बड़े मास्टर साहब की मेज पर हरी-हरी बनात बिछी हुई है। उस पर फूलों से भरे गिलास रखे हैं। गंगाजी का पानी नीला है। ऐसे जोर से बहता है कि बीच में पहाड़ भी हो तो बह जाये। वहां एक साधु बाबा है। रेल दौड़ती है सन-सन। उसका इंजिन बोलता है झक-झक। इंजिन में भाप होती है, उसी के जोर से गाड़ी चलती है। गाड़ी के साथ पेड़ भी दौड़ते दिखायी देते हैं।

इस भांति कितनी ही बातें प्रताप ने अपनी भोली-भाली बोली में कहीं विरजन चित्र की भांति चुपचाप बैठी सुन रही थी। रेल पर वह भी दो-तीन बार सवार हुई थी। परन्तु उसे आज तक यह ज्ञात न था कि उसे किसने बनाया और वह क्यों कर चलती है। दो बार उसने गुरुजी से यह प्रश्न किया भी था परन्तु उन्होंने यही कह कर टाल दिया कि बच्चा, ईश्वर की महिमा कोई बड़ा भारी और बलवान घोड़ा है, जो इतनी गाडियों को सन-सन खींचे।
लिए जाता है। जब प्रताप चुप हुआ तो विरजन ने पिता के गले हाथ डालकर कहा-बाबा। हम भी प्रताप की किताब पढ़ेंगे।

मुंशी-बेटी, तुम तो संस्कृत पढ़ती हो, यह तो भाषा है।

विरजन-तो मैं भी भाषा ही पढ़ूंगी। इसमें कैसी अच्छी-अच्छी कहानियां हैं। मेरी किताब में तो भी कहानी नहीं। क्यों बाबा, पढ़ना किसे कहते है ?

मुंशी जी बंगले झांकने लगे। उन्होंने आज तक आप ही कभी ध्यान नही दिया था कि पढ़ना क्या वस्तु है। अभी वे माथ ही खुजला रहे थे कि प्रताप बोल उठा- मुझे पढ़ते देखा, उसी को पढ़ना कहते हैं।

विरजन- क्या मैं नहीं पढ़ती? मेरे पढ़ने को पढ़ना नहीं कहतें?

विरजन सिद्वान्त कौमुदी पढ़ रही थी, प्रताप ने कहा-तुम तोते की भांति रटती हो।

एकता का सम्बन्ध पुष्ट होता है

कुछ काल से सुवामा ने द्रव्याभाव के कारण महाराजिन, कहार और दो महरियों को जवाब दे दिया था क्योंकि अब न तो उसकी कोई आवश्यकता थी और न उनका व्यय ही संभाले संभलता था। केवल एक बुढ़िया महरी शेष रह गयी थी। ऊपर का काम-काज वह करती रसोई सुवामा स्वयं बना लेगी। परन्तु उस बेचारी को ऐसे कठिन परिश्रम का अभ्यास तो कभी था नहीं, थोड़े ही दिनों में उसे थकान के कारण रात को कुछ ज्वर रहने लगा। धीरे-धीरे यह गति हुई कि जब देखें ज्वर विद्यमान है। शरीर भुना जाता है, न खाने की इच्छा है न पीने की। किसी कार्य में मन नहीं लगता। पर यह है कि सदैव नियम के अनुसार काम किये जाती है। जब तक प्रताप घर रहता है तब तक वह मुखाकृति को तनिक भी मलिन नहीं होने देती परन्तु ज्यों ही वह स्कूल चला जाता है, त्यों ही वह चद्दर ओढ़कर पड़ी रहती है और दिन-भर पड़े-पड़े कराहा करती है।

प्रताप बुद्विमान लड़का था। माता की दशा प्रतिदिन बिगड़ती हुई देखकर ताड गया कि यह बीमार है। एक दिन स्कूल से लौटा तो सीधा अपने घर गया। बेटे को देखते ही सुवामा ने उठ बैठने का प्रयत्न किया पर निर्बलता के कारण मूर्छा आ गयी और हाथ-पांव अकड़ गये। प्रताप ने उसं संभाला और उसकी और भर्त्सना की दृष्टि से देखकर कहा-अम्मा तुम आजकल बीमार हो क्या? इतनी दुबली क्यों हो गयी हो? देखो, तुम्हारा शरीर कितना गर्म है। हाथ नहीं रखा जाता।

सुवाम ने हंसने का उद्योग किया। अपनी बीमारी का परिचय देकर बेटे को कैसे कष्ट दे? यह नि:स्पृह और नि:स्वार्थ प्रेम की पराकाष्टा है। स्वर को हलका करके बोली नहीं बेटा बीमार तो नहीं हूं। आज कुछ ज्वर हो आया था, संध्या तक चंगी हो जाऊंगी। आलमारी में हलुवा रखा हुआ है निकाल लो। नहीं, तुम आओ बैठो, मैं ही निकाल देती हूं।

प्रताप-माता, तुम मुझ से बहाना करती हो। तुम अवश्य बीमार हो। एक दिन में कोई इतना दुर्बल हो जाता है?

सुवाता- (हंसकर) क्या तुम्हारे देखने में मैं दुबली हो गयी हूं।

प्रताप- मैं डॉक्टर साहब के पास जाता हूं।

सुवामा- (प्रताप का हाथ पकड़कर) तुम क्या जानों कि वे कहां रहते हैं?

ताप- पूछते-पूछते चला जाऊंगा।

सुवामा कुछ और कहना चाहती थी कि उसे फिर चक्कर आ गया। उसकी आंखें पथरा गयीं। प्रताप उसकी यह दशा देखते ही डर गया। उससे और कुछ तो न हो सका, वह दौड़कर विरजन के द्वार पर आया और खड़ा होकर रोने लगा।

प्रतिदिन वह इस समय तक विरजन के घर पहुंच जाता था। आज जो देर हुई तो वह अकुलायी हुई इधर-उधर देख रही थी। अकस्मात द्वार पर झांकने आयी, तो प्रताप को दोनों हाथों से मुख ढांके हुए देखा। पहले तो समझी कि इसने हंसी से मुख छिपा रखा है। जब उसने हाथ हटाये तो आंसू दीख पड़े। चौंककर बोली- लल्लू क्यों रोते हो? बता दो।

प्रताप ने कुछ उत्तर न दिया, वरन् और सिसकने लगा।

विरजन बोली- न बताओगे! क्या चाची ने कुछ कहा ? जाओ, तुम चुप नही होते।

प्रताप ने कहा- नहीं, विरजन, मां बहुत बीमार है।

यह सुनते ही वृजरानी दौड़ी और एक सांस में सुवामा के सिरहाने जा खड़ी हुई। देखा तो वह सुन्न पड़ी हुई है, आंखे मुंद हुई हैं और लम्बी सांसे ले रही हैं। उनका हाथ थाम कर विरजन झिंझोड़ने लगी- चाची, कैसी जी है, आंखें खोलों, कैसा जी है?

परन्तु चाची ने आंखें न खोलीं। तब वह ताक पर से तेल उतारकर सुवाम के सिर पर धीरे-धीरे मलने लगी। उस बेचारी को सिर में महीनों से तेल डालने का अवसर न मिला था, ठण्डक पहुंची तो आंखें खुल गयीं।

विरजन- चाची, कैसा जी है? कहीं दर्द तो नहीं है?

सुवामा- नहीं, बेटी दर्द कहीं नहीं है। अब मैं बिल्कुल अच्छी हूं। भैया कहां हैं?

विरजन-वह तो मेर घर है, बहुत रो रहे हैं।

सुवामा- तुम जाओ, उसके साथ खेलों, अब मैं बिल्कुल अच्छी हूं।

अभी ये बातें हो रही थीं कि सुशीला का भी शुभागमन हुआ। उसे सुवाम से मिलने की तो बहुत दिनों से उत्कष्ठा थी, परन्तु कोई अवसर न मिलता था। इस समय वह सात्वना देने के बहाने आ पहुंची।विरजन ने अपन माता को देखा तो उछल पड़ी और ताली बजा-बजाकर कहने लगी- मां आयी, मां आयी।

दोनों स्त्रीयों में शिष्टाचार की बातें होने लगीं। बातों-बातों में दीपक जल उठा। किसी को ध्यान भी न हुआकि प्रताप कहां है। थोड़ देर तक तो वह द्वार पर खड़ा रोता रहा,फिर झटपट आंखें पोंछकर डॉक्टर किचलू के घर की ओर लपकता हुआ चला। डॉक्टर साहब मुंशी शालिग्राम के मित्रों में से थे। और जब कभी का पड़ता, तो वे ही बुलाये जाते थे। प्रताप को केवल इतना विदित था कि वे बरना नदी के किनारे लाल बंगल में रहते हैं। उसे अब तक अपने मुहल्ले से बाहर निकलने का कभी अवसर न पड़ा था। परन्तु उस समय मातृ भक्ती के वेग से उद्विग्न होने के कारण उसे इन रुकावटों का कुछ भी ध्यान न हुआ। घर से निकलकर बाजार में आया और एक इक्केवान से बोला-लाल बंगल चलोगे? लाल बंगला प्रसाद स्थान था। इक्कावान तैयार हो गया। आठ बजते-बजते डॉक्टर साहब की फिटन सुवामा के द्वार पर आ पहुंची। यहां इस समय चारों ओर उसकी खोज हो रही थी कि अचानक वह सवेग पैर बढ़ाता हुआ भीतर गया और बोला-पर्दा करो। डॉक्टर साहब आते हैं।

सुवामा और सुशीला दोनों चौंक पड़ी। समझ गयीं, यह डॉक्टर साहब को बुलाने गया था। सुवामा ने प्रेमाधिक्य से उसे गोदी में बैठा लिया डर नहीं लगा? हमको बताया भी नहीं यों ही चले गये? तुम खो जाते तो मैं क्या करती? ऐसा लाल कहां पाती? यह कहकर उसने बेटे को बार-बार चूम लिया। प्रताप इतना प्रसन्न था, मानों परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। थोड़ी देर में पर्दा हुआ और डॉक्टर साहब आये। उन्होंने सुवामा की नाड़ी देखी और सांत्वना दी। वे प्रताप को गोद में बैठाकर बातें करते रहे। औषधियॉ साथ ले आये थे। उसे पिलाने की सम्मति देकर नौ बजे बंगले को लौट गये। परन्तु जीर्णज्वर था, अतएव पूरे मास-भर सुवामा को कड़वी-कड़वी औषधियां खानी पड़ी। डॉक्टर साहब दोनों वक्त आते और ऐसी कृपा और ध्यान रखते, मानो सुवामा उनकी बहिन है। एक बार सुवाम ने डरते-डरते फीस के रुपये एक पात्र में रखकर सामने रखे। पर डॉक्टर साहब ने उन्हें हाथ तक न लगाया। केवल इतना कहा-इन्हें मेरी ओर से प्रताप को दे दीजिएगा, वह पैदल स्कूल जाता है, पैरगाड़ी मोल ले लेगा।

विरजन और उनकी माता दोनों सुवामा की शुश्रूषा के लिए उपस्थित रहतीं। माता चाहे विलम्ब भी कर जाए, परन्तु विरजन वहां से एक क्षण के लिए भी न टलती। दवा पिलाती, पान देती जब सुवामा का जी अच्छा होता तो वह भोली-भोली बातों द्वारा उसका मन बहलाती। खेलना-कूदना सब छूट गया। जब सुवाम बहुत हठ करती तो प्रताप के संग बाग में खेलने चली जाती। दीपक जलते ही फिर आ बैठती और जब तक निद्रा के मारे झुक-झुक न पड़ती, वहां से उठने का नाम न लेती वरन प्राय: वहीं सो जाती, रात को नौकर गोद में उठाकर घर ले जाता। न जाने उसे कौन-सी धुन सवार हो गयी थी।

एक दिन वृजरानी सुवामा के सिरहाने बैठी पंखा झल रही थी। न जाने किस ध्यान में मग्न थी। आंखें दीवार की ओर लगी हुई थीं। और जिस प्रकार वृक्षों पर कौमुदी लहराती है, उसी भांति भीनी-भीनी मुस्कान उसके अधरों पर लहरा रही थी। उसे कुछ भी ध्यान न था कि चाची मेरी और देख रही है। अचानक उसके हाथ से पंखा छूट गया। ज्यों ही वह उसको उठाने के लिए झुकी कि सुवामा ने उसे गले लगा लिया। और पुचकार कर पूछा-विरजन, सत्य कहो, तुम अभी क्या सोच रही थी?

विरजन ने माथा झुका लिया और कुछ लज्जित होकर कहा- कुछ नहीं, तुमको न बतलाऊंगी।

सूवामा- मेरी अच्छी विरजन। बता तो क्या सोचती थी?

विरजन-(लजाते हुए) सोचती थी कि.....जाओ हंसो मत......न बतलाऊंगी।

सुवामा-अच्छा ले, न हसूंगी, बताओ। ले यही तो अब अच्छा नही लगता, फिर मैं आंखें मूंद लूंगी।

विरजन-किस से कहोगी तो नहीं?

सुवामा- नहीं, किसी से न कहूंगी।

विरजन-सोचती थी कि जब प्रताप से मेरा विवाह हो जायेगा, तब बड़े आनन्द से रहूंगी।

सुवामा ने उसे छाती से लगा लिया और कहा- बेटी, वह तो तेरा भाई हे।

विरजन- हां भाई है। मैं जान गई। तुम मुझे बहू न बनाओगी।

सुवामा- आज लल्लू को आने दो, उससे पूछूँ देखूं क्या कहता है?

विरजन- नहीं, नहीं, उनसे न कहना मैं तुम्हारे पैरों पडूं।
सुवामा- मैं तो कह दूंगी।
विरजन- तुम्हे हमारी कसम, उनसे न कहना।

शिष्ट-जीवन के दृश्य

दिन जाते देर नहीं लगती। दो वर्ष व्यतीत हो गये। पण्डित मोटेराम नित्य प्रात: काल आत और सिद्वान्त-कोमुदी पढ़ाते, परन्त अब उनका आना केवल नियम पालने के हेतु ही था, क्योकि इस पुस्तक के पढ़न में अब विरजन का जी न लगता था। एक दिन मुंशी जी इंजीनियर के दफतर से आये। कमरे में बैठे थे। नौकर जूत का फीता खोल रहा था कि रधिया महर मुस्कराती हुई घर में से निकली और उनके हाथ में मुह छाप लगा हुआ लिफाफा रख, मुंह फेर हंसने लगी। सिरना पर लिखा हुआ था-श्रीमान बाबा साह की सेवा में प्राप्त हो।

मुंशी-अरे, तू किसका लिफाफा ले आयी ? यह मेर नहीं है।

महरी- सरकार ही का तो है, खोले तो आप।

मुंशी-किसने हुई बोली- आप खालेंगे तो पता चल जायेगा।

मुंशी जी ने विस्मित होकर लिफाफा खोला। उसमें से जो पत्र-निकला उसमें यह लिखा हुआ था-

बाबा को विरजन क प्रमाण और पालागन पहुंचे। यहां आपकी कृपा से कुशल-मंगल है आपका कुशल श्री विश्‍वनाथजी से सदा मनाया करती हूं। मैंने प्रताप से भाषा सीख ली। वे स्कूल से आकर संध्या को मुझे नित्य पढ़ाते हैं। अब आप हमारे लिए अच्छी-अच्छी पुस्तकें लाइए, क्योंकि पढ़ना ही जी का सुख है और विद्या अमूल्य वस्तु है। वेद-पुराण में इसका महात्मय लिखा है। मनुषय को चाहिए कि विद्या-धन तन-मन से एकत्र करे। विद्या से सब दुख हो जाते हैं। मैंने कल बैताल-पचीस की कहानी चाची को सुनायी थी। उन्होंने मुझे एक सुन्दर गुड़िया पुरस्कार में दी है। बहुत अच्छी है। मैं उसका विवाह करुंगी, तब आपसे रुपये लूंगी। मैं अब पण्डितजी से न पढ़ूंगी। मां नहीं जानती कि मैं भाषा पढ़ती हूं।

आपकी प्यारी

विरजन

प्रशस्ति देखते ही मुंशी जी के अन्त: करण में गुदगुद होने लगी।फिर तो उन्होंने एक ही सांस में भारी चिट्ठी पढ़ डाली। मारे आनन्द के हंसते हुए नंगे-पांव भीतर दौड़े। प्रताप को गोद में उठा लिया और फिर दोनों बच्चों का हाथ पकड़े हुए सुशीला के पास गये। उसे चिट्ठी दिखाकर कहा-बूझो किसी चिट्ठी है?

सुशीला-लाओ, हाथ में दो, देखूं।

मुंशी जी-नहीं, वहीं से बैठी-बैठी बताओ जल्दी।

सुशीला-बूझ् जाऊं तो क्या दोगे?

मुंशी जी-पचास रुपये, दूध के धोये हुए।

सुशीला- पहिले रुपये निकालकर रख दो, नहीं तो मुकर जाओगे।

मुंशी जी- मुकरने वाले को कुछ कहता हूं, अभी रुपये लो। ऐसा कोई टुटपुँजिया समझ लिया है ? यह कहकर दस रुपये का एक नोट जेसे निकालकर दिखाया।

सुशीला- कितने का नोट है?

मुंशीजी- पचास रुपये का, हाथ से लेकर देख लो।

सुशीला- ले लूंगी, कहे देती हूं।

मुंशीजी- हां-हां, ले लेना, पहले बता तो सही।

सुशीला- लल्लू का है लाइये नोट, अब मैं न मानूंगी। यह कहकर उठी और मुंशीजी का हाथ थाम लिया।

मुंशीजी- ऐसा क्या डकैती है? नोट छीने लेती हो।

सुशीला- वचन नहीं दिया था? अभी से विचलने लगे।

मुंशीजी- तुमने बूझा भी, सर्वथा भ्रम में पड़ गयीं।

सुशीला- चलो-चलो, बहाना करते हो, नोट हड़पन की इच्छा है। क्यों लल्लू, तुम्हारी ही चिट्ठी है न?

प्रताप नीची दृष्टि से मुंशीजी की ओर देखकर धीरे-से बोला-मैंने कहां लिखी?

मुंशीजी- लजाओ, लजाओ।

सुशीला- वह झूठ बोलता है। उसी की चिट्ठी है, तुम लोग गँठकर आये हो।

प्रताप-मेरी चिट्ठी नहीं है, सच। विरजन ने लिखी है।

सुशीला चकित होकर बोली- विजरन की? फिर उसने दौड़कर पति के हाथ से चिट्ठी छीन ली और भौंचक्की होकर उसे देखने लगी, परन्तु अब भी विश्वास आया।विरजन से पूछा- क्यें बेटी, यह तुम्हारी लिखी है?

विरजन ने सिर झुकाकर कहा-हां।

यह सुनते ही माता ने उसे कष्ठ से लगा लिया।

अब आज से विरजन की यह दशा हो गयी कि जब देखिए लेखनी लिए हुए पन्ने काले कर रही है। घर के धन्धों से तो उस पहले ही कुछ प्रयोज न था, लिखने का आना सोने में सोहागा हो गया। माता उसकी तल्लीनता देख-देखकर प्रमुदित होती पिता हर्ष से फूला न समाता, नित्य नवीन पुस्तकें लाता कि विरजन सयानी होगी, तो पढ़ेगी। यदि कभी वह अपने पांव धो लेती, या भोजन करके अपने ही हाथ धोने लगती तो माता महरियों पर बहुत कुद्र होती-आंखें फूट गयी है। चर्बी छा गई है। वह अपने हाथ से पानी उंड़ेल रही है और तुम खड़ी मुंह ताकती हो।

इसी प्रकार काल बीतता चला गया, विरजन का बारहवां वर्ष पूर्ण हुआ, परन्तु अभी तक उसे चावल उबालना तक न आता था। चूल्हे के सामने बैठन का कभी अवसर ही न आया। सुवामा ने एक दिन उसकी माता ने कहा- बहिन विरजन सयानी हुई, क्या कुछ गुन-ढंग सिखाओगी।

सुशीला-क्या कहूं, जी तो चाहता है कि लग्गा लगाऊं परन्तु कुछ सोचकर रुक जाती हूं।

सुवामा-क्या सोचकर रुक जाती हो ?

सुशीला-कुछ नहीं आलस आ जाता है।

सुवामा-तो यह काम मुझे सौंप दो। भोजन बनाना स्त्रियों के लिए सबसे आवश्यक बात है।

सुशीला-अभी चूल्हे के सामन उससे बैठा न जायेगा।

सुवामा-काम करने से ही आता है।

सुशीला-(झेंपते हुए) फूल-से गाल कुम्हला जायेंगे।

सुवामा- (हंसकर) बिना फूल के मुरझाये कहीं फल लगते हैं?

दूसरे दिन से विरजन भोजन बनाने लगी। पहले दस-पांच दिन उसे चूल्हे के सामने बैठने में बड़ा कष्ट हुआ। आग न जलती, फूंकने लगती तो नेत्रों से जल बहता। वे बूटी की भांति लाल हो जाते। चिनगारियों से कई रेशमी साड़ियां सत्यानाथ हो गयीं। हाथों में छाले पड़ गये। परन्तु क्रमश: सारे क्लेश दूर हो गये। सुवामा ऐसी सुशीला स्त्री थी कि कभी रुष्ट न होती, प्रतिदिन उसे पुचकारकर काम में लगाय रहती।

अभी विरजन को भोजन बनाते दो मास से अधिक न हुए होंगे कि एक दिन उसने प्रताप से कहा- लल्लू,मुझे भोजन बनाना आ गया।

प्रताप-सच।

विरजन-कल चाची ने मेर बनाया भोजन किया था। बहुत प्रसन्न।

प्रताप-तो भई, एक दिन मुझे भी नेवता दो।

विरजन ने प्रसन्न होकर कहा-अच्छा,कल।

दूसरे दिन नौ बजे विरजन ने प्रताप को भोजन करने के लिए बुलाया। उसने जाकर देखा तो चौका लगा हुआ है। नवीन मिट्टी की मीटी-मीठी सुगन्ध आ रही है। आसन स्वच्छता से बिछा हुआ है। एक थाली में चावल और चपातियाँ हैं। दाल और तरकारियाँ अलग-अलग कटोरियों में रखी हुई हैं। लोटा और गिलास पानी से भरे हुए रखे हैं। यह स्वच्छता और ढंग देखकर प्रताप सीधा मुंशी संजीवनलाल के पास गया और उन्हें लाकर चौके के सामने खड़ा कर दिया। मुंशीजी खुशी से उछल पड़े। चट कपड़े उतार, हाथ-पैर धो प्रताप के साथ चौके में जा बैठे। बेचारी विरजन क्या जानती थी कि महाशय भी बिना बुलाये पाहुने हो जायेंगे। उसने केवल प्रताप के लिए भोजन बनाया था। वह उस दिन बहुत लजायी और दबी आँखों से माता की ओर देखने लगी। सुशीला ताड़ गयी। मुस्कराकर मुंशीजी से बोली-तुम्हारे लिए अलग भोजन बना है। लड़कों के बीच में क्या जाके कूद पड़े?

वृजरानी ने लजाते हुए दो थालियों में थोड़ा-थोड़ा भोजन परोसा।

मुंशीजी-विरजन ने चपातियाँ अच्छी बनायी हैं। नर्म, श्वेत और मीठी।

प्रताप-मैंने ऐसी चपातियाँ कभी नहीं खायीं। सालन बहुत स्वादिष्ट है।

'विरजन ! चाचा को शोरवेदार आलू दो,' यह कहकर प्रताप हँने लगा। विरजन ने लजाकर सिर नीचे कर लिया। पतीली शुष्क हो रही थी।

सुशीली-(पति से) अब उठोगे भी, सारी रसोई चट कर गये, तो भी अड़े बैठे हो!

मुंशीजी-क्या तुम्हारी राल टपक रही है?

निदान दोनों रसोई की इतिश्री करके उठे। मुंशीजी ने उसी समय एक मोहर निकालकर विरजन को पुरस्कार में दी।

डिप्टी श्यामाचरण

डिप्टी श्यामाचरण की धाक सारे नगर में छायी हई थी। नगर में कोई ऐसा हाकिम न था जिसकी लोग इतनी प्रतिष्ठा करते हों। इसका कारण कुछ तो यह था कि वे स्वभाव के मिलनसार और सहनशील थे और कुछ यह कि रिश्वत से उन्हें बडी घृणा थी। न्याय-विचार ऐसी सूक्ष्मता से करते थे कि दस-बाहर वर्ष के भीतर कदाचित उनके दो-ही चार फैसलों की अपील हुई होगी। अंग्रेजी का एक अक्षर न जानते थे, परन्तु बैरस्टिरों और वकीलों को भी उनकी नैतिक पहुंच और सूक्ष्मदर्शिता पर आश्चर्य होता था। स्वभाव में स्वाधीनता कूट-कूट भरी थी। घर और न्यायालय के अतिरिक्त किसी ने उन्हें और कहीं आते-जाते नहीं देखा। मुशीं शालिग्राम जब तक जीवित थे, या यों कहिए कि वर्तमान थे, तब तक कभी-कभी चितविनोदार्थ उनके यह चले जाते थे। जब वे लप्त हो गये, डिप्टी साहब ने घर छोडकर हिलने की शपथ कर ली। कई वर्ष हुए एक बार कलक्टर साहब को सलाम करने गये थे खानसामा ने कहा- साहब स्नान कर रहे हैं दो घंटे तक बरामदे में एक मोढे पर बैठे प्रतीक्षा करते रहे। तदनन्तर साहब बहादुर हाथ में एक टेनिस बैट लिये हुए निकले और बोले-बाबू साहब, हमको खेद है कि आपको हामारी बाट देखनी पडी। मुझे आज अवकाश नहीं है। क्लब-घर जाना है। आप फिर कभी आवें।

यह सुनकर उन्होंने साहब बहादुर को सलाम किया और इतनी-सी बात पर फिर किसी अंग्रेजी की भेंट को न गये। वंश, प्रतिष्ठा और आत्म-गौरव पर उन्हें बडा अभिमान था। वे बडे ही रसिक पुरूष थे। उनकी बातें हास्य से पूर्ण होती थीं। संध्या के समय जब वे कतिपय विशिष्ट मित्रों के साथ द्वारांगण में बैठते, तो उनके उच्च हास्य की गूंजती हुई प्रतिध्वनि वाटिका से सुनायी देती थी। नौकरो-चाकरों से वे बहुत सरल व्यवहार रखते थे, यहां तक कि उनके संग अलाव के बेठने में भी उनको कुछ संकोच न था। परन्तु उनकी धाक ऐसी छाई हुई थी कि उनकी इस सजनता से किसी को अनूचित लाभ उठाने का साहस न होता था। चाल-ढाल सामान्य रखते थे। कोअ-पतलून से उन्हें घृणा थी। बटनदार ऊंची अचकयन, उस पर एक रेशमी काम की अबा, काला श्मिला, ढीला पाजामा और दिल्लीवाला नोकदार जूता उनकी मुख्य पोशाक थी। उनके दुहरे शरीर, गुलाबी चेहरे और मध्यम डील पर जितनी यह पोशाक शोभा देती थी, उनकी कोट-पतलूनसे सम्भव न थी। यद्यपि उनकी धाक सारे नगर-भर में फैली हई थी, तथापि अपने घर के मण्डलान्तगर्त उनकी एक न चलती थी। यहां उनकी सुयोग्य अद्वांगिनी का साम्राज्य था। वे अपने अधिकृत प्रान्त में स्वच्छन्दतापूर्वक शासन करती थी। कई वर्ष व्यतीत हुए डिप्टी साहब ने उनकी इच्छा के विरूद्व एक महराजिन नौकर रख ली थी। महराजिन कुछ रंगीली थी। प्रेमवती अपने पति की इस अनुचित कृति पर ऐसी रूष्ट हुई कि कई सप्ताह तक कोपभवन में बैठी रही। निदान विवश होकर साहब ने महराजिन को विदा कर दिया। तब से उन्हें फिर कभी गृहस्थी के व्यवहार में हस्तक्षेप करने का साहस न हुआ।

मुंशीजी के दो बेटे और एक बेटी थी। बडा लडका साधाचरण गत वर्ष डिग्री प्राप्त करके इस समय रूडकी कालेज में पढाता था। उसका विवाह फतहपुयर-सीकरी के एक रईस के यहां हआ था। मंझली लडकी का नाम सेवती था। उसका भी विवाह प्रयाग के एक धनी घराने में हुआ था। छोटा लडका कमलाचरण अभी तक अविवाहित था। प्रेमवती ने बचपन से ही लाड-प्यार करके उसे ऐसा बिगाड दिया था कि उसका मन पढने-लिखने में तनिक भी नहीं लगता था। पन्द्रह वर्ष का हो चुका था, पर अभी तक सीधा-सा पत्र भी न लिख सकता था। इसलिए वहां से भी वह उठा लिया गया। तब एक मास्टर साहब नियुक्त हुए और तीन महीने रहे परन्तु इतने दिनों में कमलाचरण ने कठिनता से तीन पाठ पढे होंगें। निदान मास्टर साहब भी विदा हो गये। तब डिप्टी साहब ने स्वयं पढाना निश्चित किया। परन्तु एक ही सप्ताह में उन्हें कई बार कमला का सिर हिलाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। साक्षियों के बयान और वकीलों की सूक्ष्म आलोचनाओं के तत्व को समझना कठिन नहीं है, जितना किसी निरूत्साही लडके के यमन में शिक्षा-रूचित उत्पन्न करना है।

प्रेमवती ने इस मारधाड पर ऐसा उत्पात मचाया कि अन्त में डिप्टी साहब ने भी झल्लाकर पढाना छोड दिया। कमला कुछ ऐसा रूपवान, सुकुमार और मधुरभाषी था कि माता उसे सब लडकों से अधिक चाहती थी। इस अनुचित लाड-प्यार ने उसे पंतंग, कबूतरबाजी और इसी प्रकार के अन्य कुव्यसनों का प्रेमी बना दिया था। सबरे हआ और कबूतर उडाये जाने लगे, बटेरों के जोड छूटने लगे, संध्या हई और पंतग के लम्बे-लम्बे पेच होने लगे। कुछ दिनों में जुए का भी चस्का पड चला था। दपर्ण, कंघी और इत्र-तेल में तो मानों उसके प्राण ही बसते थे।

प्रेमवती एक दिन सुवामा से मिलने गयी हुई थी। वहां उसने वृजरानी को देखा और उसी दिन से उसका जी ललचाया हआ था कि वह बहू बनकर मेरे घर में आये, तो घर का भाग्य जाग उठे। उसने सुशीला पर अपना यह भाव प्रगट किया। विरजन का तेरहॅवा आरम्भ हो चुका था। पति-पत्नी में विवाह के सम्बन्ध में बातचीत हो रही थी। प्रेमवती की इच्छा पाकर दोनों फूले न समाये। एक तो परिचित परिवार, दूसरे कलीन लडका, बूद्विमान और शिक्षित, पैतृक सम्पति अधिक। यदि इनमें नाता हो जाए तो क्या पूछना। चटपट रीति के अनुसार संदेश कहला भेजा।

इस प्रकार संयोग ने आज उस विषैले वृक्ष का बीज बोया, जिसने तीन ही वर्ष में कुल का सर्वनाश कर दिया। भविष्य हमारी दृष्टि से कैसा गुप्त रहता है ?

ज्यों ही संदेशा पहुंचा, सास, ननद और बहू में बातें होने लगी।

बहू(चन्द्रा)-क्यों अम्मा। क्या आप इसी साल ब्याह करेंगी ?

प्रेमवती-और क्या, तुम्हारे लालाली के मानने की देर है।

बहू-कूछ तिलक-दहेज भी ठहरा

प्रेमवती-तिलक-दहेज ऐसी लडकियों के लिए नहीं ठहराया जाता।

जब तुला पर लडकी लडके के बराबर नहीं ठहरती,तभी दहेज का पासंग बनाकर उसे बराबर कर देते हैं। हमारी वृजरानी कमला से बहुत भारी है।

सेवती-कुछ दिनों घर में खूब धूमधाम रहेगी। भाभी गीत गायेंगी। हम ढोल बजायेंगें। क्यों भाभी ?

चन्द्रा-मुझे नाचना गाना नहीं आता।

चन्द्रा का स्वर कुछ भद्दा था, जब गाती, स्वर-भंग हो जाता था। इसलिए उसे गाने से चिढ थी।

सेवती-यह तो तुम आप ही करो। तुम्हारे गाने की तो संसार में धूम है।

चन्द्रा जल गयी, तीखी होकर बोली-जिसे नाच-गाकर दूसरों को लुभाना हो, वह नाचना-गाना सीखे।

सेवती-तुम तो तनिक-सी हंसी में रूठ जाती हो। जरा वह गीत गाओं तो—तुम तो श्याम बडे बेखबर हो'। इस समय सुनने को बहुत जी चाहता है। महीनों से तुम्हारा गाना नहीं सुना।

चन्द्रा-तुम्ही गाओ, कोयल की तरह कूकती हो।

सेवती-लो, अब तुम्हारी यही चाल अच्छी नहीं लगती। मेरी अच्छी भाभी, तनिक गाओं।

चन्द्रमा-मैं इस समय न गाऊंगी। क्यों मुझे कोई डोमनी समझ लिया है ?

सेवती-मैं तो बिन गीत सुने आज तुम्हारा पीछा न छोडूंगी।

सेवती का स्वर परम सुरीला और चिताकर्षक था। रूप और आकृति भी मनोहर, कुन्दन वर्ण और रसीली आंखें। प्याली रंग की साडी उस पर खूब खिल रही थी। वह आप-ही-आप गुनगुनाने लगी:

तुम तो श्याम बडे बेखबर हो...तुम तो श्याम।

आप तो श्याम पीयो दूध के कुल्हड, मेरी तो पानी पै गुजर-

पानी पै गुजर हो। तुम तो श्याम...

दूध के कुल्हड पर वह हंस पडी। प्रेमवती भी मुस्करायी, परन्तु चन्द्रा रूष्ट हो गयी। बोली –बिना हंसी की हंसी हमें नहीं आती। इसमें हंसने की क्या बात है ?

सेवती-आओ, हम तुम मिलकर गायें।

चन्द्रा-कोयल और कौए का क्या साथ ?

सेती-क्रोध तो तुम्हारी नाक पर रहता है।

चन्द्रा-तो हमें क्यों छेडती हो ? हमें गाना नहीं आता, तो कोई तुमसे निन्दा करने तो नहीं जाता।

'कोई' का संकेत राधाचरण की ओर था। चन्द्रा में चाहे और गुण न हों, परन्तु पति की सेवा वह तन-मन से करती थी। उसका तनिक भी सिर धमका कि इसके प्राण निकला। उनको घर आने में तनिक देर हुई कि वह व्याकुल होने लगी। जब से वे रूडकी चले गये, तब से चन्द्रा यका हॅसना-बोलना सब छूट गया था। उसका विनोद उनके संग चला गया था। इन्हीं कारणों से राधाचरण को स्त्री का वशीभूत बना दिया था। प्रेम, रूप-गुण, आदि सब त्रुटियों का पूरक है।

सेवती-निन्दा क्यों करेगा, 'कोई' तो तन-मन से तुम पर रीझा हुआ है।

चन्द्रा-इधर कई दिनों से चिट्ठी नहीं आयी।

सेवती-तीन-चार दिन हुए होंगे।

चन्द्रा-तुमसे तो हाथ-पैर जोड़ कर हार गयी। तुम लिखती ही नहीं।

सेवती-अब वे ही बातें प्रतिदिन कौन लिखे, कोई नयी बात हो तो लिखने को जी भी चाहे।

चन्द्रा-आज विवाह के समाचार लिख देना। लाऊं कलम-दवात ?

सेवती-परन्तु एक शर्त पर लिखूंगी।

चन्द्रा-बताओं।

सेवती-तुम्हें श्यामवाला गीत गाना पड़ेगा।

चन्द्रा-अच्छा गा दूंगी। हॅसने को जी चाहता है न ?हॅस लेना।

सेवती-पहले गा दो तो लिखूं।

चन्द्रा-न लिखोगी। फिर बातें बनाने लगोगी।

सेवती- तुम्हारी शपथ, लिख दूंगी, गाओ।

चन्द्रा गाने लगी-

तुम तो श्याम बड़े बेखबर हो।

तुम तो श्याम पीयो दूध के कूल्हड़, मेरी तो पानी पै गुजर

पानी पे गुजर हो। तुम तो श्याम बडे बेखबर हो।

अन्तिम शब्द कुछ ऐसे बेसुरे निकले कि हॅसी को रोकना कठिन हो गया। सेवती ने बहुत रोका पर न रुक सकी। हॅसते-हॅसते पेट में बल पड़ गया। चन्द्रा ने दूसरा पद गाया:

आप तो श्याम रक्खो दो-दो लुगइयॉ,

मेरी तो आपी पै नजर आपी पै नजर हो।

तुम तो श्याम....

'लुगइयां' पर सेवती हॅसते-हॅसते लोट गयी। चन्द्रा ने सजल नेत्र होकर कहा-अब तो बहुत हॅस चुकीं। लाऊं कागज ?

सेवती-नहीं, नहीं, अभी तनिक हॅस लेने दो।

सेवती हॅस रही थी कि बाबू कमलाचरण का बाहर से शुभागमन हुआ, पन्द्रह सोलह वर्ष की आयु थी। गोरा-गोरा गेहुंआ रंग। छरहरा शरीर, हॅसमुख, भड़कीले वस्त्रों से शरीर को अलंकृत किये, इत्र में बसे, नेत्रो में सुरमा, अधर पर मुस्कान और हाथ में बुलबुल लिये आकर चारपाई पर बैठ गये। सेवती बोली'-कमलू। मुंह मीठा कराओं, तो तुम्हें ऐसे शुभ समाचार सुनायें कि सुनते ही फड़क उठो।

कमला-मुंह तो तुम्हारा आज अवश्य ही मीठा होगा। चाहे शुभ समाचार सुनाओं, चाहे न सुनाओं। आज इस पठे ने यह विजय प्राप्त की है कि लोग दंग रह गये।

यह कहकर कमलाचरण ने बुलबुल को अंगूठे पर बिठा लिया।

सेवती-मेरी खबर सुनते ही नाचने लगोगे।

कमला-तो अच्छा है कि आप न सुनाइए। मैं तो आज यों ही नाच रहा हूं। इस पठे ने आज नाक रख ली। सारा नगर दंग रह गया। नवाब मुन्नेखां बहुत दिनों से मेरी आंखों में चढ़े हुए थे। एक पास होता है, मैं उधर से निकला, तो आप कहने लगे-मियॉ, कोई पठा तैयार हो तो लाओं, दो-दो चौंच हो जायें। यह कहकर आपने अपना पुराना बुलबुल दिखाया। मैने कहा- कृपानिधान। अभी तो नहीं। परन्तु एक मास में यदि ईश्वर चाहेगा तो आपसे अवश्य एक जोड़ होगी, और बद-बद कर आज। आगा शेरअली के अखाड़े में बदान ही ठहरी। पचाय-पचास रूपये की बाजी थी। लाखों मनुष्य जमा थे। उनका पुराना बुलबुल, विश्वास मानों सेवती, कबूतर के बराबर था। परन्तु वह भी केवल फूला हुआ न था। सारे नगर के बुलबुलो को पराजित किये बैठा था। बलपूर्वक लात चलायी। इसने बार-बार नचाया और फिर झपटकर उसकी चोटी दबायी। उसने फिर चोट की। यह नीचे आया। चतुर्दिक कोलाहल मच गया- मार लिया मार लिया। तब तो मुझे भी क्रोध आया डपटकर जो ललकारता हूं तो यह ऊपर और वह नीचे दबा हआ है। फिर तो उसने कितना ही सिर पटका कि ऊपर आ जाए, परन्तु इस शेयर ने ऐसा दाबा कि सिर न उठाने दिया। नबाब साहब स्वयं उपस्थित थे। बहुत चिल्लाये, पर क्या हो सकता है ? इसने उसे ऐसा दबोचा था जैसे बाज चिडिया को। आखिर बगटुट भागा। इसने पानी के उस पार तक पीछा किया, पर न पा सका। लोग विस्मय से दंग हो गये। नवाब साहब का तो मुख मलिन हो गया। हवाइयॉ उडने लगीं। रूपये हारने की तो उन्हें कुछ चिंन्ता नहीं, क्योंकि लाखों की आय

है। परन्तु नगर में जो उनकी धाक जमी हुई थी, वह जाती रही। रोते हुए घर को सिधारे। सुनता हूं, यहां से जाते ही उन्होंने अपने बुलबुल को जीवित ही गाड़ दिया। यह कहकर कमलाचरण ने जेब खनखनायी।

सेवती-तो फिर खड़े क्या कर रहे हो ? आगरे वाले की दुकान पर आदमी भेजो।

कमला-तुम्हारे लिए क्या लाऊं, भाभी ?

सेवती-दूध के कुल्हड़।

कमला-और भैया के लिए ?

सेवती-दो-दो लुगइयॉ।

यह कहकर दोनों ठहका मारकर हॅसने लगे।

निठुरता और प्रेम

सुवामा तन-मन से विवाह की तैयारियां करने लगीं। भोर से संध्या तक विवाह के ही धन्धों में उलझी रहती। सुशीला चेरी की भांति उसकी आज्ञा का पालन किया करती। मुंशी संजीवनलाल प्रात:काल से सांझ तक हाट की धूल छानते रहते। और विरजन जिसके लिए यह सब तैयारियां हो रही थी, अपने कमरे में बैठी हुई रात-दिन रोया करती। किसी को इतना अवकाश न था कि क्षण-भर के लिए उसका मन बहलाये। यहॉ तक कि प्रताप भी अब उसे निठुर जान पड़ता था। प्रताप का मन भी इन दिनों बहुत ही मलिन हो गया था। सबेरे का निकला हुआ सॉझ को घर आता और अपनी मुंडेर पर चुपचाप जा बैठता। विरजन के घर जाने की तो उसने शपथ-सी कर ली थी। वरन जब कभी वह आती हुई दिखई देती, तो चुपके से सरक जाता। यदि कहने-सुनने से बैठता भी तो इस भांति मुख फेर लेता और रूखाई का व्यवहार करता कि विरजन रोने लगती और सुवामा से कहती-चाची, लल्लू मुझसे रूष्ट है, मैं बुलाती हूं, तो नहीं बोलते। तुम चलकर मना दो। यह कहकर वह मचल जाती और सुवामा का ऑचल पकड़कर खींचती हुई प्रताप के घर लाती। परन्तु प्रताप दोनों को देखते ही निकल भाग्ता। वृजरानी द्वार तक यह कहती हुई आती कि-लल्लू तनिक सुन लो, तनिक सुन लो, तुम्हें हमारी शपथ, तनिक सुन लो। पर जब वह न सुनता और न मुंह फेरकर देखता ही तो बेचारी लड़की पृथ्वी पर बैठ जाती और भली-भॉति फूट-फूटकर रोती और कहती-यह मुझसे क्यों रूठे हुए है ? मैने तो इन्हें कभी कुछ नहीं कहा। सुवामा उसे छाती से लगा लेती और समझाती-बेटा। जाने दो, लल्लू पागल हो गया है। उसे अपने पुत्र की निठुरता का भेद कुछ-कुछ ज्ञात हो चला था।

निदान विवाह को केवल पांच दिन रह गये। नातेदार और सम्बन्धी लोग दूर तथा समीप से आने लगे। ऑगन में सुन्दर मण्डप छा गया। हाथ में कंगन बँध गये। यह कच्चे घागे का कंगन पवित्र धर्म की हथकड़ी है, जो कभी हाथ से न निकलेगी और मंण्डप उस प्रेम और कृपा की छाया का स्मारक है, जो जीवनपर्यन्त सिर से न उठेगी। आज संध्या को सुवामा, सुशीला, महाराजिनें सब-की-सब मिलकर देवी की पूजा करने को गयीं। महरियां अपने धंधों में लगी हुई थी। विरजन व्याकुल होकर अपने घर में से निकली और प्रताप के घर आ पहुंची। चतुर्दिक सन्नाटा छाया हुआ था। केवल प्रताप के कमरे में धुंधला प्रकाश झलक रहा था। विरजन कमरे में आयी, तो क्या देखती है कि मेज पर लालटेन जल रही है और प्रताप एक चारपाई पर सो रहा है। धुंधले उजाले में उसका बदन कुम्हलाया और मलिन नजर आता है। वस्तुएँ सब इधर-उधर बेढंग पड़ी हुई है। जमीन पर मानों धूल चढ़ी हुई है। पुस्तकें फैली हुई है। ऐसा जान पड़ता है मानों इस कमरे को किसी ने महीनों से नहीं खोला। वही प्रताप है, जो स्वच्छता को प्राण-प्रिय समझता था। विरजन ने चाहा उसे जगा दूं। पर कुछ सोचकर भूमि से पुस्तकें उठा-उठा कर आल्मारी में रखने लगी। मेज पर से धूल झाडी, चित्रों पर से गर्द का परदा उठा लिया। अचानक प्रतान ने करवट ली और उनके मुख से यह वाक्य निकला-'विरजन। मैं तुम्हें भूल नहीं सकता''। फिर थोडी देर पश्चात-'विरजन'। कहां जाती हो, यही बैठो ? फिर करवट बदलकर-'न बैठोगी''? अच्छा जाओं मैं भी तुमसे न बोलूंगा। फिर कुछ ठहरकर-अच्छा जाओं, देखें कहां जाती है। यह कहकर वह लपका, जैसे किसी भागते हुए मनुष्य को पकड़ता हो। विरजन का हाथ उसके हाथ में आ गया। उसके साथ ही ऑखें खुल गयीं। एक मिनट तक उसकी भाव-शून्य दृषिट विरजन के मुख की ओर गड़ी रही। फिर अचानक उठ बैठा और विरजन का हाथ छोड़कर बोला-तुम कब आयीं, विरजन ? मैं अभी तुम्हारा ही स्वप्न देख रहा था।

विरजन ने बोलना चाहा, परन्तु कण्ठ रूंध गया और आंखें भर आयीं। प्रताप ने इधर-उधर देखकर फिर कहा-क्या यह सब तुमने साफ किया ?तुम्हें बडा कष्ट हुआ। विरजन ने इसका भी उतर न दिया।

प्रताप-विरजन, तुम मुझे भूल क्यों नहीं जातीं ?

विरजन ने आद्र नेत्रों से देखकर कहा-क्या तुम मुझे भूल गये ?

प्रतान ने लज्जित होकर मस्तक नीचा कर लिया। थोडी देर तक दोनों भावों से भरे भूमि की ओर ताकते रहे। फिर विरजन ने पूछा-तुम मुझसे क्यों रूष्ट हो ? मैने कोई अपराध किया है ?

प्रताप-न जाने क्यों अब तुम्हें देखता हूं, तो जी चाहता है कि कहीं चला जाऊं।

विरजन-क्या तुमको मेरी तनिक भी मोह नहीं लगती ? मैं दिन-भर रोया करती हूं। तुम्हें मुझ पर दया नहीं आती ? तुम मुझसे बोलते तक नहीं। बतलाओं मैने तुम्हें क्या कहा जो तुम रूठ गये ?

प्रताप-मैं तुमसे रूठा थोडे ही हूं।

विरजन-तो मुझसे बोलते क्यों नहीं।

प्रताप-मैं चाहता हूं कि तुम्हें भूल जाऊं। तुम धनवान हो, तुम्हारे माता-पिता धनी हैं, मैं अनाथ हूं। मेरा तुम्हारा क्या साथ ?

विरजन-अब तक तो तुमने कभी यह बहाना न निकाला था, क्या अब मैं अधिक धनवान हो गयी ?

यह कहकर विरजन रोने लगी। प्रताप भी द्रवित हुआ, बोला-विरजन। हमारा तुम्हारा बहुत दिनों तक साथ रहा। अब वियोग के दिन आ गये। थोडे दिनों में तुम यहॉ वालों को छोड़कर अपने सुसुराल चली जाओगी। इसलिए मैं भी बहुत चाहता हूं कि तुम्हें भूल जाऊं। परन्तु कितना ही चाहता हूं कि तुम्हारी बातें स्मरण में न आये, वे नहीं मानतीं। अभी सोते-सोते तुम्हारा ही स्वस्पन देख रहा था।

सखियाँ

डिप्टी श्यामाचरण का भवन आज सुन्दरियों के जमघट से इन्द्र का अखाड़ा बना हुआ था। सेवती की चार सहेलियॉ-रूक्मिणी, सीता, रामदेई और चन्द्रकुंवर-सोलहों सिंगार किये इठलाती फिरती थी। डिप्टी साहब की बहिन जानकी कुंवर भी अपनी दो लड़कियों के साथ इटावे से आ गयी थीं। इन दोनों का नाम कमला और उमादेवी था। कमला का विवाह हो चुका था। उमादेवी अभी कुंवारी ही थी। दोनों सूर्य और चन्द्र थी। मंडप के तले डौमनियां और गवनिहारिने सोहर और सोहाग, अलाप रही थी। गुलबिया नाइन और जमनी कहारिन दोनों चटकीली साडियॉ पहिने, मांग सिंदूर से भरवाये, गिलट के कड़े पहिने छम-छम करती फिरती थीं। गुलबिया चपला नवयौवना थी। जमुना की अवस्था ढल चुकी थी। सेवती का क्या पूछना? आज उसकी अनोखी छटा थी। रसीली आंखें आमोदाधिक्य से मतवाली हो रही थीं और गुलाबी साड़ी की झलक से चम्पई रंग गुलाबी जान पड़ता था। धानी मखमल की कुरती उस पर खूब खिलती थी। अभी स्नान करके आयी थी, इसलिए नागिन-सी लट कंधों पर लहरा रही थी। छेड़छाड़ और चुहल से इतना अवकाश न मिलता था कि बाल गुंथवा ले। महराजिन की बेटी माधवी छींट का लॅहगा पहने, ऑखों में काजल लगाये, भीतर-बाहर किये हुए थी।

रूक्मिणी ने सेवती से कहा-सितो। तुम्हारी भावज कहॉ है ? दिखायी नहीं देती। क्या हम लोगों से भी पर्दा है ?

रामदेई-(मुस्कराकर)परदा क्यों नहीं है ? हमारी नजर न लग जायगी?

सेवती-कमरे में पड़ी सो रही होंगी। देखों अभी खींचे लाती हूं।

यह कहकर वह चन्द्रमा से कमरे में पहुंची। वह एक साधारण साड़ी पहने चारपाई पर पड़ी द्वार की ओर टकटकी लगाये हुए थी। इसे देखते ही उठ बैठी। सेवती ने कहा-यहॉ क्या पड़ी हो, अकेले तुम्हारा जी नहीं घबराता?

चन्द्रा-उंह, कौन जाए, अभी कपड़े नहीं बदले।

सेवती-बदलती क्यों नहीं ? सखियॉ तुम्हारी बाट देख रही हैं।

चन्द्रा-अभी मैं न बदलूंगी।

सेवती-यही हठ तुम्हारा अच्छा नहीं लगता। सब अपने मन में क्या कहती होंगी ?

चन्द्रा-तुमने तो चिटठी पढी थी, आज ही आने को लिखा था न ?

सेवती-अच्छा,तो यह उनकी प्रतीक्षा हो रही है, यह कहिये तभी योग साधा है।

चन्द्रा-दोपहर तो हुई, स्यात् अब न आयेंगे।

इतने में कमला और उपादेवी दोनों आ पहुंची। चन्द्रा ने घूंघट निकाल लिया और र्फश पर आ बैठी। कमला उसकी बड़ी ननद होती थी।

कमला-अरे, अभी तो इन्होंने कपड़े भी नहीं बदले।

सेवती-भैया की बाट जोह रही है। इसलिए यह भेष रचा है।

कमला-मूर्ख हैं। उन्हें गरज होगी, आप आयेंगे।

सेवती-इनकी बात निराली है।

कमला-पुरूषों से प्रेम चाहे कितना ही करे, पर मुख से एक शब्द भी न निकाले, नहीं तो व्यर्थ सताने और जलाने लगते हैं। यदि तुम उनकी उपेक्षा करो, उनसे सीधे बात न करों, तो वे तुम्हारा सब प्रकार आदर करेगें। तुम पर प्राण समर्पण करेंगें, परन्तु ज्यो ही उन्हें ज्ञात हुआ कि इसके हृदय में मेरा प्रेम हो गया, बस उसी दिन से दृष्टि फिर जायेगी। सैर को जायेंगें, तो अवश्य देर करके आयेगें। भोजन करने बैठेगें तो मुहं जूठा करके उठ जायेगें, बात-बात पर रूठेंगें। तुम रोओगी तो मनायेगें, मन में प्रसन्न होंगे कि कैसा फंदा डाला है। तुम्हारे सम्मुख अन्य स्त्रियों की प्रशंसा करेंगें। भावार्थ यह है कि तुम्हारे जलाने में उन्हें आनन्द आने लगेगा। अब मेरे ही घर में देखों पहिले इतना आदर करते थे कि क्या बताऊं। प्रतिक्षण नौकरो की भांति हाथ बांधे खड़े रहते थे। पंखा झेलने को तैयार, हाथ से कौर खिलाने को तैयार यहॉ तक कि (मुस्कराकर) पॉव दबाने में भी संकोच न था। बात मेरे मुख से निकली नहीं कि पूरी हुई। मैं उस समय अबोध थी। पुरुषों के कपट व्यवहार क्या जानूं। पटी में आ गयी। जानते थे कि आज हाथ बांध कर खड़ी

होगीं। मैने लम्बी तानी तो रात-भर करवट न ली। दूसरे दिन भी न बोली। अंत में महाशय सीधे हुए, पैरों पर गिरे, गिड़गिड़ाये, तब से मन में इस बात की गांठ बॉध ली है कि पुरूषों को प्रेम कभी न जताओं।

सेवती-जीजा को मैने देखा है। भैया के विवाह में आये थे। बड़ं हॅसमुख मनुष्य हैं।

कमला-पार्वती उन दिनों पेट में थी, इसी से मैं न आ सकी थी। यहॉ से गये तो लगे तुम्हारी प्रशंसा करने। तुम कभी पान देने गयी थी ? कहते थे कि मैने हाथ थामकर बैठा लिया, खूब बातें हुई।

सेवती-झूठे हैं, लबारिये हैं। बात यह हुई कि गुलबिया और जमुनी दोनों किसी कार्य से बाहर गयी थीं। मॉ ने कहा, वे खाकर गये हैं, पान बना के दे आ। मैं पान लेकर गयी, चारपाई पर लेटे थे, मुझे देखते ही उठ बैठे। मैने पान देने को हाथ बढाया तो आप कलाई पकड़कर कहने लगे कि एक बात सुन लो, पर मैं हाथ छुड़ाकर भागी।

कमला-निकली न झूठी बात। वही तो मैं भी कहती हूं कि अभी ग्यारह-बाहरह वर्ष की छोकरी, उसने इनसे क्या बातें की होगी ? परन्तु नहीं, अपना ही हठ किये जाये। पुरूष बड़े प्रलापी होते है। मैने यह कहा, मैने वह कहा। मेरा तो इन बातों से हृदय सुलगता है। न जाने उन्हें अपने ऊपर झूठा दोष लगाने में क्या स्वाद मिलता है ? मनुष्य जो बुरा-भला करता है, उस पर परदा डालता है। यह लोग करेंगें तो थोड़ा, मिथ्या प्रलाप का आल्हा गाते फिरेगें ज्यादा। मैं तो तभी से उनकी एक बात भी सत्य नहीं मानती।

इतने में गुलबिया ने आकर कहा-तुमतो यहॉ ठाढी बतलात हो। और तुम्हार सखी तुमका आंगन में बुलौती है।

सेवती-देखों भाभी, अब देर न करो। गुलबिया, तनिक इनकी पिटारी से कपड़े तो निकाल ले।

कमला चन्द्रा का श्रृगांर करने लगी। सेवती सहेलियों के पास आयी। रूक्मिणी बोली-वाह बहि, खूब। वहॉ जाकर बैठ रही। तुम्हारी दीवारों से बोले क्या ?

सेवती-कमला बहिन चली गयी। उनसे बातचीत होने लगीं। दोनों आ रही हैं।

रूक्मिणी-लड़कोरी है न ?

सेवती-हॉ, तीन लड़के हैं।

रामदेई-मगर काठी बहुत अच्छी है।

चन्द्रकुंवर-मुझे उनकी नाक बहुत सुन्दर लगती है, जी चाहता है छीन लूं।

सीता-दोनों बहिने एक-से-एक बढ़ कर है।

सेवती-सीता को ईश्वर ने वर अच्छा दिया है, इसने सोने की गौ पूजी थी।

रूक्मिणी-(जलकर)गोरे चमड़े से कुछ नहीं होता।

सीता-तुम्हें काला ही भाता होगा।

सेवती-मुझे काला वर मिलता तो विष खा लेती।

रूक्मिणी-यो कहने को जो चाहे कह लों, परन्तु वास्तव में सुख काले ही वर से मिलता है।

सेवती-सुख नहीं धूल मिलती है। ग्रहण-सा आकर लिपट जाता होगा।

रूक्मिणी-यही तो तुम्हारा लड़कपन है। तुम जानती नहीं सुन्दर पुरुष अपने ही बनाव-सिंगार में लगा रहता है। उसे अपने आगे स्त्री का कुछ ध्यान नहीं रहता। यदि स्त्री परम-रूपवती हो तो कुशल है। नहीं तो थोडे ही दिनों वह समझता है कि मैं ऐसी दूसरी स्त्रियों के हृदय पर सुगमता से अधिकार पा सकता हूं। उससे भागने लगता है। और कुरूप पुरूष सुन्दर स्त्री पा जाता है तो समझता है कि मुझे हीरे की खान मिल गयी। बेचारा काला अपने रूप की कमी को प्यार और आदर से पूरा करता है। उसके हृदय में ऐसी धुकधुकी लगी रहती है कि मैं तनिक भी इससे खटा पड़ा तो यह मुझसे घृणा करने लगेगी।

चन्द्रकुंव-दूल्हा सबसे अच्छा वह, जो मुंह से बात निकलते ही पूरा करे।

रामदेई-तुम अपनी बात न चलाओं। तुम्हें तो अच्छे-अच्छे गहनों से प्रयोजन है, दूल्हा कैसा ही हो।

सीता-न जाने कोई पुरूष से किसी वस्तु की आज्ञा कैसे करता है। क्या संकोच नहीं होता ?

रूक्मिणी-तुम बपुरी क्या आज्ञा करोगी, कोई बात भी तो पूछे ?

सीता-मेरी तो उन्हें देखने से ही तृप्ति हो जाती है। वस्त्राभूषणों पर जी नहीं चलता।

इतने में एक और सुन्दरी आ पहुंची, गहने से गोंदनी की भांति लदी हुई। बढ़िया जूती पहने, सुगंध में बसी। ऑखों से चपलता बरस रही थी।

रामदेई-आओ रानी, आओ, तुम्हारी ही कमी थी।

रानी-क्या करूं, निगोडी नाइन से किसी प्रकार पीछा नहीं छूटता था। कुसुम की माँ आयी तब जाके जूड़ा बाँधा।

सीता-तुम्हारी जाकिट पर बलिहारी है।

रानी-इसकी कथा मत पूछो। कपड़ा दिये एक मास हुआ। दस-बारह बार दर्जी सीकर लाया। पर कभी आस्तीन ढीली कर दी, कभी सीअन बिगाड़ दी, कभी चुनाव बिगाड़ दिया। अभी चलते-चलते दे गया है।

यही बातें हो रही थी कि माधवी चिल्लाई हुई आयी-'भैया आये, भैया आये। उनके संग जीजा भी आये हैं, ओहो। ओहो।

रानी-राधाचरण आये क्या ?

सेवती-हाँ। चलू तनिक भाभी को सन्देश दे आंऊ। क्या रे। कहां बैठे है ?

माधवी-उसी बड़े कमरे में। जीजा पगड़ी बाँधे है, भैया कोट पहिने हैं, मुझे जीजा ने रूपया दिया। यह कहकर उसने मुठी खोलकर दिखायी।

रानी-सितो। अब मुंह मीठा कराओ।

सेवती-क्या मैने कोई मनौती की थी ?

यह कहती हुई सेवती चन्द्रा के कमरे में जाकर बोली-लो भाभी। तुम्हारा सगुन ठीक हुआ।

चन्द्रा-कया आ गये ? तनिक जाकर भीतर बुला लो।

सेवती-हाँ मदाने में चली जाउं। तुम्हारे बहनाई जी भी तो पधारे है।

चन्द्रा-बाहर बैठे क्या यकर रहे हैं ? किसी को भेजकर बुला लेती, नहीं तो दूसरों से बातें करने लगेंगे।

अचानक खडाऊं का शब्द सुनायी दिया और राधाचरण आते दिखायी दिये। आयु चौबीस-पच्चीस बरस से अधिक न थी। बडे ही हॅसमुख, गौर वर्ण, अंग्रेजी काट के बाल, फ्रेंच काट की दाढी, खडी मूंछे, लवंडर की लपटें आ रही थी। एक पतला रेशमी कुर्ता पहने हुए थे। आकर पंलग पर बैठ गए और सेवती से बोले-क्या सितो। एक सप्ताह से चिठी नहीं भेजी ?

सेवती-मैनें सोचा, अब तो आ रहें हो, क्यों चिठी भेजू ? यह कहकर वहां से हट गयी।

चन्द्रा ने घूघंट उठाकर कहा-वहाँ जाकर भूल जाते हो ?

राधाचरण-(हृदय से लगाकर) तभी तो सैकंडों कोस से चला आ रहा हूँ।

ईर्ष्या

प्रतापचन्द्र ने विरजन के घर आना-जाना विवाह के कुछ दिन पूर्व से ही त्याग दिया था। वह विवाह के किसी भी कार्य में सम्मिलित नहीं हुआ। यहॉ तक कि महफिल में भी न गया। मलिन मन किये, मुहँ लटकाये, अपने घर बैठा रहा, मुंशी संजीवनलाला, सुशीला, सुवामा सब बिनती करके हार गये, पर उसने बारात की ओर दृष्टि न फेरी। अंत में मुंशीजी का मन टूट गया और फिर कुछ न बोले। यह दशा विवाह के होने तक थी। विवाह के पश्चात तो उसने इधर का मार्ग ही त्याग दिया। स्कूल जाता तो इस प्रकार एक ओर से निकल जाता, मानों आगे कोई बाघ बैठा हुआ है, या जैसे महाजन से कोई ऋणी मनुष्य ऑख बचाकर निकल जाता है। विरजन की तो परछाई से भागता। यदि कभी उसे अपने घर में देख पाता तो भीतर पग न देता। माता समझाती-बेटा। विरजन से बोलते-चालत क्यों नहीं ? क्यों उससे यसमन मोटा किये हुए हो ? वह आ-आकर घण्टों रोती है कि मैने क्या किया है जिससे वह रूष्ट हो गया है। देखों, तुम और वह कितने दिनों तक एक संग रहे हो। तुम उसे कितना प्यार करते थे। अकस्मात् तुमको क्या हो गया? यदि तुम ऐसे ही रूठे रहोगे तो बेचारी लड़की की जान पर बन जायेगी। सूखकर कॉटा हो गया है। ईश्वर ही जानता है, मुझे उसे देखकर करूणा उत्पन्न होती है। तुम्हारी चंर्चा के अतिरिक्त उसे कोई बात ही नहीं भाती।

प्रताप ऑखें नीची किये हुए सब सुनता और चुपचाप सरक जाता। प्रताप अब भोला बालक नहीं था। उसके जीवनरूपी वृक्ष में यौवनरूपी कोपलें फूट रही थी। उसने बहुत दिनों से-उसी समय से जब से उसने होश संभाला-विरजन के जीवन को अपने जीवन में र्शकरा क्षीर की भॉति मिला लिया था। उन मनोहर और सुहावने स्वप्नों का इस कठोरता और निर्दयता से धूल में मिलाया जाना उसके कोमल हृदय को विदीर्ण करने के लिए काफी था, वह जो अपने विचारों में विरजन को अपना सर्वस्व समझता था, कहीं का न रहा, और अपने विचारों में विरजन को अपना सर्वस्व समझता था, कहीं का न रहा, और वह, जिसने विरजन को एक पल के लिए भी अपने ध्यान में स्थान न दिया था, उसका सर्वस्व हो गया। इस विर्तक से उसके हृदय में व्याकुलता उत्पन्न होती थी और जी चाहता था कि जिन लोगों ने मेरी स्वप्नवत भावनाओं का नाश किया है और मेरे जीवन की आशाओं को मिटटी में मिलाया है, उन्हें मैं भी जलाउं। सबसे अधिक क्रोध उसे जिस पर आता था वह बेचारी सुशीला थी।

शनै:-शनै: उसकी यह दशा हो गई कि जब स्कूल से आता तो कमलाचरण के सम्बन्ध की कोई घटना अवश्य वर्णन करता। विशेष कर उस समय जब सुशीला भी बैठी रहती। उस बेचारी का मन दुखाने में इसे बडा ही आनन्द आता। यद्यपि अव्यक्त रीति से उसका कथन और वाक्य-गति ऐसी हृदय-भेदिनी होती थी कि सुशीला के कलेजे में तीर की भांति लगती थी। आज महाशय कमलाचरण तिपाई के ऊपर खड़े थे, मस्तक गगन का स्पर्श करता था। परन्तु निर्लज्ज इतने बड़े कि जब मैंने उनकी ओर संकेत किया तो खड़े-खड़े हॅसने लगे। आज बडा तमाशा हुआ। कमला ने एक लड़के की घडी उड़ा दी। उसने मास्टर से शिकायत की। उसके समीप वे ही महाशय बैठे हुए थे। मास्टर ने खोज की तो आप ही फेंटें से घडी मिली। फिर क्या था ? बडे मास्टर के यहॉ रिपोर्ट हुई। वह सुनते ही झल्ला गये और कोई तीन दर्जन बेंतें लगायीं, सड़ासड़। सारा स्कूल यह कौतूहल देख रहा था। जब तक बेंतें पड़ा की, महाश्य चिल्लाया किये, परन्तु बाहर निकलते ही खिलखिलानें लगे और मूंछों पर ताव देने लगे। चाची। नहीं सुना ? आज लडको ने ठीक सकूल के फाटक पर कमलाचरण को पीटा। मारते-मारते बेसुध कर दिया। सुशीला ये बातें सुनती और सुन-सुसनकर कुढती। हॉ। प्रताप ऐसी कोई बात विरजन के सामने न करता। यसदि वह घर में बैठी भी होती तो जब तक चली न जाती, यह चर्चा न छेडता। वह चाहता था कि मेरी बात से इसे कुछ दुख: न हो।

समय-समय पर मुंशी संजीवनलाल ने भी कई बार प्रताप की कथाओं की पुष्टि की। कभी कमला हाट में बुलबुल लड़ाते मिल जाता, कभी गुण्डों के संग सिगरेट पीते, पान चबाते, बेढंगेपन से घूमता हुआ दिखायी देता। मुंशीजी जब जामाता की यह दशा देखते तो घर आते ही स्त्री पर क्रोध निकालते- यह सब तुम्हारी ही करतूत है। तुम्ही ने कहा था घर-वर दोनों अच्छे हैं, तुम्हीं रीझी हुई थीं। उन्हें उस क्षण यह विचार न होता कि जो दोषारोपण सुशील पर है, कम-से-कम मुझ पर ही उतना ही है। वह बेचारी तो घर में बन्द रहती थी, उसे क्या ज्ञात था कि लडका कैसा है। वह सामुद्रिक विद्या थोड ही पढी थी ? उसके माता-पिता को सभ्य देखा, उनकी कुलीनता और वैभव पर सहमत हो गयी। पर मुंशीजी ने तो अकर्मण्यता और आलस्य के कारण छान-बीन न की, यद्यपि उन्हें इसके अनेक अवसर प्राप्त थे, और आलस्य के कारण छान-बीन न की, यद्यपि

उन्हें इसके अनेक अवसर प्राप्त थे, और मुंशीजी के अगणित बान्धव इसी भारतवर्ष में अब भी विद्यमान है जो अपनी प्यारी कन्याओं को इसी प्रकार नेत्र बन्द करकेक कुए में ढकेल दिया करते हैं।

सुशीला के लिए विरजन से प्रिय जगत में अन्य वस्तु न थी। विरजन उसका प्राण थी, विरजन उसका धर्म थी और विरजन ही उसका सत्य थी। वही उसकी प्राणाधार थी, वही उसके नयनों को ज्योति और हृदय का उत्साह थी, उसकी सर्वोच्च सांसारिक अभिलाषा यह थी कि मेरी प्यारी विरजन अच्छे घर जाय। उसके सास-ससुर, देवी-देवता हों। उसके पति शिष्टता की मूर्ति और श्रीरामचंद्र की भांति सुशील हो। उस पर कष्ट की छाया भी न पडे। उसने मर-मरकर बड़ी मिन्नतों से यह पुत्री पायी थी और उसकी इच्छा थी कि इन रसीले नयनों वाली, अपनी भोली-भाली बाला को अपने मरण-पर्यन्त आंखों से अदृश्य न होने दूंगी। अपने जामाता को भी यही बुलाकर अपने घर रखूंगी। जामाता मुझे माता कहेगा, मैं उसे लडका समझूंगी। जिस हृदय में ऐसे मनोरथ हों, उस पर ऐसी दारूण और हृदयविदारणी बातों का जो कुछ प्रभाव पड़ेगा, प्रकट है।

हां। हन्त। दीना सुशीला के सारे मनोरथ मिट्टी में मिल गये। उसकी सारी आशाओं पर ओस पड़ गयी। क्या सोचती थी और क्या हो गया। अपने मन को बार-बार समझाती कि अभी क्या है, जब कमला सयाना हो जाएगी तो सब बुराइयां स्वयं त्याग देना। पर एक निन्दा का घाव भरने नहीं पाता था कि फिर कोई नवीन घटना सूनने में आ जाती। इसी प्रकार आघात-पर-आघात पडते गये। हाय। नहीं मालूम विरजन के भाग्य में क्या बदा है ? क्या यह गुन की मूर्ति, मेरे घर की दीप्ति, मेरे शरीर का प्राण इसी दुष्कृत मनुष्य के संग जीवन व्यतीत करेगी ? क्या मेरी श्यामा इसी गिद्व के पाले पडेगी ? यह सोचकर सुशीला रोने लगती और घंटों रोती रहती है। पहिले विरजन को कभी-कभी डांट-डपट भी दिया करती थी, अब भूलकर भी कोई बात न कहती। उसका मंह देखते ही उसे याद आ जाती। एक क्षण के लिए भा उसे सामने से अदृश्य न होने देगी। यदि जरा देर के लिए वह सुवामा के घर चली जाती, तो स्वयं पहुंच यजाती। उसे ऐसा प्रतीत होता मानों कोई उसे छीनकर ले भागता है। जिस प्रकार वाधिक की छुरी के तले अपने बछड़े को देखकर गाय का रोम-रोम कांपने लगता है, उसी प्रकार विरजन के दुख का ध्यान करके सुशीला की आंखों में संसार सूना जाना पडता था। इन दिनों विरजन को पल-भर के लिए नेत्रों से दूर करते उसे वह कष्ट और व्याकुलता होती,जो चिडिया को घोंसले से बच्चे के खो जाने पर होती है।

सुशीला एक तो यो ही जीर्ण रोगिणी थी। उस पर भावष्यि की असाध्य चिन्ता और जलन ने उसे और भी धुला डाला। निन्दाओं ने कलेजा चली कर दिया। छः मास भी बीतने न पाये थे कि क्षयरोग के चिह्न दिखायी दिए। प्रथम तो कुछ दिनों तक साहस करके अपने दु:ख को छिपाती रही, परन्तु कब तक ? रोग बढने लगा और वह शक्तिहीन हो गयी। चारपाई से उठना कठिन हो गया। वैद्य और डाक्टर औषघि करने लगे। विरयजन और सुवामा दोनों रात-दिन उसके पांस बैठी रहती। विरजन एक पल के लिए उसकी दृष्टि से ओझल न होती। उसे अपने निकट न देखकर सुशीला बेसुध-सी हो जाती और फूट-फूटकर रोने लगती। मुंशी संजीवनलाल पहिले तो धैर्य के साथ दवा करते रहे, पर जब देखा कि किसी उपाय से कुछ लाभ नहीं होता और बीमारी की दशा दिन-दिन निकृष्ट होती जाती है तो अंत में उन्होंने भी निराश हो उद्योग और साहस कम कर दिया। आज से कई साल पहले जब सुवामा बीमार पडी थी तब सुशीला ने उसकी सेवा-शुश्रूषा में पूर्ण परिश्रम किया था, अब सुवामा बीमार पडी थी तब सुशीला ने उसकी सेवा-सुश्रूषा में पूर्ण परिश्रम किया था,अब सुवामा की बारी आयी। उसने पडोसी और भगिनी के धर्म का पालन भली-भांति किया। रूगण-सेवा में अपने गृहकार्य को भूल-सी गई। दो-दों तीन-तीन दिन तक प्रताप से बोलने की नौबत न आयी। बहुधा वह बिना भोजन किये ही स्कूल चला जाता। परन्तु कभी कोई अप्रिय शब्द मुख से न निकालता। सुशीला की रूग्णावस्थ ने अब उसकी द्वेषारागिन को बहुत कम कर दिया था। द्वेष की अग्नि द्वेष्टा की उन्नति और दुर्दशा के साथ-साथ तीव्र और प्रज्जवलित हो जाती है और उसी समय शान्त होती है जब द्वेष्टा के जीवन का दीपक बुझ जाता है।

जिस दिन वृजरानी को ज्ञात हो जाता कि आज प्रताप बिना भोजन किये स्कूल जा रहा है, उस दिन वह काम छोड़कर उसके घर दौड़ जाती और भोजन करने के लिए आग्रह करती, पर प्रताप उससे बात न करता, उसे रोता छोड बाहर चला जाता। निस्संसदेह वह विरजन को पूर्णत:निर्दोष समझता था, परन्तु एक ऐसे संबध को, जो वर्ष छः मास में टूट जाने वाला हो, वह पहले ही से तोड़ देना चाहता था। एकान्त में बैठकर वह आप-ही-आप फूट-फूटकर रोता, परन्तु प्रेम के उद्वेग को अधिकार से बाहर न होने देता।

एक दिन वह स्कूल से आकर अपने कमरे में बैठा हुआ था कि विरजन आयी। उसके कपोल अश्रु से भीगे हुए थे और वह लंबी-लंबी सिसकियां ले रही थी। उसके मुख पर इस समय कुछ ऐसी निराशा छाई हुई थी और उसकी दृष्टि कुछ ऐसी करूणोंत्पादक थी कि प्रताप से न रहा गया। सजल नयन होकर बोला-'क्यों विरजन। रो क्यों रही हो ? विरजन ने कुछ उतर न दिया, वरन और बिलख-बिलखकर रोने लगी। प्रताप का गाम्भीर्य जाता रहा। वह निस्संकोच होकर उठा और विरजन की आंखों से आंसू पोंछने लगा। विरजन ने स्वर संभालकर कहा-लल्लू अब माताजी न जीयेंगी, मैं क्या करूं ? यह कहते-कहते फिर सिसकियां उभरने लगी।

प्रताप यह समाचार सुनकर स्तब्ध हो गया। दौड़ा हुआ विरजन के घर गया और सुशीला की चारपाई के समीप खड़ा होकर रोने लगा। हमारा अन्त समय कैसा धन्य होता है। वह हमारे पास ऐसे-ऐसे अहितकारियों को खींच लाता है, जो कुछ दिन पूर्व हमारा मुख नहीं देखना चाहते थे, और जिन्हें इस शक्ति के अतिरिकत संसार की कोई अन्य शक्ति पराजित न कर सकती थी। हां यह समय ऐसा ही बलवान है और बडे-बडे बलवान शत्रुओं को हमारे अधीन कर देता है। जिन पर हम कभी विजय न प्राप्त कर सकते थे, उन पर हमको यह समय विजयी बना देता है। जिन पर हम किसी शत्रु से अधिकार न पा सकते थे उन पर समय और शरीर के श्क्तिहीन हो जाने पर भी हमको विजयी बना देता है। आज पूरे वर्ष भर पश्चात प्रताप ने इस घर में पदार्पण किया। सुशीला की आंखें बन्द थी, पर मुखमण्डल ऐसा विकसित था, जैसे प्रभातकाल का कमल। आज भोर ही से वह रट लगाये हुए थी कि लल्लू को दिखा दो। सुवामा ने इसीलिए विरजन को भेजा था।

सुवामा ने कहा-बहिन। आंखें खोलों। लल्लू खड़ा है।

सुशीला ने आंखें खोल दीं और दोनों हाथ प्रेम-बाहुल्य से फैला दिये। प्रताप के हृदय से विरोध का अन्तिम चिह्न भी विलीन हो गया। यदि ऐसे काल में भी कोई मत्सर का मैल रहने दे, तो वह मनुष्य कहलाने का हकदार नहीं है। प्रताप सच्चे पुत्रत्व-भाव से आगे बढ़ा और सुशीला के प्रेमांक में जा लिपटा। दोनों आधे घंण्टे तक रोते रहे। सुशीला उसे अपने दोनों बांहों में इस प्रकार दबाये हुए थी मानों वह कहीं भागा जा रहा है। वह इस समय अपने को सैंकडों घिक्कार दे रहा था कि मैं ही इस दुखिया का प्राणहारी हूं। मैने ही द्वेष-दुरावेग के वशीभूत होकर इसे इस गति को पहुंचाया है। मैं ही इस प्रेम की मूर्ति का नाशक हूं। ज्यों-ज्यों यह भावना उसके मन में उठती, उसकी आंखों से आंसू बहते। निदान सुशीला बोली-लल्लू। अब मैं दो-एक दिन की ओर मेहमान हूं। मेरा जो कुछ कहा-सुना हो, क्षमा करो।

प्रताप का स्वर उसके वश में न था, इसलिए उसने कुछ उतर न दिया।

सुशीला फिर बोली-न जाने क्यों तुम मुझसे रूष्ट हो। तुम हमारे घर नही आते। हमसे बोलते नहीं। जी तुम्हें प्यार करने को तरस-तरसकर रह जाता है। पर तुम मेरी तनिक भी सुधि नहीं लेते। बताओं, अपनी दुखिया चाची से क्यों रूष्ट हो ? ईश्वर जानता है, मैं तुमको सदा अपना लड़का समझती रही। तुम्हें देखकर मेरी छाती फूल उठती थी। यह कहते-कहते निर्बलता के कारण उसकी बोली धीमी हो गयी, जैसे क्षितिज के अथाह विस्तार में उड़नेवाले पक्षी की बोली प्रतिक्षण मध्यम होती जाती है-यहां तक कि उसके शब्द का ध्यानमात्र शेष रह जाता है। इसी प्रकार सुशीला की बोली धीमी होते-होते केवल सांय-सांय रह गयी।

सुशीला की मृत्यु

तीन दिन और बीते, सुशीला के जीने की अब कोई संभावना न रही। तीनों दिन मुंशी संजीवनलाल उसके पास बैठे उसको सान्त्वना देते रहे। वह तनिक देर के लिए भी वहां से किसी काम के लिए चले जाते, तो वह व्याकुल होने लगती और रो-रोकर कहने लगती-मुझे छोड़कर कहीं चले गये। उनको नेत्रों के सम्मुख देखकर भी उसे संतोष न होता। रह-रहकर उतावलेपन से उनका हाथ पकड़ लेती और निराश भाव से कहती-मुझे छोड़कर कहीं चले तो नहीं जाओगे ? मुंशीजी यद्यपि बड़े दृढ-चित मनुष्य थे, तथापि ऐसी बातें सुनकयर आर्द्रनेत्र हो जाते। थोडी-थोडी देर में सुशीला को मूर्छा-सी आ जाती। फिर चौंकती तो इधर-उधर भौंजक्की-सी देखने लगती। वे कहां गये? क्या छोड़कर चले गयें ? किसी-किसी बार मूर्छा का इतना प्रकोप होता कि मुन्शीजी बार-बार कहते-मैं यही हूं,घबराओं नहीं। पर उसे विश्वास न आता। उन्हीं की ओर ताकती और पूछती कि –कहां है ? यहां तो नहीं है। कहां चले गये ? थोडी देर में जब चेत हो जाता तो चुप रह जाती और रोने लगती। तीनों दिन उसने विरजन, सुवामा, प्रताप एक की भी सुधि न की। वे सब-के-सब हर घडी उसी के पास खडे रहते, पर ऐसा जान पडता था, मानों वह मुशींजी के अतिरिक्त और किसी को पहचानती ही नहीं है। जब विरजन बैचैन हो जाती और गले में हाथ डालकर रोने लगती, तो वह तनिक आंख खोल देती और पूछती-'कौन है, विरजन ? बस और कुछ न पूछती। जैसे, सूम के हृदय में मरते समय अपने गडे हुए धन के सिवाय और किसी बात का ध्यान नहीं रहयता उसी प्रकार हिन्दू-सत्री अन्त समय में पति के अतिरिक्त और किसी का ध्यान नहीं कर सकती।

कभी-कभी सुशीला चौंक पड़ती और विस्मित होकर पूछती-'अरे। यह कौन खडा है ? यह कौन भागा जा रहा है ? उन्हें क्यों ले जाते है ? ना मैं न जाने दूंगी। यह कहकर मुंशीजी के दोनों हाथ पकड़ लेती। एक पल में जब होश आ जाता, तो लजिजत होकर कहती....'मैं सपना देख रही थी, जैसे कोई तुम्हें लिये जा रहा था। देखो, तुम्हें हमारी सौहं है, कहीं जाना नहीं। न जाने कहां ले जायेगा, फिर तुम्हें कैसे देखूंगी ? मुन्शीजी का कलेजा मसोसने लगता। उसकी ओर पति करूणा-भरी स्नेह-दृष्टि डालकर बोलते-'नहीं, मैं न जाउंगा। तुम्हें छोड़कर कहां जाउंगा ? सुवामा उसकी दशा देखती और रोती कि अब यह दीपक बुझा ही चाहता है। अवस्था ने उसकी लज्जा दूर कर दी थी। मुन्शीजी के सम्मुख घंटों मुंह खोले खड़ी रहती।

चौथे दिन सुशीला की दशा संभल गयी। मुन्शीजी को विश्वास हो गया, बस यह अन्तिम समय है। दीपक बुझने के पहले भभक उठता है। प्रातःकाल जब मुंह धोकर वे घर में आये, तो सुशीला ने संकेत द्वारा उन्हें अपने पास बुलाया और कहा-'मुझे अपने हाथ से थोड़ा-सा पानी पिला दो''। आज वह सचेत थी। उसने विरजन, प्रताप, सुवामा सबको भली-भांति पहिचाना। वह विरजन को बड़ी देर तक छाती से लगाये रोती रही। जब पानी पी चुकी तो सुवामा से बोली-'बहिन। तनिक हमको उठाकर बिठा दो, स्वामी जी के चरण छूं लूं। फिर न जाने कब इन चरणों के दर्शन होंगे। सुवामा ने रोते हुए अपने हाथों से सहारा देकर उसे तनिक उठा दिया। प्रताप और विरजन सामने खड़े थे। सुशीला ने मुन्शीजी से कहा-'मेरे समीप आ जाओ'। मुन्शीजी प्रेम और करूणा से विह्वल होकर उसके गले से लिपट गये और गदगद स्वर में बोले-'घबराओ नहीं, ईश्वर चाहेगा तो तुम अच्छी हो जाओगी'। सुशीला ने निराश भाव से कहा-'हॉ' आज अच्छी हो जाउंगी। जरा अपना पैर बढ़ा दो। मैं माथे लगा लूं। मुन्शीजी हिचकिचाते रहे। सुवामा रोते हुए बोली-'पैर बढ़ा दीजिए, इनकी इच्छा पूरी हो जाये। तब मुंशीजी ने चरण बढा दिये। सुशीला ने उन्हें दोनों हाथों में पकड कर कई बार चूमा। फिर उन पर हाथ रखकर रोने लगी। थोड़े ही देर में दोनों चरण उष्ण जल-कणों से भीग गये। पतिव्रता स्त्री ने प्रेम के मोती पति के चरणों पर निछोवर कर दिये। जब आवाज संभली तो उसने विरजन का एक हाथ थाम कर मुन्शीजी के हाथ में दिया और अति मन्द स्वर में कहा-स्वामीजी। आपके संग बहुत दिन रही और जीवन का परम सुख भोगा। अब प्रेम का नाता टूटता है। अब मैं पल-भर की और अतिथि हूं। प्यारी विरजन को तुम्हें सौंप जाती हूं। मेरा यही चिह्न है। इस पर सदा दया-दृष्टि रखना। मेरे भाग्य में प्यारी पुत्री का सुख देखना नहीं बदा था। इसे मैने कभी कोई कटु वचन नहीं कहा, कभी कठोर दृष्टि से नहीं देखा। यह मरे जीवन का फल है। ईश्वर के लिए तुम इसकी ओर से बेसुध न हो जाना। यह कहते-कहते हिचकियां बंध गयीं और मूर्छा-सी आ गयी।

जब कुछ अवकाश हआ तो उसने सुवामा के सम्मुख हाथ जोड़े और रोकर कहा- 'बहिन'। विरजन तुम्हारे समर्पण है। तुम्हीं उसकी मता हो। लल्लू। प्यारे। ईश्वर करे तुम जुग-जुग जीओ। अपनी विरजन को

भूलना मत। यह तुम्हारी दीना और मातृहीना बहिन है। तुममें उसके प्राण बसते है। उसे रूलाना मत, उसे कुढाना मत, उसे कभी कठोर वचन मत कहना। उससे कभी न रूठना। उसकी ओर से बेसुध न होना, नहीं तो वह रो-रो कर प्राण दे देगी। उसके भाग्य में न जाने क्या बदा है, पर तुम उसे अपनी सगी बहिन समझकर सदा ढाढस देते रहना। मैं थोड़ी देर में तुम लोगों को छोडकर चली जाऊंगी, पर तुम्हें मेरी सोह, उसकी ओर से मन मोटा न करना तुम्हीं उसका बेड़ा पार लगाओगे। मेरे मन में बड़ी-बड़ी अभिलाषाएं थीं, मेरी लालसा थी कि तुम्हारा ब्याह करूंगी, तुम्हारे बच्चे को खिलाउंगी। पर भाग्य में कुछ और ही बदा था।

यह कहते-कहते वह फिर अचेत हो गयी। सारा घर रो रहा था। महरियां, महराजिनें सब उसकी प्रशंसा कर रही थी कि स्त्री नहीं, देवी थी।

रधिया-इतने दिन टहल करते हुए, पर कभी कठोर वचन न कहा।

महराजिन-हमको बेटी की भांति मानती थीं। भोजन कैसा ही बना दूं पर कभी नाराज नहीं हुई। जब बातें करतीं, मुस्करा के। महराज जब आते तो उन्हें जरूर सीधा दिलवाती थी।

सब इसी प्रकार की बातें कर रहे थे। दोपहर का समय हुआ। महराजिन ने भोजन बनाया, परन्तु खाता कौन ? बहुत हठ करने पर मुंशीजी गये और नाम करके चले आये। प्रताप चौके पर गया भी नहीं। विरजन और सुवामा को गले लगाती, कभी प्रताप को चूमती और कभी अपनी बीती कह-कहकर रोती। तीसरे पहर उसने सब नौकरों को बुलाया और उनसे अपराध क्षमा कराया। जब वे सब चले गये तब सुशीला ने सुवामा से कहा- बहिन प्यास बहुत लगती है। उनसे कह दो अपने हाथ से थोड़ा-सा पानी पिला दें। मुंशीजी पानी लाये। सुशीला ने कठिनता से एक घूंट पानी कण्ठ से नीचे उतारा और ऐसा प्रतीत हुआ, मानो किसी ने उसे अमृत पिला दिया हो। उसका मुख उज्जवल हो गया आंखों में जल भर आया। पति के गले में हाथ डालकर बोली—मै ऐसी भाग्यशालिनी हूं कि तुम्हारी गोद में मरती हूं। यह कहकर वह चुप हो गयी, मानों कोई बात कहना ही चाहती है, पर संकोच से नहीं कहती। थोडी देर पश्चात् उसने फिर मुंशीजी का हाथ पकड़ लिया और कहा-'यदि तुमसे कुछ मांगू,तो दोगे ?

मुंशीजी ने विस्मित होकर कहा-तुम्हारे लिए मांगने की आवश्यकता है? नि:संकोच कहो।

सुशीला-तुम मेरी बात कभी नहीं टालते थे।

मुन्शीजी-मरते दम तक कभी न टालूंगा।

सुशीला-डर लगता है, कहीं न मानो तो...

मुन्शीजी-तुम्हारी बात और मैं न मानूं ?

सुशीला-मैं तुमको न छोडूंगी। एक बात बतला दो-सिल्ली(सुशीला)मर जायेगी, तो उसे भूल जाओगे ?

मुन्शीजी-ऐसी बात न कहो, देखो विरजन रोती है।

सुशीला-बतलाओं, मुझे भूलोगे तो नहीं ?

मुन्शीजी-कभी नहीं।

सुशीला ने अपने सूखे कपोल मुशींजी के अधरों पर रख दिये और दोनों बांहें उनके गले में डाल दीं। फिर विरजन को निकट बुलाकर धीरे-धीरे समझाने लगी-देखो बेटी। लालाजी का कहना हर घडी मानना, उनकी सेवा मन लगाकर करना। गृह का सारा भर अब तुम्हारे ही माथे है। अब तुम्हें कौन सभांलेगा ? यह कह कर उसने स्वामी की ओर करूणापूर्ण नेत्रों से देखा और कहा- मैं अपने मन की बात नहीं कहने पायी, जी डूबा जाता है।

मुन्शीजी-तुम व्यर्थ असमंजस में पडी हो।

सुशीला-तुम मरे हो कि नहीं ?

मुन्शीजी-तुम्हारा और आमरण तुम्हारा।

सुशीला- ऐसा न हो कि तुम मुझे भूल जाओं और जो वस्तु मेरी थी वह अन्य के हाथ में चली जाए।

सुशीला ने विरजन को फिर बुलाया और उसे वह छाती से लगाना ही चाहती थी कि मूर्छित हो गई। विरजन और प्रताप रोने लगे। मुंशीजी ने कांपते हुए सुशीला के हृदय पर हाथ रखा। सांस धीरे-धीरे चल रही थी। महराजिन को बुलाकर कहा-अब इन्हें भूमि पर लिटा दो। यह कह कर रोने लगे। महराजिन और सुवामा ने मिलकर सुशीला को पृथ्वी पर लिटा दिया। तपेदिक ने हडिडयां तक सुखा डाली थी।

अंधेरा हो चला था। सारे गृह में शोकमय और भयावह सन्नाटा छाया हुआ था। रोनेवाले रोते थे, पर कण्ठ बांध-बांधकर। बातें होती थी, पर दबे स्वरों से। सुशीला भूमि पर पडी हुई थी। वह सुकुमार अंग जो कभी माता के अंग में पला, कभी प्रेमांक में प्रौढा, कभी फूलों की सेज पर सोया, इस समय भूमि पर पडा हुआ था। अभी तक नाडी मन्द-मन्द गति से चल रही थी। मुंशीजी शोक और निराशानद में मग्न उसके सिर की ओर बैठे हुए थे। अकस्समात् उसने सिर उठाया और दोनों हाथों से मुंशीजी का चरण पकड़ लिया। प्राण उड़ गये। दोनों कर उनके चरण का मण्डल बांधे ही रहे। यह उसके जीवन की अंतिम क्रिया थी।

रोनेवालो, रोओ। क्योंकि तुम रोने के अतिरिक्त कर ही क्या सकते हो? तुम्हें इस समय कोई कितनी ही सान्त्वना दे, पर तुम्हारे नेत्र अश्रु-प्रवाह को न रोक सकेंगे। रोना तुम्हारा कर्तव्य है। जीवन में रोने के अवसर कदाचित मिलते हैं। क्या इस समय तुम्हारे नेत्र शुष्क हो जायेगें ? आंसुओं के तार बंधे हुए थे, सिसकियों के शब्द आ रहे थे कि महराजिन दीपक जलाकर घर में लायी। थोडी देर पहिले सुशीला के जीवन का दीपक बुझ चुका था।

विरजन की विदा

राधाचरण रूड़की कालेज से निकलते ही मुरादाबाद के इंजीनियर नियुक्त हुए और चन्द्रा उनके संग मुरादाबाद को चली। प्रेमवती ने बहुत रोकना चाहा, पर जानेवाले को कौन रोक सकता है। सेवती कब की ससुराल आ चुकी थी। यहां घर में अकेली प्रेमवती रह गई। उसके सिर घर का काम-काज पडा। निदान यह राय हुई कि विरजन के गौने का संदेशा भेजा जाए। डिप्टी साहब सहमत न थे, परन्तु घर के कामों में प्रेमवती ही की बात चलती थी।

संजीवनलाल ने संदेशा स्वीकार कर लिया। कुछ दिनों से वे तीर्थयात्रा का विचार कर रहे थे। उन्होंने क्रम-क्रम से सांसारिक संबंध त्याग कर दिये थे। दिन-भर घर में आसन मारे भगवदगीता और योगवाशिष्ठ आदि ज्ञान-संबन्धिनी पुस्तकों का अध्ययन किया करते थे। संध्या होते ही गंगा-स्नान को चले जाते थे। वहां से रात्रि गये लौटते और थोड़ा-सा भोजन करके सो जाते। प्राय: प्रतापचन्द्र भी उनके संग गंगा-स्नान को जाता। यद्यपि उसकी आयु सोलह वर्ष की भी न थी, पर कुछ तो यनिज स्वभाव, कुछ पैतृक संस्कार और कुछ संगति के प्रभाव से उसे अभी से वैज्ञानिक विषयों पर मनन और विचार करने में बडा आनन्द प्राप्त होता था। ज्ञान तथा ईश्वर संबन्धिनी बातें सुनते-सुनते उसकी प्रवृति भी भक्ति की ओर चली थी, और किसी-किसी समय मुन्शीजी से ऐसे सूक्ष्म विषयों पर विवाद करता कि वे विस्मित हो जाते। वृजरानी पर सुवामा की शिक्षा का उससे भी गहरा प्रभाव पड़ा था जितना कि प्रतापचन्द्र पर मुन्शीजी की संगति और शिक्षा का। उसका पन्द्रहवा वर्ष था। इस आयु में नयी उमंगें तरंगित होती है और चितवन में सरलता चंचलता की तरह मनोहर रसीलापन बरसने लगता है। परन्तु वृजरानी अभी वही भोली-भाली बालिका थी। उसके मुख पर हृदय के पवित्र भाव झलकते थे और वार्तालाप में मनोहारिणी मधुरता उत्पन्न हो गयी थी। प्रात:काल उठती और सबसे प्रथम मुन्शीजी का कमरा साफ करके, उनके पूजा-पाठ की सामग्री यथोचित रीति से रख देती। फिर रसोई घर के धन्धे में लग जाती। दोपहर का समय उसके लिखने-पढने का था। सुवामा पर उसका जितना प्रेम और जितनी श्रद्वा थी, उतनी अपनी माता पर भी न रही होगी। उसकी इच्छा विरजन के लिए आज्ञा से कम न थी।

सुवामा की तो सम्मति थी कि अभी विदाई न की जाए। पर मुन्शीजी के हठ से विदाई की तैयारियां होने लगीं। ज्यों-ज्यों वह विपति की घडी निकट आती, विरजन की व्याकुलता बढ़ती जाती थी। रात-दिन रोया करती। कभी पिता के चरणों में पड़ती और कभी सुवामा के पदों में लिपट जाती। पार विवाहिता कन्या पराये घर की हो जाती है, उस पर किसी का क्या अधिकार।

प्रतापचन्द्र और विरजन कितने ही दिनों तक भाई-बहन की भांति एक साथ रहें। पर जब विरजन की आंखे उसे देखते ही नीचे को झुक जाती थीं। प्रताप की भी यही दशा थी। घर में बहुत कम आता था। आवश्यकतावश आया, तो इस प्रकार दृष्टि नीचे किए हुए और सिमटे हुए, मानों दुलहिन है। उसकी दृष्टि में वह प्रेम-रहस्य छिपा हुआ था, जिसे वह किसी मनुष्य-यहां तक कि विरजन पर भी प्रकट नहीं करना चाहता था।

एक दिन सन्ध्या का समय था। विदाई को केवल तीन दिन रह गये थे। प्रताप किसी काम से भीतर गया और अपने घर में लैम्प जलाने लगा कि विरजन आयी। उसका अंचल आंसुओं से भीगा हुआ था। उसने आज दो वर्ष के अनन्तर प्रताप की ओर सजल-नेत्र से देखा और कहा-लल्लू। मुझसे कैसे सहा जाएगा ?

प्रताप के नेत्रों में आंसू न आये। उसका स्वर भारी न हुआ। उसने सुदृढ भाव से कहा-ईश्वर तुम्हें धैर्य धारण करने की शक्ति देंगे।

विरजन का सिर झुक गया। आंखें पृथ्वी में पड़ गयीं और एक सिसकी ने हृदय-वेदना की यह अगाध कथा वर्णन की, जिसका होना वाणी द्वारा असंभव था।

विदाई का दिन लडकियों के लिए कितना शोकमय होता है। बचपन की सब सखियों-सहेलियों, माता-पिता, भाई-बन्धु से नाता टूट जाता है। यह विचार कि मैं फिर भी इस घर में आ सकूंगी, उसे तनिक भी संतोष नहीं देता। क्यों अब वह आयेगी तो अतिथिभाव से आयेगी। उन लोगों से विलग होना, जिनके साथ जीवनोद्यान में खेलना और स्वातंद्त्रय-वाटिका में भ्रमण करना उपलब्ध हुआ हो, उसके हृदय को विदीर्ण कर देता है। आज से उसके सिर पर ऐसा भार पडता है, जो आमरण उठाना पडेगा।

विरजन का श्रृगांर किया जा रहा था। नाइन उसके हाथों व पैरों में मेंहदी रचा रही थी। कोई उसके बाल गूंथ रही थी। कोई जुडे में सुगन्ध बसा रही थी। पर जिसके लिये ये तैयारियां हो रही थी, वह भूमि पर मोती के दाने बिखेर रही थी। इतने में बारह से संदेशा आया कि मुर्हूत टला जाता है, जल्दी करों। सुवामा पास खडी थी। विरजन, उसके गले लिपट गयी और अश्रु-प्रवाह का आंतक, जो अब तक दबी हुई अग्नि की नाई सुलग रहा था, अकस्मात् ऐसा भडक उठा मानों किसी ने आग में तेल डाल दिया है।

थोडी देर में पालकी द्वार पर आयी। विरजन पडोस की सित्र्यों से गले मिली। सुवामा के चरण छुए, तब दो-तीन सित्रियों ने उसे पालकी के भीतर बिठा दिया। उधर पालकी उठी, इधर सुवामा मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पडी, मानों उसके जीते ही कोई उसका प्राण निकालकर लिये जाता था। घर सूना हो गया। सैकंडों सित्रयां का जमघट था, परन्तु एक विरजन के बिना घर फाडे खाता था।

कमलाचरण के मित्र

जैसे सिन्दूर की लालिमा से मांग रच जाती है, जैसे ही विरजन के आने से प्रेमवती के घर की रौनक बढ गयी। सुवामा ने उसे ऐसे गुण सिखाये थे कि जिसने उसे देखा, मोह गया। यहां तक कि सेवती की सहेली रानी को भी प्रेमवती के सम्मुख स्वीकार करना पड़ा कि तुम्हारी छोटी बहू ने हम सबों का रंग फीका कर दिया। सेवती उससे दिन-दिन भर बातें करती और उसका जी न ऊबता। उसे अपने गाने पर अभिमान था, पर इस क्षेत्र में भी विरजन बाजी ले गयी।

अब कमलाचरण के मित्रो ने आग्रह करना शुरू किया कि भाई, नई दुलहिन घर में लाये हो, कुछ मित्रों की भी फिक्र करों। सुनते है परम सुन्दरी पाये हो।

कमलाचरण को रूपये तो ससुराल से मिले ही थे, जेब खनखनाकर बोले-अजी, दावत लो। शराबें उड़ाओ। हॉ, बहुत शोरगुल न मचाना, नहीं तो कहीं भीतर खबर होगी तो समझेगें कि ये गुण्डे है। जब से वह घर में आयी है, मेरे तो होश उड़े हुए है। कहता हूं, अंग्रेजी, फारसी, संस्कृत, अलम-गलम सभी घोटे बैठी है। डरता हूं कहीं अंग्रेजी में कुछ पूछ बैठी, या फारसी में बातें करने लगे, मुहॅ ताकने के सिवाय और क्या करूंगा ? इसलिए अभी जी बचाता फिरता हूं।

यों तो कमलाचरण के मित्रों की संख्या अपरिमित थी। नगर के जितने कबूतर-बाज, कनकौएबाजा गुण्डे थे सब उनके मित्र परन्तु सच्चे मित्रों में केवल पांच महाशय थे और सभी-के-सभी फाकेमस्त छिछोरे थे। उनमें सबसे अधिक शिक्षित मिया मजीद थे। ये कचहरी में अरायज किया करते थे। जो कुछ मिलता, वह सब शराब में भेट करते। दूसरा नम्बर हमीदंखा का था। इन महाशय ने बहुत पैतृक संपति पायी थी, परन्तु तीन वर्ष में सब कुछ विलास में लुटा दी। अब यह ढंग था कि सांय को सज-धजकर गालियों में धूल फॉकते फिरते थे। तीसरे हजरत सैयद हुसैन थे-पक्के जुआरी, नाल के परम भक्त, सैकंडों के दांव लगाने वाले, स्त्री गहनों पर हाथ मॉजना तो नित्य का इनका काम था। शेष दो महाशय रामसेवकलालल और चन्हदूलाल कचहरी में नौकर थे। वेतन कम, पर ऊपरी आमदनी बहुत थी। आधी सुरापान की भेट करते, आधी भोग-विलास में उडाते। घर में लोग भूखे मरे या भिक्षा मॉगें, इन्हें केवल अपने सुख से काम था।

सलाह तो हो चुकी थी। आठ बजे जब डिप्टी साहब लेटे तो ये पॉचों जने एकत्र हुए और शराब के दौर चलने लगे। पॉचों पीने में अभ्यस्त थे। अब नशे का रंग जमा,बहक-बहककर बातें करने लगे।

मजीद-क्यों भाई कमलाचरण, सच कहना, स्त्री को देखकर जी खुश हो गया कि नहीं ?

कमला-अब आप बहकने लगे क्यों ?

रामसेवक-बतला क्यों नहीं देते, इसमें झेंपने की कौन-सी बात है ?

कमला-बतला क्या अपना सिर दूं, कभी सामने जाने का संयोग भी तो हुआ हो। कल किवाड़ की दरार से एक बार देख लिया था, अभी तक चित्र ऑखों पर फिर रहा है।

चन्दूलाल-मित्र, तुम बड़े भाग्यवान हो।

कमला-ऐसा व्याकुल हुआ कि गिरते-गिरते बचा। बस, परी समझ लो।

मजीद-तो भई, यह दोस्ती किस दिन काम आयेगी। एक नजर हमें भी दिखाओं।

सैयद-बेशक दोस्ती के यही मानी है कि आपस में कोई पर्दा न रहे।

चन्दूलाल-दोस्ती में क्या पर्दा ? अंग्रेजो को देखों,बीबी डोली से उतरी नहीं कि यार दोस्त हाथ मिलाने लगे।

रामसेवक-मुझे तो बिना देखे चैन न आयेगा ?

कमला-(एक धप लगा कर) जीभ काट ली जायेगी, समझे ?

रामसेवक-कोई चिन्ता नहीं, ऑखें तो देखने को रहेंगी।

मजीद-भई कमलाचरण, बुरा मानने की बात नहीं, अब इस वक्त तुम्हारा फर्ज है कि दोस्तों की फरमाइश पूरी करो।

कमला-अरे। तो मैं नहीं कब करता हूं ?

चन्दूलाल-वाह मेरे शेर। ये ही मर्दों की सी बातें है। तो हम लोग बन-ठनकर आ जायॅ, क्यों ?

कमला-जी, जरा मुंह में कालिख लगा लीजियेगा। बस इतना बहुत है।

सैयद-तो आज ही ठहरी न।

इधर तो शराब उड़ रही थी, उधर विरजन पलंग पर लेटी हुई विचार में मग्न हो रही थी। बचपन के दिन भी कैसे अच्छे होते हैं। यदि वे दिन एक बार फिर आ जाते। ओह। कैसा मनौहर जीवन था। संसार प्रेम और प्रीति की खान थी। क्या वह कोई अन्य संसार था ? क्या उन दिनों संसार की वस्तुए बहुत सुन्दर होती थी ? इन्हीं विचारों में ऑख झपक गयी और बचपन की एक घटना आंखों के सामने आ गयी। लल्लू ने उसकी गुडिया मरोड दी। उसने उसकी किताब के दो पन्ने फाड दिये। तब लल्लू ने उसकी पीठ मं जोर से चुटकी ली, बाहर भागा। वह रोने लगी और लल्लू को कोस रही थी कि सवामा उसका हाथ पकडे आयी और बोली-क्यों बेटी इसने तुम्हें मारा है न ? यह बहुत मार-मार कर भागता है। आज इसकी खबर लेती हं, देखूं कहां मारा है। लल्लू ने डबडबायी ऑखों से विरजन की ओर देखा। तब विरजन ने मुस्करा कर कहा-मुझे उन्हांने कहॉ मारा है। ये मुझे कभी नहीं मारते। यह कहकर उसका हाथ पकड लिया। अपने हिस्से की मिठाई खिलाई और फिर दोनों मिलकर खेलने लगे। वह समय अब कहां 9

रात्रि अधिक बीत गयी थी, अचानक विरजन को जान पडा कि कोई सामने वाली दीवार धमधमा रहा है। उसने कान लगाकर सुना। बराबर शब्द आ रहे थे। कभी रूक जाते फिर सुनायी देते। थोडी देर में मिट्टी गिरन लगी। डर के मारे विरजन के हाथ-पांव फूलने लगे। कलेजा धक-धक करने लगा। जी कडा करके उठी और महराजिन चतर स्त्री थी। समझी कि चिल्लाऊंगी तो जाग हो जायेगी। उसने सुन रखा था कि चोर पहिले सेध में पांव डालकर देखते है तब आप घुसते है। उसने एक डंडा उठा लिया कि जब पैर डालेगा तो ऐसा तानकर मारूंगी कि टॉग टूट जाएगी। पर चोर न पांव के स्थन पर सिर रख दिया। महराजिन घात मं थी ही डंडा चला दिया। खटक की आवाज आयी। चोर न झट सिंर खीच लिया और कहता हुआ सुनायी दिया-'उफ मार डाला, खोपडी झन्ना गयी'। फिर कई मनुष्यों के हॅसने की ध्वनि आयी और तत्पश्चात सन्नाटा हो गया। इतने में और लोग भी जाग पडे और शेष रात्रि बातचीत में व्यतीत हुई।

प्रात:काल जब कमलाचरण घर मं आये, तो नेत्र लाल थे और सिर में सूजन थी। महराजिम ने निकट जाकर देखा, फिर आकर विरजन से कहा-बहू एक बात कहूं। बुरा तो न मानोगी ?

विरजन – बुरा क्यों मानूगीं, कहो क्या कहती हो?

महराजिन – रात को सेंध पड़ी थी वह चोरों ने नहीं लगायी थी।

विरजन –फिर कौन था?

महराजिन – घर ही के भेदी थे। बाहरी कोई न था।

विरजन – क्या किसी कहारन की शरारत थी?

महराजिन – नहीं, कहारों में कोई ऐसा नहीं है।

विरजन – फिर कौन था, स्पष्ट क्यों नहीं कहती?

महाराजिन – मेरी जान में तो छोटे बाबू थे। मैंने जो लकड़ी मारी थी, वह उनके सिर में लगी। सिर फूला हुआ है।

इतना सुनते ही विरजन की भृकुटी चढ़ गयी। मुखमंडल अरुण हो आया। क्रुद्व होकर बोली – महराजिन, होश संभालकर बातें करो। तुम्हें यह कहते हुए लाज नहीं आती? तम्हें मेरे सम्मुख ऐसी बात कहने का साहस कैसे हुआ? साक्षात् मेरे ऊपर कलंक का टीका लगा रही हो। तुम्हारे बुढ़ापे पर दया आती है, नहीं तो अभी तुम्हें यहां से खड़े-खड़े निकलवा देती। तब तुम्हें विदित होता कि जीभ को वश में न रखने का क्या फल होता है! यहां से उठ जाओ, मुझे तुम्हारा मुंह देखकर ज्वर-सा चढ़ रहा है। तुम्हें इतना न समझ् पड़ा कि मैं कैसा वाक्य मुंह से निकाल रही हूं। उन्हें ईश्वर ने क्या नहीं दिया है? सारा घर उनका है। मेरा जो कुछ है, उनका है। मैं स्वयं उनकी चेरी हूं। उनके संबंध में तुम ऐसी बात कह बैठीं।

परन्तु जिस बात पर विरजन इतनी क्रुद्व हुई, उसी बात पर घर के और लोगों को विशवास हो गया। डिप्टी साहब के कान में भी बात पहुंची। वे कमलाचरण को उससे अधिक दुष्ट-प्रकृति समझते थे, जितना वह था। भय हुआ कि कहीं यह महाशय बहू के गहनों पर न हाथ बढ़ायें: अच्छा हो कि इन्हें छात्रालय में भेज दूं। कमलाचरण ने यह उपाय सुना तो बहुत छटपटाया, पर कुछ सोच कर छात्रालय चला गया। विरजन के आगमन से पूर्व कई बार यह सलाह हुई थी, पर कमला के हठ के आगे एक भी न चलती थी। यह स्त्री की दृष्टि में गिर जाने का भय था, जो अब की बार उसे छात्रालय ले गया।

कायापलट

पहला दिन तो कमलाचरण ने किसी प्रकार छात्रालय में काटा। प्रात: से सायंकाल तक सोया किये। दूसरे दिन ध्यान आया कि आज नवाब साहब और तोखे मिर्जा के बटेरों में बढ़ाऊ जोड़ हैं। कैसे-कैसे मस्त पट्ठे हैं! आज उनकी पकड़ देखने के योग्य होगी। सारा नगर फट पड़े तो आश्चर्य नहीं। क्या दिल्लगी है कि नगर के लोग तो आनंद उड़ायें और मैं पड़ा रोऊं। यह सोचते-सोचते उठा और बात-की-बात में अखाड़े में था।

यहां आज बड़ी भीड़ थी। एक मेला-सा लगा हुआ था। भीश्ती छिड़काव कर रहे थे, सिगरेट, खोमचे वाले और तम्बोली सब अपनी-अपनी दुकान लगाये बैठे थे। नगर के मनचले युवक अपने हाथों में बटेर लिये या मखमली अड्डों पर बुलबुलों को बैठाये मटरगश्ती कर रहे थे कमलाचरण के मित्रों की यहां क्या कमी थी? लोग उन्हें खाली हाथ देखते तो पूछते – अरे राजा साहब! आज खाली हाथ कैसे? इतने में मियां, सैयद मजीद, हमीद आदि नशे में चूर, सिगरेट के धुऐं भकाभक उड़ाते दीख पड़े। कमलाचरण को देखते ही सब-के-सब सरपट दौड़े और उससे लिपट गये।

मजीद – अब तुम कहां गायब हो गये थे यार, कुरान की कसम मकान के सैंकड़ो चक्कर लगाये होंगे।

रामसेवक – आजकल आनंद की रातें हैं, भाई! आंखें नहीं देखते हो, नशा-सा चढ़ा हुआ है।

चन्दुलाल – चैन कर रहा है पट्ठा। जब से सुन्दरी घर में आयी, उसने बाजार की सूरत तक नहीं देखी। जब देखीये, घर में घुसा रहता है। खूब चैन कर ले यार!

कमला – चैन क्या खाक करुं? यहां तो कैद में फंस गया। तीन दिन से बोर्डिंग में पड़ा हुआ हूं।

मजीद - अरे! खुदा की कसम?

कमला – सच कहता हूं, परसों से मिट्टी पलीद हो रही है। आज सबकी आंख बचाकर निकल भागा।

रामसेवक – खूब उड़े। वह मुछंदर सुपरिण्टेण्डण्ट झल्ला रहा होगा।

कमला – यह मार्के का जोड़ छोड़कर किताबों में सिर कौन मारता।

सैयद – यार, आज उड़ आये तो क्या? सच तो यह है कि तुम्हारा वहां रहना आफत है। रोज तो न आ सकोगे? और यहां आये दिन नयी सैर, नयी-नयी बहारें, कल लाला डिग्गी पर, परसों प्रेट पर, नरसों बेड़ों का मेला-कहां तक गिनाऊं, तुम्हारा जाना बुरा हुआ।

कमला – कल की कटाव तो मैं जरुर देखूंगा, चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय।

सैयद – और बेड़ों का मेला न देखा तो कुछ न देखा।

तीसरे पहर कमलाचरण मित्रों से बिदा होकर उदास मन छात्रालय की ओर चला। मन में एक चोर-सा बैठा हुआ था। द्वार पर पहुंचकर झांकने लगाकि सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब न हों तो लतपककर कमरे में हो रहूं। तो यह देखता है कि वह भी बाहर ही की ओर आ रहे हैं। चित्त को भली-भांति दृढ़ करके भीतर पैठा।

सुरिण्टेण्डेण्ट साहब ने पूछा – अब तक हां थे?

'एक काम से बाजार गया था'।

'यह बाजार जाने का समय नहीं है'।

'मुझे ज्ञात नहीं था, अब ध्यान रखूंग को जब कमला चारपाई पर लेटा तो सोचने लगा – यार, आज तो बच गया, पर उत्तम तभी हो कि कल बचूं। और परसों भी महाशय की आंख में धूल डालूं। कल का दृश्य वस्तुत:दर्शनीय होगा। पतंग आकाश में बातें करेंगे और लम्बे-लम्बे पेंच होंगे। यह ध्यान करते-करते सो गया। दूसरे दिन प्रात: काल छात्रालय से निकल भागा। सुहृदगण लाल डिग्गी पर उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। देखते ही गदगद् हो गये और पीठ ठोंकी।

कमलाचरण कुछ देर तक तो कटाव देखता रहा। फिर शौक चर्राया कि क्यों न मैं भी अपने कनकौए मंगाऊं और अपने हाथों की सफाई दिखलाऊं। सैयद ने भड़काया, बद-बदकर लड़ाओ। रुपये हम देंगे।चट घर पर आदमी दौड़ा दिया। पूरा विश्वास था कि अपने मांझे से सबको परास्त कर दूंगा। परन्तु जब आदमी घर से खाली हाथ आया, तब तो उसकी देह में आग-सी-लग गयी। हण्टर लेकर दौड़ा और घर पहुंचते ही कहारों को एक ओर से सटर-सटर पीटना आरंभ किया। बेचारे बैठे हुक्का: तमाखू कर रहे थे। निरपराध अचानक हण्टर पड़े तो चिल्ला-चिल्लाकर रोने लेगे। सारे मुहल्ले में एक कोलाहल मच गया। किसी को समझ ही में न आया कि हमारा क्या दोष है? वहां कहारों का भली-भांति सत्कार करके कमलाचरण अपने कमरे में

पहुंचा। परन्तु वहां की दुर्दशा देखकर क्रोध और भी प्रज्ज्वलित हो गया। पतंग फटे हुए थे, चर्खियां टूटी हुई थीं, मांझे लच्छियां उलझ् पड़ीं थीं, मानो किसी आपति ने इन यवन योद्वाओं का सत्यानाश कर दिया था। समझ गया कि अवश्य यह माताजी की करतूत है। क्रोध से लाल माता के पास गया और उच्च स्वर से बोला – क्या मां! तुम सचमुच मेरे प्राण ही लेने पर आ गयी हो? तीन दिन हुए कारागार में भिजवाया पर इतने पर भी चित्त को संतोष न हुआ। मेरे विनोद की सामग्रियों को नष्ट कर डाला क्यों?

प्रेमवती – (विस्मय से) मैंने तुम्हारी कोई चीज़ नहीं छुई! क्या हुआ?

कमला – (बिगड़कर) झूठों के मुख में कीड़े पड़ते हैं। तुमने मेरी वस्तुएं नहीं छुई तो किसको साहस है जो मेरे कमरे में जाकर मेरे कनकौए और चर्खियां सब तोड़-फोड़ डाले, क्या इतना भी नहीं देखा जाता।

प्रेमवती – ईश्वर साक्षी है। मैंने तुम्हारे कमरे में पांव भी नहीं रखा। चलो, देखूं कौन-कौन चीज़ें टूटी हैं। यह कहकर प्रेमवती तो इस कमरे की ओर चली और कमला क्रोध से भरा आंगन में खड़ा रहा कि इतने में माधवी विरजन के कमरे से निकली और उसके हाथ में एक चिट्टी देकर चली गयी। लिखा हुआ था-

‘अपराध मैंने किया है। अपराधिन मैं हूं। जो दण्ड चाहे दीजिए’।

यह पत्र देखते ही कमला भीगी बिल्ली बन गया और दबे पांव बैठक की ओर चला। प्रेमवती पर्दे की आड़ से सिसकते हुए नौकरों को डांट रही थी, कमलाचरण ने उसे मना किया और उसी क्षण कुछ और कनकौए जो बचे हुए थे, स्वंय फाड़ डाले, चर्खियां टुकड़े-टुकड़े कर डालीं और डोर में दियासलाई लगा दी। माता के ध्यान ही में नहीं आता था कि क्या बात है? कहां तो अभी-अभी इन्हीं वस्तुओं के लिए संसार सिर पर उठा लिया था, और कहा आप ही उसका शत्रु हो गया। समझी, शायद क्रोध से ऐसा कर रहा हों मानाने लगीं, पर कमला की आकृति से क्रोध तनिक भी प्रकट न होता था। सिथरता से बोला – क्रोध में नहीं हूं। आज से दृढ़ प्रतिज्ञा करता हूं कि पतंग कभी न
उड़ाऊँगां मेरी मूर्खता थी, इन वस्तुओं के लिए आपसे झगड़ बैठा।

जब कमलाचरण कमरे में अकेला रह गया तो सोचने लगा-निस्सन्देह मेरा पतंग उड़ाना उन्हे नापसन्द है, इससे हार्दिक घृणा है; नहीं तो मुझ पर यह अत्याचार कदापि न करतीं। यदि एक बार उनसे भेंट हो जाती तो पूछता कि तुम्हारी क्या इच्छा है; पर कैसे मुँह दिखाऊँ। एक तो महामूर्श, तिस पर कई बार अपनी मूर्खता का परिचय दे चुका। सेंधवाली घटना की सूचना उन्हें अवश्य मिली होगी। उन्हें मुख दिखाने के योग्य नहीं रहा। अब तो यही उपाय है कि न तो उनका मुख देखूँ न अपना दिखाऊँ, या किसी प्रकार कुछ विद्या सीखूँ। हाय ! इस सुन्दरी ने कैसार स्वरुप पाया है! स्त्री नीह अप्सरा जान पड़ती है। क्या अभी वह दिन भी होगा जब कि वह मुझसे प्रेम करेगी? क्या लाल-लाल रसीले अधर है! पर है कठोर हृदय। दया तो उसे छू नही गयी। कहती है जो दण्ड दूँ? यदि पा जाऊँ हृदय से लगा लू। अच्छा, तो अब आज से पढ़ना चाहिये। यह सोचते-सोचते उठा और दरबा खोलकर कबूतरों का उड़ाने लगा। सैकड़ो जोड़े थे ओर एक-से-एक बढ़-चढ़कर। आकाश मे तारे बन जाएँ, ड़े तो दिन-भर उतरने का नाम न लें। जगर क बूतरबाज एक-एक जोड़ पर गुलामी करने को तैयार थे। परन्तु क्षण-मात्र में सब-के-सब उड़ा दिय। जब दरबा खाली हो ेगया, तो कहाररों को आज्ञा दी कि इसे उठा ले जाओ और आग में जला दो। छत्ता भी गिरा दो, नहीं तो सब कबूतर जाकर उसकी पर बैठेंगें। कबूतरों का काम समाप्त करके बटेरों और बुलबुलों की ओर चले और उनकी भी कारागार से मुक्त कर दिया।

बाहर तो यह चरित्र हो रहा था, भीतर प्रेमवती छाती पीट रही थी कि ल़का न जाने क्या करने तर तत्पर हुआ है? विरजन को बुलाकर कहा-बेटी? बच्चे को किसी प्रकार रोको। न-जाने उसने मन मे क्या ठानी है? यह कहक रोने लगी! विरजन को भी सन्देह हो रहा था कि अवश्य इनकी कुछ और नयीत है नहीं तो यह क्रोध क्यों? यद्यपि कमला दुर्व्यसनी था, दुराचारी था, कुचरित्र था, परन्तु इन सब दोषों के होते हुए भी उसमें एक बड़ा गुण भी था, जिसका कोई स्त्री अवहेलना नहीं कर सकती। उसे वृजरानी से स्ववी प्रीति थी। और इसका गुप् रीति से कई बार परिचय भी मिल गया था। यही कारण था जिसेन विरजन को इतना गर्वशील बना दिया था। उसने कागेज निकाला और यह पत्र बाहर भेजा।

“प्रियत,

यह कोप किस पर है? केवल इसीलिए कि मैंने दो-तीन कनकौए फाड़ृ डाले? यदि मुझे ज्ञात होता कि आप इतनी-सी बात पर ऐसे क्रुद्व हो जायेंगे, तो कदापि उन पर हाथ न लगाती। पर अब तो अपराध हो गया, क्षमा कीजिये। यह पहला कसूर है

आपकी
वृजरानी।”

कमलाचरण यह पत्र पाकर ऐसा प्रमुदित हुआ, माने सारे जगत की संपत्ति प्राप्त हो गयी। उत्तर देने की इच्छा हुई, पर लेखनी ही नहीं उठती थी। न प्रशस्ति मिलती है, न प्रतिष्ठा, न आरंभ का विचार आता, न समाप्ति का। बहुत चाहते हैं कि भावपूर्ण लहलहाता हुआ पत्र लिखूं, पर बुद्‌वि तनिक भी नहीं दौड़ती। आज प्रथम बार कमलाचरण को अपनी मुर्खता और निरक्षरता पर रोना आया। शोक ! मैं एक सीधा-सा पत्र भी नहीं लिख सकता। इस विचार से वह रोने लगा और घर के द्‌वार सब बन्द कर लिये कि कोई देख न ले।

तीसरे पहर जब मुंशी श्यामाचरण घर आये, तो सबसे पहली वस्तु जो उनकी दृष्टि में पड़ी, वह आग का अलावा था। विस्मित होकर नौकरों से पूडा-यह अलाव कैसा?

नौकरों ने उत्तर दिया-सरकार ! दरबा जल रहा है।

मुंशीजी- (घुड़ककर) इसे क्यों जलाते हो? अब कबूर कहाँ रहेंगे?

कहार-छोटे बाबू की आज्ञा है कि सब दरबे जला दो

मुंशीजी- कबूतर कहाँ गये?

कहार-सब उड़ा दिये, एक भी नहीं रखा। कनकौए सब फाड़ डाले, डोर जला दी, बड़ा नुकसान किया।

कहरों ने अपनी समझ में मार-पीट का बउला लिया। बेचारे समझे कि मुंशीजी इस नुकासन क लिये कमलाचरण को बुरा-भला कहेंगे, परन्तु मंशीजी ने यह समाचार सुना तो भैंचक्के-से रह गये। उन्ही जानवरों पर कमलाचरण प्राण देता था, आज अकस्मात् क्या कायापलट हो गयी? अवश्य कुछ भेद है। कहार से कहा-बच्चे को भेज दो।

एक मिनट में कहार ने आकर कहा- हजुर, दरवाजा भीतर से बन्द है। बहुत खटखटाया, बोलते ही नहीं।

इतना सुनना था कि मुंशीजी का रुधिर शुष्क हो गया। झट सन्देह हुआ कि बच्चे ने विष खा लिया। आज एक जहर खिलाने के मुकदमें का फैसला किया था। नंगे, पाँव दौड़े और बन्द कमरे के किवाड़ पर बजपूर्वक लात मारी और कहा- बच्चा! बच्चा! यह कहते-कहते गला रुँध गया। कमलाचरण पिता की वाणी पहिचान कर झट उठा और अपने आँसूं पोंछकर किवाड़ खोल दिया। परन्तु उसे कितना आश्चर्य हुआ, जब मुंशीजी ने धिक्कार, फटकार के बदले उसे हृदय से लगा लिया और व्याकुल होकर पूछा-बच्चा, तुम्हे मेरे सिर की कसम, बता दो तुमने कुछ खा तो नहीं लिया? कमलाचरण ने इस प्रश्न का अर्थ समझने के लिये मुंशीजी की ओर आँखें उठायी तो उनमें जल भरा था, मुंशीजी को पूरा विश्वास हो गया कि अवश्यश् विपत्ति का सामना हुआ। एक कहार से कहा-डाक्टर साहब को बुला ला। कहना, अभी चलिये।

अब जाकर दुर्बुद्‌वि कमेलाचरण ने पिता की इस घबराहट का अर्थ समझा। दौड़कर उनसे लिपट गया और बोला- आपको भ्रम हुआ है। आपके सिर की कसम, मैं बहुत अच्छी तरह हूँ।

परन्तु डिप्टी साहब की बुद्‌वि स्थिर न थी ; समझे, यह मुझे रोककर विलम्ब करना चाहता है। विनीत भाव से बोले-बच्चा? ईश्वर के लिए मुझे छोड़ दो, मैं सन्दूक से एक औषधि ले आऊँ। मैं क्या जानता था कि तुम इस नीयत से छात्रालय में जा रहे हो।

कमलाचरण- इर्श्वर-साक्षी से कहता हूँ, मैं बिलकुल अच्छा हूँ। मैं ऐसा लज्जावान होता, तो इतना मूर्ख क्यों बना रहता? आप व्यर्थ ही डाक्टर साहब को बुला रहे हैं।

मुंशीजी- (कुछ-कुछ विश्वास करके) तो किवाड़ बन्द कर क्या करते थे?

कमलाचरण- भीतर से एक पत्र आया था, उत्तर लिख रहा था।

मुंशीजी- और यह कबूतर वगैरह क्यों उड़ा दिये?

कमला- इसीलिए कि निश्चिंतापूर्वक पढ़ूँ। इन्हीं बखेड़ों में समय नष्ट होता था। आज मैनें इनका अन्त कर दिया। अबा आप देखेंगे कि मैं पढ़ने में कैसा जी लगाता हूँ।

अब जाके डिप्टी साहब की बुद्‌वि ठिकाने आयी। भीतर जाकर प्रेमवती से समाचार पूछा तो उसने सारी रामायण कह सुनायी। उन्होंने जब सुना कि विरजन ने क्रोध में आकर कमला के कनकौए फाड़ डाले और चर्ख्रिया तोड़ डाली तो हंस पड़े और कमलाचरण के विनोद के सर्वनाश का भेद समझ में आ गया। बोले-जान पड़ता है कि बहू इन लालजी को सीधा करके छोड़ेगी।

भ्रम

वृजरानी की विदाई के पश्चात सुवामा का घर ऐसा सूना हो गया, मानो पिंजरे से सुआ उड़ गया। वह इस घर का दीपक और शरीर की प्राण थी। घर वही है, पर चारों ओर उदासी छायी हुई है। रहनेचाला वे ही है। पर सबके मुख मलिन और नेत्र ज्योतिहीन हो रहे है। वाटिका वही है, पर ऋतु पतझड़ की है। विदाई के एक मास पश्चात्र मुंशी संजीवनलाल भी तीर्थयात्र करने चले गये। धन-संपत्ति सब प्रताप को सर्मिपत कर दी। अपने सग मृगछाला, भगवद् गीता और कुछ पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ न ले गये।

प्रताचन्द्र की प्रेमाकांक्षा बड़ी प्रबल थीं पर इसके साथ ही उसे दमन की असीम शक्ति भी प्राप्त थी। घर की एक-एक वस्तु उसे विरजन का स्मरण कराती रहती थी। यह विचार एक क्षण के लिए भी दूर न होता था यदि विरजन मेरी होती, तो ऐसे सुख से जीवन व्यतीत होता। परन्तु विचार को वह हटाता रहता था। पढ़ने बैठता तो पुस्तक खुली रहती और ध्यान अन्यत्र जा पहुंचता। भोजन करने बैठता तो विरजन का चित्र नेत्रों में फिरने लगता। प्रेमाग्नि को दमन की शक्ति से दबाते-दबाते उसकी अवस्था ऐसी हो गयी, मानो वर्षों का रोगी है प्रेमियों को अपनी अभिलाषा पूरी होने की आशा हो यान हो, परन्तु वे मन-ही-मन अपनी प्रेमिकाओं से मिलने का आनन्द उठाते रहते है। वे भाव-संसार मे अपने प्रेम-पात्र से वार्तालाप करते हैं, उसे छोड़ते हैं, उससे रुठते हैं, उसे मनाते है और इन थावों में उन्हें तृप्ति होती है आैश्र मन को एक सुखद और रसमय कार्य मिल जाता है। परन्तु यदि कोई शक्ति उन्हें इस भावोद्यान की सैर करने से रोके, यदि कोई शक्ति ध्यान में भी उस प्रियतम का चित्र् न देखने दे, तो उन अभागों प्रेमियों को क्या दशा होगा? प्रताप इन्ही अभागों में था। इसमें संदेह नहीं कि यदि वह चाहता तो सुखद भावों का आनन्द भोग सकता था। भाव-संसार का भ्रमणअतीव सुखमय होता है, पर कठिनता तो यह थी कि वह विरजन का ध्यान भी कुत्सित वासनाओं से पवित्र् रखना चाहता था। उसकी शिक्षा ऐसे पवित्र नियमों से हुई थी और उसे ऐसे पवित्रत्माओं और नीतिपरायण मनुष्यों की संगति से लाभ उठाने क अवसर मिले थे कि उसकी दृष्टि में विचार की पवित्र्ता की भी उतनी ही प्रतिष्ठा थी जितनी आचार की पवित्रता की। यह कब संभव था कि वह विरजन को-जिसे कई बार बहिन कह चुका था और जिसे अब भी बहिन समझने का प्रयत्न करता रहता था-ध्यानावस्था में भी ऐसे भावों का केंद्र बनाता, जो कुवासनाओं से भले ही शुद्व हो, पर मन की दूषित आवेगों से मुक्त नहीं हो सकते थे जब तक मुन्शीजी संजीवनलाल विद्यमान थे, उनका कुछ-न-कुछ समय उनके संग ज्ञान और धर्म-चर्चा में कट जाता था, जिससे आत्मा को संतोष होता था ! परन्तु उनके चले जाने के पश्चात आत्म-सुधार का यह अवसर भी जाता रहा।

सुवामा उसे यों मलिन-मन पाती तो उसे बहुत दु:ख होता। एक दिन उसने कहा- यदि तुम्हारा चित्त न लगता हो, प्रयाग चले जाओ वहाँ शायद तुम्हारा जी लग जाए। यह विचार प्रताप के मन में भी कई बार उत्पन्न हुआ था, परन्तु इस भय से कि माता को यहां अकेले रहने में कष्ट होगा, उसने इस पक कुछ ध्यान नहीं दिया था। माता का आदेश पाकर इरादा पक्का हो गया। यात्रा की तैयारियां करने लगा, प्रस्थान का दिन निश्चित हो गया। अब सुवामा की यह दशा है कि जब देखिए, प्रताप को परदेश में रहने-सहने की शिक्षाएं दे रही है-बेटा, देखों किसी से झगड़ा मत मोल लेना।झगड़ने की तुम्हारी वैसे भी आदत नहीं है, परन्तु समझा देती हूँ। परदेश की बात है फूंक-फूंककर पग धरना। खाने-पीने में असंयम न करना। तुम्हारी यह बुरी आदत है कि जाड़ों में सांयकाल ही सो जाते हो, फिर कोई कितना ही बुलाये पर जागते ही नहीं। यह स्वभाव परदेश में भी बना रहे तो तुम्हें सांझ का भोजन काहे को मिलेगा? दिन को थोड़ी देर के लिए सो लिया करना। तुम्हारी आंखों में तो दिन को जैसे नींद नहीं आती।

उसे जब अवकाश मिला, बेटे को ऐसी समयोचित शिक्षाएं दिया करती। निदान प्रस्थान का दिन आ ही गया। गाड़ी दस बजे दिन को छूटती थी। प्रताप ने सोचा- विरजन से भेंट कर लूं। परदेश जा रहा हूँ। फिर न जाने कब भेंट हो। चित को उत्सुक किया। माता से कह बैठा। सुवामा बहुत प्रसन्न हुई। सुवामा बहुत प्रसन्न हुई। एक थाल में मोदक समोसे और दो-तीन प्रकार के मुरब्बे रखकर रधियाको दिये कि लल्लू के संग जा। प्रताप ने बाल बनवाये, कपड़े बदले। चलने को तो चला, पर ज्यों-ज्यों पग आगे उठाता है, दिल बैठा जाता है। भांति-भांति के विचार आ रहे है। विरजन न जाने क्या मन में समझे, क्या सन समझे। चार महीने बीत गये, उसने एक चिट्ठी भी तो मुझें अलग से नहीं लिखी। फिर क्योंकर कहूं कि मेरे मिलने से उसे प्रसन्नता होगी। अजी, अब उसे तुम्हारी चिन्ता ही क्या है? तुम मर भी जाओ तो वह आंसू न बहाये। यहां की बात

और थी। वह अवश्य उसकी आँखों में खटकेगा। कहीं यह न समझे कि लालाजी बन-ठनकर मुझे रिझाने आये हैं। इसी सोच-विचार में गढ़ता चला जाता था। यहाँ तक कि श्यामाचरण का मकान दिखाई देने लगा। कमला मैदान टहल रहा था उसे देखते ही प्रताप की वह दशा हो गई कि जो किसी चोर की दशा सिपाही को देखकर होती है झट एक घर कर आड़ में छिप गया और रधिया से बोला- तू जा, ये वस्तुएँ दे आ। मैं कुछ काम से बाजार जा रहा हूँ। लौटता हुआ जाऊँगा। यह कह कर बाजार की ओर चला, परन्तु केवल दस ही डग चला होेगा कि पिर महरी को बुलाया और बोला- मुझे शायद देर हो जाय, इसलिए न आ सकूँगा। कुछ पूछे तो यह चिट्ठी दे देना, कहकर जेब से पेन्सिल निकाली और कुछ पंक्तियां लिखकर दे दी, जिससे उसके हृदय की दशा का भली-भंति परिचय मिलता है।

"मैं आज प्रयाग जा रहा हूँ, अब वहीं पढूंगा। जल्दी के कारण तुमसे नहीं मिल सका। जीवित रहूँगा तो फिर आऊँगा। कभी-कभी अपने कुशल-क्षेम की सूचना देती रहना।

तुम्हारा
प्रताप"

प्रताप तो यह पत्र देकर चलता हुआ, रधिया धीरे-धीरे विरजन के घर पहुँची। वह इसे देखते ही दौड़ी और कुशल-क्षेम पूछने लगी-लाला की कोई चिट्ठी आयी थी?

रधिया- जब से गये, चिट्ठी-पत्री कुछ भी नहीं आयी।

विरजन- चाची तो सूख से है?

रधिया– लल्लू बाबू प्रयागराज जात है तीन तनिक उदास रहत है।

विरजन – (चौंककर) लल्लू प्रयाग जा रहे हैं।

रधिया – हां, हम सब बहुत समझाया कि परदेश मां कहां जैहो। मुदा कोऊ की सनुत है?

रधीया – कब जायेंगे?

रधीया – आज दस बजे की टे से जवय्या है। तुसे भेंट करन आवत रहेन, तवन दुवारि पर आइ के लवट गयेन।

विरजन – यहं तक आकर लौट गये। द्वार पर कोई था कि नहीं?

रधीया – द्वार पर कहां आये, सड़क पर से चले गये।

विरजन – कुछ कहा नहीं, क्यां लौटा जाता हूं?

रधीया – कुछ कहा नहीं, इतना बोले कि 'हमार टेम छहिट जहै, तौन हम जाइत हैं।'

विरजन ने घड़ी पर दृष्टि डाली, आठ बजने वाले थे। प्रेमवती के पास जाकर बोली – माता! लल्लू आज प्रयाग जा रहे हैं, दि आप कहें तो उनसे मिलती आऊं। फिर न जाने कब मिलना हो, कब न हो। महरी कहती है कि बस मुझसेमिलने आते थे, पर सड़क के उसी पार से लौट गये।

प्रेमवती – अभी न बाल गुंथवाये, न मांग भरवायी, न कपड़े बदले बस जाने को तैयार हो गयी।

विरजन – मेरी अम्मां! आज जाने दीजिए। बाल गुंथवाने बैठूंगी तो दस यहीं बज जायेंगे।

प्रेमवती – अच्छा, तो जाओ, पर संध्या तक लौट आना। गाड़ी तैयार करवा लो, मेरी ओर से सुवामा को पालगन कह देना।

विरजन ने कपड़े बदले, माधवी को बाहर दौड़ाया कि गाड़ी तैयार करने के लिए कहो और तब तक कुछ ध्यान न आया। रधीया से पूछा – कुछ चिट्टी-पत्री नहीं दी?

रधिया ने पत्र निकालकर दे दिया। विरजन ने उसे हर्ष सेलिया, परन्तु उसे पढ़ते ही उसका मुख कुम्हला गया। सोचने लगीकि वह द्वार तक आकर क्यों लौट गये और पत्र भी लिखा तो ऐसा उखड़ा और अस्पष्ट। ऐसी कौन जल्दी थी? क्या गाड़ी के नौकर थे, दिनभर में अधिक नहीं तो पांच – छः गाडियां जाती होंगी। क्या मुझसे मिलने के लिए उन्हे दो घंटों का विलम्ब भी असहय हो गया? अवश्य इसमें कुछ-न-कुछ भेद है। मुझसे क्या अपराध हुआ? अचानक उसे उस सय का ध्यान आया, जब वह अति व्याकुल हो प्रताप के पास गयी थी और उसके मुख से निकला था, 'लल्लू मुझसे कैसे सहा जायेगा!'विरजन को अब से पहिले कई बार ध्यान आ चुका कि मेरा उस समय उस दशा में जाना बहुत अनुचित था। परन्तु विश्वास हो गया कि मैं अवश्य लल्लू की दृष्टि से गिर गयी। मेरा प्रेम और मन अब उनके चित्तमें नहीं है। एक ठण्डी सांस लेकर बैठ गयी और माधवी से बोली – कोचवान से कह दो, अब गाड़ी न तैयार करें। मैं न जाऊंगी।

कर्तव्य और प्रेम का संघर्ष

जब तक विरजन ससुराल से न आयी थी तब तक उसकी दृष्टि में एक हिन्दु-पतिव्रता के कर्तव्य और आदर्श का कोई नियम स्थिर न हुआ था। घर में कभी पति-सम्बंधी चर्चा भी न होती थी। उसने स्त्री-धर्म की पुस्तकें अवश्य पढ़ी थीं, परन्तु उनका कोई चिरस्थायी प्रभाव उस पर न हुआ था। कभी उसे यह ध्यान ही न आता था कि यह घर मेरा नहं है और मुझे बहुत शीघ्र ही यहां से जाना पड़ेगा।

परन्तु जब वह ससुराल में आयी और अपने प्राणनाथ पति को प्रतिक्षण आंखों के सामने देखने लगी तो शनैः शनैः चित्-वृतियों में परिवर्तन होने लगा। ज्ञात हुआकि मैं कौन हूं, मेरा क्या कर्तव्य है, मेरा क्या र्धम और क्या उसके निर्वाह की रीति है? अगली बातें स्वप्नवत् जान पड़ने लगीं। हां जिस समय स्मरण हो आता कि अपराध मुझसे ऐसा हुआ है, जिसकी कालिमा को मैं मिटा नहीं सकती, तो स्वंय लज्जा से मस्तक झुका लेती और अपने को उसे आश्चर्य होता कि मुझे लल्लू के सम्मुख जाने का साहस कैसे हुआ! कदाचित् इस घटना को वह स्वप्न समझने की चेष्टा करती, तब लल्लू का सौजन्यपूर्ण चित्र उसे सामने आ जाता और वह हृदय से उसे आर्शीवाद देती, परन्तु आज जब प्रतापचंद्र की क्षुद्र-हृदयता से उसे यह विचार करने का अवसर मिला कि लल्लू उस घटना को अभी भुला नहीं है, उसकी दृष्टि में अब मेरी प्रतिष्टा नहीं रही, यहां तककि वह मेरा मुख भी नहीं देखना चाहता, तो उसे ग्लनिपूर्ण क्रोध उत्पन्न हुआ। प्रताप की ओर से चित्त लिन हो गया और उसकी जो प्रेम और प्रतिष्टा उसके हृदय में थी वह पल-भर में जल-कण की भांति उड़ने लगी। स्त्रीयों का चित्त बहुत शीघ्र प्रभावग्राही होता है,जिस प्रताप के लिए वह अपना असतित्व धूल मेंमिला देने को तत्पर थी, वही उसके एक बाल-व्यवहार को भी क्षमा नहीं कर सकता, क्या उसका हृदय ऐसा संकीर्ण है? यह विचार विरजन के हृदय में कांटें की भांति खटकने लगा।

आज से विरजन की सजीवता लुप्त हो गयी। चित्त पर एक बोझ-सा रहने लगा। सोचतीकि जब प्रताप मुझे भूल गये और मेरी रती-भर भी प्रतिष्टा नहीं करते तो इस शोक से मै। क्यों अपना प्राण घुलाऊं? जैसे 'राम तुलसी से, वैसे तुलसी राम से'। यदि उन्हें मझसे घृणा है, यदि वह मेरा मुख नहीं देखना चाहते हैं, तो मैं भी उनका मुख देखने से घ्रणा करती हूं और मुझे उनसे मिलने की इच्छा नहीं। अब वह अपने ही ऊपर झल्ला उठतीकि मैं प्रतिक्षण उन्हीं की बातें क्यों सोचती हूं और संकल्प करती कि अब उनका ध्यान भी मन में न आने दूंगी, पर तनिक देर में ध्यान फिर उन्हीं की ओर जा पहुंचता और वे ही विचार उसे बेचैन करने लगते। हृदय केइस संताप को शांत करने केलिए वह कमलाचरण को सच्चे प्रेम का परिचय देने लगी। वह थोड़ी देर के लिए कहीं चला जाता, तो उसे उलाहना देती। जितने रुपये जमा कर रखे थे, वे सब दे दिये कि अपने लिए सोने की घड़ी और चेन मोल ले लो। कमला ने इंकारकिया तो उदास हो गयी। कमला यों ही उसका दास बना हुआ था, उसके प्रेम का बाहुल्य देखकर और भी जान देने लगा। मित्रों ने सुना तो धन्यवाद देने लगे। मियां हमीद और सैयद अपने भाग्य को धिकारने लगे कि ऐसी स्नेही स्त्री हमको न मिली। तुम्हें वह बिन मांगे ही रुपये देती है और यहां स्त्रीयों की खींचतान से नाक में दम है। चाहेह अपने पास कानी कौड़ी न हो, पर उनकी इच्छा अवश्य पूरी होनी चाहिये, नहीं तो प्रलय मच जाय। अजी और क्या कहें, कभी घर में एक बीड़े पान के लिए भी चले जाते हैं, तो वहां भी दस-पांच उल्टी-सीधी सुने बिना नहीं चलता। ईश्वर हमको भी तुम्हारी-सी बीवी दे।

यह सब था, कमलाचरण भी प्रेम करता था और वृजरानी भी प्रेम करती थी परन्तु प्रेमियों को संयोग से जो हर्ष प्राप्त होता है, उसका विरजन के मुख पर कोई चिह्न दिखायी नहीं देता था। वह दिन-दिन दुबली और पतली होती जाती थी। कमलाचरण शपथ दे-देकर पूछताकि तुम दुबली क्यों होती जाती हो? उसे प्रसन्न् करने के जो-जो उपाय हो सकते करता, मित्रों से भी इस विषय में सम्मति लेता, पर कुछ लाभ न होता था। वृजरानी हंसकर कह दिया करतीकि तुम कुछ चिन्ता न करो, मैं बहुत अच्छी तरह हूं। यह कहते-कहते उठकर उसके बालों में कंघी लगाने लगती या पंखा झलने लगती। इन सेवा और सत्कारों से कमलाचरण फूलर न समाता। परन्तु लकड़ी के ऊपर रंग और रोगन लगाने से वह कीड़ा नहीं मरता, जो उसके भीतर बैठा हुआ उसका कलेजा खाये जाता है। यह विचार कि प्रतापचंद्र मुझे भूल गये और मैं उनकी में गिर गयी, शूल की भांति उसके हृदय को व्यथित किया करता था। उसकी दशा दिनों – दिनों बिगड़ती गयी – यहां तक कि बिस्तर पर से उठना तक कठिन हो गया। डाक्टरों की दवाएं होने लगीं।

उधर प्रतापचंद्र का प्रयाग में जी लगने लगा था। व्यायाम का तो उसे व्यसन था ही। वहां इसका बड़ा प्रचार था। मानसिक बोझ हलका करने के लिए शारीरिक श्रम से बढ़कर और कोई उपाय नहीं है। प्रात: कसरत करता, सांयकाल और फुटबाल खलता, आठ-नौ बजे रात तक वाटिका की सैर करता। इतने परिश्रम के पश्चात् चारपाई पर गिरता तो प्रभात होने ही पर आंख खुलती। छ: ही मास में क्रिकेट और फुटबाल का कप्तान बन बैठा और दो-तीन मैच ऐसे खेले कि सारे नगर में धूम हो गयी।

आज क्रिकेट में अलीगढ़ के निपुण खिलाडियों से उनका सामना था। ये लोग हिन्दुस्तान के प्रसिद्व खिलाडियों को परास्त करविजय का डंका बजाते यहां आये थे। उन्हें अपनी विजय में तनिक भी संदेह न था। पर प्रयागवाले भी निराश न थे। उनकी आशा प्रतापचंद्र पर निर्भर थी। यदि वह आध घण्टे भी जम गया, तो रनों के ढेर लगा देगा। और यदि इतनी ही देर तक उसका गेंद चल गया, तो फिर उधर का वार-न्यारा है। प्रताप को कभी इतना बड़ा मैच खेलने का संयोग नमिला था। कलेजा धड़क रहा था कि न जाने क्या हो। दस बजे खेल प्रारंभ हुआ। पहले अलीगढ़वालों के खेलने की बारी आयी। दो-ढाई घंटे तक उन्होंने खूब करामात दिखलाई। एक बजते-बजते खेल का पहिला भाग समाप्त हुआ। अलीगढ़ ने चार सौ रन किये। अब प्रयागवालों की बारी आयी पर खिलाडियों के हाथ-पांव फूले हुए थे। विश्वास हो गया कि हम न जीत सकेंगे। अब खेल का बराबर होना कठिन है। इतने रन कौन करेगा। अकेला प्रताप क्या बना लेगा ? पहिला खिलाड़ी आया और तीसरे गेंद मे विदा हो गया। दूसरा खिलाड़ी आया और कठिनता से पॉच गेंद खेल सका। तीसरा आया और पहिले ही गेंद में उड़ गया। चौथे ने आकर दो-तीन हिट लगाये, पर जम न सका। पॉचवे साहब कालेज मे एक थे, पर यां उनकी भी एक न चली। थापी रखते-ही-रखते चल दिये। अब प्रतापचन्द्र दृढ़ता से पैर उठाता, बैट घुमाता मैदान में आयां दोनों पक्षवालों ने करतल ध्वनि की। प्रयोगवालों की श अकथनीय थी। प्रत्येक मनुष्य की दृष्टि प्रतापचन्द्र की ओर लगी हुई थी। सबके हृदय धड़क रहे थे। चतुर्दिक सन्नाटा छाया हुआ था। कुछ लोग दूर बैठकर ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे कि प्रताप की विजय हो। देवी-देवता स्मरण किये जो रहे थे। पहिला गेंद आया, प्रताप नेखली दिया। प्रयोगवालों का साहस घट गया। दूसरा आया, वह भी खाली गया। प्रयागवालों का, कलेजा नाभि तक बैठ गया। बहुत से लोग छतरी संभाल घर की ओर चले। तीसरा गेंद आया। एक पड़ाके की ध्वनि हुई ओर गेंद लू (गर्म हवा) की भॉँति गगन भेदन करता हुआ हिट पर खड़े होनेवाले खिलाड़ी से ससौ गज ओग गिरा। लोगों ने तालियॉँ बजायीयं। सूखे धान में पानी पड़ा। जानेवाले ठिठक गये। निरशें को आशा बँधी। चौथा गंद आया और पहले गेंद से दस गज आगे गिरा। फील्डर चौंके, हिट पर मदद पहँचायी! पॉचवॉ गेंद आया और कट पर गया। इतने में ओवर हुआ। बालर बदले, नये बालर पूरे बधिक थे। घातक गेंद फेंकते थे। पर उनके पहिले ही गेंद को प्रताप के आकाश में भेजकर सूर्य से र्स्पश करा दिया। फिर तो गेंद और उसकी थापी में मैत्री-सी हो गयी। गेंद आता और थापी से पार्श्व ग्रहण करके कभी पूर्व का मार्ग लेता, कभी पश्चिम का , कभी उत्तर का और कभी दक्षिण का, दौड़ते-दौड़ते फील्डरों की सॉसें फूल गयीं, प्रयागवाले उछलते थे और तालियॉँ बजाते थे। टोपियॉँ वायु में उछल रही थीं। किसी न रुपये लुटा दिये और किसी ने अपनी सोने की जंजीर लुटा दी। विपक्षी सब मन मे कुढ़ते, झल्लाते, कभी क्षेत्र का क्रम परिवर्तन करते, कभी बालर परिवर्तन करते। पर चातुरी और क्रीड़ा-कौशल निरर्थक हो रहा था। गेंद की थापी से मित्रता दृढ़ हो गयी थी। पूरे दो घन्टे तक प्रताप पड़ाके, बम-गोले और हवाइयॉँ छोड़तमा रहा और फील्डर गंद की ओर इस प्रकार लपकते जैसे बच्चे चन्द्रमा की ओर लपकते हैं। रनों की संख्या तीन सौ तक पहुँच गई। विपक्षियों के छक्के छूटे। हृदय ऐसा भर्रा गया कि एक गेंद भी सीधा था। यहां तक कि प्रताप ने पचास रन और किये और अब उसने अम्पायर से तनिक विश्राम करने के लिए अवकाश मॉँगा। उसे आता देखकर सहस्रों मनुष्य उसी ओरदौड़े और उसे बारी-बारी से गोद में उठाने लगे। चारों ओर भगदड़ मच गयी। सैकड़ो छाते, छड़ियॉँ टोपियॉँ और जूते ऊर्ध्वगामी हो गये मानो वे भी उमंग में उछल रहे थे। ठीक उसी समय तारघर का चपरासी बाइसिकल पर आता हुआ दिखायी दिया। निकट आकर बोला-'प्रतापचंद्र किसका नाम है!' प्रताप ने चौंककर उसकी ओर देखा और चपरासी ने तार का लिफाफा उसके हाथ में रख दिया। उसे पढ़ते ही प्रताप का बदन पीला हो गया। दीर्घ श्वास लेकर कुर्सी पर बैठ गया और बोरला-यारो ! अब मैच का निबटारा तुम्हारे हाथ में है। मेंने अपना कर्तव्य-पालन कर दिया, इसी डाक से घर चला जाँऊगा।

यह कहकर वह बोर्डिंग हाउस की ओर चला। सैकड़ों मनुष्य पूछने लगे-क्या है ? क्या है ? लोगों के मुख पर उदासी छा गयी पर उसे बात करने का कहॉँ अवकाश ! उसी समय तॉँगे पर चढ़ा और स्टेशन की

ओर चला। रास्ते-भर उसके मन में तर्क-वितर्क होते रहे। बार-बार अपने को धिक्कार देता कि क्यों न चलते समय उससे मिल लिया ? न जाने अब भेंट हो कि न हो। ईश्वर न करे कहीं उसके दर्शन से वंचित रहूँ; यदि रहा तो मैं भी मुँह मे कालिख पोत कहीं मर रहूँगा। यह सोच कर कई बार रोया। नौ बजे रात को गाड़ी बनारस पहुँची। उस पर से उतरते ही सीधा श्यामाचरण के घर की ओर चला। चिन्ता के मारे ऑंखें डबडबायी हुई थी और कलेजा धड़क रहा था। डिप्टी साहब सिर झुकाये कुर्सी पर बैठे थे और कमला डाक्टर साहब के यहॉं जाने को उद्यत था। प्रतापचन्द्र को देखते ही दौड़कर लिपट गया। श्यामाचरण ने भी गले लगाया और बोले-क्या अभी सीधे इलाहाबाद से चले आ रहे हो ?

प्रताप-जी हॉं ! आज माताजी का तार पहुँचा कि विरजन की बहुत बुरी दशा है। क्या अभी वही दशा है ?

श्यामाचरण-क्या कहूँ इधर दो-तीन मास से दिनोंदिन उसका शरीर क्षीण होता जाता है, औषधियों का कुछ भी असर नहीं होता। देखें, ईश्वर की क्या इच्छा है! डाक्टर साहब तो कहते थे, क्षयरोग है। पर वैद्यराज जी हृदय-दौर्बल्य बतलाते हैं।

विरजन को जब से सूचना मिली कि प्रतापचन्द्र आये हैं, तब से उसक हृदय में आशा और भय घुड़दौड़ मची हुई थी। कभी सोचती कि घर आये होंगे, चाची ने बरबस ठेल-ठालकर यहॉं भेज दिया होगा। फिर ध्यान हुआ, हो न हो, मेरी बीमारी का समाचार पा, घबड़ाकर चले आये हों, परन्तु नहीं। उन्हें मेरी ऐसी क्या चिन्ता पड़ी है ? सोचा होगा-नहीं मर न जाए, चलूँ सांसारिक व्यवहार पूरा करता आऊं। उन्हें मेरे मरने-जीने का क्या सोच ? आज मैं भी महाशय से जी खोलकर बातें करुंगी ? पर नहीं बातों की आवश्यकता ही क्या है ? उन्होंने चुप साधी है, तो मैं क्या बोलूँ ? बस इतना कह दूँगी कि बहुत अच्छी हूँ और आपके कुशल की कामना रखती हूँ ! फिर मुख न खोलूँगी ! और मैं यह मैली-कुचैली साड़ी क्यों पहिने हूँ ? जो अपना सहवेदी न हो उसके आगे यह वेश बनाये रखने से लाभ? वह अतिथि की भॉंति आये हैं। मैं भी पाहुनी की भॉंति उनसे मिलूँगी। मनुष्य का चित्त कैसा चचंल है? जिस मनुष्य की अकृपा ने विरजन की यह गति बना दी थी, उसी को जलाने के लिए ऐसे-ऐसे उपाय सोच रही है।

दस बजे का समय था। माधवी बैठी पख झल रही थी। औषधियों की शीशियॉं इधर-उधर पड़ी हुई थीं और विरजन चारपाई पर पड़ी हुई ये ही सब बातें सोच रही थी कि प्रताप घर में आया। माधवी चौंककर बोली-बहिन, उठो आ गये। विरजन झपटकर उठी और चारपाई से उतरना चाहती थी कि निर्बलता के कारण पृथ्वी पर गिर पड़ी। प्रताप ने उसे सँभाला और चारपाई पर लेटा दिया। हा! यह वही विरजन है जो आज से कई मास पूर्व रुप एवं लावाण्य की मूर्ति थी, जिसके मुखड़े पर चमक और ऑंखों में हँसी का वपास था, जिसका भाषण श्यामा का गाना और हँसना मन का लुभानाथ। वह रसीली ऑंखोंवाली, मीठी बातों वाली विरजन आज केवल अस्थिचर्मावशेष है। पहचानी नहीं जाती। प्रताप की ऑंखों में ऑंसू भर आये। कुशल पूछना चाहता था, पर मुख से केवल इतना निकला-विरजन ! और नेत्रों से जल-बिन्दु बरसने लगे। प्रेम की ऑंखे मनभावों के परखने की कसौटी है। विरजन ने ऑंख उठाकर देखा और उन अश्रु-बिन्दुओं ने उसके मन का सारा मैल धो दिया।

जैसे कोई सेनापति आनेवाले युद्व का चित्र मन में सोचता है और शत्रु को अपनी पीठ पर देखकर बदहवास हो जाता है और उसे निर्धरित चित्र का कुछ ध्यान भी नहीं रहता, उसी प्रकार विरजन प्रतापचन्द्र को अपने सम्मुख देखकर सब बातें भूल गयी, जो अभी पड़ी-पड़ी सोच रही थी ! वह प्रताप को रोते देखकर अपना सब दु:ख भूल गयी और चारपाई से उठाकर ऑंचल से ऑंसूं पोंछने लगी। प्रताप, जिसे अपराधी कह सकते हैं, इस समय दीन बना हुआ था और विरजन –जिसने अपने को सखकर इस श तक पहुँचाया था-रो-रोकर उसे कह रही थी- लल्लू चुप रहो, ईश्वर जानता है, मैं भली-भॉंति अच्छी हूँ। मानो अच्छा न होना उसका अपराध था। स्त्रीयों की संवेदनशीलता कैसी कोमल होती है! प्रतापचन्द्र के एक सधारण संकोच ने विरजन को इस जीवन से उपेक्षित बना दिया था। आज ऑंसू कुछ बूँदों की उसके हृदय के उस सन्ताप, उस जलन और उस अग्नि कोशन्त कर दिया, जो कई महीनों से उसके रुधिर और हृदय को जला रही थी। जिस रेग को बड़े-बड़े वैद्य और डाक्टर अपनी औषधि तथा उपाय से अच्छा न कर सके थे, उसे अश्रु-बिन्दुओं ने क्षण-भर में चंगा कर दिया। क्या वह पानी के बिन्दु अमृत के बिन्दु थे ?

प्रताप ने धीरज धरकर पूछा- विरजन! तुमने अपनी क्या गति बना रखी है ?

विरजन (हँसकर)- यह गति मैंने नहीं बनायी, तुमने बनायी है।

प्रताप-माताजी का तार न पहुँचा तो मुझे सूचना भी न होती।

विरजन-आवश्यकता ही क्या थी ? जिसे भुलाने के लिए तो तुम प्रयाग चले गए, उसके मरने-जीने की तुम्हें क्या चिन्ता ?

प्रताप-बातें बना रही हो। पराये को क्यों पत्र लिखतीं ?

विरजन-किसे आशा थी कि तुम इतनी दूर से आने का या पत्र लिखने का कष्ट उठाओगे ? जो द्वार से आकर फिर जाए और मुख देखने से घण करे उसे पत्र भेजकर क्या करती?

प्रताप- उस समय लौट जाने का जितना दु:ख मुझे हुआ, मेरा चित्त ही जानता है। तुमने उस समय तक मेरे पास कोई पत्र न भेजा था। मैंने सझ, अब सुध भूल गयी।

विरजन-यदि मैं तुम्हारी बातों को सच न समझती होती हो कह देती कि ये सब सोची हुई बातें हैं।

प्रताप-भला जो समझो, अब यह बताओ कि कैसा जी है? मैंने तुम्हें पहिचाना नहीं, ऐसा मुख फीका पड़ गया है।

विरजन- अब अच्छी हो जाँऊगी, औषधि मिल गयी।

प्रताप सकेत समझ गया। हा, शोक! मेरी तनिक-सी चूक ने यह प्रलय कर दिया। देर तक उसे सझता रहा और प्रात:काल जब वह अपने घर तो चला तो विरजन का बदन विकसित था। उसे विश्वास हो गया कि लल्लू मुझे भूले नहीं है और मेरी सुध और प्रतिष्ठा उनके हृदय में विद्‌यामन है। प्रताप ने उसके मन से वह कॉंटा निकाल दिया, जो कई मास से खटक रहा था और जिसने उसकी यह गति कर रखी थी। एक ही सप्ताह में उसका मुखड़ा स्वर्ण हो गया, मानो कभी बीमार ही न थी।